Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मारवाड़ की सांस्कृतिक धरोहर

7134

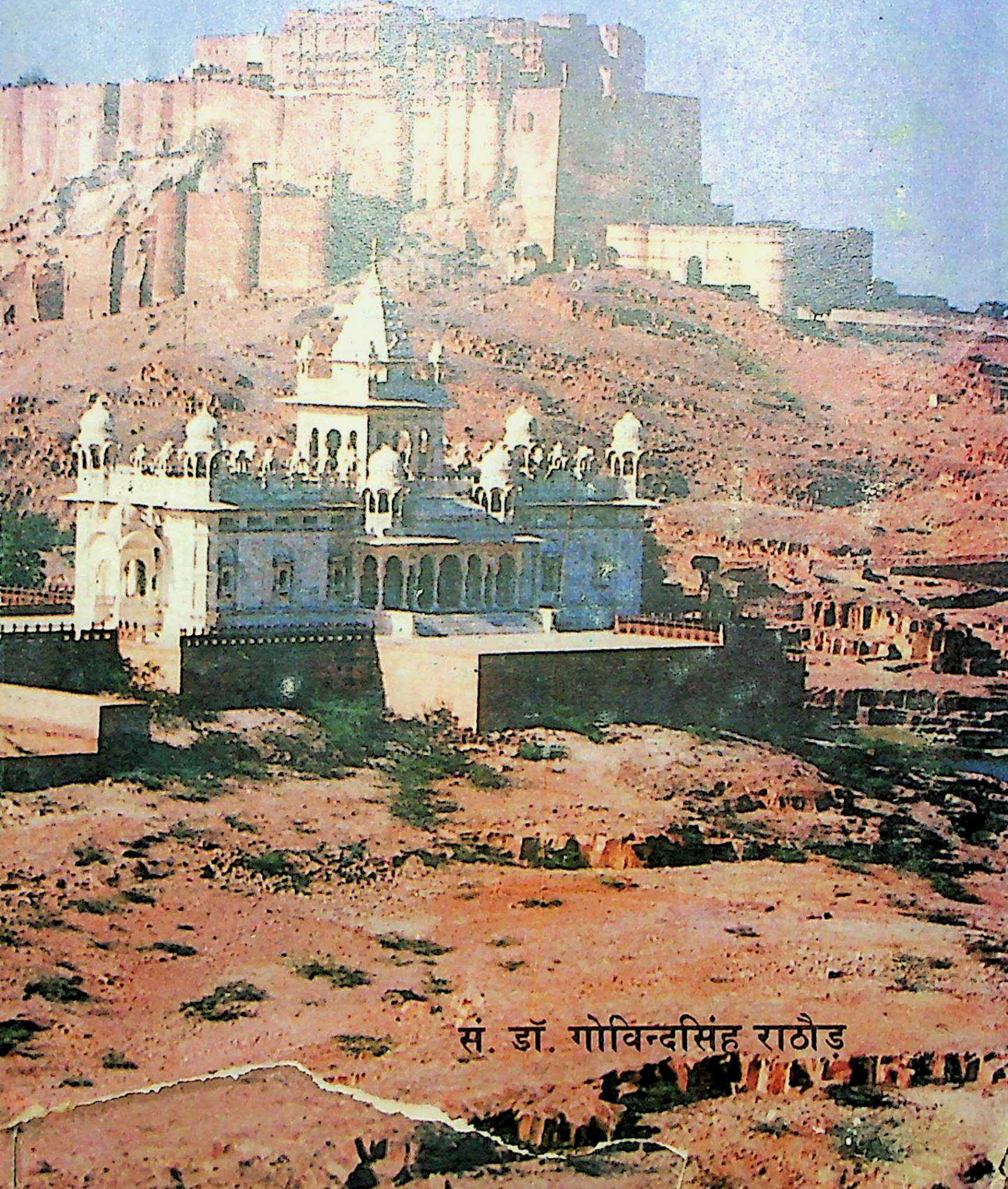

सं. डॉ. गोविन्दसिंह राठौड़

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मारवाड़ की सांस्कृतिक धरोहर

सं. डॉ. गोविन्दसिंह राठौड़

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

280

State Museum Library Lucknow
7134

राज्य संग्रहालय पुस्तकालय
प्रो० बी० एन० पुरी संग्रह
लखनऊ

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मारवाड़ की सांस्कृतिक धरोहर

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मारवाड़ की सांस्कृतिक धरोहर

[संस्कृति के विविध पक्षों की समीक्षा]

State Museum Library Lucknow
7134

संपादक

डॉ. गोविन्दसिंह राठौड़

राज्य संग्रहालय पुस्तकालय
प्रो० बी०एन० पुरी संग्रह
लखनऊ

सुधन प्रकाशन

गोपालबाड़ी, चौपासनी, जोधपुर (राज.)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

प्रकाशक :

सुधन प्रकाशन
गोपालबाड़ी, चौपासनी विद्यालय के पास
जोधपुर (राज.)

सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन

प्रथम संस्करण, 1990

मूल्य : 250 **रुपये मात्र**

मुद्रक :
प्रिंटिंग हाउस
जालोरी गेट के अन्दर
जोधपुर

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

समर्पण

मारवाड़ के उन सपूतों को जिन्होंने इस संभाग की संस्कृति को विश्व में अजर, अमर व अद्वितीय बनाने में अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया, उनकी पावन स्मृति में सादर समर्पित ।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

विषय सूची

	ग्रामुख (दो शब्द)		ix
	संपादकीय		xi
	चित्र सूची		xv
1	मारवाड़ की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि	डॉ. सोहनकृष्ण पुरोहित	1
2	विश्वद्वीप का स्वर्ग	डॉ. गोविन्दसिंह राठौड़	33
3	मान त्रिन्दुग्रों की रक्षा	डॉ. विक्रमसिंह, गून्दोज	40
4	मारवाड़ में भक्ति काव्य परम्परा	डॉ. जगमोहनसिंह परिहार	65
5	मारवाड़ियों का वेजोड़ रूप लावण्य एवं व्यक्तित्व	श्री महीपालसिंह राठौड़	78
6	मारवाड़ के वीरों का रण-कौशल	डॉ. हुकमसिंह भाटी	83
7	मारवाड़ के प्रवासी महाजनों की सांस्कृतिक विरासत	श्री ग्रोंकारश्री	95
8	मारवाड़ में संस्कृत साहित्य की विविध विधाग्रों का विकास	डॉ. गणेशीलाल सुथार	101
9	मारवाड़ के जैन सन्त कवि	डॉ. देव कोठारी	119
10	मध्यकालीन मारवाड़ का राजस्थानी साहित्य	डॉ. विक्रमसिंह, गून्दोज	128
11	मारवाड़ के दो ग्रज्ञात संस्कृत काव्य	श्री ग्रो३म प्रकाश शर्मा	139
12	विश्व का ग्राठवां ग्राश्चर्य	श्री नाहरसिंह, जसोल	144
13	मारवाड़ के लोकवाद्य	श्री नारायणसिंह सांदू	150
14	ज़नाना ड्योढ़ी का सुर-सिंगार	डॉ. डी. बी. श्रीरसागर	159
15	मरुधरा का डिंगल गीत साहित्य	डॉ. नारायणसिंह भाटी	170
16	मारवाड़ की चित्रकला	डॉ. जयसिंह नीरज	186
17	जोधपुर (मारवाड़) चित्रकला	डॉ. मधु प्रसाद	196
18	दुर्लभ नागौर चित्रकला	डॉ. मधु प्रसाद	202
19	बीकानेर चित्रकला	डॉ. नवल कृष्ण	206
20	मारवाड़ का स्थापत्य	श्री सुखवीरसिंह गहलोत	214
21	मारवाड़ की पाग व पगड़ियां	कुं. महेन्द्रसिंह, नगर	230
22	मारवाड़ के सांस्कृतिक परिवेश में लोकनाट्य व रंगमंच	प्रो. मदनमोहन माथुर	236
23	मारवाड़ की लोक-संस्कृति में मांडणों की परम्परा	सुश्री रेंवत कंवर राठौड़	244

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

24	मारवाड़ के मेले, त्यौहार, व्रत और उत्सव	श्री समुद्रसिंह जोधा	249
25	स्वर्णिम प्रभा हवेलियों की नगरी— जैसलमेर	श्री प्रदीप सोनी	257
26	मारवाड़ की पाषाण प्रतिमाएँ	डॉ. मदनराज डी. मेहता	259
27	रेगिस्तानी नूपुर : किराडू	श्री प्रदीप सोनी	263
28	मारवाड़ की मुद्रायें	डॉ. अमृत पटनी	266
29	सतत् कला साधना का सुफल : रणकपुर	श्री प्रदीप सोनी	269
30	मारवाड़ी सात्विक आहार व प्रसिद्ध व्यंजन	श्रीमती कृष्णा कंवर	272
31	लोक-साहित्य में निरूपित मारवाड़ की संस्कृति	डॉ. सोहनदान चारण	274
32	मारवाड़ का ज्योतिष विद्या में योगदान	श्री रामदत्त थानवी	278

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

उपराष्ट्रपति
भारत सरकार
नई दिल्ली
सितम्बर 14, 1990

दो शब्द

राजस्थान का मारवाड़ क्षेत्र अपनी भौगोलिक परिस्थितियों तथा उन परिस्थितियों से जन्मी संस्कृति के कारण देश के सांस्कृतिक मानचित्र पर एक विशेष स्थान रखता है। यहां के लोगों ने पूरे देश में फैलकर मारवाड़ प्रदेश को सम्पूर्ण भारत के लिए अच्छी तरह परिचित बना दिया है।

प्राचीन काल से ही इस प्रदेश में हमारे देश की संस्कृति पल्लवित होती रही है। जैन साहित्य और हिंदी के वीरगाथाकालीन साहित्य का तो यह क्षेत्र केन्द्र ही रहा है। इस क्षेत्र का इतिहास और लोककथाएं साहित्य का आधार रही हैं।

कठिन प्राकृतिक परिवेश में पले यहां के लोग उल्लास, उत्साह और उत्सर्ग की भावना से भरे हुए होते हैं। वीरता, व्यापार और व्यवहार की कुशलता के रूप में इस क्षेत्र के लोगों की अपनी एक अलग पहचान है। इनके ये सारे गुण वहां के लोकगीत, लोकसंगीत और अन्य लोककलाओं में झलकते हैं। 'चटकता' यहां के राग और रंगों की महत्वपूर्ण विशेषता है, जो इनके उमंगपूर्ण भावों का प्रत्यक्षीकरण है।

मुझे यह देखकर प्रसन्नता हुई कि डॉ. गोविन्द सिंह राठौड़ ने ऐसे महत्वपूर्ण क्षेत्र की सांस्कृति धरोहर पर इस पुस्तक का सम्पादन किया। इससे मारवाड़ क्षेत्र की संस्कृति की एक झांकी प्राप्त होती है। ऐसे कार्य होते रहने चाहिए।

डॉ. शंकर दयाल शर्मा
(उपराष्ट्रपति, भारत सरकार)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

संपादकीय

ग्राजकल संस्कृति शब्द बड़ा प्रचलित है। ग्राये दिन नगरों-महानगरों में सांस्कृतिक कार्यक्रम, सांस्कृतिक संध्या या सांस्कृतिक महोत्सव की धूम मची रहती है। खेद का विषय है कि इस शब्द की गरिमा ग्रौर ग्रर्थ निष्प्रयोजन सिद्ध हो रहा है। उदात्त भारतीय संस्कृति को हमने नृत्य-गायन एवं ग्रंग-प्रदर्शन तक ही सीमित कर इस ग्रमूल्य सम्पदा को क्षत-विक्षित कर उजाड़ दिया है।

वस्तुत: संस्कृति के व्यापक स्वरूप को सही ग्रर्थों में समझना ग्रपेक्षित है। संस्कृति का सामान्य ग्रर्थ संस्कार करना या परिमार्जन से लिया जाता है। जिसका जीवन संस्कार-सम्पन्न है, वह सुसंस्कृत है चाहे वह गांव का ग्रनपढ़ भेड़ चरवाहा ही हो तथा जिसका जीवन ग्रपरिमार्जित या संस्कार विहीन है वह ग्रसंस्कृत ही कहलायेगा, चाहे वह करोड़पति क्यों न हो।

संस्कृति शब्द की व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'सम्' 'उपसर्गपूर्वक' 'कृ' धातु से निष्पन्न होता है। ग्रर्थात् 'सम' = (उत्तम) + कृति = (चेष्टाए) इसका ग्रर्थ हुग्रा। इसके लिए "भूषण भूत सम्यक् कृति" की परिभाषा भी बहुमान्य है। इस प्रकार मानव की सर्वोत्तम ग्रभिव्यक्तियां, उपलब्धियां, रचनायें या कर्म ही संस्कृति के स्वरूप होंगे। मानव की ग्राधिभौतिक, ग्रादिदैविक व ग्राध्यात्मिक समस्त चेष्टायें संस्कृति के ग्रन्तर्गत ग्राती हैं।

मारवाड़ की संस्कृति की चर्चा करते समय यह उपयुक्त रहेगा कि इस संभाग की परिसीमा ग्रंकित की जाये। 'मारवाड़' शब्द बहुत व्यापक है। देशी रियासतों के भारत गणराज्य में विलय (1950 ई.) से पूर्व मारवाड़ शब्द जोधपुर रियासत के लिए प्रयुक्त होता था जो एक सुनिश्चित राजनैतिक इकाई थी। पश्चिमी राजस्थान के सभी व्यवसायी जो वर्षों से प्रवास पर देश-विदेश में जाते रहे हैं ग्रपने ग्रापको मारवाड़ी कहना ग्रधिक पसन्द करते हैं चाहे वे बीकानेर के हों चाहे जैसलमेर या किशनगढ़ के हों। जब हम मारवाड़ की संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में बात करते हैं तो इन क्षेत्रों को मारवाड़ संभाग में सम्मिलित करना ग्रपरिहार्य हो जाता है। कारण कि सांस्कृतिक इकाइयां ग्रथवा संभाग तथा राजनैतिक ग्रथवा प्रशासनिक इकाइयों के लिये यह ग्रावश्यक नहीं कि वे एक-दूसरी के ठीक ग्रनुरूप हों। कोरिया ग्रौर जर्मनी राजनैतिक इकाइयों में तो विभक्त कर दिये गये पर उनके सांस्कृतिक स्वरूप में कोई मूलभूत विभेद नहीं ग्राया। इस प्रकार मारवाड़ की संस्कृति से हमारा ग्रभिप्राय उस भू-भाग की संस्कृति से है जो ग्ररावली पर्वत माला तथा लगभग 70 से.मी. समवर्षा रेखा के–पश्चिम की ग्रोर ग्रन्तर्राष्ट्रीय सीमा तक राजस्थान के सम्पूर्ण पश्चिमी संभाग पर विस्तृत है। यह सम्पूर्ण संभाग सिरोही से झुन्झुनू को मिलाने वाली सीधी रेखा के पश्चिम में पड़ता है। इसे मरुस्थली ग्रथवा सरस्वती व लूनी नदियों की घाटी

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

सभ्यता के नाम से सम्बोधित किया जा सकता है जिसमें निवासियों के आचार-विचार, रीति-रिवाज, खान-पान, भाषा-साहित्य, वेशभूषा, आवास, आजीविका के उद्यम व साधन, कृषि पद्धति व उपजें, लोकोत्सव, प्राकृतिक सम्पदा, भूदृश्यावली, ग्यु आदि में समानता है । बीकानेर व किशनगढ़ क्षेत्रों का मारवाड़ में गिना जाना समीचीन होगा । कारण कि वहां के राज परिवार जोधपुर के संस्थापक राव जोधा के वंशज होने के कारण अपने आपको जोधपुर का अभिन्न अंग मानते आये हैं । इस प्रकार जोधपुर, पाली, जालोर, बाड़मेर, जैसलमेर, बीकानेर, श्रीगंगानर, चूरू और नागौर जिले व इनका समीपस्थ क्षेत्र मारवाड़ की संस्कृति का मूल क्षेत्र है जिसका जोधपुर नगर केन्द्र बिन्दु कहा जा सकता है ।

हालांकि मारवाड़ की संस्कृति व लोक-जीवन प्राचीन भारतीय मूल संस्कृति के अभिन्न अंग हैं तथापि यहां के मध्यकालीन सामंती युग ने जिस कला-संस्कृति का सृजन कर उसे पल्लवित व संरक्षित रखा वह अपने आप में मौलिक है और उसे विशिष्ट कोटि में रखा जाना उपयुक्त होगा । यहां के निवासियों ने जीवन के हर क्षेत्र में जो कीर्त्तिमान स्थापित किये वे अभी भी अद्वितीय हैं, बेजोड़ हैं । मारवाड़ के सन्त, सती व सूरमा, साहित्य, स्थापत्य कला, संगीत, चित्र व ललित कलाएं आदि सभी विश्व में अपना विशेष स्थान रखते हैं । मारवाड़ की संस्कृति की एक खास पहिचान व साख है । भारत जैसे विस्तृत उपमहाद्वीप में प्रादेशिक विशेषताओं का भी अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है । वे तभी उजागर होंगी जब हम इस दृष्टि से प्रादेशिक अध्ययन करेंगे ।

यह सर्वविदित है कि विश्व की प्राचीनतम सभ्यता के केन्द्र मारवाड़ के ठीक उत्तरी भाग–पीलीबंगा में स्थित हैं जबकि इसके मध्य में लूनी व उसकी सहायक नदियों में करीब 40 हजार वर्ष पुराने पूर्व पाषाणकालीन मानव संस्कृति के अवशेष मिले हैं ।

पारिस्थितिकी विशेषज्ञों का ऐसा अनुमान है कि रामायण काल से काफी पूर्व में मारवाड़ एक काफी हरा-भरा प्रदेश था जहां शीतोष्ण प्रकार की जलवायु थी । कालान्तर में पारिस्थितिकी दशाओं के बिगड़ते-बिगड़ते रामायण काल में यहां मरुस्थल दशाऐं व्याप्त हो गई थीं जिसकी पुष्टि बाल्मीकि ने रामायण के निम्नलिखित दो श्लोकों में की है—

पश्यव्यश्चाल्परोगश्च फलमूलरसायुत: ।
बहुस्नेहो बहुक्षीर: सुगन्धिर्विविद्यौषधि: ।।42।।—युद्ध काण्डे द्वाविंश: सर्ग:

("यह मरुभूमि पशुओं के लिये हितकारी होगी । यहाँ रोग कम होंगे । यह भूमि फल, मूल और रसों से सम्पन्न होगी । यहां घी आदि चिकने पदार्थ अधिक सुलभ होंगे, दूध की बहुतायत होगी । यहां सुगन्ध छायी रहेगी और अनेक प्रकार की औषधियां उत्पन्न होंगी") ।

एवमेतैश्च संयुक्तो बहुभि: संयुतो मरु: ।
रामस्य वरदानाश्च शिव: पन्था बभूव ह ।।43।।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

(इस प्रकार भगवान श्रीराम के वरदान से वह मरु प्रदेश इस तरह के बहुसंख्यक गुणों से सम्पन्न हो सबके लिये मंगलकारी मार्ग बन गया।)

... स्त्रों वर्षों के उपरान्त भी मारवाड़ वासियों ने अद्यावधि अपनी मूल सांस्कृतिक विशेषताओं को खोया नहीं है। उनका विदेशी सस्कृतियों से संसर्ग तो अवश्य हुआ पर कमल के सदृश्य उस पंक से सदैव ऊपर ही रहे। शक, हूण, मुस्लिम व ईसाई इत्यादि सांस्कृतिक संक्रांति की आंधी के समक्ष न तो यह झुकी और न ही टूटी। पर खेद का विषय है कि विगत 4-5 दशकों से अन्य भारतीयों की तरह यहां के लोगों में भारी वैचारिक परिवर्तन से पाश्चात्य झुकाव स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है जो आत्म-घाती है। जिससे हमारी मानसिक चेतना और आध्यात्मिक प्रवृत्तियां कुन्द हो गई हैं। भोग प्रधान पाश्चात्य व मध्य पूर्व की संस्कृतियों का कुप्रभाव हमारे आधिभौतिक पक्ष पर अधिक पड़ा है जिससे हमारे आधिदैविक एवं आध्यात्मिक पक्ष क्षीण हो गये हैं अथवा उसमें शून्य व्याप्त हो गई है।

मारवाड़ की संस्कृति के उत्कृष्ट स्वरूप को उजागर करने की मेरी कई वर्षों की अभिलाषा स्वरूप यह संकलन पुस्तकाकार ले सका है। जिसमें मारवाड़ की संस्कृति के विविध पक्षों को सांगोपांग ढंग से चित्रित करने का एक लघु प्रयास किया गया है। वस्तुत: यह पुस्तक आत्मश्लाघा का न तो कोई अभिलेख है और न पुरखों का गुण-बखान। क्योंकि ऐसी भी मान्यता है कि "थाका जांह पिछाणिये करे पुरानी बात" परन्तु सत्य यह है कि जो समाज या देश सांस्कृतिक विशेषताओं के परिप्रेक्ष्य में अपनी सही स्थिति को नहीं पहचान सकता, तब तक वह जन्मभूमि के प्रति अनुराग, त्याग, उत्सर्ग इत्यादि किस प्रकार कर सकेगा, एक विचारणीय पहलू है। अपने स्वरूप को पहचानना ही उत्थान का पहला सोपान है। अपनी मूलगत सांस्कृतिक विशेषनाओं को परखकर उनके निर्वाह के लिये स्वाभिमानी, कर्मठ व त्यागमयी जीवन की भारतवासियों तथा विशेषकर मारवाड़ वासियों को सद्प्रेरणा देना ही इस ग्रन्थ का चरम लक्ष्य है। साथ ही विश्व जन को यह परिचय देना कि मारवाड़ केवल भारतवर्ष का नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व की एक बेमिसाल सांस्कृतिक इकाई है।

वस्तुस्थिति यह है कि आज का हमारा बुद्धिजीवी वर्ग इस विशिष्ट संस्कृति के अवशिष्ट पार्थिव स्वरूप के प्रति तो आकृष्ट है पर उसके उद्‌भव व विकास में जो कारण स्वरूप भाव पक्ष था, उसे विस्मृत कर बैठा है। जिसके लिए हमारे पूर्वजों ने कितनी भारी कीमत चुकाकर उसे जीवित रखा, इसका आकलन करना भी उसकी समझ की परिसीमा के बाहर है। भैरजी भाटी, बागजी कोटड़िया, बल्लूजी, जोरजी, डूंगजी-जवारजी, धनजी-भींवजी, दुर्गादास, आदि नर पुंगवों ने झोंपड़ियों में जन्म लेकर मरुधरा में अपना नाम अमर कर दिया। अत: इस संस्कृति के भाव पक्ष को पुनर्जीवित करने की परम आवश्यकता है। उसके अभाव में हमारी इस विशिष्ट संस्कृति का पराभव सुनिश्चित है। इसे हर कीमत पर वर्तमान के उद्योग-अर्थ व भोग-प्रधान जीवन की कालिमा तथा वर्णसंकर संस्कृति के विषाक्त वातावरण से बचाकर रखना वर्तमान पीढ़ी का परम कर्तव्य है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

महामहिम डॉ. शंकर दयाल जी शर्मा (उपराष्ट्रपति, भारत सरकार) का मैं अत्यन्त आभारी हूं जिन्होंने मेरे निवेदन पर पुस्तक के आमुख स्वरूप प्रेरणास्पद 'दो शब्द' प्रेषित करने की अनुकंपा कर इसकी गरिमा व महत्व को और भी बढ़ा दिया है। प्रो. नामवर सिंह एवं प्रो. एल. एस. राठौड़ द्वारा मुझे सहज रूप से पुस्तक की समीक्षार्थ विद्वत् सम्मतियां प्रदान करना उनकी महती कृपा का परिचायक है।

इसी प्रकार मैं उन विद्वत् जनों व आत्मीय जनों का आभारी हूं जिनके उत्तम आलेखों के सहयोग से इस पुस्तक का कलेवर सजाया गया है। ठा. श्री नारायणसिंहजी (चुई), पद्मश्री नारायणसिंहजी, डॉ. विक्रमसिंहजी, डॉ. पदमसिंहजी, श्री ओंकारश्रीजी, श्री रणजीतसिंहजी, श्री मगसिंहजी एवं श्री तेजराजजी का सहयोग इस प्रकाशन कार्य में हर स्तर पर बना रहा। अतः मैं उन्हें साधुवाद ज्ञापित करता हूं।

संस्कृति विषय इतना विशाल एवं गहन है कि उसके सभी पक्षों को एक पुस्तक में समाविष्ट करना अति कठिन कार्य है। अत: भरसक यत्नों के उपरान्त भी कुछ पहलुओं का अछूता रह जाना स्वाभाविक है। साथ ही प्रकाशन संबंधी और भी कमियां रह सकती हैं। पर आशा करता हूं कि संपादक व प्रकाशन की समस्याओं तथा सीमितताओं को देखते हुए सुधि पाठक उस ओर ध्यान नहीं देंगे।

मारवाड़ की संस्कृति को उजागर करने के प्रयास में 'सुधन प्रकाशन' बधाई का पात्र है जिसने अपनी ग्रन्थमाला के शुभारम्भ में प्रथम पुष्प के रूप में इस ग्रन्थ का सफल प्रकाशन किया है।

पुस्तक के सुन्दर व शुद्ध मुद्रण के लिए श्री हरिप्रसादजी (प्रिंटिंग हाउस, जोधपुर), श्वेत-श्याम छायाचित्र हेतु श्री मनीष जी (डायनेमिक ऑफसेट प्रेस, जोधपुर) एवं बहुरंगी आवरण पृष्ठ के संयोजन व छपाई प्रयोजनार्थ श्री अश्विनीजी एवं शक्ति प्रिंटिंग प्रेस (दिल्ली) के प्रति भी मैं अपना आभार व्यक्त करना कर्त्तव्य समझता हूं।

दुर्गाष्टमी
27-9-90

डॉ. गोविन्दसिंह राठौड़

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

चित्र-सूची

1	श्री महिषासुर मर्दिनी, मण्डोर	श्री प्रदीप सोनी के सौजन्य से
2	श्री सूर्यजी, मण्डोर	, , ,
3	श्री पाबूजी (लोक देवता), मण्डोर	, , ,
4	श्री रामदेवजी (लोक देवता), मण्डोर	, , ,
5	जोधपुर दुर्ग (मेहरानगढ़)	, , ,
6	तोपों से सुसज्जित जोधपुर दुर्ग की प्राचीर	, , ,
7	नागौर चित्रशैली : दुर्ग महलों का भित्ति चित्र	महाराज श्री प्रह्लादसिंहजी के सौजन्य से
8	, ,	, , ,
9	जसवन्त थड़ा, जोधपुर	श्री प्रदीप सोनी के सौजन्य से
10	उम्मेद भवन पैलेस, जोधपुर	, , ,
11	नागौर का किला	, , ,
12	राव ग्रमरसिंह की छतरी, नागौर	, , ,
13	ढोला मारू : जोधपुर शैली 19वीं शती	कुं. संग्रामसिंह के सौजन्य से
14	रसराज : नायिका भेद : जोधपुर शैली, 19वीं शती प्रारम्भ	, , ,
15	मारवाड की परम्परागत पाग-पगड़ियां	कुं. महेन्द्रसिंह के सौजन्य से
16	मारवाड़ की वर्तमान में प्रचलित पाग-पगड़ियां	, , ,
17	मण्डोर : प्राचीन दुर्ग के भग्नावशेष	श्री प्रदीप सोनी के सौजन्य से
18	ग्रोसियां का सूर्य मन्दिर	, , ,
19	रणकपुर का मुख्य मन्दिर	, , ,
20	रणकपुर मन्दिर में बारीक नक्काशी	, , ,
21	दीवान नथमल की हवेली, जैसलमेर	सम्पादक के निजी संग्रह से
22	सालमसिंह की हवेली, जैसलमेर	, , ,
23	राजमहल, जैसलमेर	, , ,
24	गडीसर, जैसलमेर	, , ,
25	बीकानेर का किला	, , ,
26	बीकानेर चित्र शैली (1) नूरे ईसा स्कूल प्रकार (2) उस्ता रुकनुद्दीन स्कूल	डॉ. नवल कृष्ण के सौजन्य से
27	जोधपुर कचहरी	सम्पादक के निजी संग्रह से
28	बालसमन्द झील एवं महल, जोधपुर	, , ,

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

29	पं. चण्डूजी द्वारा निर्मित सं. 1605 के पञ्चांग की मूलप्रति		राज ज्यो. पं. सूरजराजजी जोशी के सौजन्य से
30	पुष्कर स्नान : ब्रह्मकुण्ड		श्री प्रदीप सोनी के सौजन्य से
31	किराडू : तोरणियां मन्दिर		, , ,
32	किराडू मन्दिर के भग्नावशेष		, , ,
33	मारवाड़ के लोकवाद्य	(मुरली, सतारा)	रा. सं. ना. एकादमी, जोधपुर
34	, ,	(जंतर, सुरमण्डल)	के सौजन्य से
35	, ,	(रवाज, सिन्धी सारंगी, धानी सारंगी)	, , ,
36	, ,	(ढोलक, मादल, माटे)	, , ,
37	मारवाड़ के माँडणे		सुश्री रेंवत कँवर राठौड़ के सौजन्य से
38	, ,		, , ,
39	मारवाड़ की मुद्राएं-अग्र भाग		डॉ. अमृत पटनी के सौजन्य से
40	, , -पृष्ठ भाग		, , ,

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मारवाड़ की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

डॉ. सोहन कृष्ण पुरोहित

पूर्व राजपूताना का पश्चिमी क्षेत्र मारवाड़ कहलाता है। अभिलेखों ने मारवाड़ को मरु, मरुमण्डल, मरुस्थल, मरुस्थली, मरुमेदिनी, मारव, मरुदेश और मरुकान्तार आदि नामों से पुकारा गया है। जिनका तात्पर्य रेगिस्तान या जल विहीन क्षेत्र होता है। पं. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार 'वाड़' का अर्थ रक्षक होता है। इसलिए इस क्षेत्र को 'रेगिस्तान से रक्षित'-भूभाग कहा जा सकता है। वैदिक साहित्य में मरु शब्द का उल्लेख है जो इस प्रदेश हेतु प्रयुक्त हुआ है।

ऐसा माना जाता है कि आज जहां मारवाड़ विद्यमान है, वहां प्राचीनकाल में समुद्र लहराता था। परन्तु भूकम्प अथवा अन्य प्राकृतिक कारणों से भूमि की सतह ऊंची हो जाने से समुद्र का जल दक्षिण की ओर हट गया और उसके स्थान पर बालू के टीलों ने ले लिया। जैसलमेर क्षेत्र में आज भी शंख, सीप और कौड़ी आदि पाषाण परिवर्तित स्वरूप (फोसिल्स) में प्राप्त होते हैं। इस मत की पुष्टि रामायण से भी होती है। रामायण के एक आख्यान के अनुसार "लंका पर चढ़ाई करने की इच्छा से जब श्रीराम समुद्र के किनारे पहुंचे, तब जल मार्ग पाने की इच्छा से उन्होंने उसकी अभ्यर्थना की। परन्तु समुद्र ने इस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इससे क्रुद्ध होकर श्री रामचन्द्र ने समुद्र-जल को सुखा देने के लिए आग्नेयास्त्र का संधान किया। यह देखकर समुद्र क्षुब्ध हो उठा। उसने प्रकट होकर श्री रामचन्द्र से उस अस्त्र को अपने द्रुमकुल्य नामक उत्तरी भाग पर चलाने की प्रार्थना की। उन्होंने भी उसके विनीत वचन सुन उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। राम के आग्नेयास्त्र के प्रभाव से द्रुम-कुल्य का जल सूख गया और वहां पर मरु देश की उत्पत्ति हुई तथा जहां पर तीर गिरा था, वहां से पानी निकलने लगा।" रामायण की कथा की व्याख्या करते हुए विश्वेश्वरनाथ रेउ ने लिखा है कि उक्त स्थान (मारवाड़) में पहले आभीर आदि जंगली अनार्य जातियां रहती थीं परन्तु इस घटना के बाद वहां का मार्ग सुरक्षित हो गया और आर्य लोग उधर आने जाने और बसने लगे। रामायण की घटना दूसरे स्वरूप में महाभारत में मिलती है।

भागवत पुराण से ज्ञात होता है कि उस काल में यह क्षेत्र मरुधन्व कहा जाता था। यहां आभीर और सौवीर आदि जातियां निवास करती थीं। आभीरों का उल्लेख संवत् 918 के कक्कुक के घटियाला अभिलेख में भी मिलता है। पं. विश्वे-श्वरनाथ रेउ का मत है कि "महाभारत के समय से पूर्व ही मारवाड़ का गुजरात की तरफ का दक्षिणी भाग आबाद होने लगा।" उत्खनन से ज्ञात होता है कि मरु-प्रदेश में प्रागैतिहासिक काल में ही मानव सभ्यता के केन्द्र स्थापित हो चुके थे। डॉ.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

वी. एल. मिश्रा ने लूनी नदी को प्रागैतिहासिक नदी प्रमाणित करते हुए इसके पास आदि मानव सभ्यता के अस्तित्व को स्वीकार किया है।

मारवाड़ : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

मारवाड़ की वसुन्धरा प्राचीन काल से ही आबाद होने लगी थी। जिसकी पुष्टि भागवत से भी होती है। छठी शती ई. पू. में भारत में महाजन पदों का उत्थान एवं बौद्ध तथा जैन धर्म उदय हुआ। लेकिन इस काल में हमें मरु प्रदेश के सम्बन्ध से जानकारी नहीं मिलती। सम्भवतः मौर्य काल में यह क्षेत्र मौर्य साम्राज्य का अंग रहा हो। क्योंकि मारवाड़ के समीप जयपुर के पास स्थित बैराठ से अशोक का प्रसिद्ध भाब्रू अभिलेख प्राप्त हुआ है। स्वयं अशोक एवं उसके पिता बिन्दुसार ने तो बैराठ पर विजय प्राप्त नहीं की थी। इसलिये इसे चन्द्रगुप्त मौर्य ने ही जीता होगा। उपलब्ध प्रमाणों के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य का सुदूर दक्षिण को छोड़ लगभग सम्पूर्ण भारत पर अधिकार था। जिसमें मारवाड़ का भू-भाग भी सम्मिलित रहा होगा। इस प्रकार मारवाड़ लम्बे समय तक मौर्य सम्राटों के शासनान्तर्गत रहा। अशोक के उत्तराधिकारियों की अयोग्यता के फलस्वरूप मगध पर कुछ वर्षों तक पुष्यमित्र शुंग एवं उसके पुत्र-पौत्र आदि का अधिकार स्थापित हो गया। पुष्यमित्र शुंग के शासनकाल में जब यवनों ने भारत पर आक्रमण किया तो मारवाड़ भी सम्भवतः उनके प्रहार से त्रस्त हुआ होगा ऐसा विद्वानों का अनुमान है। क्योंकि मारवाड़ के पड़ोस में मेवाड़ के नगरी (चित्तौड़ से 8 मील पश्चिम में) नामक स्थान पर यवनों के पहुंच जाने का उल्लेख पतञ्जलि के महाभाष्य में मिलता है।

मौर्य, शुंग और कण्व वंश के पतन के पश्चात् कुषाण सम्राट कनिष्क ने सम्पूर्ण उत्तर भारत में अपनी प्रभुसत्ता स्थापित की। तब मारवाड़ सहित राजपूताना भी उसके साम्राज्य का अंग बना। राजस्थान में कुषाणों की मुद्राएं प्राप्त हुई हैं। इसी समय गुजरात, काठियावाड़ और कच्छ में क्षहरात-क्षत्रप नहपान का राज्य स्थापित हुआ। नहपान के राज्य में मारवाड़ का दक्षिणी भाग भी सम्मिलित था। उसके जामाता ऋषभदत्त (उषवदत्त) ने पुष्कर जाकर बहुत-सा दान दिया। किन्तु शीघ्र ही सातवाहन नरेश गौतमी पुत्र शातकर्णि ने उसके राज्य को अधिकृत कर लिया तो मारवाड़ का दक्षिणी क्षेत्र क्षहरातों के हाथ से निकल गया। शकों के जूनागढ़ अभिलेख (150 ई.) के अनुसार उज्जैन शाखा के महाक्षत्रप रुद्रदामा प्रथम ने श्वभ्र, मरु (मारवाड़), कच्छ और सिन्ध के प्रदेशों पर अधिकार कर, अपने शौर्य का प्रदर्शन किया।

गुप्त-वर्धन युग में मारवाड़

शक एवं कुषाण शासक विदेशी थे, इसलिए भारतीय जनता उन्हें पसन्द नहीं करती थी। फलस्वरूप उनकी राजनीतिक शक्ति कमजोर हो गई तो भारत में उनके विरुद्ध अनेक राज्य और राजवंश उठ खड़े हुए। नये राज्यों में से कुछ राजाधीन थे और कुछ गणाधीन। मारवाड़ में कुषाणों के पतन के पश्चात् नाग वंश का प्रभुत्व स्थापित हुआ होगा। जिनकी राजधानी अहिछत्रपुर (वर्तमान नागौर) थी।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America: HHFA (USA)

इसीलिए जोधपुर की पर्वत शृंखला का नाम भौगिशैल है। भोगी नाग का पर्यायवाची शब्द है। इसी प्रकार मण्डोर के तालाब का नाम 'नागाद्री' तथा जलस्रोत का नाम 'नागगंगा' मिलता है। मारवाड़ में नागों की शक्ति को गुप्त सम्राटों ने समाप्त किया। सम्भवत: समुद्रगुप्त के शासनकाल में ही मारवाड़ गुप्त साम्राज्य के प्रभावान्तर्गत आ गया। मण्डोर में ध्वस्त तोरणद्वार शिलाखण्डों पर गुप्त कालीन लिपि का लेख मिला है। नागौर जिले के गोठ मांगलोद स्थित दधिमति माता के मन्दिर में गु. सं. 289 का अभिलेख आज भी सुरक्षित है। गुप्तकालीन मुद्राएं मारवाड़ में प्राप्त हुई हैं।

गुप्त सम्राट स्कन्दगुप्त का शासन काल (455-467 ई.) अत्यन्त संकटपूर्ण रहा क्योंकि उनके साम्राज्य पर हूण आक्रमण का प्रहार हुआ। किन्तु स्कन्दगुप्त ने उन्हें पराजित कर दिया। सम्राट स्कन्दगुप्त की मृत्योपरान्त हूणों ने राजनीतिक शून्यता का लाभ उठाया और तोरमाण के नेतृत्व में भारत पर आक्रमण किया। हूण आक्रान्ता मिहिरकुल (600 ई.) आगे बढता हुआ मालवा तक आ पहुँचा था। सम्भवत: मारवाड़ को भी तोरमाण-मिहिरकुल के प्रहार से आक्रान्त होना पड़ा। यद्यपि गुप्त सम्राट नरसिंह गुप्त बालादित्य और मालवा के शासक यशोधर्मन ने मिहिरकुल को निर्णायक रूप से पराजित कर दिया। इसलिये मिहिरकुल मालवा से भाग गया और कश्मीर पर अधिकार कर लिया। हूणों का मारवाड़ पर नाम मात्र का प्रभाव ही रहा। उनकी मुद्राएं नागौर, जालौर, बाड़मेर एवं पाली परगनों से प्राप्त हुई हैं। इस प्रकार मारवाड़ पर यशोधर्मन का अधिकार हो गया होगा। उसके स्तम्भ लेख में राज्य में धन्व रेगिस्तानी क्षेत्र होना बतलाया गया है। लेकिन यशोधर्मन के किसी उत्तराधिकारी का नाम उपलब्ध साक्ष्यों से ज्ञात नहीं है।

हूणों के पतन के पश्चात् मारवाड़ पर गुर्जर वंश का अधिकार होने की चर्चा पं. गौरीशकर ओझा और पं. विश्वेश्वरनाथ रेउ ने की है। गुर्जरों की राजधानी भीनमाल थी। डीडवाना परगना भी गुर्जरात्रा का एक हिस्सा था। इस तथ्य की जानकारी प्रतिहार नरेश भोजदेव के डीडवाना जिला से प्राप्त शिवा ग्राम के 844 ई. के ताम्रपत्र से मिलती है। इस प्रकार भीनमाल कुछ समय गुर्जर राज्य की राजधानी रहा। जब 628 ई. में ब्रह्म गुप्त ने 'ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त' ग्रन्थ की रचना की तब चावड़ा वंश के व्याघ्रमुख का भीनमाल पर शासन था। बसन्तगढ़ से 625 ई. का जो अभिलेख मिलता है उसमें वर्मलाट का नाम दिया गया है। रेउ के अनुसार वर्मलाट व्याघ्रमुख का पिता था या यह उसका दूसरा नाम था। इस तथ्य से यह प्रतीत होता है कि दक्षिणी मारवाड़ पर गुर्जरों के पश्चात् चावड़ों का आधिपत्य रहा। प्रमाणों की अल्पता में चावड़ों के सम्बन्ध में इससे अधिक कहना कठिन है। सिन्ध एवं गुजरात पर हर्ष का प्रभाव था इसलिये उनके मध्य में स्थित मारवाड़ हर्ष के प्रभाव क्षेत्र में रहा होगा। पं. गौरीशंकर ओझा के अनुसार हर्षवर्धन शिलादित्य ने चावड़ों को अपने अधीन किया। जबकि श्री विश्वेश्वरनाथ रेउ की मान्यता उनसे भिन्न है। उनका मत है कि कलचुरी संवत् 490 (वि. सं 796) के लाट देश के सोलंकी पुल-

Digitization by Hindu Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

केशी के दान पत्र से प्रकट होता है कि उस समय के पूर्व ही अरब लोगों की चढ़ाई से चावड़ों का राज्य नष्ट हो गया। फारसी के 'फतूहुल बुलदान' नामक ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि फलीफा हशाम के समय सिन्ध के शासक जुनैद की सेना ने मारवाड़ और भीनमाल पर चढ़ाई की थी। इस चढ़ाई से चावड़े कमजोर हो गये और कुछ काल बाद ही उनका राज्य प्रतिहारों ने दबा लिया। इस प्रकार हर्ष की मृत्यु (648 ई.) के बाद मारवाड़ अराजकता की स्थिति में रहा।

मारवाड़ में राजपूतों का उत्कर्ष

चावड़ों के पतन के पश्चात् मारवाड़ में हम प्रतिहारों को शासन करता हुआ पाते हैं। गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार हर्ष की मृत्यु के बाद भीनमाल के रघुवंशी प्रतिहार राजा नाग भट्ट द्वितीय ने चक्रायुध (कन्नौज शासक) को पराजित कर उसके विशाल राज्य पर अधिकार कर लिया। उसी समय से इन प्रतिहारों की राजधानी कन्नौज बनी। उसने आन्ध्र, सैन्धव, विदर्भ, कलिंग और बंग के राजाओं को जीता तथा आनर्त, मालव, किरात, तुरुष्क, वत्स, और मत्स्य देशों के पहाड़ी किलों पर अधिकार कर लिया। मारवाड़ में बुचकला (बिलाड़ा परगना) से उसका एक शिलालेख वि. सं. 872 (815 ई.) का प्राप्त हुआ है। उसके पिता वत्सराज का उल्लेख ओसियां के अभिलेख में मिलता है। उसके पौत्र भोज देव (प्रथम) का वि. सं. 900 (843 ई.) का दानपत्र मारवाड़ के सिवा (डीडवाना परगना) से मिला है। भोज के पौत्र विनायक पाल के समय प्रतिहारों की स्थिति निर्बल हो गई। जिससे कन्नौज पर राष्ट्रकूट, गाहड़वाल आदि वंशों का अधिकार हो गया।

आभिलेखिक प्रमाणों के अनुसार जब कन्नौज के प्रतिहार शासन कार्य में व्यस्त थे, तब मारवाड़ में प्रतिहारों की एक अन्य शाखा का उत्कर्ष हुआ। ये मण्डोर के प्रतिहार कहलाते हैं। जोधपुर से 20 मील पश्चिम में स्थित घटियाला (प्राचीन रोहिन्सकूप) से प्रतिहार शासक कक्कुक के अभिलेख प्राप्त हुए हैं। घटियाला अभिलेख चैत्र शुक्ला द्वितीया वि. सं. 918 का है। कक्कुक के भाई बाउक का संवत् 894 का अभिलेख जोधपुर नगर की शहरपनाह (परकोटा) से मिला था। इन अभिलेखों में हरिशचन्द्र (ब्राह्मण) से कक्क तक की वंशावली मिलती है। अभिलेखों से स्पष्ट है कि हरिश्चन्द्र के बाउक तथा कक्कुक दो पुत्र थे। हरिश्चन्द्र के पुत्रों ने वि. सं. 670 के लगभग मण्डोर के दुर्ग पर अधिकार कर वहां कोट या चारदीवारी का निर्माण करवाया। जो घटियाला एवं मण्डोर पर शासन करते थे। प्रतिहारों की यह शाखा 'मण्डोर के प्रतिहार' नाम से ही प्रसिद्ध हुई। इस प्रकार 10वीं सदी तक मारवाड़ प्रतिहारों द्वारा शासित रहा।

मारवाड़ पर कुछ समय तक चौहानों का भी अधिकार रहा। चौहानों का प्रारम्भिक राज्य नागौर (अहिच्छत्रपुर) में स्थापित हुआ। वहां से आगे बढ़ते हुए उन्होंने साम्भर (शाकम्भरी) को अपनी राजधानी बनाया। शाकम्भरी के राजा वाक्पतिराज के दो पुत्र सिंहराज और लक्ष्मण थे। उनमें से लक्ष्मण ने मारवाड़ के नाडोल में अपना राज्य स्थापित किया। नाडोल के एक अभिलेख के अनुसार लक्ष्मण ने अपना

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America, HHFA(USA)

राज्य वि. सं. 1024 के आसपास स्थापित किया। आगे चलकर नाडोल के चौहानों ने ही कीर्तिपाल के नेतृत्व में परमारों को पराजित कर जालौर के दुर्ग (सोनलगिरि) को अधिकृत किया। इसीलिये जालौर के चौहान सोनगरा कहलाये। सोनगरा चौहानों ने मारवाड़ में नाडोल के अलावा मण्डोर, बाड़मेर, भीनमाल, रतनपुर, सत्यपुर, सांचोर पर आधिपत्य स्थापित किया था। उन्होंने वि.सं. 1218 के पश्चात् परमारों से किराडू छीन लिया था। इस प्रकार मारवाड़ के दक्षिण-पूर्व, दक्षिण एवं दक्षिण-पश्चिमी प्रदेशों पर लम्बे समय तक चौहानों का अधिकार रहा। चौलुक्य के अभिलेखों से ज्ञात है कि कुछ समय तक चौहान चौलुक्य शासकों के भी सामन्त रहे। कीर्तिपाल के वंशधर कान्हड़देव के समय अलाउद्दीन खिलजी ने जालौर पर अधिकार कर वहां से चौहानों की सत्ता को समाप्त कर दिया। कान्हडदेव के वंशज बाद में गोडवाड एवं पाली में जागीरदारों के रूप में बने रहे किन्तु सिसोदियों ने इस भू-भाग पर अपना अधिकार कर लिया। अन्त में जोधपुर के महाराजा विजयसिंह ने उसे अपने राज्य में मिला लिया।

चौहानों की तरह परमार वंश ने मारवाड़ को अपनी क्रीड़ा-स्थली बनाया। मारवाड़ के पश्चिमी एवं दक्षिणी पश्चिमी प्रदेश पर परमार (पंवार) वंश का शासन था। उनकी राजधानी किरातकूप (किराडू) थी। वहां परमारों द्वारा निर्मित मन्दिरों के खण्डहर अभी तक विद्यमान हैं। किराडू से सोमेश्वर परमार का एक अभिलेख मिला है, जिस पर वि. सं. 1218 अंकित है। इसमें सोमेश्वर के पूर्वज सिन्धुराज का भी नाम मिलता है। अभिलेख में उसे मरु मण्डल का स्वामी कहा गया है। विश्वेश्वरनाथ रेउ ने उसे वि सं. 959 के आस पास रखा है। परमार वंशावली में सिन्धुराज का चतुर्थ वंशज धरणीवराह का नाम मिलता है। उसके अधीन गुजरात, आबू, मारवाड़ और सिन्ध तक के प्रदेश थे। परमारों की मारवाड़ शाखा के अभिलेख ओसियां, भीनमाल, भाडूंद, जालोर, किराडू, कोयलवाव, नाणा आदि स्थानों से मिले हैं। कहा जाता है कि वह नव कोटि मारवाड़ अर्थात् नौ दुर्गों का स्वामी था। उसने नौ दुर्गों को अपने भाइयों में इस प्रकार विभाजित किया : सावंत को मंडोर, अजयसिंह को अजमेर, गजमल को पुंगल, भाणभुव को लुद्रवा, जोगराज को घाट, हांसु को पारक्कर, अल्लपल्ल को आबू, भोजराज को जालन्धर और राजसी को किराडू प्रदान किया। किन्तु इस विवरण की पुष्टि अन्य साक्ष्यों से नहीं होती। धरणीवराह के पंचम वंशज कृष्णराज के समय के वि.सं. 1117 एवं 1123 के अभिलेख जालौर से मिले हैं। परमार बीसलदेव का भी अभिलेख वहीं से प्राप्त हुआ। जिसकी तिथि वि. सं. 1174 है। परमार धंधुक (शियपुष्प पुत्र) का वि. सं. 1070 का अभिलेख पोकरण से प्राप्त हुआ है। गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का विचार है कि मारवाड़ एवं आबू में परमारों की सत्ता की समाप्ति चौहानों ने की।

मेवाड़ के गुहिल वंश का भी मारवाड़ के कुछ हिस्सों पर अधिकार रहा। प्रतिहारों के समय से लेकर बहुत बाद तक खेड़ और पीपाड़ पर गुहिल शासन करते रहे। खेड़ का राज्य तो राव सीहा के पुत्रों ने गुहिलों के मन्त्री डाभियों से मिल

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

कर छल द्वारा प्राप्त किया था। पं. ओझा ने गुहिलों के मारवाड़ में कुछ ठिकानों का भी उल्लेख किया है। पोकरण के बालकनाथ मन्दिर से एक तिथि विहीन लेख में किसी गुहिल व्यक्ति का उल्लेख मिलता है जो गायों की रक्षार्थ मारा गया था।

मारवाड़ में दहिया वंश (दधिचिक) वंश ने भी कुछ स्थानों पर शासन किया। परबतसर स्थित किणसरिया के कैवाय माता मन्दिर में इस वंश के वि. सं. 1056 एवं वि. सं. 1300 के अभिलेख मिले हैं। इसी प्रकार उनका एक अन्य अभिलेख मंगलाना (परबतसर तहसील) से मिला है। जिस पर वि. सं. 1272 उत्कीर्ण है। सम्भवतः दहिया वंश के शासकों ने चौहानों के सामन्त के रूप में जीवन व्यतीत किया।

गुजरात का सोलंकी राजा मूलराज़ अत्यन्त पराक्रमी था। उसने आबू के परमार राजा धरणीवराह को पराजित किया। जिसे हस्थिकुण्डी के राष्ट्रकूट राजा धवल ने शरण प्रदान की। वहां से आगे बढते हुए उसने मारवाड़ के कुछ भाग को भी अधिकृत कर लिया और वि. सं. 1051 (994 ई.) में उसने सत्यपुर (सांचोर) हकुमत का वरणक गांव दान में दिया। चौलुक्य नरेश जयसिंह सिद्धराज, कुमारपाल एवं भीमदेव द्वितीय के अभिलेख तथा ताम्रलेख भीनमाल, किराडू, पाली, भटूंद, नाडोल, बाली, जालौर, सांचोर, नारलाई और नाणा आदि स्थानों से प्राप्त हुए हैं।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि राठौड़ों के आगमन से पूर्व तक मारवाड़ में अनेक राजपूत राजवंशों ने शासन किया।

मारवाड़ पर मुस्लिम आक्रमण

वि. सं. 781-800 तक मारवाड़ के भीनमाल, अजमेर आदि पर अरब के खलीफा हशाम की तरफ से जुनैद ने आक्रमण किये। हांसोट (भड़ोच) से चौहान भर्तृवढ्ढ द्वितीय के दान पत्र के अनुसार नाग भट्ट प्रथम (प्रतिहार) के समय मारवाड़ के दक्षिणी भाग पर बलोचों का असफल आक्रमण हुआ। मारवाड़-सिन्ध क्षेत्र पर तो मुस्लिम आक्रमण होते ही रहते थे।

वि सं. 1176 में नागौर पर बाहलीम शासन कर रहा था। जिस पर बहरामशाह ने आक्रमण किया। वि. सं. 1082 में महमूद गजनवी के सोमनाथ पर आक्रमण के बाद उसकी सेना ने मारवाड़ के कई क्षेत्रों को आक्रान्त किया। इसी आक्रमण में सांभर के चौहान दुर्लभराज की मृत्यु हुई। इसी वंश के अर्णोराज ने मुसलमानों को पराजित कर भगा दिया। वि. सं. 1247 में शहाबुद्दीन ने अजमेर के पृथ्वीराज तृतीय से युद्ध किया। परन्तु वि. सं. 1249 के युद्ध में पृथ्वीराज चौहान मारा गया। इसके बाद कुतुबुद्दीन ने अजमेर पर अधिकार कर लिया। वि. सं. 1253 में कुतुबुद्दीन अजमेर नाडोल होते हुए सेना लेकर गुजरात गया तो मार्ग में उसकी सेना ने लोगों को बड़ा कष्ट दिया।

वि. सं. 1267 में शम्सुद्दीन इल्तुत मिश ने जालौर व वि. सं. 1274 में नासिरुद्दीन महमूद ने मण्डोर पर विजय की। वि. सं. 1299 में अलाउद्दीन खिलजी के

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

समय मण्डोर, नागौर और अजमेर पर मल्लिक इज्जुद्दीन का अधिकार था। वि. सं. 1351 में मण्डोर पर फिरोजशाह II ने, वि. सं. 1365 में सिवाना, और 1368 में जालौर पर अलाउद्दीन खिलजी का अधिकार हो गया। वि. सं. 1464 में शम्स खां नागौर का पालक बना, उसकी राठौड़ों से कई बार मुठभेड़ हुई। वि. सं. 1450 में जालौर पर बिहारी पठानों का आधिपत्य हो गया। इसके अलावा भी मारवाड़ पर मुसलमानों के कई छुट पुट आक्रमण हुए।

राठौड़ों का आगमन

प्रख्यात राठौड़ वंश के आगमन से पूर्व तक मारवाड़ में विभिन्न राजपूत राजवंशों ने शासन किया। किन्तु उनमें से एक भी वंश ऐसा नहीं था जिसका सम्पूर्ण मारवाड़ पर अधिकार हो। इसलिये शीघ्र ही उनका पतन हो गया।

मारवाड़ के प्रसिद्ध राठौड़ राजवंश के आगमन से पूर्व भी यहां राष्ट्रकूट वंश का अस्तित्व रहा था। वर्तमान हट्टूंडी (हस्तिकुण्डी) जो पाली ज़िले के बीजापुर ग्राम के निकट स्थित है। वहां राव सीहा से पूर्व राठौड़ों का अधिकार था। इस शाखा के राठौड़ हथूण्डिया राठौड़ कहलाते हैं। वि. सं. 1053 (996 ई.) के बीजापुर अभिलेख के अनुसार हस्तिकुण्डी के राष्ट्रकूट वंश का मूल पुरुष हरि वर्मा था। उसके बाद विदग्धराज, मम्मट और धवल आदि शासक हुए। जिस समय पुंजराज ने आहाड़ को जीत कर मेवाड़ के गर्व का दमन किया उस समय धवल ने गुर्जराधीश को आश्रय दिया। जिससे पुंजराज पलायन करने को बाध्य हुआ। इसी प्रकार धवल ने दुर्लभराज के विरुद्ध महेन्द्र को भी संरक्षण प्रदान किया। धरणीवराह की शक्ति का जब मूलराज ने दमन कर दिया उस समय उस को भी उसीने सहयोग प्रदान किया। धवल के पश्चात् बल प्रसाद ने शासन-भार सम्भाला था।

हस्तिकुण्डी के अलावा प्राचीन माण्डव्यपुर (मंडोर) में भी राठौड़ों की एक शाखा निवास करती थी। मंडोर से संवत् 1213 राठौड़ भुवणि के पुत्र सलखा का स्मारक लेख प्राप्त हुआ। यद्यपि यह लेख मण्डोर पर राठौड़ों के आधिपत्य को स्पष्ट रूप से प्रमाणित नहीं करता। राजपूताना में राठौड़ों की अन्य शाखाएं धनौप (शाहपुरा) और बागड़ में शासन करती थीं। जिनकी पुष्टि अभिलेखों एवं मुद्राओं से होती है।

राव सीहा मारवाड़ के राठौड़ वंश का मूल पुरुष माना जाता है। राठौड़ों को प्राय: कन्नौज के जयचन्द गाहड़वाल का वंशधर माना जाता है। इस मान्यता के विरोधी पं. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का मत है कि, "राजपूताना के राठौड़ों को गाहड़वाल जयचन्द का वंशधर मानने हेतु हम किसी भी प्रकार से प्रस्तुत नहीं हैं। संभवत: राजपूताना के वर्तमान राठौड़ बदायूं के राठौड़ों के वंशधर हों। राठौड़ सर्वत्र अपने लिये राष्ट्रकूट या राठौड़ ही लिखते रहे हैं। इसलिये राठौड़ों के इतिहास में हमने गाहड़वालों का इतिहास दर्ज करना उचित नहीं समझा।" दूसरी ओर स्थानीय स्रोत राव सीहा को जयचन्द गाहड़वाल का वंशज मानने की मान्यता का समर्थन करते हैं। बीकानेर नरेश रायसिंह के अभिलेख (1650 वि. सं.) में उत्कीर्ण वंशावली में राव सीहा को जयचन्द का वंशज कहा गया है। इसी प्रकार जैन ग्रन्थ पुरातन प्रबन्ध

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

एवं कल्पसूत्र (मोहनलाल ज्ञान भण्डार सूर्यपुर की प्रति) में जयचन्द को राष्ट्रकूट कहा गया है। श्री अगरचन्द नाहटा संग्रहालय (बीकानेर) की राठौड़ों की वंशावली में जयचन्द को मारवाड़ के राठौड़ों का पूर्वज स्वीकार किया है इसलिये राव सीहा को जयचन्द का वंशज मानना अनुचित नहीं होगा।

मारवाड़ के राठौड़ वंश का संस्थापक राव सीहा जब द्वारिका यात्रा पर जा रहा था तो मार्ग में पाली के महाजनों ने उससे रक्षा हेतु वहीं ठहर जाने की प्रार्थना की। इस कार्य हेतु उसका वेतन निश्चित किया गया। पाली में रहते संवत् 1330 में उसकी मृत्यु हुई। इस मत की पुष्टि बीठू (जोधपुर-जालौर मार्ग पर) अभिलेख (वि. स. 1330 कार्तिक वदि 12 सोमवार) से होती है। राव सीहा के मारवाड़ आगमन की तिथि वि. सं. 1268, वि. सं. 1283, एवं 1300 वि. सं. मानी जाती है। इसमें ओझा द्वारा प्रदत्त तिथि वि. सं. 1300 तर्क पूर्ण प्रतीत होती है।

राव सीहा के बाद उसके पुत्र आसथान ने गुहिलोतों को हराकर खेड़ पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। आसथान से राव सलखा तक खेड़ पर राठौड़ों का अधिकार रहा। सलखा के पुत्र मल्लिनाथ (राव माला) ने राठौड़ों की सत्ता का काफी विस्तार किया। उसके भाई वीरम को जोहियों ने मार डाला तब मल्लिनाथ ने वीरम के पुत्र चूण्डा को सालेड़ी ग्राम की जागीर प्रदान की। उस समय मण्डोर पर प्रतिहारों की ईंदा शाखा का अधिकार था। वे लोग नागौर के मुस्लिम आक्रमणों से दुःखी थे। उन्होंने अपनी पुत्री का विवाह चूण्डा से करके मण्डोर दहेज में दे दिया। इस सम्बन्ध में यह कहावत बड़ी प्रसिद्ध है।

ईंदों रो उपकार, कमधज कदे न भूलजे।
चूण्डे चंवरी चाड, दियो मंडोवर दायजे ॥

राव चूण्डा के मण्डोर का शासक बन जाने के बाद राठौड़ों की दो शाखाएं बन गयीं। मल्लिनाथ के वंशज मालानी के शासक बने रहे और वीरम के वंशज मण्डोर के अधिपति बने।

राव चूण्डा के समय राठौड़ों का आधिपत्य मण्डोर के अलावा खाटू, डीडवाना, साम्भर, और नाडोल पर भी स्थापित हो गया। मांगीलाल व्यास चूण्डा की इन विजयों को स्वीकार नहीं करते। उनका मत है कि चूण्डा का भाटियों एवं नागौर के मुसलमान शासक के साथ संघर्ष हुआ। इस संघर्ष में चूण्डा वीरगति को प्राप्त हुआ। इसकी पुष्टि गाडण पसाइत की रचनाओं से होती है। चूण्डा ने वि. सं. 1414-1435 तक शासन किया।

राव चूण्डा के 14 पुत्र थे, जिन में से रिडमल या रणमल्ल सबसे बड़े थे। उनका जन्म वि. सं. 1449 में वैशाख सुदि 4 (28 अप्रेल 1392) को हुआ। युवा होने पर अपने पिता की आज्ञा से राज्याधिकार छोड़कर वि. सं. 1465 में वे जोजावर गांव में जाकर बस गये। वहां से कुछ दिनों बाद वे मेवाड़ के महाराणा लाखा के पास चले गये। महाराणा लाखा ने उन्हें धणला गांव सहित कुछ अन्य गांव जागीर में दिये। उन्होंने भी महाराणा को अजमेर विजय में सहयोग दिया। बाद में

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America, HHFA(USA)

उन्होंने अपनी बहिन हंसाबाई का विवाह राणाजी के ज्येष्ठ पुत्र चूण्डा के आग्रह पर महाराणा लाखा से कर दिया। महाराणा ने वचन दिया कि मेवाड़ का उत्तराधिकारी हंसाबाई से उत्पन्न पुत्र ही बनेगा। हंसाबाई से मोकलजी का जन्म हुआ। राव रणमल्ल ने महाराणा को मुसलमान विरोधी युद्धों में सहयोग देकर प्रसन्न किया। वि.सं. 1477 (1420 ई.) में महाराणा लाखा की मृत्यु के बाद अपने भानजे की आयु कम होने के कारण राव रणमल्ल मेवाड़ के प्रशासन का संचालन करते रहे। उन्होंने प्रमुख पदों पर अपने विश्वसनीय व्यक्तियों को नियुक्त कर दिया ताकि राव चूण्डा षड़यंत्र न कर सके। जब महाराणा युवा हुए तो मेवाड़ का शासन उसी प्रकार चलता रहा। उधर सरकारी काम काज से निश्चिन्त होकर वि. सं. 1480 में राव रणमल्ल अपने पिता राव चूण्डा से मिलने मारवाड़ आ रहे थे तो उन्हें अपने पिता की मृत्यु का समाचार मिला। इसलिये पिता की इच्छानुसार कान्ह को मण्डोर का शासक बनाकर खींवसी को अपने पिता के हत्यारे सलीम से बदला लेने भेजा। कहते हैं रणमल्ल ने सलीम को मरवा डाला। नाडोल में चौहानों का राज्य था। उन्होंने राव रणमल्ल की हत्या का षड़यंत्र किया तो राव जी ने सोनगरों को पराजित कर वि. सं. 1482 में नाडोल पर अधिकार कर लिया। इसके बाद राव चूण्डा की हत्या के सहयोगी, जैसलमेर के भाटियों को लूटना शुरू कर दिया तो रावल लक्ष्मण जी ने उन्हें दण्ड स्वरूप रुपये देना स्वीकार कर लिया। वि. सं. 1483 में राव रणमल्ल ने सींधल राठौड़ों से जैतारण और फिर हूलों से सोजत छीन लिया।

अपनी शक्ति में कुछ अधिक वृद्धि करने के बाद उन्होंने रणधीर के कहने से मण्डोर पर आक्रमण किया। इस समय तक राव कान्ह की मृत्यु हो जाने पर राव सत्ता मण्डोर का राजा था। रणमल्ल के आक्रमण का मण्डोर की सेना ने नरबद (राव सत्ता का पुत्र) के नेतृत्व में वीरतापूर्वक सामना किया, किन्तु वह असफल रहा। अन्त में वि. सं. 1485 में राव रणमल्ल का मण्डोर पर अधिकार हो गया। मण्डोर का शासक बनने के बाद भी राव रणमल्ल मेवाड़ के राज-काज में सहयोग करता था। मेवाड़ के शासन में उसके हस्तक्षेप से वहां के सरदार दुःखी थे। उधर महाराणा मोकल की चाचा एवं मेरा ने हत्या कर दी। उस समय रणमल्ल मण्डोर में ही था। यह सूचना मिलने पर उसे अत्यन्त क्रोध आया। उसने अपने भानजे की हत्या का बदला लेने की प्रतिज्ञा की। बाद में रणमल्ल ने अपने भानजे के हत्यारों को मार डाला एवं महाराणा कुम्भा के संरक्षक के रूप में मेवाड़ में ही रहने लगा। उसने कुम्भा की कई विजयों में सहायता की। रणमल्ल के बढ़ते हुए प्रभाव से नाराज सरदारों ने महाराणा कुम्भा को भी उसके विरुद्ध कर दिया। कुम्भा ने अपनी स्थिति दृढ़ करने की दृष्टि से अपने निर्वासित चाचा चूण्डा को मेवाड़ बुला लिया। उन दिनों रणमल्ल चित्तौड़ दुर्ग में तथा उसका पुत्र जोधा तलहटी के महलों में रहते थे। एक बार रणमल्ल शराब के नशे में सोया हुआ था तो उसे खाट से बांधकर उस पर घातक हमला किया गया। जिसमें रणमल्ल मारा गया और जोधा भागकर मारवाड़-मण्डोर पहुंचा। राव रणमल्ल की हत्या की तिथि अलग-अलग ग्रंथों में भिन्न-भिन्न

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मिलती है। जोधपुर राज्य की ख्यात में यह तिथि आषाढ़ संवत् 1500, बांकीदास री ख्यात में चैत्र बदि 6 संवत् 1500, दयालदास री ख्यात में आश्विन सुदि 7 संवत् 1496 दी गई है। रेउ ने यह तिथि कार्तिक बदि 30 संवत् 1495 दी है। राणकपुर लेख में कुम्भा की मण्डोर विजय संवत् 1496 दर्शायी गयी है। विद्वानों का विचार है कि यह विजय रणमल्ल की मृत्यु के पश्चात् की गयी। इसलिए रणमल्ल की मृत्यु 1496 या इससे थोड़ा पहले किसी समय हुई होगी। ओझा ने यह तिथि 1495 संवत् मानी है।

राठौड़ों में नवीन स्फूर्ति का संचार

राव जोधा ने राठौड़ सत्ता को नव जीवन प्रदान किया। वे राव रणमल्ल के द्वितीय पुत्र थे। उनका जन्म वि. सं. 1472 में वैशाख सुदि 2 (29 मार्च 1415) को हुआ। राव रणमल्ल की हत्या वि. सं. 1495 (1438 ई.) में हुई, तब जोधा चित्तौड़ में ही थे। जोधा को किसी डोम ने वाद्य यंत्र से सूचना दी कि 'जोधा भाग सके तो भाग थारो रिड़मल मारियो।' ओझा ने इसका शुद्ध पाठ इस प्रकार दिया है, 'चूंडा अजमल आविया मांडू हूं धक आग। जोधा रणमल मारिया भाग सके तो भाग।'

इस प्रकार राव रणमल्ल की हत्या की सूचना मिलते ही राव जोधा अपने 700 सैनिकों सहित चित्तौड़ से मारवाड़ की तरफ रवाना हो गया। मेवाड़ की सेना ने राठौड़ों का पीछा किया तथा कपासन के पास युद्ध हुआ। किन्तु सफलता न मिलते देख राठौड़ वहां से भाग निकले। रावत चूण्डा ने उनसे जमकर युद्ध किया। युद्ध में कई राठौड़ योद्धा रणखेत रहे। राठौड़ वीरों ने जोधा को मारवाड़ रवाना कर दिया तथा स्वयं मेवाड़ की सेना को रोकने हेतु युद्ध करते रहे। राव जोधा युद्ध के मुकन्दरा घाटे को पार कर सीधा मण्डोर पहुंचा। वहां अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों को एकत्र कर बीकानेर की तरफ रवाना हुआ और काहूनो गांव को अपना आधार स्थल बनाया।

इसी बीच मेवाड़ की सेना का मारवाड़ मण्डोर पर अधिकार हो गया। महाराणा कुम्भा ने कोसाणा तथा चौकड़ी में सुरक्षा चौकियां स्थापित कीं। उसने चूण्डा के पौत्र तथा सहसमल के पुत्र राघव राठौड़ को सोजत तथा नरवद सत्तावत को कायलाना सहित कई गांवों का पट्टा दिया। राणा की सेना ने काहूनी पर आक्रमण किये ताकि जोधा शान्ति से जीवन व्यतीत न कर सके। राव जोधा ने धैर्य रखते हुए सेतरावा के रावत लूणा से 140 घोड़े प्राप्त किये तथा हड़बू सांखला का बैंगटी में आशीर्वाद प्राप्त किया। इसके बाद उसने मण्डोर पर तीव्र गति से आक्रमण किया। युद्ध में मेवाड़ के कई वीर मारे गये और जोधा का मण्डोर पर अधिकार हो गया। वहां से वह चौकड़ी थाने पर पहुंचा। वहां राघवदे के साथ भयंकर युद्ध हुआ। इसके बाद जोधा ने कोसाणा को आक्रान्त किया। इसके बाद उसने सेना को कान्धल के नेतृत्व में अजमेर, मेड़ता भेजा और स्वयं सोजत की तरफ चल पड़ा। राव जोधा ने सोजत में मेवाड़ की सेना पर आक्रमण कर उसे भगा दिया। इसके बाद राव जोधा

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation-of-America-HHFA(USA)

के पुनः मण्डोर पहुंचने से पूर्व महाराणा कुम्भा से उनकी सन्धि हो गई। सन्धि के अनुसार बावल वाली भूमि जोधा की और आँवल वाली जमीन महाराणा के अधिकार में मानी गयी। इस प्रकार पाली परगने के बहुत बड़े भाग पर राव जोधा का अधिकार हो गया। इन संकटों से मुक्त हो जाने पर वि. सं. 1515 (1458 ई.) में राव जोधा का मण्डोर दुर्ग में राज्याभिषेक किया गया। उन्होंने मण्डोर के पास जोधेलाव नामक तालाब बनवाया।

इसके पश्चात् राज्य की सुरक्षा को ध्यान में रखकर राव जोधा ने वि. सं. 1516 ज्येष्ठ सुदि 11 शनिवार, 12 मई 1459 को मण्डोर से 6 मील दूर दक्षिण में चिड़ियाटूंक पर किला बनवाना प्रारम्भ किया। उसी के आसपास जोधाजी के नाम से जोधपुर नगर बसा। ख्यातों के अनुसार वि. सं. 1516 आषाढ़ सुदि 9 (9 जून 1459) को जोधपुर के नये किले मोरध्वज की प्रतिष्ठा हुई। राव जोधा द्वारा जोधपुर नगर में राणीसर नामक तालाब तथा चांद बावड़ी बनवाये गये। जोधा ने सातल को फलोदी और नींबा को सोजत का प्रबन्ध करने भेजा। जांगलू देश में कोड़मदेसर उन्हीं ने बनवाया। वि. सं. 1517 में जोधपुर दुर्ग में चामुण्डा मूर्ति की स्थापना की गई। उनके पुत्र वरसिंह और दूदा ने सं. 1518 में मेड़ता अधिकृत किया। उन्होंने गया यात्रा के दौरान बहलोल लोदी से आगरा में भेंट की। वे जौनपुर के बादशाह हुसैन शाह से भी मिले थे। उन्होंने हुसैन शाह के शत्रुओं को नष्ट किया। उन्होंने छापर द्रोणपुर पर आक्रमण कर मोइल अजितसिंह को पराजित किया और उस पर अपना अधिकार कर लिया। उनके पुत्र बीकाजी ने वि. सं. 1522 में बीकानेर राज्य स्थापित किया। राव जोधा का छापर द्रोणपुर पर अन्तिम रूप से अधिकार वि. सं. 1531 (1474 ई.) में हुआ। जोधा जी ने जैतारण, जालौर पर भी आक्रमण किये। राव जोधा के अधिकार क्षेत्र में मण्डोर, जोधपुर, फलोदी, पोकरण, महेवा, भाद्राजून, सोजत, गोडवाड़, जैतारण, शिव, सिवाना, साम्भर, अजमेर और नागौर का बहुत बड़ा भू-भाग था। बीकानेर तथा छापर द्रोणपुर पर उसके पुत्रों का अधिकार था। उसके राज्य की सीमा पश्चिम में जैसलमेर, दक्षिणी सीमा अरावली और उत्तर में हिसार तक विस्तृत थी।

राव जोधा के पश्चात् उसका तृतीय पुत्र राव सातल वि. सं. 1545 में सिंहासन पर बैठा। उसने वि. सं. 1448 तक राज्य किया। उनकी मृत्यु के बाद उन्हीं के छोटे भ्राता राव सूजा शासक बने। उन्होंने वि. सं. 1572 तक शासन का भार सम्भाला। तत्पश्चात् राव सूजा के पौत्र और राजकुमार बाबाजी के द्वितीय पुत्र राव गांगा जोधपुर राज्य की गद्दी पर बैठे। गांगेलाव तालाब और गांगा की बावड़ी का निर्माण उन्हीं ने करवाया। उन्हीं की रानी पद्मावती, (सिरोही के जगमाल की पुत्री) गंगश्याम जी की मूर्ति सिरोही से जोधपुर साथ लाई थी जो आज जूनी मण्डी जोधपुर में गंगश्याम जी के मन्दिर में स्थित है। राव गांगा के बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र राव मालदेव वि. सं. 1588 में मारवाड़ राज्य के अधिपति बने।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

शौर्य युग का प्रारम्भ

राव मालदेव—राव मालदेव एक साहसी सेनानायक और महत्त्वाकांक्षी शासक थे। उनके राज्यारोहण के समय मारवाड़ का राज्य दयनीय स्थिति में था। मालदेव के प्रभाव क्षेत्र में केवल जोधपुर और सोजत परगने ही थे। राव मालदेव के शासक बनने के 6 माह पूर्व मुगल सम्राट बाबर की मृत्यु हो चुकी थी। उसका उत्तराधिकारी हुमायूँ दिल्ली का बादशाह बना था। हुमायूँ को गुजरात के बहादुरशाह और शेरखां के विरुद्ध अभियानों के कारण मारवाड़ की ओर ध्यान देने का समय ही नहीं मिल पाया। इस परिस्थिति का लाभ उठाते हुए मालदेव ने राज्य विस्तार की नीति अपनाई।

भाद्राजून पर सींधल वीरा का अधिकार था। मालदेव ने वि. सं. 1588 में उसे पराजित कर अपने पुत्र रत्नसिंह को वहां नियुक्त किया। इसके पश्चात् उसने मेड़ता के शासक वीरमदेव को पराजित करने का निश्चय किया। लेकिन वीरमदेव ने मालदेव के पास सन्धि का प्रस्ताव भेजा। जिसे स्वीकार कर मालदेव ने भाद्राजूण युद्ध में सहायता हेतु उसे मेड़ता से बुलवा लिया। पीछे से उसने नागौर के खान को कह कर मेड़ता पर आक्रमण करवा दिया। इस अवसर पर मालदेव ने सेना भेजकर नागौर पर आक्रमण कर दिया और उस पर अपना अधिकार कर लिया। बाद में खांन ने राव मालदेव से मैत्री कर उसे हरसोलाव सहित नागौर के 21 गांव प्रदान किये। नागौर पर मालदेव का अधिकार वि. सं. 1590 के आसपास हो गया था किन्तु अन्तिम रूप से अधिकार दो वर्ष बाद वि. सं. 1592 में ही हो सका।

मालदेव के मेड़ता के वीरमदेव से सम्बन्ध खराब थे। इसलिए मालदेव ने चुपचाप सेना लेकर मेड़ता पर आक्रमण कर दिया। इसलिए वीरमदेव भाग कर रीयां पहुंचा। जहां मालदेव की सेना ने उसे पराजित कर भगा दिया। वीरमदेव भागकर अजमेर पहुंचा किन्तु एक वर्ष बाद ही मालदेव ने अजमेर पर भी अधिकार कर लिया।

इसके पश्चात् राव मालदेव ने शेखावत (कछवाहों की एक शाखा) रायमल के (जो सीकर का स्वामी था) पौत्र लूणकरण से अपनी पुत्री हंसाबाई का विवाह किया। राव मालदेव ने इसके बाद वीरमदेव का पीछा करते हुए डीडवाणा पर अधिकार कर लिया। लेकिन वीरमदेव शेखावाटी के रायमल के यहां रहकर शक्ति बढाने लगा तो राव मालदेव ने वि.सं. 1597 तक चाट्सू, फतेहपुर, टोडा, लालसोट और मतारण पर अधिकार कर लिया। तारीख-ए-पालनपुर के अनुसार मालदेव ने जालौर के सिकन्दर खां को पराजित किया और वि. सं. 1595 (राव मालदेव री बात के अनुसार) में वहां राठौड़ वीदा भारमलोत के नेतृत्व में सेना भेज कर अधिकार कर लिया। अब सिवाना की बारी थी। वहां तेजसी डूंगरसिहोत को भेजकर वि. सं. 1595 में अधिकार कर मांगलिया देवा भादावत को किलेदार बनाया।

जब मालदेव का सिवाना और भाद्राजून पर अधिकार हो गया तो उसने फिर सांचोर के चौहान शासक पर आक्रमण कर उसे पराजित कर दिया और गुजरात की

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America, HHFA(USA)

तरफ राधनपुर तथा खाबड़ प्रदेश अधिकृत कर नाबरा गांव लूट लिया।

महाराणा सांगा की मृत्युपरान्त मेवाड़ शक्तिहीन हो गया। इसका लाभ उठाकर दासीपुत्र बनवीर ने बदनोर, कोसीथल, मदारिया, और नाडोल पर अधिकार कर उन्हें अपने अधीनस्थ सामन्तों में बांट दिया। इस परिस्थिति में राव मालदेव ने उदयसिंह की सहायता करने हेतु सोनीगरा अखेराज को भेजा। राठौड़ों तथा सिसोदियों की सेना ने मावली के पास बनवीर को पराजित कर दिया और उदयसिंह का चित्तौड़ पर अधिकार हो गया। गौरीशंकर हीराचन्द ओझा इस घटना में विश्वास नहीं करते। यह घटना लगभग वि.सं. 1597 में घटित हुई।

उन दिनों बीकानेर में राव जैतसी का शासन था। राव मालदेव ने वि. सं. 1598 में उस पर इसलिए आक्रमण किया कि वह समस्त राजपूतों को अधीन करना चाहता था। राव मालदेव की सेना आक्रमण करने के उद्देश्य से पही नामक स्थान पर और बीकानेर की सूवा में युद्ध हेतु पहुँची। जोधपुर की सेना ने रात के अंधेरे में जैतसी पर आक्रमण कर दिया। युद्ध में जैतसी वीरगति को प्राप्त हुआ। इसके बाद मालदेव ने बीकानेर पर आक्रमण कर करीब आधे राज्य को जीत लिया और सामन्त कूंपा को वहां का राजकाज सौंप दिया। इस प्रकार राव मालदेव की उत्तर में सीमा बीकानेर तथा हिसार तक पहुँच गई। पूर्व में बयाना व धौलपुर, दक्षिण में चित्तौड़, दक्षिण पश्चिम में राधनपुर तक उसकी राज्य सीमा विस्तृत थी। पश्चिम में उसकी राज्य सीमा भाटियों के राज्य को छूती थी।

जिस समय मालदेव उन्नति के शिखर पर था, उस समय मुगल सम्राट हुयायूँ चौसा और कन्नौज के युद्ध में पराजित होकर मारा मारा फिर रहा था। फारसी ग्रन्थों के अनुसार मालदेव ने हुमायूँ को, जब वह भक्खर में था, सहायता देने हेतु सन्देश भेजा, ताकि देश की राजनीतिक स्थिति से लाभ उठा सके। उधर राव मालदेव के शत्रु भी शेरशाह की सेवा में पहुंच चुके थे इसलिए वह अफगान नेता से नाराज था। हुमायूँ ने मालदेव के पत्रों का उत्तर नहीं दिया था। लेकिन जब सभी उसका साथ छोड़ चुके तो वह मालदेव के राज्य फलोदी परगने में पहुंचा। उसने एक दूत आतक खां के माध्यम से मालदेव से सहायता की बात चलाई लेकिन राठौड़ शासक ने उसे कोई स्पष्ट आश्वासन नहीं दिया, इसलिए हुमायूँ वहां से अमरकोट रवाना हो गया। फारसी इतिहासकारों ने मालदेव पर हुमायूँ से धोखा करने का आरोप लगाया है जो सही प्रतीत नहीं होता।

यद्यपि मालदेव ने हुमायूँ की सहायता नहीं की थी किन्तु फिर भी शेरशाह ने उस पर आक्रमण किया। क्योंकि मालदेव मारवाड़ का एक शक्तिशाली शासक था जिसे शेरशाह कभी सहन नहीं कर सकता था। मालदेव के विरोधी मेड़ता का वीरमदेव और बीकानेर का जैतसी शेरशाह की सेवा में आ चुके थे। मालदेव को पराजित करना कठिन था। फारसी तवारिखों के अनुसार शेरशाह ने 80,000 सैनिकों और शक्तिशाली तोपखाने के साथ आगरा से प्रस्थान किया। वह आगरा से दिल्ली, नारनोल और फतेहपुर शेखावाटी होकर डीडवाना पहुँचा। जहां मालदेव का सेना-

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

नायक कूंपा डेरा डाले हुआ था। शेरशाह ने कूंपा को पराजित कर दिया और बाबरा नामक स्थान पर पहुंचा। मालदेव भी अपनी सेना सहित सुमेलगिरि नामक स्थान पर पहुंचा। ये दोनों स्थान अजमेर के निकट स्थित थे। शेरशाह ने मारवाड़ के सरदारों की तरफ से अपने नाम जाली पत्र तैयार करवाये। जिनमें लिखा हुआ था कि वे मालदेव को पकड़ कर आपकी सेवा में प्रस्तुत कर देंगे। ये पत्र मालदेव के डेरे के पास फिकवा दिये। उसने वीरम देव की तरफ से भी ऐसा पत्र मालदेव के पास भिजवाया। जिसमें लिखा था कि आपके कुछ सरदार शेरशाह से मिल गये हैं। इन पत्रों से मालदेव दुःखी हुआ और राठौड़ सरदारों में फूट पड़ गई। मालदेव रात्रि के अन्धेरे में अपनी मुख्य सेना सहित युद्ध के मैदान से भाग निकला। लेकिन कूंपा और जेता के नेतृत्व में बची हुई राठौड़ सेना ने शेरशाह का डटकर मुकाबला किया किन्तु वे पराजित हुए। शेरशाह ने युद्ध के बाद कहा कि "मैंने एक मुट्ठी भर बाजरे के लिए करीब-करीब दिल्ली का राज्य गंवा दिया था।" इस विजय के बाद शेरशाह ने मालदेव का पीछा करने हेतु एक सेना भेजी और स्वयं अजमेर पर अधिकार कर लिया। इसके बाद वह नागौर आया और कल्याणमल को बीकानेर दिया। वह मेड़ता पहले ही वीरमदेव को दे चुका था। शेरशाह ने जोधपुर में ख्वाजा खां और ईसा खां को प्रबन्ध के लिए नियुक्त किया। लेकिन जोधपुर पर अफगानों के 524 दिनों के शासन के बाद मालदेव ने वि.सं. 1603 में जोधपुर पर पुनः अधिकार कर लिया।

पुनः सत्तारूढ़ होने के बाद मालदेव ने फलोदी के सरदार राम द्वारा सुमेलगिरि युद्ध से सहयोग न देने के कारण उसके भाई डूंगरसी को बन्दी बना लिया। उसने उसे तभी रिहा किया जब अधिकारियों ने उसको (मालदेव) फलोदी दुर्ग सौंप दिया। इसके बाद उसने पोकरण सातलमेर पर आक्रमण किया। सातलमेर दुर्ग ध्वस्त हो गया और वहां का शासक जैतमल जैसलमेर चला गया। उसने जैसलमेर के भाटियों की सहायता से पोकरण पर आक्रमण किया। किन्तु मालदेव की सेना ने उसे खदेड़ दिया। पोकरण में मालदेव ने एक सुदृढ़ दुर्ग बनवाया। तत्पश्चात् उसने बाड़मेर तथा कोटड़ा भी जीत लिया। अब उसने जैसलमेर, जालौर और मेड़ता पर आक्रमण किया। जैसलमेर का रावल और जालौर के पठान उससे पराजित हुए। किन्तु मेड़ता में जयमल उससे पराजित नहीं हुआ।

सुमेल युद्ध के बाद अजमेर का शासक हाजी खां था। हुमायूँ की मृत्यु के बाद अकबर के शासनकाल में मालदेव ने अजमेर विजय हेतु सेना भेजी। किन्तु हाजी खां को महाराणा उदयसिंह तथा बीकानर के कल्याणमल ने सैनिक सहायता दी, इसलिये मालदेव बिना युद्ध लड़े ही लौट आया। बाद में उदयसिंह और हाजी खां के सम्बन्ध बिगड़ गये तो हाजी खां ने मालदेव से सहायता मांगी। उधर महाराणा की सेना भी हरमाड़े के स्थान तक आ पहुंची जहां मालदेव तथा हाजी खां की सेनाओं ने उसे पराजित कर दिया। इसके बाद उसने तीव्र गति से मेड़ता पर आक्रमण किया। जयमल वहां से भाग गया और मेड़ता पर मालदेव का अधिकार हो गया। मालदेव

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

ने मेड़ता में सुदृढ़ दुर्ग बनवाया और वीरमदेव के पुत्र जगमाल को वहां का शासक नियुक्त किया।

हरमाड़े के युद्ध के बाद सम्राट अकबर ने अजमेर के हाजी खां पर आक्रमण किया तो वह भागता हुआ जैतारण आया। मुगल सेना उसका पीछा करते हुए वहां भी आ पहुंची। मालदेव मुगलों से युद्ध करना नहीं चाहता था, इसलिये उसने हाजी खां की सहायता नहीं की। जिससे जैतारण पर मुगलों का अधिकार हो गया। राजपूत स्रोतों के अनुसार इसके बाद अकबर ने जयमल के पक्ष में मेड़ता पर आक्रमण किया। मालदेव ने अपने पुत्र चन्द्रसेन को यह कहकर भेजा कि यदि खतरा हो तो युद्ध न करना। इसलिये वह बिना युद्ध किये लौट आया। सांवलदास और देवीदास ने मुगलों से युद्ध कर वीरगति प्राप्त की। विजयी अकबर ने मेड़ता जयमल को दे दिया। बाद में उससे नाराज होने पर उसे जगमाल को दिया। वि. सं. 1619 कार्तिक सुदि 12 (7. नवम्बर 1562) को उस पराक्रमी बहादुर नरेश का स्वर्गवास हुआ। मालदेव ने जोधपुर के रानीसर तालाब के चारों ओर कोट तथा चिड़ियानाथ मन्दिर के झरने के चारों तरफ दीवार बनवाई। जोधपुर शहर के चारों तरफ शहरपनाह का निर्माण उन्हीं ने करवाया। उन्होंने अपने राज्य में कई गढ़ और किलों का निर्माण करवाया। साहित्यकारों ने मालदेव के शौर्य की प्रशंसा की है। मालदेव के शासनकाल में डिंगल साहित्य की रचनाएं लिखी गईं। इनमें आसिया के दोहे, मेहा बीठू के दोहे, आशानन्द बारहठ के गीत, चारण करणीदान रतनू के छप्पय, बारठ ईसरदास के दोहे महत्त्वपूर्ण हैं। वेलि साहित्य में दूदो विसराल रचित रतनसिंह री वेलि और अखो भाणोत की देईदास जेतावत री वेलि प्रमुख हैं। उनके समय संस्कृत में कई ग्रन्थ एवं टीकाओं की भी रचना हुई। जैन साहित्य में नरसेन लिखित जिन रात्रि कथा महत्वपूर्ण है।

राव चन्द्रसेन

राव मालदेव के 22 पुत्र थे। जिनमें से मारवाड़ नरेश राव चन्द्रसेन छठे पुत्र थे। उनका जन्म वि. सं. 1598 श्रावण बदि अष्टमी (16 जुलाई 1541) को हुआ। राव मालदेव के निधन के बाद उनकी इच्छानुसार वि. सं 1619 (1562 ई.) में राव चन्द्रसेन उनके उत्तराधिकारी बने। राव चन्द्रसेन अपने भाइयों का हक मारकर या उन्हें नाराज कर मारवाड़ की गद्दी पर बैठे थे। उनके बड़े भाई राम (मालदेव का ज्येष्ठ पुत्र) केलवा मेवाड़ में निर्वासित जीवन व्यतीत कर रहे थे। उसके छोटे भाई से भी पटरानी के नाराज हो जाने के कारण उसे फलोदी जागीर देकर भेज दिया गया था। चन्द्रसेन का राजा बनना मारवाड़ के सरदारों तथा राजकुमारों को अच्छा नहीं लगा था। एक बार राव चन्द्रसेन ने नाराज होकर किसी चाकर की हत्या करवा दी। इसलिये इस अन्याय का विरोध करने हेतु उन्होंने राम, उदयसिंह और रायमल को आमन्त्रित किया। राव चन्द्रसेन के तीनों भाइयों को सूचना मिलते ही वे मारवाड़ नरेश का विरोध करने तैयार हो गये। सबसे बड़े भ्राता राम ने सोजत में बिगाड़ किया। रायमल ने दूनाड़ा में उपद्रव किया। तीसरे भ्राता उदयसिंह

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

ने गांगाणी तथा बावड़ी पर अधिकार कर लिया। जब राव चन्द्रसेन ने उनका सामना करने हेतु अपनी सेना भेजी तो राम और रायमल अपनी-अपनी जागीरों में भाग गये। चन्द्रसेन का मुकाबला उदयसिंह से हुआ। घायल हो जाने पर उदयसिंह के साथी उसे युद्ध के मैदान लोहावट से बचाकर ले गये। इस प्रकार युद्ध में चन्द्रसेन विजयी रहा। उसने फलोदी पर आक्रमण का विचार किया, किन्तु सरदारों ने समझा-बुझाकर उसे शान्त कर दिया।

उन दिनों सम्राट अकबर का शासन था। वह राजपूताना विजय का इच्छुक था। राव चन्द्रसेन का भाई राम उसके दरबार में उपस्थित हुआ और अपने भाई के विरुद्ध सहायता की याचना की। इसलिये अकबर ने हुसैन कुलीखां के नेतृत्व में शाही सेना को मारवाड़ भेजा। जिसने शीघ्र ही जोधपुर दुर्ग पर अपना अधिकार कर लिया। जोधपुर राज्य की ख्यात तथा अबुल फजल के विवरण में इस घटना का विस्तृत विवेचन किया गया है। शाही मुगल सेना को 10 माह के अथक प्रयत्न तथा तीन घेरों के बाद जोधपुर पर सफलता मिली थी।

जोधपुर छोड़ने के बाद राव चन्द्रसेन की आर्थिक स्थिति बिगड़ गयी। उसे बाध्य होकर एक लाल मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह को 60,000 रु. में बेचना पड़ा। इस स्थिति की सूचना अकबर को मिली तो वह मारवाड़ में अकाल सम्बन्धी व्यवस्था का निरीक्षण करने के बहाने वि. सं. 1627 में नागौर पहुंचा। वहां उससे मिलने बीकानेर और जैसलमेर के राजा आये। राव चन्द्रसेन, एवं उसके भाई राम तथा उदयसिंह भी अपनी स्थिति मजबूत करने की दृष्टि से वहां पहुंचे। मुगल सम्राट के यहां के दृश्य को देखकर राव चन्द्रसेन समझ गया कि वह राजपूत को राजपूत के विरुद्ध लड़ाना चाहता है। इसलिये अकबर के दरबार से चला गया। अबुल फजल और बदायुनी का मत है कि नागौर में राव चन्द्रसेन ने अकबर की अधीनता स्वीकार करली थी। किन्तु हम यह जानते हैं कि इस घटना के बाद अकबर ने भाद्राजून पर आक्रमण करने सूबेदार खान कलां को भेजा। इसलिए कहा जा सकता है कि चन्द्र-सेन ने सम्राट अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं की। लेकिन उसे अकबर से कुछ आशा थी इसलिये अपने पुत्र को उसने सम्राट के पास ही छोड़ दिया। अकबर ने राव चन्द्रसेन के भाईयों को लालच देकर अपना अनुयायी बना लिया। उसने उदय-सिंह को सामावली पर अधिकार करने की आज्ञा दे दी। चन्द्रसेन के बड़े भाई को अकबर ने मिर्जा के बन्धुओं का दमन करने शाही सेना के साथ भेज दिया।

राव चन्द्रसेन द्वारा अपने पुत्र रायसिंह को सम्राट की सेना में छोड़ने के बावजूद अकबर ने भाद्राजून पर आक्रमण करने का आदेश दिया। इसका कारण यह था कि राव चन्द्र सेन ने मुगल दरबार में शिष्टाचार का पालन नहीं किया था। सम्राट के निर्देशानुसार जब खान कलां ने भाद्राजून जहां राव चन्द्र सेन रह रहा था, आक्रमण किया। चन्द्रसेन में मुगल सेना का प्रतिशोध करने की शक्ति न थी इसलिये वह सिवाणा चला गया और भाद्राजून पर मुगल सेना का अधिकार हो गया।

सिवाणा में निवास के दौरान राव चन्द्र सेन आसरलाई (जैतारण तहसील) और

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America, HHFA(USA)

अजमेर के भिणाय ग्राम में (मादलिया के विरुद्ध) लूटमार की। अकबर उन दिनों मालवा तथा मेवाड़ में उलझा हुआ था। फिर भी वि. सं. 1629 (30 अक्टूबर 1572 ई.) में अकबर ने बीकानेर के शासक रायसिंह को जोधपुर राज्य का मुगल अधिकारी नियुक्त किया।

भाद्राजून छोड़ने के बाद सिवाणा चन्द्रसेन की राजधानी था। मालानी के राठौड़ उससे जाकर मिल गये थे। इसलिए अकबर ने बीकानेर नरेश रायसिंह, शाह कुली खां महरम, शिमला खां, केशोदास मेड़तिया जगतराम, तैय्यब खां और शुभान कुली खां को सिवाणा पर आक्रमण करने भेजा। शाही सेना ने सिवाणा बढ़ते हुए सिरियारी दुर्ग में आग लगा दी तथा राम के पुत्र कल्ला से आत्म समर्पण करवाया। सोजत पर भी उन्होंने अधिकार कर लिया। चन्द्रसेन ने सिवाणा में कुछ समय मुगल सेना का मुकाबला किया। फिर उस दुर्ग रक्षा का भार पत्ता राठौड़ पर छोड़ कर स्वयं पीपलोद की तरफ चला गया। यह घेरा दो वर्ष चलता रहा। चन्द्रसेन अवसर देखकर मुगल सेना पर धावे करता रहा। अकबर ने रायसिंह की सूचना पर सिवाणा में सैनिकों की संख्या में भी वृद्धि की। अकबर ने तैय्यब खां, सैय्यद बेग, सुभान कुली खां तुर्क, अजमत खां और शिवदास आदि को भी चन्द्रसेन पर आक्रमण करने सिवाण भेजा। इसलिये चन्द्रसेन रामपुरा छोड़ काणूजा चला गया। सेना को सफलता नही मिली तो वह वापिस लौट आई। अब बादशाह ने कुछ और अधिकारी सिवाणा भेजे। अब चन्द्रसेन का पीछा जलाल खां ने किया और जब वह रामपुर में था चन्द्रसेन ने उसकी सेना पर धावा बोल दिया। इस आक्रमण में जलाल खां मारा गया। सिवाणा अभियान पूर्णतः असफल था। चन्द्रसेन ने भी दुनाड़ा आदि स्थानों पर किले बन्दी कर रखी थी। गोडवाड़ में उसके कई सुदृढ़ दुर्ग थे। अन्त में अकबर ने शाहबाज खां के नेतृत्व में फिर मुगल सेना भेजी। जिसे राठौड़ों ने दुनाड़ा में रोकने का प्रयास किया। किन्तु विशाल मुगल सेना ने दुनाड़ा पर अधिकार करने में सफलता प्राप्त कर ली। इसके बाद मुगल सेना ने राठौड़ों को संवत् 1633 (1576 ई.) में सिवाणा दुर्ग उन्हें सौंपने को बाध्य कर दिया। राठौड़ सैनिक इसके बाद भी मुगलों को तंग करते रहे।

सिवाणा दुर्ग के पतन के बाद राव चन्द्रसेन ने पीपलोद छोड़ दिया। वह मेवाड़ की तरफ चला गया। इस स्थिति का लाभ उठाकर जैसलमेर के हरराय के पुत्र भाखरली ने पोकरण को घेर लिया किन्तु वह दुर्ग पर अधिकार करने में असफल रहा। इसलिए हरराय ने स्वयं पोकरण पर आक्रमण किया किन्तु वहां के किलेदार पंचोली आनन्द राम ने उसे सफल न होने दिया। अन्त में चन्द्रसेन की हरराय से सन्धि हो गई और उसे पोकरण सौंप दिया गया तथा बदले में उसने राव चन्द्रसेन को एक लाख फदिये (12,500 रु.) ऋण के रूप में दिये। यद्यपि चन्द्रसेन को पूरी रकम प्राप्त नहीं हुई।

सोजत पर राम के पुत्र कल्ला का अधिकार था। वह अकबर के बुलाने पर मुगल दरबार में हाजिर नहीं हुआ तो सम्राट ने नाडोल थाने पर नियुक्त शेख इब्रा-

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

हिम को उस पर आक्रमण करने का आदेश दिया। उसने सोजत पर अधिकार कर लिया और कल्ला वीरगति को प्राप्त हुआ। इस परिस्थिति में राठौड़ों ने राव चन्द्रसेन से मारवाड़ आने की प्रार्थना की। इसलिए चन्द्रसेन सोजत के पास सरवड़ गांव में आकर रुका। इसकी सूचना मिलने पर अकबर की सेना ने सरवड़ पर आक्रमण कर दिया। इसलिए राव चन्द्रसेन वहां से भाग कर हरियामाली पहुंचा। वह सेना इकट्ठी कर सोजत की तरफ रवाना हुआ और उस पर अपना अधिकार कर लिया। इसलिए सम्राट अकबर ने चन्द्रसेन के उपद्रव को दबाने हेतु कई सैनिक अधिकारियों को भेजा। अत: राव चन्द्रसेन वहां से भाग कर सोजत से 10 मील दूर दक्षिण पश्चिम में स्थित सारण की पहाड़ियों में चला गया। जहां अचानक वि. सं. 1637 की माघ सुदि 7 (11 जनवरी 1581) को उनका सचियाय में स्वर्गवास हो गया। उनका अन्तिम संस्कार सारण में किया गया। इस प्रकार सम्राट अकबर राव चन्द्रसेन को अपने अधीन करने की इच्छा पूरी न कर सका। विद्वान उनके व्यक्तित्व की तुलना महाराणा प्रताप से करते हैं।

राव चन्द्रसेन के बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र राव रायसिंह उनका उत्तराधिकारी बना। उसका जन्म वि. सं. 1614 में हुआ था। वह सम्राट अकबर की सेवा में था। वि.सं. 1639 (1582 ई.) में सोजत में उसका राज तिलक हुआ। किन्तु वि.सं. 1640 में सम्राट अकबर की सेवा में रहते हुए वह सिरोही के सुरतान के षड्यन्त्र से दत्ताणी गांव में शत्रुओं द्वारा घेर लिया गया। वहीं पर वह शत्रुओं से युद्ध करते हुए मारा गया।

राव रायसिंह के बाद राव मालदेव के पांचवें पुत्र उदयसिंह जिनका जन्म वि. सं. 1594 (1537 ई.) में हुआ। वि.सं. 1640 (1583 ई.) में जोधपुर राज्य की गद्दी पर बैठे। उन्होंने सम्राट अकबर की अधीनता स्वीकार करली थी। वे जोधपुर राज्य के पहले शासक थे जिन्हें मुगल मनसबदारी मिली थी। सम्राट ने उन्हें राजा की उपाधि प्रदान की थी। स्थूलकाय होने के कारण मुगल दरबार में वे मोटा राजा के नाम से प्रसिद्ध थे। सम्राट अकबर ने उन्हें लाहौर की देखभाल हेतु नियुक्त कर रखा था। वहीं पर दमा की बीमारी से वि. सं. 1652 (1595 ई.) में उनका निधन हो गया।

राजा उदयसिंह के बाद राजा सूरसिंह जोधपुर राज्य के वि सं. 1652 में ही उत्तराधिकारी बने। उनका जन्म वि. सं. 1627 (1570 ई.) में हुआ था। उन्होंने भी सम्राट अकबर का सेवा कार्य किया। उन्होंने भी लाहौर शाही सेना का प्रबन्ध किया था। सम्राट ने उन्हें दो हजारी जात और सवा हजार का मनसब एवं राजा की उपाधि प्रदान की थी। वि. सं. 1676 (1619 ई.) में दक्षिण में महकर के थाने में सवाई राजा सूरसिंह का स्वर्गवास हो गया। जोधपुर नगर में सूरसागर तालाब, तलहटी के महल, रामेश्वर महादेव मन्दिर और सूरज कुण्ड उन्हीं ने बनवाये थे।

महाराजा सूरसिंह की मृत्यु के बाद महाराजा गजसिंह उनके उत्तराधिकारी बने। उनका जन्म वि. सं. 1652 (1595 ई.) में हुआ था। उस समय जहांगीर

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मुगल सम्राट का शासन काल था। उसने वि.सं. 1676 (1619 ई.) में बुरहानपुर में उनके टीके का दस्तूर किया और तीन हजार जात, दो हजार का मनसब, झण्डा और राजा की उपाधि से सम्मानित किया। जोधपुर, जैतारण, सोजत, सिवाणा, सातलमेर, पोकरण आदि परगनों की जागीर भी प्रदान की। महाराजा गजसिंह लगातार दक्षिण में सम्राट के पास में युद्ध करते रहे। इसलिये उसे बादशाह ने वि. सं. 1680 में पांच हजार जात और चार हजार का मनसब प्रदान कर खुर्रम के विरुद्ध भेजा। जहांगीर की मृत्यु के बाद शाहजहां के समय भी वह मुगल दरबार में सक्रिये रहे। उन्होंने बीजापुर तथा कन्धार की चढाई में महत्वपूर्ण वीरता दिखलाई थी। महाराजा गजसिंह ने अपने जीवन काल में ही छोटे पुत्र जसवन्तसिंह को उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। क्योंकि बड़ा पुत्र अमरसिंह क्रोधी एवं हठी था। अमरसिंह राठौड़ ने भी शाहजहां की ओर से कई युद्धों में भाग लिया। नागोराधिपति अमरसिंह की सलावत खां एवं अर्जुन गौड़ ने हत्या करदी थी। महाराजा गजसिंह का वि. सं. 1695 (1638 ई.) में आगरा में स्वर्गवास हुआ। उनका अन्त्येष्टि संस्कार यमुना के किनारे पर सम्पन्न हुआ।

महाराजा जसवन्तसिंह (प्रथम) एवं अजीतसिंह का राज्यकाल

स्वनामधन्य महाराजा जसवन्तसिंह का जन्म वि. स. 1683 (1626 ई.) में हुआ। उनका जन्म स्थल बुरहानपुर था। अपने पिता गजसिंह की मृत्यु पर शाहजहां ने आगरा में उन्हें खिलअत, जड़ाऊ जमधर(कटार), 4 हजारी जात, 4 हजार सवारों का मनसब, राजा का खिताब, निशान, नक्कारा, सुनहरी ज़ीन का घोड़ा और हाथी देकर राजा की पदवी से भूषित किया। वि. सं. 1695 (1638 ई.) में आगरे में उनका राजतिलक हुआ। उस समय वे ग्यारह वर्ष के थे। सम्राट ने उन्हें राजकाज में सहयता देने हेतु कूंपावत राजसिंह को इनका प्रधान नियुक्त किया। बाद में महाराजा जसवन्तसिंह का मनसब 5000 जात और 5000 सवारों का कर दिया गया। जब महाराजा साहब वि. सं. 1697 (1640 ई.) में हरिद्वार होते हुए जोधपुर आये तो यहां राजतिलक उत्सव मनाया गया।

महाराजा जसवन्तसिंह ने शाहजहां के कन्धार अभियान में बड़े साहस का परिचय दिया इसलिये उनका मनसब 6000 जात और 6000 सवार का कर दिया।

वि. सं. 1714 (1658 ई.) में मुगल सम्राट शाहजहां बीमार पड़ गया तो उसके पुत्रों में उत्तराधिकार के लिए युद्ध प्रारम्भ हो गया। औरंगजेब दक्षिण से चलकर धर्मत के मैदान में आ डटा। मुराद की सेना भी उसके अधीन थी। उधर दिल्ली से दारा, जसवन्तसिंह, कासिम खां, मुकुन्दसिंह हाडा और राजा रतनसिंह आदि राठौड़ों तथा कई मुगल सेनापतियों को औरंगजेब का सामना करने हेतु भेजा गया। औरंगजेब ने युद्ध से पहले और युद्ध के समय जसवन्तसिंह पर जोर डाला कि वह इस झगड़े से दूर रहे। किन्तु जसवन्तसिंह युद्ध करने हेतु कटिबद्ध था। वह सैनिक जमघट के मध्य 2000 राजपूत सैनिकों सहित डटा हुआ था। युद्ध प्रारम्भ हुआ तो शत्रु के प्रहारों से राजपूत योद्धा मुकुन्दसिंह हाड़ा, राजसिंह राठौड़, दयालसिंह झाला,

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

सुजानसिंह सीसोदिया आदि वीर गति को प्राप्त हुए। औरंगजेब के तोपखाने का नेता मुर्शीद कुली खां मारा गया। किन्तु सहसा जसवन्तसिंह शत्रुओं में घिर गये और युद्ध करते हुए घायल हो गये तो उनके साथी आसकरन, महेशदास गौड़ और गोवर्धन उन्हें युद्ध क्षेत्र से बाहर ले आये और जोधपुर लौटने को विवश किया। सहस्रों राजपूतों के बलिदान के बाद भी विजय औरंगजेब की हुई। धर्मत का नाम फतियाबाद रखा गया।

धर्मत युद्ध की पराजय के बाद जसवन्तसिंह जोधपुर पहुंचे तो उनकी राणी ने किले के द्वार बन्द करवा दिये। उसने कहा कि द्वार पर कोई और व्यक्ति है। महाराजा पराजित होकर नहीं लौट सकते। बाद में महाराजा जसवन्तसिंह ने अपनी पराजय का बदला लेने का वचन दिया तब दुर्ग के द्वार खोले गये। बर्नियर, मनूची और श्यामलदास ने इस घटना को सही माना है। विश्वेश्वरनाथ रेउ ने इस कथानक को मन गढन्त कहकर पुकारा है। मारवाड़ के इतिहास के दृष्टिकोण से धर्मत के युद्ध का इतना ही महत्व था कि औरंगजेब हेतु महाराजा जसवन्तसिंह का आचरण सन्देहप्रद बन गया।

औरंगजेब के सम्राट बनने पर जसवन्तसिंह उसकी सेवा में उपस्थित हुआ। सम्राट ने उसका मनसब बहाल कर दिया और उसे भेंट में अमूल्य वस्तुएं देकर संतुष्ट किया। लेकिन जसवन्तसिंह मन में उससे नाराज था। इसलिए जब शुजा ने औरंगजेब पर आक्रमण किया तो सम्राट ने जसवन्तसिंह को उसका मुकाबला करने सेना के दक्षिणी पार्श्व का अधिकारी बना कर खानवा भेजा। वि.सं. 1715-16 (1659 ई.) में जब युद्ध प्रारम्भ होने वाला था, उसने शुजा की सहायता हेतु शाही सेना पर हमला कर दिया। किन्तु युद्ध में अन्तिम सफलता औरगजेब को प्राप्त हुई। इसके पश्चात् जसवन्तसिंह मारवाड़ राज्य की राजधानी जोधपुर रवाना हो गया तो औरंगजेब ने भी उसकी राजधानी पर अधिकार करने हेतु मुगल सेना को उसके पीछे भेज दिया। उधर दारा ने उसे अपनी ओर मिलाने का अथक प्रयत्न किया और अन्त में महाराजा जयसिंह के बीच-बचाव के कारण जसवन्तसिंह ने उसे सहायता करने से मना कर दिया। सम्राट ने वि.सं. 1716 में दारा पर विजय के बाद उसके खिताब बहाल करते हुए उसे गुजरात का सूबेदार नियुक्त किया। वहां उन्होंने उपद्रव दबा दिये तो उन्हें सम्राट ने महाराजा का खिताब प्रदान किया। परन्तु कुछ वर्षों के बाद महावत खां की वहां नियुक्ति कर दी। वि.सं. 1728-29 में वे दूसरी बार गुजरात के गवर्नर बनाये गये।

उन दिनों दक्षिणी भारत में मराठे शक्तिशाली हो गये थे। उनकी बढती हुई शक्ति को रोकने हेतु सम्राट औरंगजेब ने एक फरमान भेज कर जसवन्तसिंह को दक्षिण में जाने का आदेश दिया ताकि वे वहां शाइस्ता खां की सहायता कर सकें। वि. सं. 1719 (1662 ई.) में जसवन्तसिंह, नामदार खां, आसफ खां, रामसिंह, भाऊसिंह आदि दक्षिण पहुंच गये। शाइस्ता खां चाकन पर अधिकार करके फिर पूना चला गया था। महाराजा जसवन्तसिंह ने सिंहगढ के मार्ग में अपनी छावनी स्थापित

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

की। किन्तु शिवाजी ने सिंहगढ के मार्ग से बचते हुए किसी अन्य मार्ग से शाइस्ता खां के निवास स्थल पहुंच गये। शाइस्ता खां को वहां से भागकर प्राण बचाने पड़े। बर्नियर तथा मनूची का विचार है कि पूना और सूरत में शिवाजी ने लूटमार की उसमें महाराजा जसवन्तसिंह का हाथ था। किन्तु प्रमाणों के अभाव में इस आरोप को सिद्ध करना कठिन है। यदि इस घटना में जसवन्तसिंह का हाथ होता तो आलमगीरनामा और फतूहात-ए-आलमगिरी में इसका उल्लेख अवश्य होता। महाराजा जसवन्तसिंह ने औरंगजेब और शिवाजी के मध्य सम्बन्धों को मधुर बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। जिससे सम्राट ने महाराजा की बात मानकर शिवाजी को राजा की उपाधि प्रदान की और सन्धि की शर्त पर ही शम्भाजी को औरंगाबाद भेजा गया था। इसीलिए सम्राट ने जसवन्तसिंह से प्रसन्न होकर उन्हें थिराद और राधणपुर के परगने प्रदान कर गुजरात पहुंचने का आदेश दिया। वि.सं. 1723 (1666 ई.) में जसवन्तसिंह को काबुल जाने का आदेश मिला ताकि वे पश्चिमोत्तर प्रदेशों में पठानों के उपद्रव को दबाने में सहायता करें। वे गुजरात से मारवाड़ और फिर वहां से पेशावर पहुंचे। कुछ समय पठानों से संघर्ष के बाद उन्हें जमरूद भेजा गया और वहां वि.सं. 1735 (1678 ई.) को उनका 52 वर्ष की अवस्था में स्वर्गवास हो गया। तवारीख मोहम्मद शाही के अनुसार इसकी सूचना मिलने पर बादशाह की बेगम ने कहा—"आज शोक का दिन है कि बादशाहत का ऐसा स्तम्भ टूट गया।"

महाराजा जसवन्तसिंह एक नीति-निपुण, निडर और चतुर शासक थे। वे गुणों के प्रशंसक तथा विद्वानों के आश्रयदाता थे। वे स्वयं डिंगल के कवि थे। उन्होंने मारवाड़ के प्रशासन में कई सुधार किये और राज्य कर्मचारियों के वेतन में वृद्धि कर रिश्वत पर रोक लगा दी। उन्होंने जोधपुर के कागा में अनार का बगीचा, और राइका बाग (बगीचा) बनवाया। उनकी रानियों ने कल्याण सागर और शेखावत जी के तालाब बनवाये। उनकी देवड़ी रानी ने सूरसागर में तुलादान किया। रामेश्वर महादेव के पुजारियों को उन्होंने अपने पुत्र पृथ्वीसिंह के जन्म दिवस पर नागौर के पास साटीक गांव प्रदान किया था।। ख्यातों में उसे 'हिन्दुत्व का रक्षक' कहा गया है। औरंगजेब ने मन्दिर गिराने का आदेश उसी के विरोध स्वरूप वापिस लिया था।

महाराजा अजीतसिंह

महाराजा अजीतसिंह का जन्म वि. सं. 1735 चैत्र वदि 4 (19 फरवरी 1679) को लाहौर में अपने पिता महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु के बाद हुआ। उनके छोटे राजकुमार का नाम दलथंभन था। महाराजा जसवन्तसिंह से सम्राट औरंगजेब द्वेष रखता था इसलिये उनकी मृत्यु के बाद उसने बालक महाराज को जोधपुर राज्य का शासक घोषित नहीं किया। उसने स्व. महाराजा की मृत्युपरान्त हिन्दुओं से जजिया वसूल करने की भी आज्ञा प्रदान करदी। उसने वि. सं. 1735 की माघ सुदि 12 (13 जनवरी 1679) को खिदमत गुजार खां को जोधपुर का किलेदार, शेख अनवर

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

को अमीन, और अब्दुल रहीम को कोतवाल नियुक्त किया क्योंकि तब तक अजीतसिंह का जन्म नहीं हुआ था। उसने खां जहां बहादुर और हुसैन अली खां आदि अमीरों को मारवाड़ पर अधिकार करने का आदेश दिया। इसलिये उसने पीपाड़, मेड़ता पर अधिकार कर लिया और फिर जोधपुर नगर तक पहुंच गया। चांपावत सोनग आदि वीर उससे युद्ध करना चाहते थे किन्तु भाटी रघुनाथसिंह ने वीरों को मुगल सेना को छेड़ने से मना कर दिया। इसलिये मुगल सेना ने जोधपुर का प्रबन्ध ताहिर खां को सौंप दिया और सोजत तथा जैतारण पर अधिकार कर लिया।

अजीतसिंह के जन्म की सूचना औरंगजेब को अजमेर में मिली तो वह दिल्ली पहुंचा। उसने बालक महाराज अजीतसिंह को नूरगढ़ में रखने का आदेश दिया। उधर उसने राठौड़ों को आपस में लड़ाने हेतु नागौर के राजा अमरसिंह के पौत्र इन्द्रसिंह को जोधपुर का राजा बना दिया। औरंगजेब ने राजपूत सरदारों को जोधपुर जाने की आज्ञा दे दी किन्तु नवजात राजकुमारों को उनकी माताओं सहित दिल्ली में रखा। वीर दुर्गादास अपने 300 वीरों सहित दिल्ली रुके रहे। वहीं राजकुमार दलथम्भन का देहान्त हो गया। अब राजपूत सरदारों ने अजीतसिंह को दिल्ली से निकालने की योजना बनायी क्योंकि सम्राट ने बालक महाराजकुमार के शाही गुप्तचरों का पहरा बिठा दिया था। फिर भी सरदारों ने अजीतसिंह को दिल्ली से सकुशल निकाल लिया। 'अजितोदय' के अनुसार इस समय चांदावत मोहकमसिंह की स्त्री ने अपनी कन्या को अजीतसिंह की धाय को सौंप दिया और स्वयं मारवाड़ की तरफ बालक महाराजा को लेकर चल पड़ी। उसके पुत्र हरिसिंह और खींची मुकुन्ददास ने भी इस कार्य में सहयोग किया और एक बालक को बनावटी राजकुमार बनाकर दिल्ली छोड़कर आ गये। वहां से अजीतसिंह बलून्दा, जैतारण, मेड़ता, बिलाड़ा और फिर सिरोही पहुंचे। कालन्द्री गांव में पुरोहित जयदेव ने उसका पालन-पोषण किया।

औरंगजेब को इस घटना की जानकारी नहीं थी। इसलिये उसने यह समझकर कि अजीतसिंह अभी दिल्ली में ही है, उसे जसवन्तसिंह की रानियों सहित नूरगढ़ में लाने का आदेश दिया जिसका राठौड़ों ने विरोध किया। फौलाद खां की सैनिक टुकड़ी से संघर्ष में कई राजपूत वीर एवं पुरुष वेष में जसवन्तसिंह की रानियां भी वीर गति को प्राप्त हुई। सम्राट एक ग्वाले के पुत्र को अजीतसिंह समझकर पालता रहा और उसका नाम मोहम्मदी रखा।

दिल्ली के समाचार जोधपुर पहुंचने पर राठौड़ों ने तहव्वर खां को जोधपुर से निकाल कर जोधपुर नगर पर अधिकार कर लिया। इसलिये औरंगजेब ने राठौड़ों को हराने हेतु सर बुलंद खां को विशाल सेना के साथ जोधपुर भेजा। परिणामस्वरूप जोधपुर पर फिर मुगलों का अधिकार हो गया। जोधपुर को सम्राट ने खालसा घोषित कर दिया। सोजत, डीडवाना, रोहिट आदि स्थानों पर मुगल सेना ने अधिकार कर लिया और अबोध जनता को मौत के घाट उतार कर मन्दिरों को तोड़कर उन पर मस्जिदों का निर्माण किया गया। औरंगजेब की सेना को रोकने के प्रयास में

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

राठौड़ राजसिंह ने मेड़ता में तहव्वर खां के साथ निर्णायक युद्ध किया था किन्तु सफल न हो सका।

राठौड़-मुगल संघर्ष ने राठौड़-सीसोदियों के मध्य एकता का सूत्रपात किया। इसलिए मुगलों को मेवाड़ में महाराणा राजसिंह के नेतृत्व में और मारवाड़ में राठौड़ों की 'छापामार युद्ध नीति' का सामना करना पड़ा।

वि. सं. 1744 (18 मार्च 1687) को महाराजा अजीतसिंह को राठौड़ सरदारों ने प्रकट किया और पालड़ी गांव में उन्होंने नागणेची देवी की पूजा की और उपस्थित सरदारों ने नजरें प्रस्तुत कीं। इसके बाद स्वयं महाराजा आउवा, बिलाड़ा, बलूंदा, लेवेरा, रीयां, कालू आदि जागीरों में दौरा करने निकले। इसी बीच वीर दुर्गादास अजीतसिंह से दक्षिण से लौटकर भीवरलाई में मिला। जिससे राठौड़ों में शक्ति का संचार हो गया। औरंगजेब ने दुर्गादास से अपने पुत्र सुल्तान बुलन्द अख्तर और पुत्री सफीयतुन्निसा बेगम को जो उसके अधिकार में थे, लौटाने की बात प्रारम्भ की। शुजात खां और ईश्वरदास ने इस कार्य में मध्यस्थ का कार्य किया। दुर्गादास इस कार्य हेतु सम्राट से मिला तो उसने उनसे प्रसन्न होकर उन्हें 3000 सवार का मनसब, रत्नजड़ित कटार, सुवर्ण पदक, मोतियों का हार और एक लाख रुपया देकर सम्मानित किया। सम्राट ने उसे पाटन का फौजदार नियुक्त कर उसे वहां भेज दिया। उधर अजीतसिंह को राजी करने हेतु औरंगजेब ने उसे मेड़ता की जागीर प्रदान की। किन्तु दुर्गादास और अजीतसिंह ने फिर विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। औरंगजेब की मृत्यु के बाद उन्होंने जफ्फर अली को निकाल कर जोधपुर पर अपना अधिकार कर लिया। जिससे मेड़ता, पाली, सोजत आदि भी उनके हाथ आ गये और मारवाड़ पर मुगलों का प्रभाव समाप्त हो गया। जोधपुर का दुर्ग मुगलों के प्रभाव से मुक्त हो जाने पर राठौड़ों ने उसके शुद्धिकरण हेतु कई अनुष्ठान करवाये।

महाराजा अजीतसिंह एक योग्य प्रशासक थे। उनके कार्यों का लेखा-जोखा अजीत-चरित्र में मिलता है। वे स्वयं विद्वान और कवि थे। गुण सागर, दुर्गापाठ-भाषा, निर्वाण दुहा अजीतसिंह रा कह्या दुहा, महाराजा अजीतसिंह रा कह्या दुहा श्री ठाकुरां रा, महाराजा अजीतसिंह री कविता एवं महाराजा अजीतसिंह रा गीत आदि उनके द्वारा रचित प्रमुख ग्रन्थ हैं। उन्होंने मण्डोर में महाराजा जसवन्तसिंह के देवल, जोधपुर दुर्ग में फतह महल और दौलतखाना आदि राजमहलों का निर्माण करवाया। उनकी रानी राणावती जी ने झालरे के पास शिखरबन्द मन्दिर और जाड़ेची ने चान्दपोल बाहर एक बावड़ी का निर्माण करवाया। महाराजा अजीतसिंह साहसी योद्धा और धर्मप्रिय व्यक्ति थे, किन्तु कान के कच्चे थे इसीलिये दुष्ट लोगों के बहकावे में आकर वीर शिरोमणि दुर्गादास जैसे मारवाड़ सपूत को बिना अपराध के राज्य से देश निकाला दे दिया। जिससे उन्हें जीवन के अन्तिम दिन मेवाड़ में महाराणा अमरसिंह के पास बिताने पड़े। उनके चरित्र में यह कार्य क्षम्य नहीं है और कलंक समान दृष्टिगोचर होता है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

महाराजा अजीतसिंह के ज्येष्ठ पुत्र महाराजा अभयसिंह थे । उनका जन्म वि. सं. 1759 को जालोर में हुआ था । अपने पिता की मृत्यु के समय वे दिल्ली में थे । वहां वि. सं. 1781 की श्रावण सुदि अष्टमी को उनका राज्याभिषेक हुआ । इस अवसर पर बादशाह ने उसे नागौर प्रान्त और खिलअत आदि देकर सम्मानित किया । 'अभयोदय' नामक ग्रन्थ से सूचना मिलती है कि बादशाह ने उन्हें राजराजेश्वर उपाधि प्रदान की थी । वि. सं. 1782 में वे उपद्रव शान्त करने हेतु गुजरात गये थे । इसके बाद दिल्ली और वहां से मारवाड़ आकर अपने भाइयों एवं सरदारों के विद्रोह को शान्त किया । महाराजा की इस यात्रा के समय उनका परम्परागत रूप से राजतिलक उत्सव मनाया गया । उन्होंने मेड़ता की रक्षा का भार शेरसिंह मेड़तिया को सौंप कर स्वयं नागौर के इन्द्रसिंह को युद्ध में हराया । ख्यातों के अनुसार कन्तजी कदम और पीलाजी गायकवाड़ ने जालौर में उपद्रव किया था परन्तु भण्डारी खींवसी ने उनसे सन्धि कर ली तो वे वापिस लौट गये । ईडर पर आनन्दसिंह और रामसिंह जी ने अधिकार कर लिया तो अभयसिंह शान्त रहे क्योंकि मारवाड़ का वातावरण अशान्त था । वि. सं. 1787 में महाराजा अभयसिंह को गुजरात का सूबा प्राप्त हुआ । महाराजा ने अपने राठौड़ रसाले के साथ सरबुलन्द खां पर आक्रमण किया और उसे पराजित किया । यह घटना वि. सं. 1787 कार्तिक सुदि 9 की है । उन्होंने मराठों को हराकर बड़ौदा पर भी अधिकार किया । उनके जीवन काल में बीकानेर के साथ सीमान्त के मामले को लेकर मारवाड़ के बीकानेर से सम्बन्ध बिगड़ गये थे परन्तु बाद में पुनः मैत्री हो गई । अजमेर पर अधिकार कर लेने से उनका जयपुर से भी झगड़ा हुआ । किन्तु राजा जयसिंह ने उनसे सन्धि करना ही उचित समझा । महाराजा अभयसिंह और उनके भाई बखतसिंह के सम्बन्ध अन्तिम दिनों में बिगड़ गये थे । इसी का लाभ उठाकर राणोजी सिन्धिया तथा मल्हारराव होल्कर ने मारवाड़ पर आक्रमण किया । किन्तु भीषण संघर्ष के बाद मराठों को खदेड़ दिया गया । वि. सं. 1806 (1749 ई.) में महाराजा अभयसिंह ने अभय तालाब, अठपहलू कुआ और कोट, महल, महाराजा अजीतसिंह का देवल, चोखा गांव का बगीचा, मण्डोर का दरवाजा, देवताओं की साल (विस्तार करवाया) जोधपुर दुर्ग का पक्का कोट, चौकेलाव कुआ एवं बाग तथा फतैह पोल का निर्माण करवाया । यद्यपि कुछ निर्माण कार्य वे पूर्ण न करवा सके ।

महाराजा अभयसिंह के पश्चात् मारवाड़ नरेश महाराजा रामसिंह बने । उनका जन्म वि. सं. 1787 (1730 ई.) में हुआ था । उनके समय भी राठौड़ राज परिवार में गृह कलह जारी रहा । महाराजा रामसिंह का सर्वाधिक विरोध बखतसिंह ने किया । फलस्वरूप उनका पूरा जीवन उन्हीं से संघर्ष करने में बीता । यद्यपि उन्हें जयपुर के राजा ईश्वरसिंह और मराठों की सहायता प्राप्त हुई थी किन्तु वे सफल न हो सके और वि. सं 1829 (1772 ई.) में उनकी मृत्यु हो गयी ।

महाराजा रामसिंह की मृत्यु के पश्चात् मारवाड़ के राजा महाराजा बखतसिंह बने । वे महाराजा अजीतसिंह के पुत्र थे । उनका जन्म वि. सं. 1663 (1706 ई.)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America, HHFA(USA)

में हुआ था। महाराजा रामसिंह के अन्तिम दिनों में जय अप्पा सिन्धिया ने उनकी सहायता की थी। किन्तु बखतसिंह ने रामसिंह के सरदारों मे फूट डलवादी जिससे वे सफल न हो सके और अजमेर पर उनका अधिकार हो गया। बाद में महाराजा बखतसिंह ने जयपुर महाराजा माधोसिंह से मैत्री कर मराठों को मालवे भगा दिया। वि. सं. 1809 भादो सुदि 13 (21 सितम्बर 1752) को उनका निधन हुआ।

महाराजा बखतसिंह ने नौचौकिया, मण्डी, कोतवाली, और जोधपुर दुर्ग में दौलतखाने का चौक बनवाया। उन्होंने जोधपुर शहर की चहारदीवारी की मरम्मत करवायी। आनन्दघन जी के मन्दिर के निर्माता भी आप ही थे।

महाराजा बखतसिंह के पश्चात् महाराजा विजयसिंह जोधपुर राज्य के उत्तराधिकारी बने। उनका जन्म वि. सं. 1786 (1729 ई.) में हुआ। पिता की मृत्यु के समय वे मारोठ में थे इसलिए वे वहां से कुछ समय बाद जोधपुर आये। जहाँ उनका राजतिलक उत्सव मास माह बदि 12 वि. सं. 1809 (31 जनवरी 1754) को हुआ। महाराजा विजयसिंह के समय तक मराठों से संघर्ष के कारण मारवाड़ राज्य की आर्थिक स्थिति बिगड़ गई। महाराजा साहब राज्य के अकाल से भी दुःखी थे इसलिए उन्होंने मराठों से सन्धि कर ली। मराठों को 20 लाख रुपये और अजमेर का प्रान्त प्राप्त हुआ लेकिन राज्य में शान्ति स्थापित हो गई। उनके समय कई सरदारों ने कई तरीकों से उन्हें तंग किया था। इसलिए उन्होंने उनको कैद कर लिया। वि. सं. 1822 (1765 ई.) में महादजी (माधवराव) सिन्धिया को धन देकर आक्रमण करने से रोक दिया। उन्होंने गायों की चराई पर लगने वाले कर (घासमारी) को समाप्त कर दिया और जागीरदारों पर रेख बाब नामक कर लगाया। वैष्णव सम्प्रदाय के बालकृष्ण जी के मन्दिर को उन्हीं ने बनवाया। उन्होंने नाथद्वारा की भी यात्रा की थी। मराठों के जयपुर पर आक्रमण के समय भी उन्होंने जयपुर नरेश प्रतापसिंह की सहायता की। इसलिए वि. सं. 1847 (1790 ई.) में माधोजी सिन्धिया ने मारवाड़ पर आक्रमण कर दिया। उस समय जयपुर नरेश सहायता करने में बहाने बनाने लगे और किसनगढ तथा बीकानेर नरेशों ने उनकी सहायता की। किन्तु सेनापति डी. बॉयन (De Boigne) द्वारा धोखेबाजी करने से राठौड़ सफल न हो सके। इस परिस्थिति में महाराजा ने मराठों से सन्धि करली। इससे अजमेर और 60 लाख रुपये मराठों को प्राप्त हुए। यह घटना वि. सं. 1847 (1791 ई.) में घटित हुई।

महाराजा विजयसिंह की पासवान गुलाबराय पर पूर्ण कृपा थी। किन्तु बाद में उसकी हत्या हो गयी। वि. सं. 1850 (1793 ई.) में महाराजा विजयसिंह का निधन हुआ। जोधपुर नगर में गंगश्याम जी का मन्दिर उन्हींने बनवाया था। उन्होंने अपने नाम का चांदी का विजयशाही सिक्का भी चलाया। उनके राज्यकाल में कुंजबिहारी जी का मन्दिर, गिरदी कोट, गुलाबसागर तालाब और मायला बाग का निर्माण करवाया गया।

महाराजा विजयसिंह के स्वर्गवास के पश्चात् महाराजा भीमसिंह वि. सं. 1850

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

में उनके उत्तराधिकारी बने। उनका जन्म वि. सं. 1823 आषाढ सुदि 12 (19 जुलाई 1766 ई.) को हुआ था। उनके राज्यकाल में मराठों ने लकबा के नेतृत्व में उत्पात मचाया। महाराजा ने उन्हें सेना के खर्च हेतु धन देने का बहाना बना कर लौटा दिया। उनके चचेरे भाई मानसिंह ने राज्य पर अधिकार करने का प्रयास किया था। बाद में मानसिंह जालौर में रहने लगे। महाराजा से अप्रसन्न सरदारों ने कालू नामक ग्राम में उपद्रव किये थे। वि. सं. 1860 (1803 ई.) में महाराजा भीमसिंह का स्वर्गवास हो गया। महाराजा अजीतसिंह का अधूरा देवल उन्होंने बनवाकर पूर्ण करवाया।

महाराजा भीमसिंह के पश्चात् श्री गुमानसिंह (महाराजा विजयसिंह के पुत्र) के पुत्र महाराजा मानसिंह गद्दी पर बैठे। उनका जन्म वि. सं. 1839 माघ सुदि 11 (13 फरवरी 1783) को हुआ था। महाराजा मानसिंह ने मराठों के आक्रमण से मारवाड़ को बचाने हेतु वि. सं. 1860 (1803 ई.) में ईस्ट इण्डिया कम्पनी से सन्धि का प्रस्ताव किया ताकि राज्य में शान्ति स्थापित हो सके। दुर्भाग्य से सन्धि की कुछ शर्तों से महाराजा सहमत न थे इसलिए सन्धि का दूसरा मसविदा तैयार हुआ। सन्धि के अनुसार अंग्रेजों ने मारवाड़ की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया और स्वयं महाराजा को प्रशासनिक कार्य हेतु स्वतंत्र रखा। उधर अंग्रेजों का मराठों से संघर्ष जारी था। मौका देखकर महाराजा ने अजमेर अधिकृत कर लिया। जसवन्तराव होल्कर कम्पनी से हार कर अजमेर आया तो महाराजा मानसिंह ने उसके परिवार को अपनी सुरक्षा में रख लिया, परिणामस्वरूप वि. सं. 1861 (1804 ई.) की सन्धि रद्द हो गई। महाराजा ने नाथ सम्प्रदाय के आयसनाथ को अपना गुरु बनाया और अपने मित्रों-सहयोगियों को जागीरें प्रदान कीं। उन्होंने वि.सं. 1861 में मारोठ और फिर सिरोही के विरुद्ध अपनी सेना भेजी। वि. सं 1861 (1804) में भाटी छत्रसाल ने धोकलसिंह (भीमसिंह का पुत्र) का पक्ष लेकर डीडवाना पर कब्जा कर लिया तो उसे भी मार भगाया।

महाराजा मानसिंह की अपने गुरु देवनाथ के प्रति हार्दिक श्रद्धा थी इसलिए उन्होंने देवनाथ को महामन्दिर (परकोटा युक्त मन्दिर) व पुस्तक प्रकाश भी उन्होंने स्थापित किया था। अपने शासन काल के मध्य गुरु की हत्या हो जाने पर दुःखी महाराजा कुछ काल तक राजनीति से दूर रहे तथा स्वस्थ होने पर पुनः राज कार्य करने लगे। देवनाथ की मृत्यु के पश्चात् नाथ गुरुओं के अन्तःकलह को मिटाने के लिए पृथक् से उदय मन्दिर की स्थापना की गई। अंग्रेजों ने उन्हें लूटमार करने वाले उपद्रवियों को पकड़ने में भी सहायता दी। वि.सं. 1880 (1823 ई.) में मारवाड़ क्षेत्र के 21 गांव जो चांग और कोट किराना परगनों में थे, उन्हें ब्रिटिश गवर्नमेन्ट ने अपने अधिकार में ले लिया और उनके प्रबन्ध हेतु 15000 रु. सालाना मारवाड़ राज्य से लेना निश्चित हुआ।

नागपुर का राजा अप्पाजी भोंसले अंग्रेजों से हारकर महाराजा मानसिंह की शरण में आकर महामन्दिर में ठहरा। जब अंग्रेजों ने उसे सौंपने की महाराजा से

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

प्रार्थना की, उन्होंने ऐसा करना क्षात्र धर्म का अपमान बतलाया। महाराजा मानसिंह ने महामन्दिर में शिलालेख लगवा दिया कि जो व्यक्ति इस मन्दिर में शरण लेगा, उसे स्वत: अभयदान प्राप्त हो जायेगा।

महाराजा मानसिंह का वि. सं. 1900 (1843 ई.) में निधन हुआ। वे उच्च कोटि के विद्वान् थे। इस विषय में यह दोहा प्रसिद्ध है—

जोध बसायो जोधपुर, ब्रज कीनों बृजपाल।
लखनेऊ काशी दिल्ली, मान कियो नेपाल॥

मानसिंह की श्रद्धा नाथ सम्प्रदाय के प्रति थी। इसलिये उनके राज्यकाल में कई पौराणिक ग्रन्थों का संग्रह हुआ। उन्होंने स्वयं भी कई ग्रन्थों की रचना की थी। जो अब मेहरानगढ़ में 'महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश' में संग्रहीत हैं। जोधपुर दुर्ग में उन्होंने कई निर्माण कार्य करवाये।

महाराजा मानसिंह के पुत्र नहीं था। इसलिये उनकी मृत्युपरान्त महाराजा अजीतसिंह के वंशज करणसिंह के पुत्र और ईडर राज्य में अहमदनगर के स्वामी तखतसिंह वि. स. 1900 (1843 ई.) में मारवाड़ के सिंहासन पर बैठे। उनका जन्म वि. सं. 1876 की जेठ सुदि 13 (6 जून 1819 ई.) में हुआ। महाराजा तखतसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाने हेतु महाराजा मानसिंह ने अंग्रेजों से पहले ही स्वीकृति प्राप्त कर ली थी।

वि. सं. 1904 (1847 ई.) में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने उमरकोट के बदले मारवाड़ राज्य को प्रति वर्ष 10,000 रु. देने प्रारम्भ किये। वि. सं. 1907 (1850 ई.) में महाराजा साहब ने रजत का तुलादान प्रदान किया।

महाराजा तखतसिंह धार्मिक प्रकृति के व्यक्ति थे। इसलिये उन्होंने हरिद्वार और पुष्कर की यात्राएं कीं।

वि. सं. 1914 (1857 ई.) की क्रान्ति महाराजा तखतसिंह के राज्यकाल की अन्य महत्त्वपूर्ण घटना है। उन दिनों नसीराबाद, नीमच, देवली और ऐरनपुरा में अंग्रेजों की सैनिक छावनियां थीं। उन दिनों ऐसी अफवाह थी कि सैनिकों (भारतीय) को जो आटा दिया जाता है और जो कारतूस काम में लाये जाते हैं, उसमें गोमांस खिलाया जा रहा है। इसलिये विद्रोह की चिंगारी उत्पन्न हुई। राजस्थान में 28 मई को यह सैनिक विद्रोह सर्वप्रथम नसीराबाद में प्रारम्भ हुआ। इसके बाद क्रान्ति ने नीमच, देवली और अजमेर को भी लपेट में ले लिया। ऐरनपुरा तथा दीसा की भारतीय सेना बागी होकर आउवा पहुंची। इसकी सूचना मिलने पर पोलिटिकल एजेण्ट सर हैनरी लारेन्स ने जोधपुर महाराजा तखतसिंह से सहायता मांगी। उन्होंने किलेदार अनाड़सिंह तथा राव रायमल के नेतृत्व में 1000 सिपाही और 4 तोपें सहायता हेतु भेजीं। 500 घुड़सवार सहित सिंघवी कुशलराज, मेहता विजयसिंह तथा मुस्ताक अली को भी आउवा जाने का आदेश दिया। इस सेना ने बिठौड़ा के पास डेरा डाल दिया। उधर आउवा ठाकुर कुशालसिंह की मदद के लिए आसोप, आलनियावास, बाजवास, लाम्बिया, बांता, भिवालिया, मेवाड़ के रूपनगर, सलुम्बर,

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

लसाणी आदि की सेना विद्रोहियों के साथ हो गई। मारवाड़ की सेना को बिठौड़ा में सफलता नहीं मिल सकी। इसकी सूचना मिलने पर कैप्टन मैसन आउवा पहुंचा किन्तु संगतसिंह नामक सिपाही ने उसकी हत्या कर दी। तब तक जोधपुर और अन्य स्थानों से भी सेना आउवा आ पहुंची। लगातार 6 दिनों तक युद्ध के बाद आउवा का पतन हुआ। ठाकुर कुशालसिंह आजीवन आबू के पहाड़ों में घूमते हुए बागियों की सहायता करता रहा। आज भी आउवा और आसोप सम्बन्धी गीत प्रसिद्ध हैं—"आउवो ने आसोप धणिया मोतिया री माला हो।" इस प्रकार यह क्रान्ति मारवाड़ में शस्त्र बल के आधार पर दबा दी गई।

वि. सं. 1916 (1859 ई.) में मारवाड़ की मुद्राओं पर महारानी विक्टोरिया का चित्र अंकित किया जाने लगा। परदायतों के पुत्रों हेतु 'रावराजा' शब्दावली का उपयोग होने लगा। वि. सं. 1922 (1865 ई.) में महाराजा ने कलकत्ता में गवर्नर जनरल से भेंट की। आगरा दरबार में उन्हें लार्ड लारेन्स ने (गवर्नर जनरल) जी. सी. एस. आई. का सम्मान प्रदान किया। इसी वर्ष महाराजा तखतसिंह ने रेलवे लाइन निर्माण हेतु निःशुल्क भूमि प्रदान की। वि. सं. 1924 (1867 ई.) में उन्हें 17 तोपों के सम्मान का गौरव मिला। इसके दो वर्ष बाद अंग्रेजों ने सांभर झील का कार्यभार संभाल लिया। महाराजा साहब ने जागीरदारों के पुराने झगड़ों को निपटाया और कुछ नये कानूनों का निर्माण किया। उन्होंने सिन्ध से मारवाड़ जोधपुर तक ऊँटों पर डाक भेजने हेतु चौकियों की स्थापना की। महाराजा तखतसिंह के वि. सं. 1929 माघ सुदि 15 (1873 ई.) में निधन के पश्चात् श्री जसवन्तसिंह द्वितीय मारवाड़ के सिंहासन पर आरूढ़ हुए।

महाराजा जसवन्तसिंह का जन्म वि. सं. 1894 की आश्विन सुदि 8 (7 अक्टूबर 1837 ई.) को हुआ। उन्होंने सत्ता संभालने के बाद राजकार्य चलाने हेतु महकमा खास स्थापित किया और फैजुल्ला खां को अपना मंत्री बनाया। उन्होंने दीवानी और फौजदारी अदालतों का भी पुनर्गठन किया। इस कार्य में सर्वाधिक सहयोग महाराजा जसवन्तसिंह के अनुज महाराजा प्रतापसिंह ने दिया।

महाराजा जसवन्तसिंह द्वितीय ने मेओ कालेज में एक छात्रावास का निर्माण करवाया। उन्होंने ठाकुरों के लड़कों हेतु अलग स्कूल स्थापित किया। उन्होंने कलकत्ता में (1875 ई.) वायसराय से भेंट की और हरिद्वार तथा गया की यात्राएं कीं। वि. सं. 1932 (1875 ई.) में भारत के वायसराय और गवर्नर जनरल जोधपुर आये तब विराट उत्सव आयोजित किया। इसी वर्ष प्रिन्स ऑव वेल्स भारत आये तो वे लार्ड नार्थ ब्रुक के निमन्त्रण पर कलकत्ता गये। कलकत्ता दरबार में उन्हें जी. सी. एस. आई. पदक से विभूषित किया गया।

वि. सं. 1934 में राज्य में अकाल पड़ गया। महाराजा जसवन्तसिंह ने स्वयं रुचि लेकर प्रजा हेतु सस्ते अनाज की दुकानें खुलवादीं। उन्होंने वि. सं. 1935 (1878 ई.) महाराजा प्रतापसिंह को राजकार्य हेतु प्राइम मिनिस्टर और किशोरसिंहजी को कमाण्डर-इन-चीफ का कार्य सौंपा। इसी वर्ष उन्हें अंग्रेजों ने काबुल

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America, HHFA(USA)

मिशन के कारण सी. एस. आई. उपाधि से विभूषित किया। वि.सं. 1936 (1879) में महाराजा ने अंग्रेजों से समझौता किया। भारत सरकार ने पचपदरा, फलौदी और लूनी की नमक की खानों को मारवाड़ से ठेके पर ले लिया। यद्यपि इसके लिये महाराजा को उचित धन देने की व्यवस्था की गई। उन्होंने अपने राज्य की मर्दुमशुमारी भी करवायी। 'शरणा' की हानिकारक प्रथा समाप्त कर दी गई। क्योंकि कई बार अपराधी अपराध कर मन्दिरों में जाकर शरण ले लेते थे।

महाराजा जसवन्तसिंह द्वितीय के राज्यकाल में वि. सं. 1939 (1882 ई.) में पाली और कराची के मध्य रेलवे लाइन बनी। जिसे तीन वर्ष बाद जोधपुर शहर तक बढा दिया गया। वि. सं. 1941 (1884 ई.) में नगर पालिका का कार्यालय खुला, और वि. सं. 1942 (1885 ई.) में राज्य खजाना, तथा फिर पोस्ट आफिस, बर्फखाना, जोधपुर प्रेस आदि विभाग खोले गये। महाराजा ने बाल समन्द से शहर तक नहर का भी निर्माण करवाया। उन्होंने महाराजा प्रतापसिंह को महारानी विक्टोरिया की स्वर्ण जयन्ति उत्सव में भाग लेने हेतु लन्दन भेजा। वि. सं. 1945 (1888 ई.) में 'सरदार रसाला' की स्थापना का निश्चय हुआ। इसके अगले वर्ष प्रिन्स एल्बर्ट विक्टर एडवर्ड ने जोधपुर की यात्रा की। इसके पश्चात् वि. सं. 1948 (1891 ई.) में जोधपुर राज्य को मालानी जिले का प्रशासन अधिकार पुनः प्राप्त हुआ। वि. सं. 1950 (1893 ई.) में महाराजा कालेज जिसे जसवन्त कालेज कहा जाता था इण्टर तक प्रारम्भ हुआ। जन कल्याण को ध्यान में रखते हुए महाराजा साहब ने आधुनिक सुविधाओं से युक्त अस्पताल खुलवाया। अपने दीर्घ कालीन शासन के पश्चात् महाराजा जसवन्तसिंहजी द्वितीय का वि. सं. 1952 (1895 ई.) में स्वर्गवास हुआ।

महाराजा जसवन्तसिंह द्वितीय के पश्चात् महाराजा सरदारसिंह जोधपुर के राज सिंहासन पर बैठे (वि. सं. 1952)। उनका जन्म वि. सं. 1936 (1880 ई.) में हुआ। महाराजा सरदारसिंह के राजतिलक के समय रक्त के स्थान पर कुंकुम का प्रयोग कर नई परम्परा प्रारम्भ की गई। इस अवसर पर महाराजा प्रतापसिंह को मुसाहिब बनाया गया। राजकाज काउन्सिल की सलाह से ही होता रहा।

महाराजा सरदारसिंह के शासन सम्भालने के बाद राज्य में भयंकर अकाल पड़ा। जिसके लिए अनाज की समुचित व्यवस्था की गई।

18 फरवरी 1898 को ए. जी. जी. ने महाराज सरदारसिंह को मलानी परगने का फौजदारी न्याय का अधिकार प्रदान किया। मारवाड़ में वि. सं. 1956 में भयंकर अकाल पड़ा जो छपनाकाल के नाम से जाना जाता है। इस समय महाराजा ने $26\frac{1}{2}$ लाख रुपये खर्च कर मारवाड़ के जन धन की हानि को बचाया। महाराजा सरदारसिंह के समय एलगिन, कर्जन और लार्ड मिन्टो (गवर्नर जनरल) ने जोधपुर की यात्रा की। इनके राज्यकाल में स्त्रियों के अस्पताल, सरदार संग्रहालय व वार्डिक रिसर्च कमेटी की स्थापना हुई। 20 मार्च 1911 ई. को सरदारसिंह जी का स्वर्गवास हुआ। उनके पश्चात् महाराजा सुमेरसिंह उनके उत्तराधिकारी बने।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

महाराजा सुमेरसिंह का जन्म वि. सं. 1954 की माघ बदि 6 (14 जनवरी 1898) को हुआ। अपने पिता श्री की मृत्यु के समय आप केवल 13 वर्ष के थे। तब राज-काज हेतु 'रीजेंसी काउन्सिल' स्थापित करने का निश्चय हुआ। महाराजा प्रतापसिंह रीजैंट (अभिभावक) का पद संभालना चाहते थे। किन्तु वे उस समय ईडर राज्य भी संभाल रहे थे, इसलिये भारत सरकार ने स्वीकृति प्रदान नहीं की। बाद में उन्होंने ईडर का राज्य अपने दत्तक पुत्र को सौंप दिया और जोधपुर आकर अभिभावक का पद ग्रहण किया।

महाराजा सुमेरसिंह की शिक्षा-दीक्षा इंग्लैण्ड में सम्पन्न हुई। आप जार्ज पंचम के राजतिलकोत्सव में दिल्ली में सम्मिलित हुए। जहां सरकार ने आपका यथोचित सम्मान किया।

वि. सं. 1969 (1912 ई.) में आपके राज्यकाल में जोधपुर में चीफ कोर्ट स्थापित हुआ और इसके पहले जज मि. ए. डी. सी. बार नियुक्त हुए। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय हेतु आपने पं. मदनमोहन मालवीय को 2 लाख रु. नकद और प्रति वर्ष 2400 रु. देने का निश्चय किया। आपने मृतक के पीछे मौसर करने की प्रथा को समाप्त किया। लार्ड हार्डिंज की जोधपुर यात्रा के समय उनके हाथों राजपूत हाई स्कूल (चौपासनी) का उद्घाटन करवाया। वि. सं. 1971 (1914 ई.) में प्रथम विश्व युद्ध प्रारम्भ हुआ तो महाराजा सुमेरसिंह सरदार रसाला सहित उसमें अंग्रेजों की तरफ से भाग लेने गये। जहां से वे वि. सं. 1972 (1915 ई.) में वापिस लौटे। इसी वर्ष आपने एक सार्वजनिक पुस्तकालय अजायबघर के पास ही स्थापित किया। अगले वर्ष उसका नाम सुमेर पब्लिक पुस्तकालय रखा गया। वि. सं. 1973 (1916 ई.) में लार्ड हार्डिंज ने आपको महाराजा के पूर्ण अधिकार सौंप दिये। राज कार्य चलाने हेतु स्टेट काउन्सिल की स्थापना की गई। वि. सं. 1973 कार्तिक सुदि 1 (27 अक्टूबर) को महाराजा सुमेरसिंह नरेन्द्र मण्डल सभा में भाग लेने दिल्ली गए। इसी वर्ष जोधपुर में बिजलीघर का उद्घाटन हुआ। उन्हीं दिनों राज्य में (1974 वि.सं.) प्लेग फैल गया और उसके शान्त होते ही इन्फ्लुएंजा का प्रकोप हो गया। तब महाराजा ने पीड़ितों की दिल खोलकर सहायता की।

महाराजा सुमेरसिंह कुशाग्र बुद्धि, वीर एवं प्रतिभा के धनी थे। अपने कार्यकाल में आपने मारवाड़ के प्रशासन में कई महत्वपूर्ण सुधार किये। स्कूल एवं कालेज खोले गये, कानून की पुस्तकों का प्रकाशन किया। आपने सूरपुरा एवं सुमेर समन्द जैसे बान्धों द्वारा कृषि की स्थिति में भी सुधार किया। वि. सं. 1975 आश्विन वदि 14 (3 अक्टूबर 1918 ई.) को 21 वर्ष की अल्पायु में ही आपका निधन हो गया।

महाराजा सुमेरसिंह के पुत्र नहीं था इसलिये उनके पश्चात् महाराजा सरदार-सिंह के द्वितीय महाराज कुमार, महाराजा उम्मेदसिंह मारवाड़ की राजगद्दी पर बैठे। आपका जन्म वि. सं. 1960 की आषाढ़ सुदि 14 (9 जुलाई 1903 ई.) को हुआ।

जिस समय आप सिंहासन पर बैठे उस समय आपकी अवस्था 16 वर्ष की थी। इसलिये राजकार्य चलाने हेतु सर प्रतापसिंह की अध्यक्षता में एक राजप्रतिनिधि सभा

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

स्थापित की गई। जिसमें सर प्रतापसिंह सभापति एव अभिभावक नियुक्त हुए। महाराज जालिमसिंह, रायबहादुर ठाकुर मंगलसिंह, कर्नल हैमिल्टन और रायबहादुर सुखदेव प्रसाद काक उसके महत्वपूर्ण सदस्य थे। प्रमुख मामलों में सलाह देने हेतु एक परामर्शदात्री सभा की स्थापना की गई। बाद में रेवेन्यू मेम्बरी का कार्य मि. डी. एल. ड्रेक ब्रोक मैन को सौंपा गया।

महाराजा उम्मेदसिंह के समय भारत के वायसराय और गवर्नर जनरल लार्ड चैम्स फोर्ड वि सं. 1977 (1920 ई.) में जोधपुर आये तो उनका भावभीना स्वागत किया। वि. सं. (1921 ई.) में भारत सरकार ने जोधपुर दरबार को 19 तोपों की सलामी का आदर प्रदान किया। वि. सं. 1779 (1922 ई.) के बाद महाराजा प्रशासनिक कार्य में सक्रिय हो गये। कई महकमों का कार्य वे स्वयं भी देखते थे। वि. स. 1979 (1923 ई.) में वायसराय और गवर्नर जनरल ने स्वयं जोधपुर यात्रा कर महाराजा उम्मेदसिंह को राज्याधिकार ग्रहण करने के उपलक्ष में बधाई दी। उन्होंने दिल्ली में नरेन्द्र मण्डल की सभा में जाकर भाग लिया था।

महाराजा ने राज्य को डाकुओं के आतंक से मुक्त करवाया था। वि.सं. 1982 ज्येष्ठ सुदि 11 (3 जून 1925) के भारत सरकार ने उन्हें के.सी.एस.आई. उपाधि से सम्मानित किया। अगले वर्ष जसवन्त कालेज के नये भवन का उद्घाटन हुआ। आपने विदेशों की भी यात्राएं की थीं। किराडू के मन्दिरों एवं ऐतिहासिक स्थानों की देखभाल हेतु पुरातत्व विभाग स्थापित किया। वि. सं. 1984 (1927 ई.) में जोधपुर में इम्पीरियल बैंक की शाखा खोली गई। छित्तर पैलेस की नींव भी इसी वर्ष रखी गई। महाराजा उम्मेदसिंह ने राजनीतिक आन्दोलनकारियों से भी मैत्री पूर्ण व्यवहार किया।

1935 ई. में लेफ्टिनेण्ट कर्नल डोनाल्डफील्ड मारवाड़ के चीफ मिनिस्टर नियुक्त हुए। इसी वर्ष दरबार में ब्रिटिश सम्राट का सिल्वर जुबली उत्सव मनाया गया। वि. सं. 1993 (1936 ई.) नये पब्लिक पार्क एवं म्यूजियम का उद्घाटन सम्पन्न हुआ। उन्होंने राज्य के अकाल पीड़ितों की महायता हेतु राजकोष से धन खर्च करने की स्वीकृति प्रदान की थी। सन् 1938 ई. में भारत सरकार ने मेरवाड़ा के 21 गांव जोधपुर दरबार को वापिस लौटाये। महाराजा उम्मेदसिंह ने सरदार समन्द से लाई गई 60 मील लम्बी नहर का उद्घाटन किया। इसका पानी तखतसागर में इकट्ठा करने की व्यवस्था की गई। फिर उम्मेद जनाना अस्पताल खोला गया। जिस पर 11 लाख 19000 रु. खर्च हुए। जोधपुर राज्य ने द्वितीय विश्वयुद्ध हेतु भी 30 लाख रुपये की सहयोग राशि भारत सरकार को प्रदान की थी। उन्होंने विशालकाय विण्डम अस्पताल भी बनवाया।

महाराजा उम्मेदसिंह जनता के प्रिय शासक थे। उन्होंने युगानुकूल मारवाड़ राज्य का आधुनिकीकरण किया। महाराजा साहब का 1947 ई. में निधन हुआ। उनके पश्चात् महाराजा हनुवन्तसिंह उनके उत्तराधिकारी बने। सन् 1952 ई. में अल्पायु में उनका निधन हो गया। ये मारवाड़ रियासत के अन्तिम शासक थे।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

उनके द्वारा अपनाया गया कौमी एकता व साम्प्रदायिक सद्भावना का व्यावहारिक स्वरूप मारवाड़ के इतिहास में चिर स्मरणीय रहेगा। भारत विभाजन (1947) के समय भारत में मुस्लिम विरोधी व पाकिस्तान में हिन्दू विरोधी आंधी के कारण दोनों समुदायों में विद्वेष रक्त-पात में परिणत हो गया था। पर मारवाड़ में इन्हीं महाराजा की धर्म-निरपेक्षता की उदार भावना से एक भी मुस्लिम परिवार को पाकिस्तान जाने के लिए बाध्य नहीं होना पड़ा और न कहीं रक्त-पात हुआ। महाराजा के संरक्षण में वे अमन-चैन से यहीं रह गये। उधर पाकिस्तान से निकाले गये हजारों बेघरबार सिन्धी हिन्दू परिवारों को जोधपुर नगर में उनकी ओर से हर सम्भव संरक्षण और सहायता मुक्त हस्त से प्रदान की गई।

मारवाड़ में नागरिक स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए किये गये संघर्ष की कहानी भी महत्त्वपूर्ण है। मारवाड़ में जन-जाग्रति का सूत्रपात 20वीं शती के प्रथम चरण में प्रारम्भ हुआ। जिसके प्रमुख अगुवा जयनारायण व्यास थे। भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति तक की लम्बी अवधि में वे सदैव इस आन्दोलन में अग्रणी रहे तथा सन् 1948 में मारवाड़ में जब उत्तरदायी शासन की स्थापना हुई तो वे इसके मुख्य मन्त्री बने।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

विश्वद्वीप का स्वर्ग

डॉ. गोविन्दसिंह राठौड़

मारवाड़ का नाम लेते ही अपरिचित दर्शक के मस्तिष्क में विस्तृत वीरान रेगिस्तानी भू-भाग का एक मानचित्र छा जाता है। जहाँ न प्यास बुझाने को पर्याप्त पानी है और न क्षुधा शान्ति के लिए भोजन। पर कोई जब मारवाड़ के धन-धान्य से परिपूर्ण आत्म संतोषी शान्त जीवन, इतिहास, स्थापत्य कला, संगीत, साहित्य, निवासियों के वस्त्राभूषण, रूप लावण्य, सुललित मीठी वाणी, खान-पान, रीति-रिवाज, लोकोत्सव और इन सबसे सर्वोपरि त्याग, बलिदान व भक्ति परम्परा को गहराई से देखता है तो वह आत्मविभोर हो जाता है। वह यह कहे बिना नहीं रह सकता कि इस छोटे-से भू-भाग ने जिस अद्वितीय, अद्‌भुत व अमर सांस्कृतिक परम्परा, कला, साहित्य एवं जीवन की जिस पुरुषार्थ प्रधान पद्धति का सृजन किया वह निःसन्देह विश्व में बेजोड़ है। कभी पूरे भू-मण्डल पर इंगलैंड के साम्राज्य का सूर्य अस्त नहीं होता था जो कभी का हो चुका है, पर इस मरुधरा की स्वर्णिम संस्कृति का सूर्य कभी अस्ताचल की ओर जाने वाला नहीं है।

मारवाड़ अथवा मरु देश की पूर्व पाषाण कालीन सभ्यता पर दृष्टिपात करें तो पता चलेगा कि यहाँ वी. एन. मिश्र ने अपनी पुरातत्व शोध के प्रमाण स्वरूप लूनी और उसकी सहायक नदियों के विभिन्न स्थानों पर पुरापाषाण कालीन मनुष्य के पुराने अस्थि कंकाल व उसके आदिम औजार खोज निकाले हैं। परिणामस्वरूप यह प्रदेश विश्व के प्राचीनतम भागों में से एक है जहां मानव का उद्‌भव 10 लाख वर्ष पुराना माना गया है। काली बंगा में भी हड़प्पा व मोहन-जोदड़ो सभ्यता के लगभग समकालीन अवशेष प्राप्त हुए हैं जो मारवाड़ के उत्तरी भाग में स्थित है। इस प्रकार मारवाड़ की यह सभ्यता, संस्कृति व कला सिन्धु घाटी की वैदिक संस्कृति का एक अंग होना स्वतः सिद्ध होती है जो विलुप्त सरस्वती और लूनी नदियों की घाटी सभ्यता-संस्कृति कही जा सकती है। इन मौलिक प्रमाणों के आधार पर अधिकांश विदेशी व कतिपय देशी लेखकों की यह अवधारणा स्वतः निराधार सिद्ध हो जाती है कि "विश्व की प्रमुख प्रजातियों का मूल निवास मध्य एशिया था और उनमें से जो शाखायें विकेन्द्रित हुईं उनमें ही एक शाखा भारत में पहुंची तथा वे ही भारत के आदिमवासी हुए।" मेरा अनुमान है कि आदिम मानव का केन्द्र भारत भूमि ही रहा है।

इस प्रदेश की सभ्यता व संस्कृति के उद्‌भव व विकास के इस सुदीर्घ काल में मारवाड़वासियों ने जीवन के हर क्षेत्र में जो कीर्तिमान और विशिष्टताएं स्थापित की हैं वे मानव सामर्थ्य की पराकाष्ठा को लक्षित करती हैं, जहाँ तक मनुष्य अब तक

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

पहुंच पाया है। अतः आज भी वे अजेय हैं, असमानान्तर हैं। इनका सही मूल्यांकन व आकलन करना सरल नहीं है।

मारवाड़ के रण-बाँकुरों की शूर-वीरता व त्याग की तुलना के लिए तो विश्व में अभी अन्य ऐसी कौम का जन्म होना शेष है। राव सीहा, मूलराज, चाचकदेव, जैतसी, जोधा, बीका, कांधल, सातल, मालदेव, वीरमदेव, जयमल, चन्द्रसेन, अमरसिंह बल्लूजी, जसवन्तसिंह, दुर्गादास, अभयसिंह, बखतसिंह, इन्द्रराज, खुशालसिंह, डूंगजी-जवाहरजी, सोढ़ा रतन राणा जैसे उद्भट वीरों, देश-रक्षकों, स्वतन्त्रता प्रेमियों व जुंझारों के लिये भारत को ही नहीं वरन् पूरे विश्व को गर्व है। यहाँ के वीरों ने अपनी आन-बान, मान-बिन्दुओं (धर्म, धरा, ध्वज, नारी, मन्दिर, ब्राह्मण, गौ, तीर्थ आदि) तथा स्वदेश रक्षार्थ शताब्दियों तक आक्रान्ताओं से लोमहर्षक युद्ध, जौहर व शाके किये। पश्चिम में ठीक मध्यपूर्व के हाइफा नगर से लेकर सुदूरपूर्व में लाल क्रान्ति के अग्रदूत चीन तथा काबुल-कन्धार से लेकर सुदूर दक्षिण में समुद्र तट तक मारवाड़ के योद्धाओं ने असंख्य समरांगणों में अपनी महती भूमिका अदा कर शौर्य का झण्डा फहराया है।

पूर्व देशी रियासतें जो इस प्रदेश के अन्तर्गत आती थीं, (जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर, किशनगढ़ आदि) उनमें अपवादस्वरूप एक-दो राजा-महाराजाओं को छोड़कर शेष सभी उत्तम कोटि के सेनानायक, विद्वान्, साहित्यप्रेमी, कलानुरागी, प्रजावत्सल, प्रशासक होने के साथ-साथ बहुत ही सुसंस्कृत थे।

मरुधरा आदिकाल से संत, सती (सत रखने वाली नारियां) और सूरमाओं की धरती रहा है। मारवाड़ का ऐसा कोई गांव नहीं जहाँ संत, सती नारियां और सूरमा पैदा नहीं हुए हों। उनकी स्मृति स्वरूप गां-गांव में देवल, कीर्ति-स्तम्भ, छतरियां, चबूतरे, मन्दिर, समाधियां बनी हुई हैं जो अद्यावधि विद्यमान हैं। यहाँ वैष्णव, शिव, शाक्त, जैन, इस्लाम, निर्गुणी, दादूपंथी, कबीर पंथी, नाथ आदि मत-मतान्तरों के उत्तम से उत्तम कोटि के भक्त, संत, साधु, महापुरुष, फकीर हुए हैं जिनमें भक्तशिरोमणि मीरां, जयमल, करमाबाई, दादू, जाम्भोजी, रामदेवजी, पाबूजी, मल्लीनाथजी आदि प्रमुख हैं। यहां तक कि करणीजी, आवड, देवल व मालणदे ने शक्ति रूप में नारी देह धारण कर अलौकिक लीलायें दिखाई हैं। इस सन्त परम्परा की अजस्र धारा से यहां का लोक जीवन सदैव निर्मल होता रहा है। इन्हीं भक्तों व सिद्ध पुरुषों के पुण्यार्जन से मारवाड़ में कई स्थल अभी भी हैं जहाँ पागल कुत्ते, भूत-प्रेत, मिरगी, नारु तथा कई असाध्य रोगों का उपचार केवल मात्र वहाँ पहुंचने से हो जाता है।

यह भली भांति विदित है कि सम्पूर्ण भारत भूमि ऋषि-मुनियों की देव भूमि के नाम से विश्व में विख्यात है पर आज के इस भोग, लोभ, छल-प्रपंच व आसुरी वृत्ति प्रधान युग में आध्यात्मिक शक्तियों से युक्त मानव के दर्शन भी दुर्लभ हो गये हैं। परन्तु मारवाड़ की इस पुण्य तपोभूमि में ऐसी महान् शक्तियों के दर्शन जनसाधारण को उपलब्ध होते रहे हैं। इस संदर्भ में पाठकों के समक्ष मैं एक ही उदाहरण प्रस्तुत करना

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

पर्याप्त समझता हूं जो सुविख्यात हैं। गांव बाळा (जिला-जोधपुर) में देवी स्वरूपा रूपकंवर जी जो सतीजी के नाम से प्रख्यात हुई हैं, अभी तीन-चार वर्ष पूर्व ही भगवत लीन हुई हैं। इन्होंने अपने पति के स्वर्ग-वास के बाद करीब 40-45 वर्षों तक शेष जीवन बिना अन्न-जल ग्रहण किये अति साधारण मनुष्यों के बीच बैठकर हरि-स्मरण के साथ व्यतीत किया। उनके इस चमत्कारिक जीवन का रहस्य पाने देश-विदेश के कई वैज्ञानिक, डाक्टर व जिज्ञासु वहाँ पहुंचते रहते थे पर सभी निरुत्तर पाये गये। मैं फिर जानना चाहूंगा कि ऐसी महान् साक्षात् शक्तियां किस देश, प्रदेश या कौम में सहज दर्शनार्थ उपलब्ध हैं ? शायद कहीं नहीं। इसके अतिरिक्त मरु वासियों को इसमें सात्विक संतोष है कि वर्तमान में इस पुण्यस्थली की दो महान् विभूतियां—श्री राममुखदासजी महाराज व आचार्य श्री तुलसी—देश और विदेश के कोटि-कोटि लोगों को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करने के भगवत्कार्य में निमग्न हैं।

इस प्रदेश में युगानुकूल साहित्य सृजन की एक महान् परम्परा रही है जिसमे संस्कृत, प्राकृत, पिंगल, डिंगल व राजस्थानी भाषा के अनुपम ग्रन्थों में विविध विधाओं का समावेश हुआ है। लगभग सातवीं सदी में महाकवि माघ द्वारा संस्कृत में विरचित 'शिशुपालवध' से लेकर वर्तमान में श्री हरिराय द्वारा 'जरासंध वध' तक महाकाव्य सृजन का क्रम है। डिंगल के अधिकांश श्रेष्ठ कवियों को जन्म देने का श्रेय इसी धरती को जाता है जिनमें पृथ्वीराज, दुरसा आढ़ा, जाडा मेहडू, माला सांदू, ईश्वरदास, अलुजी, केसवदास, बांकीदास, डूंगरसी रतनू, आदि विशिष्ट कवि हुए हैं।

कवयित्री मीरां के पदों की लोकप्रियता, सरलता, सरसता व भाव-गाम्भीर्य की जितनी बात कहें वह थोड़ी होगी।

मारवाड़ में इतिहास लेखन का कार्य भी बड़ा व्यवस्थित रूप से हुआ है। मुंहता नैणसी, पं. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, जगदीशसिंह गहलोत, रामकरण आसोपा, मुंशी देवीप्रसाद, दयालदास, विश्वेश्वरनाथ रेउ आदि देश के चोटी के इतिहासकार हुए हैं। यहां की कई प्रमुख जातियों का हमें कम से कम एक हजार वर्ष पुराना पीढ़ीबद्ध क्रमानुसार प्रामाणिक इतिहास उपलब्ध है जबकि विश्व में अपने आपको सर्वोत्कृष्ट बताने वाली विदेशी जातियों का क्रमबद्ध प्रामाणिक इतिहास 250 से 500 वर्षों से अधिक पुराना नहीं है। यहां चण्डू जी जैसे महान् ज्योतिषाचार्य हुए जिनकी ज्योतिष पद्धति पर विगत करीब 500 वर्षों से पञ्चांग प्रकाशित किया जा रहा है। इसी प्रकार पश्चिमी राजस्थान में प्रसिद्ध जैन संत कवि हुए हैं उनमें पार्श्वचन्द्रसूरि, विजयदेवसूरि, वाचक मालदेव, वाचक नियमसमुद्र आदि विशेष प्रसिद्ध हुए हैं।

मध्ययुगीन मारवाड़ की स्थापत्य कला को देखकर दर्शक स्तब्ध रह जाता है। यहाँ के विभिन्न नगरों, कस्बों व गांवों में निर्मित गढ़, किले, परकोटे, महल, मठ, मन्दिर, मूर्त्तियां, स्मारक, देवल, जलाशय, बावड़ियां, हवेलियां इत्यादि हिन्दू स्थापत्य कला के सर्वोत्तम उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इनमें जोधपुर, जैसलमेर, बीकानेर, नागौर, जालौर, सोजत, सिवाना, बाली, देसूरी, मेड़ता, कुचामन, किशनगढ़ के गढ

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

व किले; रणकपुर, किराडू, ओसियां, जैसलमेर के मन्दिर; मण्डोर के देवल, जसवन्त थड़ा, गुलाबसागर, गडीसर, सूरसागर, पटुवों व सालमसिंह की हवेलियां और इन सबसे शिरोमणि विश्व के सुन्दरतम राजप्रासादों में उम्मेद भवन विशेष उल्लेखनीय है। बीकानेर का लालगढ़ पैलेस इसके लगभग समकक्ष है।

ललित कलाओं के विकास में यहां के राजा-महाराजा, राव-उमराव, जागीरदारों, अमीरों आदि का अत्यधिक योगदान रहा है। इनमें से कई स्वयं इन कलाओं के पारखी और मर्मज्ञ थे। विश्वविख्यात मारवाड़ चित्रशैली के अन्तर्गत जोधपुर, किशनगढ, बीकानेर तथा नागौर के राजाओं के आश्रय में पल्लवित लघु व भित्ति चित्रशैलियां आती हैं जो विश्व चित्र कला की अमूल्य निधियां हैं। हर्ष का विषय है कि इन निधियों के संरक्षकों ने इन्हें भारी लोभ के बावजूद पराये हाथों में जाने नहीं दिया है और इनका अधिकांश भाग वर्तमान व भावी पीढ़ी के ज्ञानार्जन के लिए यथावत सुरक्षित रखा है।

इस धरा के मॉड गायकों, वाद्यों की झन्कार, लोक गीत व नृत्यों ने विश्व भर के कला-प्रेमियों को मोहित कर रखा है। अमेरिका, फ्रान्स, सोवियत रूस, इंगलैण्ड आदि पाश्चात्य व जापान-चीन जैसे पूर्वी देशों में यहां के कलाकारों को सुनने के लिए लोग सदैव लालायित रहते हैं। मारवाड़ में तार, ताल व फूंक से बजाये जाने वाले लोक वाद्यों की जितनी लम्बी शृंखला है, शायद ही किसी समृद्ध राष्ट्र में मिले। यहां के लोक. वाद्यों को विश्व की कला प्रदर्शनियों में सर्वाधिक अवसर मिला है। मारवाड़ का घूमर नृत्य, डंडियागेर, तेरताली आदि विश्वविख्यात हो चुके हैं। यहां पर जीवन के प्रत्येक सूक्ष्म और सुन्दर व्यापार को कला के रूप में ग्रहण किया है। इसीलिए यहां पर कलाओं की संख्या चौसठ तक पहुंच गई है।[1] सही बात तो यह है कि इन कलाओं के विकास और संरक्षण में कितना समय व मूल्य चुकाना पड़ा? इसके आकलन का हमारे पास कोई यन्त्र नहीं है। लोगों के महान् त्याग, परिश्रम व बलिदान के उपरान्त जो कलाएं यहां विकसित हुई, वे महान् उज्ज्वल और गौरवमयी हैं।

मारवाड़ के नर-नारियों के गेहुवां वर्ण, पूरा कद लिये चित्ताकर्षक सुडोल, आत्मिक सौन्दर्य से परिपूर्ण शारीरिक सौष्ठव के समक्ष अन्य प्रदेशों के नर-नारियों का मांसल सौन्दर्य फीका प्रतीत होता है। यहां के देह-धारियों के रंग-रंगीली परम्परागत मर्यादित पोशाकों से सुसज्जित होने पर शादी-विवाह, उत्सव-त्यौहारों की शोभा चौगुनी हो जाती है।

जोधपुर की रंगाई-छपाई व बन्धेज का काम विश्व-विख्यात हो चुका है। पाली व बालोतरा की रंगाई-छपाई भी देश-विख्यात है। मारवाड़ की विविध पाग-पगड़ियां तो पाश्चात्य देशों में एक कौतूहल बन गया है। वस्तुतः विश्व में सबसे अधिक, सुन्दर व विविध पाग-पगड़ियों के बांधने की रस्म या रिवाज यहीं है। यही बात यहाँ

---

1 कु. आयुवानसिंह, 'राजपूत और भविष्य', पृ. 16

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America: HHFA(USA)

के आभूषणों के लिये कही जा सकती है । जोधपुरी कोट तो इतना लोकप्रिय हुआ कि इसे राष्ट्रीय पोशाक का सम्मान प्राप्त हो चुका है ।

मारवाड़ियों के आत्म-संतोषी, स्वावलम्बी, आपसी मेल-जोल व पुरुषार्थ प्रधान ग्राम्य-जीवन की तलाश में पाश्चात्य जगत् अभी भी भटक रहा है । जीवन को किस ढंग से जिया जाये ? इसका सुन्दरतम स्वरूप यहाँ देखने को मिलेगा । जीवन में चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति यहाँ के लोगों का लक्ष्य रहा है । इनमें भी धर्म व मोक्ष को प्रधानता दी गई है, जबकि पाश्चात्य जगत् में केवल दो ही पुरुषार्थों—अर्थ और काम—को ही प्रमुख स्थान दिया गया है । कर्मवाद का सात्विक स्वरूप यहाँ के जन-जीवन में सर्वत्र दिखाई देता है । इस तपोभूमि के पूर्वजों ने वार्षिक जीवन-क्रम में त्यौहार, पर्व, मेले, जयन्तियां, पूजा, तीर्थाटन, व्रत आदि विभिन्न लोकोत्सवों का प्रावधान कर जीवन को अक्लान्त, सरस तथा संयमित बना दिया है । मास का कोई ऐसा पक्ष नहीं जिसमें हमारे यहाँ कोई बड़ा त्यौहार, पर्व आदि न आता हो । विश्व के अन्यत्र किसी भी भू-भाग में वर्ष पर्यन्त मनाये जाने वाले इतने पर्व-त्यौहार की उन्नत परम्परा हमें दिखाई नहीं पड़ती ।

मारवाड़ की पुरानी अर्थ-व्यवस्था बड़ी सुदृढ़ व व्यावहारिक थी । आधुनिक युग की वह लोकप्रिय समाजवादी, साम्यवादी तथा पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्थाओं ने अधिक उत्पादन तथा उत्पादन श्रोतों पर भारी कर व नियन्त्रण लगा रखा है । पर यहाँ की अर्थ-व्यवस्था निराली थी । एक हजार मण (करीब 400 क्विंटल) बाजरी उत्पादक किसान को सभी करों अथवा लगानों से मुक्त कर उसे अधिक उपज के लिए सम्मान-स्वरूप नारियल व सिरोपाव जागीरदार की ओर से भेंट किया जाता था ।

आजकल जिस पर्यावरण, प्रदूषण, वृक्षारोपण, वन्य जीव संरक्षण, शुष्क खेती, भूक्षरण, पारिस्थितिकी सन्तुलन के लिये आज के तथाकथित बुद्धिजीवी व तकनीकी विचारक प्रयोगशालाओं व शोध सस्थानों में चिंतित हैं, उसका सदियों पुराना सुनियोजित व सुनियंत्रित स्वरूप हमारे प्रदेश के प्रत्येक गांव में स्वतंत्रता प्राप्ति तक विद्यमान था । ऐसा कोई गांव नहीं था, जिसमें पर्याप्त आरक्षित वन, सार्वजनिक तालाब व पशु चरागाह नहीं हो । आजकल जिन लोक-अदालतों व सस्ते न्याय की चर्चा है, वह गांव-गांव उपलब्ध था ।

सही बात तो यह है कि यहाँ प्रकृति की अपार कृपा से हर वस्तु में श्रेष्ठता, विलक्षणता व निरालापन दिखाई देता है । यहाँ का आदर्श जलवायु, स्वादिष्ट व स्वाथ्यवर्धक पेयजल, विविध भौम्याकार, उपजाऊ मिट्टियां, पशुधन, धान्य, वनस्पति और वन्य प्राणी सभी अनोखे हैं । एक ओर मारवाड़ में विश्व के प्राचीनतम मोड़दार पर्वत अरावली पर्वतों के रूप में विद्यमान हैं तो दूसरी ओर विश्व में सबसे पहिले निर्मित चट्टानों के रूप में रेंवत की भाखरी (डेगाना के पास) का प्रथम स्थान है जिसका निर्माणकाल भू-वैज्ञानिकों ने करीब 24 से 50 करोड़ वर्ष पूर्व आंका है । तीर्थराज पुष्कर, कोलायत, देवदानी जैसे पवित्र तीर्थ स्थल सम्पूर्ण भारतवासियों के लिये पूजनीय हैं । इनके अतिरिक्त मेड़तावाटी, सुवाळख, गोडवाड़ व गंगानगर की सोना उगलने

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

वाली मिट्टियां; सांचोरी, थारपारकर व राठी नस्ल की सहस्र-धारा दुधारु गायें; नागौरी बैल; मालानी के घोड़े; जैसलमेर, डांगावास व लक्ष्मणगढ़ की भेड़ें; परबतसर की बकरियाँ; नाचणा के ऊँट; सालावास के मूँग; मोलासर-गैलासर की बाजरी; मेड़ता के तिल व चीपटी (असिंचित ज्वार); भडाणा के मोठ व मतीरा; खाटू का गवार; खारची के गेहूँ; मथानियां की मिर्च; सिवाना का जीरा, सांगरी; केळू के केर; जोधपुर का अनार; सोजत की मेंहदी व अजवायन; कुचामन का कांदा; सांभर का नमक; मकराना का संगमरमर; जालोर का ग्रेनाइट; छीतर का बलुआ पत्थर आदि का विश्व में कोई मुकाबला नहीं। मरुस्थल होकर भी यहाँ कमल सरोवर हैं तथा पुष्कर घाटी में गुलाब की खेती देश विख्यात है। यहाँ के वन्य प्राणियों में शेर से लेकर जंगली बिल्ली; मगरमच्छ से गिरगिट; गोड़ावण से लावा तीतर; सूअर से खरगोश तथा नाना प्रकार के परिंदे आदि विविध पशु-पक्षी मिलते हैं। इसलिये यह कहना अति सार्थक होगा कि मारवाड़ की इस धरती के कण-कण में सौंधी सुगन्ध व्याप्त है।

मारवाड़ का केवल अतीत ही सुनहरा नहीं है वरन् वर्तमान में भी यहाँ के उद्भट वीर, संत-महात्मा, शिक्षा-शास्त्री, राजनेता, जन-सेवक, कला एवं साहित्यकार, उद्योगपति, व्यवसायी, व्यापारी आदि ने देश-विदेश में अपनी एक साख बना रखी है। महाराजा उम्मेदसिंहजी, गंगासिंहजी, सर प्रताप, हनुवन्तसिंहजी जैसे लोकप्रिय प्रशासक तथा गोविन्दसिंहजी (V.C.) व शैतानसिंहजी (P.V.C.) जैसे रणशूरमा विश्व मंच तक उभर कर अभी-अभी ओझल हुए हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद वीरता पदक प्राप्त करने वालों में मारवाड़ वासियों का स्थान देश में सर्वोपरि है। जोधपुरी बन्धेज व एल्यूमीनियम पर दस्तकारी के काम ने स्वदेशी तथा विदेशी दोनों ही ग्राहकों को आकृष्ट कर रखा है। उस्ताद अली अकबर खाँ व बृजभूषण लाल काबरा की सरोद व गिटार झन्कार से विश्व का कौनसा संगीतप्रेमी अनभिज्ञ है। यहाँ की दरियां, पट्टू, साफे क कसीदे युक्त मोचड़ियां जग विख्यात हैं। हकीकत यह है कि देश के दूरस्थ कोनों में भी मारवाड़ी मिल जायेगा और हर छोटे बड़े व्यवसाय में मारवाड़ी अवश्य दिखाई देगा। यहां तक कि विश्व के हर छोटे-बड़े देश में वह पहुंच चुका है। कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, अहमदाबाद, हैदराबाद, मैसूर आदि महानगरों के अधिकांश बड़े व्यापारी मारवाड़ के ही हैं। मारवाड़ देश के अन्य भागों की तुलना में अभी भी बहुत शांत व सुखी प्रदेश है।

सार संक्षेप में कहना चाहूंगा कि जिस प्रदेश अथवा संभाग में विश्व की पूर्व पाषाणकालीन प्राचीनतम मानव सभ्यता के सशक्त प्रमाण हों, वैदिक संस्कृति की अक्षुण्य परम्परा हो; जहाँ-श्रेष्ठ से श्रेष्ठ सन्त, महात्मा, सूरमा, सत् रखने वाली नारियां, साहित्यकार, लेखक, प्रजारक्षक, लोक प्रशासक हुए हों, जहाँ कलाओं का चर्मोत्कर्ष हुआ हो, जहाँ की सांस्कृतिक व सामाजिक परम्परायें विलक्षण हों; भद्र पुरुषों का रहवास हो; चारों पुरुषार्थों पर आधारित सन्तुलित जन-जीवन हो; शतायु देने वाली उत्तम जलवायु और सौंधी सुगन्ध देने वाली गौ माता की वसुन्धरा हो,

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

उसे विश्वद्वीप का स्वर्ग कहना ही यथार्थ होगा। जिसके दर्शनार्थ विश्व के कोने-कोने से दर्शकों का कीड़ी नगरे के सदृश्य तांता लग गया है। वस्तुतः जो समाज, कौमें या संस्कृतियां अपनी शैशवावस्था के हजारों वर्ष के उपरान्त भी भाई व बहिन के रिस्तों को पवित्र न बना सकीं उन्हें इस संस्कृति से बहुत कुछ सीखना है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मान बिन्दुओं की रक्षा

डॉ. विक्रमसिंह गून्दोज

भारतीय संस्कृति के विकास में राजस्थान का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। मुगल-काल में तो भारतीय संस्कृति की सुरक्षा के महत्वपूर्ण दायित्व का निर्वाह राजस्थान ने किया। गौरी, खिलजी व तुगलक वश के शासकों के समय-समय पर जो आक्रमण राजस्थान के भू-भाग पर हुये, उन आक्रमणों के वृत्तान्त से भी यह विदित होता है कि उस समय यहां के शासक अपने धर्म, संस्कृति और मान-मर्यादा के प्रति कितने सजग और प्रतिबद्ध थे। यहां के राजपूत शासकों की वीरता और चारित्रिक गुणों से मुगल-साम्राज्य के संस्थापक बाबर और हुमायूं परिचित थे परन्तु उनके इन गुणों का सही अध्येता सम्राट अकबर था जिसने राजपूतों से सहयोग प्राप्त करने की नीति अपनाकर भारत की भूमि पर मुगल साम्राज्य की नींव को पुख्ता आधार प्रदान किया।

जिस समय मुगलों के आक्रमण हुये उस समय हमारे देश की राजनैतिक व्यवस्था बहुत ही दुर्बल और अस्थिर थी। भारत छोटे-छोटे स्थानीय राज्यों में बंट गया था। राजस्थान में उस समय मेवाड़, मारवाड़, आमेर, बून्दी आदि अनेक छोटी-बड़ी रियासतें अपने आपको स्वतन्त्र राज्य के रूप में स्थापित कर प्रत्येक राज्य पृथक-पृथक रूप से अपनी शक्ति बढ़ाने में लगा हुआ था। मध्ययुगीन राजस्थान में मुख्य रूप से तीन राज्य प्रमुख थे—मेवाड़, मारवाड़ और आमेर। मेवाड़ में गुहिलोत, मारवाड़ में राठौड़ और आमेर में कछवाहा वंश के शासकों का आधिपत्य था।

मारवाड़ में तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में राठौड़ राज्य के संस्थापक राव सीहा ने पाली के एक छोटे भाग पर अपना अधिकार कर यहां राठौड़ राज्य की नींव डाली। इस नव संस्थापित राज्य का विस्तार सीहा के उत्तराधिकारियों ने किया किन्तु राठौड़ साम्राज्य की शक्ति और इसके प्रभाव को बढ़ाने का श्रेय राव चूंडा को जाता है। राव चूंडा से ही राठौड़ राज्य की महत्ता और राज्य की स्थिरता का श्रीगणेश होता है। चूंडा के समय मंडोर मारवाड़ की राजधानी थी। इसके पश्चात् राव जोधा ने 12 मई 1459 में जोधपुर दुर्ग की नींव डाली और एक नवीन नगर (जोधपुर) अपने नाम पर बसाया। जोधपुर ही बाद में मारवाड़ की राजधानी बना। इस प्रकार राठौड़ राज्य 'मारवाड़ राज्य' और 'जोधपुर राज्य' के नाम से भी जाना जाने लगा।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि सोलहवीं शताब्दी में मारवाड़ के राठौड़ शासक शक्तिशाली थे। राव गांगा, राव मालदेव व राव चन्द्रसेन ने अपनी स्वतंत्र सत्ता बनाये रखने के लिए अफगान-मुगल सत्ता से निरन्तर संघर्ष किया। चन्द्रसेन के

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America: HHFA(USA)

पश्चात मुगल-मारवाड़ सम्बन्ध में एक नया मोड़ आया। चन्द्रसेन के पश्चात् मारवाड़ के राठौड़ शासकों ने मुगल मनसब स्वीकार किये। यहां यह बात द्रष्टव्य है कि राजनैतिक मुगल प्रभुत्व को स्वीकार करते हुए भी मारवाड़ के शासकों ने ही नहीं वरन् यहां के सामंतों, वीरों, जागीरदारों और स्वाभिमानी मारवाड़ के निवासियों ने अपने सांस्कृतिक मान बिन्दुओं की रक्षा करने में कोई कसर नहीं उठा रखी। यहां के निवासियों की जीवन प्रणाली और विचार प्रणाली पर भी इन मान बिन्दुओं और सांस्कृतिक मूल्यों का गहरा प्रभाव पड़ा और उन्होंने उसे जीवन-व्यवहार में अपनाया। इसीलिए कहा गया है—

> ध्रम जातां धर पलटतां, तिरियां पडतां ताव।
> ए तीनूं दिन मरण रा, कुण रंक कुण राव ।।

वास्तव में देखा जाय तो इन मान बिन्दुओं की रक्षा करने की प्रेरणा का प्रेरक तत्त्व तो मारवाड़ के ग्राम निवासी ही थे जिन्होंने गौ, धर्म, धरा, ध्वज, स्त्री, ब्राह्मण, मन्दिर, तीर्थस्थल आदि मान बिन्दुओं की रक्षार्थ उत्सर्ग होने वाले वीरों को पूज्य और वन्दनीय बनाकर भावी पीढ़ी को सतत् इस दिशा में आगे बढ़ने का आत्मबल प्रदान किया। उनके बलिदान को स्मरण कर सांस्कृतिक नव-चेतना का विस्तार किया। यदि यह कार्य यहां का जन-मानस नहीं करता तो संभवतः यहां के वीरों ने जो अनूठे और अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किये वे देखने को नहीं मिलते और न मिलता लम्बे समय तक सतत संघर्ष करने की भावना को एक ठोस आधार।

मारवाड़ की संस्कृति के स्वरूप का निर्माण करनेवाली बहुतसी प्रवृत्तियाँ रही हैं जिनसे यहां की सांस्कृतिक चेतना का प्रवाह चिरन्तन रहा और इस सांस्कृतिक चेतना के प्रवाह को यहां के मान बिन्दुओं के माध्यम से एक वेग और गति मिली। इस नवोन्मेषकारी सांस्कृतिक चेतना के कारण ही यहाँ इतिहास इतना गौरवपूर्ण बन सका और इस गरिमामय ऐतिहासिक थाती के परिणामस्वरूप यहां की संस्कृति को वह जीवटता मिली कि वह आज भी उतनी ही प्रभावी कही जा सकती है। इस संस्कृति की चेतना को स्फुरित करने वाली व अपने आप में पूरे सांस्कृतिक आयाम को संजोये रखनेवाली विभिन्न प्रवृत्तियों, जिनसे यहां के मान-बिन्दुओं की रक्षा हो सकी, मोटे रूप से निम्न प्रकार से अभिव्यक्त कर सकते हैं—

1. प्राणोत्सर्ग

मारवाड़ की क्षत्रिय जाति जिस पर यहां के समाज व इस प्रदेश की सुरक्षा का भार था इस जाति के वीरों में प्राणोत्सर्ग व बलिदान की एक अद्भुत ललक देखने को मिलती है। वे ऐसे हर अवसर पर मृत्यु का वरण करने को तत्पर रहते थे जब मान्य आदर्शों व मान बिन्दुओं की सुरक्षा पर किसी प्रकार का खतरा मंडराता। युद्ध ही राजपूत का कुलकर्म माना जाता था—

> रण खेती रजपूत री, वीर न भूलै बाल।
> बारह बरसां बापरी, लहै बैर लंकाळ ।।

मृत्यु को तो वे मंगलपर्व की भांति मानते थे इसलिए मरण को त्यौहार के

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

सदृश्य स्वीकार कर इस अवसर की बड़े उत्साह व उत्सुकता से प्रतीक्षा करते थे। कितनी अद्‌भुत बात थी—यहां जीवन महंगा और मौत सस्ती थी। सेर भर चून और चिमटी भर नमक के बदले अपने सिर भेंट चढ़ा देने वाले वीरों का भोलापन कहीं से अर्जित नहीं हुआ, संस्कारों से सृजित हुआ। तभी तो यहां की सामाजिक मान्यता में यह बात स्पष्ट रूप से उभर कर हमारे सामने आती है कि—

मरदां मरणो हक्क है, ऊबरसी गल्लांह
सापुरुषां रा जीवणा, थोड़ा ही भल्लांह ।।
मरणौ लाजम मांमलै, धार अणी चड घाय
पड़णौ सांकळ पींजरै, सिंहां बड़ौ सराय ।।
सूरा सोई पिछाणिये, लड़ै धरम रै हेत
पुरजा पुरजा कट पड़ै, कदै न छाड़ै खेत ।।
सूरा रण सांकै नहीं, हुवै न काटळ हेम
टूक करै तन आपणौ, काच कटोरा जेम ।।
झालर बाज्यां भगतजन, बम्ब बज्यां रजपूत
एतां ऊपर न उठै, आंठू गांठ कपूत ।।

यहां के वीर पुरुषों की यह दृढ़ धारणा थी कि अवसर आने पर जो रणक्षेत्र में मृत्यु का वरण करते हैं वे इस लोक में सुयश और परलोक में प्रभुत्व के भागी होते हैं। इसके विपरीत घर में मरनेवालों को यमराज नरक में ले जाता है, इसी भावना की ये दो पंक्तियां यहां दृष्टव्य हैं—

अठै सुजस प्रभुता उठै, अवसर मरियां आय
मरणौ घर में मांझियां, जम नरकां ले जाय ।।

'मांचै की मौत' को यहां जीवन की निकृष्ट घटना समझा जाता था। जैसलमेर के रावळ मूलराज से सुल्तान फिरोजशाह की विशाल सेना हताश और परास्त होकर लौट चुकी तो मूलराज स्वयं यह सोचकर निराश हो गये कि अब उन्हें बिना रण में युद्ध किये हुए मांचै की मौत मरना पड़ेगा। अतः उस लौटती फौज को स्वयं मूलराज ने संदेश भिजवा कर युद्ध करने का यवन सेनापति को निमंत्रण दिया कि तुम अपनी फौज को लौटाओ मत, कल सवेरे ही हमारे किले पर आक्रमण कर दो ताकि हमें जौहर और शाका करके स्वर्गधाम पहुंचने का अमूल्य अवसर मिल सके। प्राणोत्सर्ग के ऐसे उदाहरण अन्यत्र शायद ही मिलें।

2. समन्वय की प्रवृत्ति और उदार दृष्टिकोण

भारतीय संस्कृति के समन्वयवादी दृष्टिकोण ने यहां की सांस्कृतिक चेतना को प्रभावित किया। इसी कारण यहां के अधिकांश शासक समन्वयवादी और उदार दृष्टिकोण वाले हुए। शासक ही नहीं मारवाड़ के अन्य जागीरदार व यहां की साधारण जनता के जीवन-व्यवहार पर भी असर पड़ा, जिससे उनका जीवन जातिगत भेदभावों से ऊपर उठा एवं उन्होंने अपने कार्यकलापों में मानवतावादी स्तर का भी ख्याल रखा। उदारता एवं हृदय की विशालता की घनीभूत भावोद्रेकता से यहां के

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

सामाजिक जीवन में मानवतावादी दृष्टिकोण का विस्तार और विकास ही नहीं हुआ उसे दृढ़ता भी मिली। यह दृष्टिकोण हिन्दू संस्कृति के संक्रमण युग में यहां की सांस्कृतिक थाती को सुरक्षित रखने में एवं अपने मौलिक और वैशिष्ट्य युक्त स्वरूप को विकसित करने में भी बहुत सहायक सिद्ध हुआ।

पराजित और शरणागत शत्रु के प्रति क्षात्र परम्परा अत्यन्त ही उदार व दयालु रही है जिसका पालन करने में यहां के क्षत्रिय शासक अपना गौरव समझते थे। राजा मात्र राज्य का ही रक्षक नहीं हुआ करता, वह धर्म, संस्कृति और परम्पराओं का भी रक्षक होता है। इसी धारणा के अनुरूप पराजित शत्रु पर हाथ उठाना वर्जित समझा जाता था। निर्बल, शरणागत और पराजित को अभयदान देना क्षात्रधर्म की अनूठी परम्परा रही है। क्षात्र परम्परा में शक्ति के साथ क्षमा का भी बड़ा महत्व रहा है। क्षात्र धर्म के इस शक्ति और क्षमा के मणि-कांचन योग के निर्वाह की यहां बड़ी समृद्ध परम्परा रही है। इसी परम्परा का निर्वाह करते हुए सम्राट पृथ्वीराज चौहान ने न केवल अपने प्रतिद्वन्द्वी चालुक्य नरेश भीमदेव, चन्देल नरेश परमर्दिदेव आदि को परास्त कर उनके साथ क्षत्रियोचित उदारता का व्यवहार किया अपितु विजातीय यवन आक्रान्ता मोहम्मद गौरी को भी अनेक बार क्षमा कर अपने उदार दृष्टिकोण का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया।

3. मर्यादा पालन

मर्यादा को यहां बहुत महत्व दिया गया। मान बिन्दुओं की मर्यादा की रक्षा में प्राण न्यौछावर करने वालों को देवों की भांति पूज्य समझा जाता था एवं उनके कृत्यों का बखान व यशोगान करते हुए लोग उनके प्रति श्रद्धावनत भाव से श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना अपना परम कर्तव्य समझते हैं।

सत्य का जीवन में निर्वाह करना यहां के समाज में एक मान्य आदर्श माना जाता रहा है। कठिन और विपरीत समय में भी इस विशिष्ट मर्यादा का पालन करना अनुकरणीय व प्रशंसनीय माना जाता था। सत्य की मर्यादा के निर्वाह की इस प्रवृत्ति ने यहां के जनमानस के डगमगाते आत्मबल को नवीन चेतना एवं प्रेरणादायी आधार प्रस्तुत किया जिसकी अभिव्यक्ति निम्नांकित दो पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

सत मत छोडो सायबा, सत छोड्यां पत जाय।
सत की बांधी लिछमी, फेर मिलेगी आय।।

उपर्युक्त पंक्तियों में सत्य निर्वाह की जो सीख दी गयी है वह सचमुच में बहुत ही अद्भुत है। सत्य का निर्वाह और अपनी टेक और आन मान की रक्षा में प्राणों का मोह गौण हो जाता था। टेक के रखवाले ऐसे ही स्वाभिमानी वीरों ने यहां की संस्कृति की सौरभ की महक को कायम रखने के लिए अपने प्राणों की बाजी लगाने से भी पीछे नहीं रहे।

गौ, ब्राह्मण, नारी, मन्दिर, साधु-सन्त, सन्तों के स्मारक, तीर्थ, धार्मिक ग्रंथ इत्यादि की रक्षा करना यहां परमपुनीत कर्त्तव्य माना जाता था। यहां का इतिहास इस बात का साक्षी है कि इन मान-बिन्दुओं के मान को अक्षुण्ण रखने के लिए समय-

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

समय पर यहां अनगिनत कुर्बानियां दी गयीं। मरुभूमि की रेतीली जमीन को रक्त से सींचकर रजवट के वटवृक्ष को हरा रखने का जो प्रयास हमें यहां देखने को मिलता है वैसा अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।

गाय के प्रति यहां के निवासियों में विशेष श्रद्धा तथा आस्था रही है। हिन्दू धर्म की मान्यतानुसार गाय में सभी देवताओं का निवास होता है और वह माता के समान पूज्य मानी गयी है। गौ-रक्षा के प्रति यहां के वीर विशेष रूप से उत्साही रहे हैं। पाबूजी, तेजाजी, देवजी आदि गायों की रक्षार्थ अपना बलिदान देकर लोक देवता के रूप में पूज्य हुये। गायों की रक्षार्थ अपने प्राणों का उत्सर्ग करने वाले धर्मरक्षक वीर यहां 'भोमियाजी' के रूप में लोक पूजित हुये। यहां की ख्यातों, बातों व लोक आख्यानों में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिससे यह स्पष्ट होता है कि गौ-रक्षा को यहां एक पुनीत धार्मिक कृत्य माना जाता था और धर्म के इस मान-बिन्दु की रक्षा के लिए यहां के निवासी अत्यधिक उत्साही और जागरूक रहे। इस प्रसंग का एक ऐतिहासिक उदाहरण यहां द्रष्टव्य है—

आलनियावास का कुंवर राजसिंह मेड़तिया जब विवाह करके अपने गांव वापिस लौट रहा था कि रास्ते में ही उसे ज्ञात हुआ कि अजमेर का सूबेदार तहव्वर खां जन्माष्टमी के दिन पुष्कर के पवित्र तीर्थस्थल के घाटों पर एक सौ गायों की कुर्बानी देकर वहां के वाराह मन्दिर को तोड़ने के उद्देश्य से जन्माष्टमी से दो दिन पूर्व ही पुष्कर में डेरा डाले बैठा है। जन्माष्टमी में एक दिन ही शेष रहा गया था अतः कुंवर राजसिंह ने घर लौटने की बजाय पुष्कर जाकर गायों की रक्षा करने का निर्णय लिया। कुंवर राजसिंह के इस अद्भुत निर्णय से सभी आश्चर्य चकित हो गये। अभी तो विवाह करके वह अपने घर लौटा भी नहीं था कि रास्ते में से ही पुष्कर जाने का निर्णय ले लिया। उसके पिता व अन्य लोगों ने उसे समझाना चाहा कि—"अभी तुम विवाह करके आये हो, पहले देवता पूजन की रस्म पूरी कर लो बाद में सब मिलकर इस पर विचार करेंगे।"

कुंवर राजसिंह समझ गया कि मेरे परिजन स्नेह एवं मोहवश यह कथन कहकर मुझे अपने कर्त्तव्य मार्ग से विमुख करना चाहते हैं मगर उसने मन-ही-मन सोचा—"मैं यदि समय रहते पुष्कर नहीं पहुंचा तो अनर्थ हो जायेगा। सौ गायों की हत्या कर तहव्वर खां पुष्कर के पावन तीर्थ को भ्रष्ट व अपवित्र कर हिन्दू धर्म की हँसी उड़ाने के अपने कुत्सित कृत्य को करने में सफल हो जायेगा और अब समय इतना नहीं बचा है कि घर जाकर देवता पूजन की रस्म पूरी की जा सके।"

अतः राजसिंह ने समय व परिस्थिति को देखते हुये जो प्रत्युत्तर उस समय दिया उसे स्व. कुंवर आयुवानसिंह हुडील ने अपने शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया—"वास्तव में मैं देव-पूजन को ही तो जा रहा हूं। तीर्थराज पुष्कर जैसे पुण्य-स्थल में, जन्माष्टमी-से पवित्र पर्व पर गौ माता की प्राण रक्षा, भगवान् वाराहजी के मन्दिर की प्रतिष्ठा रक्षा, ब्राह्मणों की भय से मुक्ति और साथ के साथ स्वामी का (मारवाड़ नरेश जसवंतसिंह प्रथम की मृत्यु का औरंगजेब के सूबेदार तहव्वर खां से) बदला लेने

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America, HHFA(USA)

का दुर्लभ अवसर अति भाग्यवान क्षत्रिय के अतिरिक्त किसी को भी प्राप्त नहीं हो सकता ।"[1]

इस प्रत्युत्तर को सुनने के बाद भला उसे कौन रोक सकता था । दृढ़ संकल्पी कुंवर राजसिंह आलनियावास ने पुष्कर पहुंचकर तहव्वर खां पर रात्रि में अचानक भयंकर आक्रमण कर गायों को छुड़ाया । तहव्वर खां की सेना भाग छूटी । कुंवर राजसिंह आलनियावास ने दूल्हा वेश में शाही सेना का मुकाबला किया तथा सिर कटने के पश्चात् भी कबंध युद्ध कर विधर्मियों का विनाश किया । धर्म रक्षा के इस यज्ञ से राजसिंह ने अपने प्राणों की आहुति देकर जो अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया उससे आज भी प्रेरणा मिलती है । गौरक्षा के इस पुण्यकार्य में कुंवर केशरीसिंह रींया, ठाकुर गोकुलसिंह बाजोली आदि कई वीर क्षत्रिय सामन्त वीरगति को प्राप्त कर सदा के लिए अमर हो गये ।

गौ-रक्षा की भांति धर्म के प्रतीक स्थल मन्दिर जो हिन्दू धर्मानुयायियों की आस्था व धार्मिक भावना के केन्द्र हैं उनकी रक्षा करना भी पुनीत कर्तव्य माना जाता था । मन्दिर धार्मिक प्रेरणा के आधारभूत स्तम्भ रहे हैं और इनकी रक्षा करना धर्म की रक्षा का ही पर्याय समझा जाता था । मध्यकाल में औरंगजेब जैसे कट्टर शासक की धर्मान्धता की नीति का भी मारवाड़ के तत्कालीन नरेश जसवन्तसिंह प्रथम ने डटकर विरोध किया । महाराजा जसवंतसिंह प्रथम जब तक जीवित रहे उन्होंने अपने राज्य में किसी प्रकार का विग्रह विनाश नहीं होने दिया और एक भी मन्दिर को गिरने नहीं दिया । उसके इस कृत्य का यशोगान यहां के साहित्य में भी वर्णित है—

'जसवन्त जब लग जीवियो पडियो नह पाषांण'

ख्यातों से यह भी ज्ञात होता है कि औरंगजेब ने वि.सं. 1733 में मन्दिरों को गिराने की आज्ञा निकाली उस समय महाराजा जसवन्तसिंह काबुल में थे । उनको जब इसकी सूचना मिली तो शाही अमीरों के सम्मुख अपना क्रोध प्रकट करते हुए कहा कि यदि बादशाह ऐसा करेगा तो हम भी मस्जिदों को गिरवाना शुरू करेंगे । इस प्रकार के प्रतिकार भरे सशक्त उद्गारों से औरंगजेब भी सशंकित हो गया । इस प्रकार महाराजा जसवंतसिंह न केवल अपने राज्य के मन्दिरों को सुरक्षित एवं अखंडित रखने में सफल हुये अपितु उन्होंने उचित समय पर उचित बात कहकर अन्य हिन्दुओं का भी हौसला बढ़ाने में सहायता की । यहां यह भी द्रष्टव्य है कि जब औरंगजेब ने गोवर्द्धन पर्वत के श्रीनाथजी के मन्दिर को गिराने की आज्ञा दी तो गुमांई दामोदर-लाल श्रीनाथजी के विग्रह (मूर्ति) को लेकर जोधपुर आया । उसे चौपासनी के पास कदमखण्डी में रहने को स्थान दिया । यहां से ही बाद में वह वि.सं. 1728 में मेवाड़ के सिहाड़ गांव में गया जो आज नाथद्वारा के नाम से प्रसिद्ध है ।

महाराजा जसवन्तसिंह स्वाभिमानी और वीर शासक होने के साथ साथ धर्म और

---

1 कुंवर आयुवानसिंह : ममता और कर्त्तव्य, पृ. 135

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

सांस्कृतिक परम्पराओं के भी रक्षक थे इसीलिए वे औरंगजेब की धर्म विरोधी नीतियों का खुलकर विरोध करते थे एवं अन्य शासकों को भी इसके लिए प्रेरित करते थे। अपने धर्म व सांस्कृतिक परम्पराओं के प्रति जसवंतसिंह के मन में कितना दर्द था इसका अन्दाज अपने सहयोगी मिर्जा राजा जयसिंह की असामयिक मृत्यु पर उद्घाटित किये गये इस निम्नलिखित दोहे से आसानी से लगाया जा सकता है—

घण्ट न बाजै देहरां, संक न माने साह।
अेकरसां फिर आवजो, मारू रा जयसाह ।।

मारवाड़ में नारी को विशेष आदर दिया जाता रहा है। नारी की रक्षार्थ यहां के वीरों ने अनगिनत युद्ध किये और नारी की मान-मर्यादा के लिए प्राणों को न्यौछावर करना यहां विशेष गौरव का कार्य समझा जाता रहा है। यहां पर जब कभी नारी का अपमान या नारी-उत्पीडन का प्रयास किया गया तब यहां के वीर पुरुषों ने उस अपमान और उत्पीडन का प्रतिशोध लेकर ही चैन की सांस ली।

अजमेर के सूबेदार मल्लू खां ने जब सिरिया खां और घुडले खां को साथ ले ससैन्य मेड़ते पर चढ़ाई की। मेड़ते से राव सातल का भाई वरसिंह जोधपुर आ गया। मल्लू खां की सेना मेड़ते को लूटकर जोधपुर की भूमि में लूटमार कर पीपाड़ से तीजणियों को पकड़कर ले गई।[1] ख्यातों में लिखा हुआ मिलता है कि—"मल्लू खां जिस समय पीपाड़ पहुंचा, उस समय वहां की कई सुहागिन स्त्रियां गौरी की पूजा करने को नगर के बाहर आयी हुई थीं। इसलिए मुसलमानों ने उन्हें पकड़ लिया।"[2]

यह समाचार जोधपुर के राव सातल को ज्योंही ज्ञात हुआ उन्होंने वरसिंह, दूदा, सूजा, वरजांग आदि अपने वीरों के साथ मल्लू खां का तुरन्त पीछा किया। मल्लू खां अभी पीपाड़ से कोसाणा तक ही पहुंचा था कि उस पर राव सातल ने आक्रमण किया और बड़ी वीरता से मल्लू खां के सेनापति घुडले खां को मारकर तीजणियों को मुक्त करा दिया। इस युद्ध में राव सातल मुसलमानों की सेना के साथ युद्ध करते हुए बहुत घायल हो गये और उसी रात्रि को उनका प्राणान्त हो गया परन्तु तीजणियों को छुड़ाकर नारी अपमान का प्रतिशोध लेने तथा नारी रक्षा का जो अनुपम उदाहरण उन्होंने प्रस्तुत किया उसकी स्मृति में मारवाड़ में आज भी 'घुडले' का त्यौहार मनाया जाता है। घुडले का मेला नारी रक्षा की उसी आदर्श भावना का स्मरण दिलाकर आज भी हमें प्रेरणा प्रदान करता है।

राव सातल से पूर्व भी यहां नारी सम्मान और नारी रक्षा की सुदृढ़ परम्परा रही है। राव मल्लीनाथ के पुत्र रावल जगमाल बड़े पराक्रमी वीर थे। एक बार जब गुजरात के सुल्तान का शाहजादा महेवे की कुछ लड़कियां जो सावन में झूला

---

1 डा. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा : जोधपुर राज्य का इतिहास : प्रथम खण्ड, पृ. 261

2 पं. विश्वेश्वरनाथ रेउ : मारवाड़ का इतिहास : प्रथम भाग, पृ. 106

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America, HHFA(USA)

भूतने नगर से बाहर एकत्र हुयी थीं, उनको भगाकर ले गया। इसका प्रतिशोध लेने रावल जगमाल व्यापारी का भेष बनाकर उसके राज्य में पहुंचे और ईद के दिन अवसर पाकर महेवे की उन भगायी हुयी लड़कियों को मय गुजरात के सुल्तान की पुत्री गींदोली सहित ले आए। गुजरात के सुल्तान ने अपनी पुत्री को पुनः प्राप्त करने हेतु महेवे पर चढ़ाई की। इस युद्ध में रावल जगमाल ने अपने अद्‌भुत पराक्रम का प्रदर्शन किया जिससे गुजरात के सुल्तान की सेना भयाक्रांत हो गयी और स्वयं सुल्तान रण क्षेत्र से भागकर अपने शिविर में जाकर राहत की सांस ली। इस प्रसंग का निम्नांकित दोहा मारवाड़ में आज भी प्रसिद्ध है—

पग पग नेज़ा पाडिया, पग पग पाडी ढाल।
बीबी पूछे ख़ान ने, जग केता जगमाल।।

नारी रक्षा के लिए यहां के क्षत्रिय वीर बड़े-से-बड़ा खतरा मोल उठाने को भी सदा तत्पर रहते थे। नारी की मर्यादा की रक्षा हेतु शक्तिशाली सम्राट तक की चुनौती को स्वीकार करने से भी नहीं हिचकिचाते थे। मुगल सम्राट अकबर अपने दरबार में बैठा था। सभी अमीर-उमराव, राजा-महाराजा वहां उपस्थित थे। वातावरण हल्का-फुल्का व हंसी-मजाक का था। इस अनुकूल अवसर को देखते हुए अकबर ने बूंदी के शासक हाडा भोज से कहा—"हमारी इच्छा है कि आपकी पुत्री का विवाह शाहजादा सलीम से हो।" बादशाह का कहना ही राजाज्ञा हुआ करती थी। राजा भोज इस अप्रत्याशित कथन को सुनते ही स्तब्ध हो गये। यह बात कोई और कहता तो वे कहने वाले की जबान खींच लेते पर यह बात स्वयं बादशाह ने कही है और भरे दरबार में उसका प्रतिरोध करना उनके भी बूते की बात नहीं थी। वह स्वयं पशोपेश में पड़ गये और उन्हें तत्काल कोई उत्तर देते नहीं बन रहा था। एक राजपूत कन्या का विवाह म्लेच्छ के साथ करना एक विचारणीय ही नहीं कल्पनातीत बात थी फिर इस रिश्ते के लिए हां कहना बूंदी के पवित्र हाडावंश के गौरव के लिए अमिट कलंक की बात होती। किंकर्त्तव्य-विमूढ हुए भोज ने अपनी दुविधा को दूर करने हेतु सहायता के लिए सबकी ओर दृष्टि दौड़ायी पर सभी राजा-महाराजा अपनी नजरें जमीन में गड़ाये बैठे थे। बादशाह अकबर के सम्मुख उसका ही प्रतिरोध करने का साहस किसमें था।

परन्तु अकबर के उस दरबार में भी अपनी आन-बान, मान-मर्यादा और सांस्कृतिक परम्पराओं का पक्षधर स्वाभिमानी वीर सिवाने का कल्ला रायमलोत निर्भीकता पूर्वक बैठा-बैठा अपनी मूंछों पर ताव देते हुये भोज की ओर देखा। कल्ला से नजरें मिलते ही भोज ने जैसे अपनी दुविधा का समाधान पा लिया। भोज ने बादशाह की ओर मुखातिब होने हुए उत्तर दिया—"हुजूर! मेरी बेटी की तो सगाई हो चुकी है।" बादशाह ने पूछा "किसके साथ आपकी बेटी की सगाई हुई?" भोज उत्तर दें इससे पूर्व ही कल्ला ने अपनी मूंछ पर बल देते हुए कहा—"मेरे साथ, जहांपनाह।"

कल्ला का गुरु-गम्भीर स्वर उस निस्तब्ध वातावरण को गुंजायमान कर उठा।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

सारे दरबारी हैरत की दृष्टि से कल्ला की ओर देखने लगे। बादशाह के सन्मुख सब की मूँछें नीची रखने का रिवाज था और भरे दरबार में बादशाह के सन्मुख मूँछों पर ताव देना अशिष्टता ही नहीं, बादशाह के अपमान का भी द्योतक था। अकबर की अशिष्टता का प्रत्युत्तर इसी अशिष्टता से देना कल्ला रायमलोत ने उचित समझा।

सभी दरबारियों सहित स्वयं बादशाह अकबर को भी यह बात ताड़ने में कोई दिक्कत नहीं हुई कि यह बात अभी-अभी गढ़ी गयी है और इसमें कोई भी सच्चाई नहीं है फिर भी अकबर जैसा चतुर बादशाह उस समय विवाद को अधिक तूल देना नहीं चाहता था अतः यह कहकर बात टाल दी कि—"अच्छा यह बात थी, हमें पहले मालूम न था नहीं तो ऐसी ख्वाहिश जाहिर नहीं करते।" कल्ला रायमलोत प्रसन्न था। एक राजपूत बाला की लड़खड़ाती प्रतिष्ठा को बचाने के गौरव की अद्‌भुत आब से उस बांके वीर (कल्ला रायमलोत) का चेहरा दैदीप्यमान हो रहा था। अकबर के सम्मुख अशिष्टता व उद्दण्डता व सम्राट को अपमानित करने का अन्जाम कल्ला बखूबी जानता था परन्तु अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी अपने कुल और वंश की नारी मर्यादा को अक्षुण्ण रखना उसे श्रेयष्कर लगा।

अपने धर्म और मर्यादा की रक्षा करनेवाले स्वाभिमानी वीरों का यशोगान यहां की बातों और ख्यातों में सर्वत्र वर्णित है। केसरीसिंह जोधा जो मुगल सम्राट शाह-जहां के दरबार में एक हजारी मनसबदार था। उसे बख्शी द्वारा जब बादशाह के साथ अटक (काबुल के पास बहने वाली नदी) पार काबुल जाने का हुक्म दिया गया तो इस आदेश को केसरीसिंह ने मर्यादा के विरुद्ध मानकर स्वीकार नहीं किया। जिस प्रसंग की निम्नलिखित पंक्तियां साक्षी हैं—

कुळाहरो चढ़ती कळा, जीयरा जंग भाराथ।
केहरी अटक न उतरे, साहजहां रै साथ॥

मध्यकाल में अटक के पार जाना यहां मर्यादा विरुद्ध और धर्म विरुद्ध माना जाता था। इसलिए केसरीसिंह जोधा इस मर्यादा विरुद्ध कर्म को कैसे कर सकता था और इस मर्यादा की पालना हेतु उसे भले ही अपना शाही मनसब ही क्यों न त्यागना पड़ा हो मर्यादा का त्याग नहीं किया। ऐसी अटूट आस्था थी इन मान-बिन्दुओं के प्रति और उसकी पालना के प्रति।

4. वीर भावना

यहां की संस्कृति में वीर भावना एवं स्वाभिमान का रंग इतना गहरा है कि उसका प्रभाव यहां की ऐतिहासिक घटनाओं और साहित्य दोनों में पर्याप्त रूप से परिलक्षित होता है। मारवाड़ के स्वाभिमानी वीरों एवं उनकी वीर भावना की उत्क-टता के असंख्य प्रसंग मिलते हैं। इससे प्रकट होता है कि यहां के समाज में वीरत्व को बहुत महत्वपूर्ण माना जाता था।। इसीलिए इसकी गरिमा से यहां का ऐतिहा-सिक एवं साहित्यिक पक्ष ही नहीं सम्पूर्ण सांस्कृतिक परिवेश भी उद्वेलित और अनु-प्राणित हुआ।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America: HHFA(USA)

वीर भावना के व्यापक स्वरूप व मान्यता के कारण ही यहां के वीरों में युद्ध का उन्माद व प्राणोत्सर्ग की उत्सुकता विशेष रूप से देखने को मिलती है। युद्ध-भूमि में प्राणोत्सर्ग करने की चाह यहां के वीरों की एक बड़ी कामना हुआ करती थी जिसका उल्लेख पूर्व में किया जा चुका है। यहां तो केवल यह उल्लेख करना है कि जनमानस इस वीरभावना से कितना ओत-प्रोत था एवं वीरों के लिये युद्धभूमि में प्राणोत्सर्ग करना जीवन का परम और चरम लक्ष्य माना जाता था। शेरशाह सूरी और मालदेव के कुछ प्रमुख सरदारों के बीच हुये इतिहास प्रसिद्ध गिरिसुमेल के युद्ध में युद्ध करके प्राणोत्सर्ग करने के अवसर से वंचित रहने का दुःख और पश्चात्ताप भैंरवदासोत को आजीवन सालता रहा। जैसा भैंरवदासोत नामक यह वीर राव मालदेव का सामन्त था जो गिरिसुमेल के युद्ध से पूर्व ही मालदेव के साथ लौट गया था, अतः वहां उसे युद्ध करने का अवसर नहीं मिला। यह तो एक उदाहरण है। ऐसे अनेक उदाहरण यहां मिलते हैं जो समाज में व्याप्त वीरभावना की स्फुरणा को अभिव्यक्त करते हैं।

भारतीय प्रदेशों में राजस्थान की वीरता-प्रधान संस्कृति अतुलनीय है। देश ही नहीं, विदेशी विद्वान भी इससे प्रभावित हुये बिना नहीं रह सके। कर्नल जेम्स टॉड ने इस प्रदेश की वीरभावना की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है।

कवीन्द्र रवीन्द्र ने भी इस वीरभावना का वंदन करते हुए कहा था—"राजस्थानी गीतों और दोहों में वीरता का जो भाव मिलता है वह अपने ढंग का अनूठा भाव है जिस पर सारा देश गर्व कर सकता है।"

राजस्थानी संस्कृति की इस वीरभावना को जिस जीवटता से मारवाड़ के वीरों ने उद्घाटित किया वह अद्भुत और बेमिसाल है। मृत्यु को मंगल पर्व की भांति सोल्लास मानने की परम्परा की पोषक इस मरुधरा की धरती पर मौत की हाटें लगती थीं—

"मंडती हाटां मौत री, मुरधर रै मैंदान"

यूरोपीय देशों में तो केवल यूनान के स्पार्टा राज्य की वीर संस्कृति का एक अनूठा उदाहरण सर्वत्र विख्यात है पर इस प्रदेश की चप्पा-चप्पा भूमि, भूमि का कण-कण वीरों के रक्त से सना हुआ है। यहां का हर गांव थर्मोपोली और हर वीर लियोनोडिस के समान है जिन्होंने अपने खून से इतिहास लिखा। ऐसे जुझारू वीरों की देवलियां आज भी उनके अद्भुत वीरत्व-प्रदर्शन की गौरवगाथा का स्मरण कराती हैं। जहां वीरों ने चरम वीरत्व का आदर्श प्रस्तुत किया वहीं यहां की वीर नारियों और बालाओं ने भी धर्म एवं सतीत्व रक्षा हेतु जौहर (अग्निस्नान) किया जो उन वीरांगनाओं के वीरत्वपूर्ण चरित्र का प्रतीक है।

मारवाड़ की वीरभावना के व्यापक विस्तार और लोकप्रियता की गूंज यहां के साहित्य में सर्वत्र प्रमुखता के साथ दृष्टिगोचर होती है। जन-जन के मन में गहरी पैठी इस वीरत्व भावना की बानगी के लिए निम्नांकित दोहे द्रष्टव्य हैं—

जननी जणै तो दोय जण, कै दाता कै सूर।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

नीतर रहजे बांझड़ी, मती गमाजे नूर ।।
आज घरे सासू कहै, हरख अचाणक काय ।
बहू बळेवा हूलसै, पूत मरेबा जाय ।।
घोड़ां घर ढालां पटल, भालां थंभ बणाय ।
जे ठाकुर भोगै जमीं, और किसी अपणाय ।।
जिण मारग केहर बुवो, लागी वास तिरणांह ।
ते खड़ ऊभा सूखसी, नह चरसी हिरणांह ।।
कुळ थारौ रण पोढणौ, मोनूं कहती माय ।
प्राणां गाहक पेखियौ, कसियौ बरजै काय ।।
गोठ गया सब गेहरा, बणी अचाणक आय ।
सीहण जाई सीहणी, लीधी तेग उठाय ।।
मूझ अचंभौ है सखी, कंत वखाणूं कीस ।
विण माथै दल वाढियौ, आंख हियै कै सीस ।।
सुण सूरा भूंडण कहै, भाज्यां कुळ लाजन्त ।
इण धरती रा ऊपन्या, तीतर नह भाजन्त ।।
ढोल चढंता मंगळी, मूछां भूह चढन्त ।
चंवरी ही पहचाणियौ, कंवरी मरणौ कन्त ।।
हेला मारे खेजड़ी, सुण पथी संदेस ।
बिण माथा अरि बाढणा, निपजै म्हारै देस ।।

5. स्वाभिमान

यहां के साहित्य, इतिहास तथा लोक-आख्यानों में स्वाभिमानी वीरों की वीर-भावना एवं उनके स्वाभिमानी चरित्र का भरपूर यशोगान मिलता है। यह यशगान नाममात्र का नहीं था बल्कि यह उस समाज की जीवन्तता का प्रतीक एवं जनमानस से तादाम्य स्थापित कर जीवन का स्थायी अंग बन चुका था। साहसी और स्वाभिमानी वीर अमरसिंह राठौड़ की गौरव-गाथा इतिहास प्रसिद्ध है। अमरसिंह राठौड़ नागौर का राव (वि. सं. 1695-1701) तथा जोधपुर के राजा गजसिंह का ज्येष्ठ पुत्र था। जहांगीर और शाहजहां के काल में वह मनसबदार रहा। ख्यातों में ऐसा उल्लेख मिलता है कि शाहजहां के एक प्रमुख दरबारी सलावत खां ने जब अभद्र व्यवहार (अपशब्द कहे) किया तो उस वीर का स्वाभिमान इसे सहन नहीं कर सका तथा भरे दरबार में अपनी कटार के एक ही वार से अमरसिंह राठौड़ ने सलावत खां का काम तमाम कर दिया। उक्त घटना की प्रसंगता विषयक निम्नांकित पंक्तियां आज भी यहां के जनमानस में बड़ी लोकप्रिय हैं—

उण मुख ते गग्गो कह्यो, उण कर लई कटार ।
वार कहण पायो नहीं, जमदढ़ हो गई पार ।।

* *

साह कूं सलाम करी मारियो है सलावत खां,

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America: HHFA(USA)

नेक न सामस्तो बोल कीनो ठोर ठागरो ।
केते उमराव मारे गिनती न आवे जाकी,
खेलत सिकार जैसे मृगन में बाघ रो ।
कहे मनीराम गजसिंह के अमरसिंह,
राखी रजपूती मजबूती नव नागरो ।
पाव सेर लोह ते हिलाई सारी पातसाही,
होती समसेर तो छिनाय लेत आगरो ।।

अमरसिंह राठौड़ की कटारी विषयक निम्नांकित पंक्तियां दृष्टव्य हैं जिसमें अमरसिंह राठौड़ के स्वाभिमान की कीर्ति का गान ध्वनित ही नहीं होता अपितु उसमें अन्तर्निहित होकर, एकाकार होकर, साकार रूप धारण करता है—

गीत—

अमर आगरे अखीयात उबारी, भड़ जीतो व्रद मारी ।
पंच हजारी मुगल (तगत) पाड़ीया, कमधज तणी कटारी ।।

* *

कवित्त—

वजन मांहे भारी थी कि रेख में सुधारी थी,
हाथ से उतारी थी कि सांचे हूं में ढारी थी ।
सेखजी के जर्द मांही गर्द सी जमाई मर्द,
पूरे हाथ सांधी थी कि जोधपुर संवारी थी ।
हाथ में हटक गई गुट्टी सी गटक गई,
फेफड़ा फटक गई, आंकी बांकी तारी थी ।
साहजहां कहे यार सभा मांही बार-बार,
अमर की कमर में कहां की कटारी थी ।

* *

वे अकली बोलता कमध ऊझलै कटारी ।
पबै सरीखी पड़ी कड़कि दामणी अकारी ।
ऊवर बीचि आहणी कहर मोरां दिस कढ्ढी ।
चळू वळ अणी चमंकि बहण ज्वाळा जिम बढ्ढी ।
बोलिया जके खांनड़ बयण पूरा कहण न पाइया ।
नर जांणि कबूतर वाज जिम लोटण आणि लुटाइया ।।

जिस प्रकार अमरसिंह राठौड़ की कटारी प्रसिद्ध है उसी भाँति तोगा की तलवार भी जग-जाहिर है । इस प्रसंग का लोक-प्रचलित यह दोहा आज भी जनमानस का कण्ठहार बना हुआ है—

कटारी अमरेस री, तोगा री तरवार ।
हाथळ रायसिंघ री, दिल्ली रै दरबार ।।

स्वाभिमान और अपने कुल और जाति की मर्यादा का पोषक वीरवर तोगा

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

अपनी आन-मान का धनी था। आगरा के मुगल सम्राट शाहजहां के दरबार में जब शाहजहां ने "सत्तर खान और बहत्तर उमराव" का कारण और आधार जानना चाहा कि हमसे हिन्दू किन दो बातों में श्रेष्ठ हैं या उनमें ऐसी कौनसी दो विशेषताएँ हैं जो हम में नहीं पायी जातीं। एक मुसलमान मीर ने दरबार में इसका कारण स्पष्ट करते हुए कहा कि हिन्दुओं द्वारा कबन्ध युद्ध करना (धड़ का सिर कटने के बाद भी युद्ध करना) एवं उनकी औरतों द्वारा सती होना दो बातें हमसे बढ़कर हैं। शाहजहां ने पीर को कह दिया कि छः माह के भीतर-भीतर हम इन दोनों विशेषताओं को अपनी आंखों से देखना चाहते हैं तभी इस बात की सत्यता को स्वीकार करेंगे और यदि ऐसा नहीं हुआ तो गलत बयानी के अपराध में तुम्हारा सिर कलम कर दिया जायेगा।

मीर तो इस आदेश से कांप उठा, उसे छः माह का जीवन ही शेष दिखलाई पड़ा। यह बात सभी जगह आग की तरह फैल गयी। सिर कटने के बाद कबन्ध युद्ध करने का बीड़ा कौन उठाये? इस चुनौतीपूर्ण अदम्य साहस का प्रदर्शन करने का बीड़ा उठाया मारवाड़ के राजा गजसिंह के राज्य के स्वाभिमानी क्षत्रिय वीर तोगा ने। तोगा को अपने कबन्ध युद्ध के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं था परन्तु वह अविवाहित होने के कारण दूसरी चुनौती को पूर्ण करने के उपयुक्त पात्र के बारे में सोच रहा था कि उसकी दुविधा का समाधान एक भाटी सरदार ने तोगा को अपनी पुत्री ब्याह कर कर दिया। पिता को अपनी पुत्री पर पूरा भरोसा था कि वह पति की मृत्यु के उपरान्त अवश्य सती होगी। वह वीर भाटी कन्या भी अपने आपको तोगा जैसा वीरवर पति पाकर सचमुच में धन्य हुयी। उसने तोगा के चुनौतीपूर्ण कार्य के संयोजन में सहर्ष व सोल्लास सती होने की स्वीकृति देकर अपने स्वाभिमानी चरित्र का जो परिचय दिया वह अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। नियत समय पर आगरा के दरबार में शाहजहां के सम्मुख तोगा ने कबन्ध युद्ध का प्रदर्शन किया। सिर रहित धड़ के वीरत्व प्रदर्शन से सभी दरबारी हतप्रभ रह गये। शाहजहां भयभीत हरम में जा छिपा और गजसिंह द्वारा धड़ से प्रार्थना करने पर शाहजहां अपनी जान बचा सका।

मर्जे तुरक्क जे वरे, निरक्ख काल निज्ज को।
पड़े जु तेग मान हंस, जाण घाव बिज्ज को॥
सुणे वैण जद साह के, दया हुई महाराज।
कह बिरदाय कबन्ध को, पलट बजारहिं राज॥

तोगा ने कबन्ध युद्ध कर क्षत्रियत्व ही नहीं सम्पूर्ण हिन्दुत्व के स्वाभिमान की रक्षा की, वहीं तोगा के पीछे भटियाणी ने सती होकर अनोखी आन को निभाया।

मारवाड़ में स्वाभिमानी वीरों की सुदीर्घ परम्परा रही है। इस परम्परा को निर्वाह करने वालों में वीरमदेव सोनगरा, कल्ला रायमलोत, जोरजी चांपावत इत्यादि का नाम सर्वोपरि है जिनकी गौरव गाथा से आज भी यहां का जनमानस प्रेरित होता है। सिवाणे के स्वामी कल्ला रायमलोत ने सन् 1588 में सिवाणे के किले में जो शाका किया उस स्वाभिमानी वीर के अद्भुत शौर्य को कौन भुला सकता है। सिवाणे के दुर्ग

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America, HHFA(USA)

के स्वाभिमान की रक्षार्थ प्राणोत्सर्ग करने वाले इस वीर के बलिदान को आज भी यहां की जनता बड़ी श्रद्धा से याद करती है—

किलौ अणखलो यूं कहै, आव कला राठौड़ ।
मो सिर उतरै मेहणौ, तो सिर बंधे मोड़ ।।

किसारी गांव के ठाकुर जोरजी चांपावत ने जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह द्वितीय (सन् 1873-95 ई.) के दरबार में राजपूत के स्वाभिमान के विरुद्ध उठी बहस के बीच यह घोषणा की कि "राजपूत भेड़ की तरह नहीं पकड़ा जा सकता ।" महाराजा ने कहा—राज के हाथ लम्बे होते हैं, आप शायद नहीं जानते । जोरजी ने वहीं घोषणा की कि मैं अब से बागी होकर जा रहा हूं और आप अपने सैनिकों को भेज कर मुझे जिन्दा पकड़ कर कैद करें तो जानू । बस उस स्वाभिमानी राजपूत ने छोटी-सी बात की टेक के लिए इतनी बड़ी चुनौती दे डाली और जीते-जी कभी नहीं पकड़े जा सके । खैरवा के ठाकुर गुमानसिंह ने धोखा करके उन्हें पकड़ना चाहा पर वे लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुये । जोरजी का गीत आज भी होली के त्यौहार पर उत्साह से गाया जाता है—

जोरजी चांपावत घोड़ा बाजारां में खड़िया रे
राम धरम री सोगन दे दरवाजा जड़िया रे
जोरजी म्हारी रो जायो मोड़ो बतळायो । हां रे मोड़ो........

यहां प्राणोत्सर्ग की भावना, उदार दृष्टिकोण, वीर भावना, स्वाभिमान आदि प्रवृत्तियों के साथ ही स्वत्वरक्षा का भाव भी प्रमुखता से पाया जाता है जिससे न केवल मारवाड़ की संस्कृति को अपितु भारतीय संस्कृति को अक्षुण्ण रखने में भी बहुत सहायता मिली ।

स्वाभिमान और स्वत्वरक्षा के भाव ने यहां के निवासियों को विशेषकर वीरपुरुषों को संघर्षमय जीवन जीने की प्रेरणा प्रदान की जिससे आनेवाली पीढ़ियों ने युगों तक इस परम्परा का पालन किया और अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ निर्दिष्ट मानबिन्दुओं की रक्षा के लिए सदैव तत्पर रहे ।

6. स्वातन्त्र्यप्रेम एवं धरती की रक्षा

इस धरती के वीर सपूतों ने अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए जो निरन्तर संघर्ष व युद्ध किये वे इतिहास में अपना विशिष्ट महत्व रखते हैं । मारवाड़ के स्वाभिमानी वीर सपूतों के धरतीप्रेम एवं स्वातन्त्र्यप्रेम ने उन्हें हर अवसर पर बलिदान के लिए तत्पर रहने की प्रेरणा प्रदान की । स्वातन्त्र्यप्रेम के लिए प्राणों की तनिक भी परवाह न करने की सीख तो यहां के वीर पालने में झूलते हुये ही सीख जाते थे—

इळा न देणी आपणी, हालरिये हुलराय ।
पूत सिखावै पालणै, मरण बडाई माय ।।
कुळ थारो रण पोढणो, मोनू कहती माय ।
प्राणां गाहक पेखियो, कसियो बरजै काय ।।
रण कर कर रज रज रंगै, रवि ढकै रज हूंत ।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

रज जितरी रज दे नहीं, रज रज हुय रजपूत ।।
धरती म्हारी हूं धणी, ढाळू नेजा ढल्ल ।
कूण उतारै ठाकरां, ऊभां सीहां खल्ल ।।

जिन्हें ऐसे संस्कार पारिवारिक वातावरण में जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में ही मिल जाय फिर उन्हें अपने प्राणों से बढ़कर मानबिन्दुओं की रक्षार्थ सर्वस्व न्यौछावर करने की अभिलाषा अधिक प्रिय और श्रेष्ठ क्यों न मालूम हो ! इसी भावना के कारण यहां संघर्ष की एक दीर्घकालिक परम्परा विकसित हो सकी, जिस पर इस प्रदेश को ही नहीं, समूचे भारतवर्ष को गर्व है ।

संघर्ष की इस बेजोड़ परम्परा ने यहां के निवासियों को सदा बलिदान और अपनी धरतो से बद्धमूलता की कई कहावतें, दोहे और गीत आज भी यहां के लोक समाज में प्रचलित हैं जो यहां के स्वातन्त्र्यप्रेम और धरतीप्रेम को बड़े ही प्रभावी ढंग से उजागर करती हैं ।

रणखेती रजपूत री, कबहु न पीठ धरै
देस रुखाळै आपणौ, दुखियां पीड़ हरै ।।

यहां के वीर धरती की रक्षा के लिए मर मिटे पर पीछे नहीं हटे । राव मालदेव पर जब शेरशाह ने वि. सं. 1600 में चढाई की और गिरीसुमेल के युद्ध के मोर्चे से राव मालदेव ने बिना लड़े ही वहां से प्रस्थान कर दिया क्योंकि शेरशाह ने मालदेव के सरदारों के नाम जाली पत्र लिख कर जो षडयन्त्र रचा उससे मालदेव को अपने सरदारों पर संदेह उत्पन्न हो गया । मालदेव के प्रयाण के पश्चात् उसके सरदारों ने बिना युद्ध किये ही वापिस लौटने की बजाय अपनी धरती की रक्षार्थ संघर्ष करके मर मिटने का दृढ़ निश्चय किया और जैता कूंपा आदि ने यह घोषणा की कि--"यदि रावजी जाते हैं तो भले जाय हम अपनी भूमि को छोड़कर कभी नहीं हटेंगे । क्योंकि यह जमीन केवल रावजी द्वारा जीती हुई नहीं है हमारे पूर्वजों द्वारा भी विजित की गयी है अत: यहां से हटना हमें किसी प्रकार स्वीकार्य नहीं ।" इस युद्ध में राव मालदेव की अनुपस्थिति में और राव मालदेव के निर्णय के विरुद्ध जैता कूंपा सहित कई स्वाभिमानी वीरों ने धरती की रक्षा और उसकी स्वतंत्रता के लिए युद्ध किया । ये वीर परम्परागत मानबिन्दुओं के निर्वाह हेतु भयंकर युद्ध करते हुये वीरगति को प्राप्त हुये । उनका वह बलिदान और धरतीप्रेम आज भी यहां के लोक-जीवन में अमर है । धरतीप्रेम के इस घटना प्रसंग से सम्बन्धित एक दोहा यहां लोक प्रचलित है—

गिर्री थारे गोरवे, लांबी बधी खजूर
जैंते कूंपै आखिया, स्रग नेडौ घर दूर ।।

स्वातंत्र्यप्रेम और धरती की रक्षा की परम्परा का निर्वाह यहां के क्षत्रिय वीरों ने हर युग में किया है । भारत में जब सन् 1857 में अंग्रेज विरोधी आन्दोलन चला तो महाराजा तखतसिंह के राज्यकाल में आऊवा ठाकुर कुशालसिंह ने स्वतंत्रता का सहयोग और खुला समर्थन किया । तत्कालीन जोधपुर राज्य और अंग्रेजी हुकूमत के विरुद्ध इस वीर सपूत ने बगावत कर स्वातंत्र्यप्रेम का जो अनुपम उदाहरण प्रस्तुत

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

किया उससे आज भी यहां का जनमानस अनुप्रेरित होता है। इस वीरोचित कार्य को लोकगीतों के माध्यम से आज भी याद किया जाता रहा है और होली के पर्व पर गाये जाने वाले फाग गीतों में उस स्वतंत्रताप्रेमी की कीर्तिगाथा बहुत ही जोश व चाव से गायी जाती है—

अंगरेजां री बागी फौज आऊवा में आई ओ
आऊवा रा ठाकर वांनै गळै लगाई ओ, अनमी आऊवो
व्है ओ अनमी आऊवौ झगड़ा में बांको ओ, अनमी आऊवो
अंगरेजां ऊं आडौ झगड़ौ औ आऊवौ करियो रे
ठिकाणा रौ ठाकर व्हैने कोनी डरियो रै, कारण भाटा रो
व्है ओ कारण भाटा रो, आऊवौ मुलकां में चावौ रे, अनमी आऊवौ
अंगरेजां ऊं सांमी छाती लड़वा जोधा जावै रै
आऊवा रा ठाकर तो रण धूम मचावै रै लड़ियौ आऊवौ
व्है ओ लड़ियौ आऊवौ, देस री आजादी खातर लड़ियौ रे
अनमी आऊवौ।

जब देश की बड़ी-बड़ी रियासतें अंग्रेजी दासता में ही अपनी कुशलक्षेम समझ रही थीं और उनका सहयोग कर रही थीं ऐसे में मारवाड़ के एक छोटे से गांव के ठाकुर ने अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ संघर्ष की ठानी—

मोटा मोटा रजवाड़ा अंगरेजां लारै बोलै ओ
ओधीलो कुसियाळौ तरवरां तोलै रै, हालौ देखण नै
के हालौ देखण नै, चांपावत मुलकां में चावौ रे, हालौ.......

*　　　*

बणिया वाळी गौचर मांय काळौ लोग पड़ियौ औ
राजाजी रे भेळौ तो फिरंगी लड़ियौ औ, काळी टोपी रो
व्है ओ काळी टोपी रो, फिरगी फैलाव कीधौ औ काळी टोपी रो
राजाजी रा घोड़ा तो काळां रै लारै दौड़े ओ
आऊवा रा घोड़ा तो पछाड़ी तोडै औ, झगड़ो होवा दौ
व्है ओ झगड़ौ होवा दौ झगड़ा में जीत म्हारी होसी औ
झगड़ौ होवा दो।

बणिया वाळो गोचर में अंगरेज घेरा घालै रै
फिरंगियां रा माथा में कमेड़ी हालै रै, माथा वाढ़ लो
व्है ओ माथा वाढ़ लो, कुसियाळौ केवै ओ, आधा काढ़ दो
माथा वाढ़ लौ।

अंग्रेजी हुकूमत ने आऊवा ठाकुर के विरोध को समाप्त करने के लिए तीन बार बड़े हमले किये। जोधपुर राज्य की सेना का सहयोग भी अंग्रेजों को मिला किन्तु दो बार आऊवा की सेना ने अंग्रेजी हमलों को विफल कर उसकी सेना को तितर-बितर कर दिया। आऊवा ठाकुर के इस कार्य में आसोप, आलणियावास, गूलर,

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

बाजवास, बांता, छिपिया, रड़ावास, लांबीया, भींवाळिया (सभी मारवाड़ के ठिकाणे) ग्रौर मेवाड़ में रूपनगर, लासाणी, सलूम्बर, ग्रासींद इत्यादि गांवों के ठाकुरों ने पूर्ण महयोग दिया। इसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई ग्रासोप के ठाकुर शिवनाथसिंह कुंपावत ने। ठाकुर शिवनाथसिंह ने जिस शौर्य व पराक्रम का प्रदर्शन किया वह लोकगीतों में ग्राज भी बड़े उत्साह से याद किया जाता है—

ग्राऊवो ग्रासोप धणियां मोतीयां री माला ग्रो
बारै नांखौ कूंचियां तोडावौ ताळा ग्रौ झल्ले ग्राऊवो
वे ग्रो झल्ले ग्राऊवौ, ग्राऊवौ धरती री थांबो ग्रो
झल्ले ग्राऊवौ।

ग्राऊवा के युद्ध का प्रभाव यहाँ के लोकजीवन में ग्रत्यधिक देखने को मिलता है। लोकमानस में संजोयी स्वतन्त्रता प्रेमी के उस यादगार स्मृति को प्रति वर्ष फाल्गुन माह के फाग गीतों में गा-गाकर यहां के निवासी भाव-विभोर हो जाते हैं। ग्राऊवा के युद्ध विषयक लोकगीतों में इस प्रसंग का एक लोकगीत यहां द्रष्टव्य है—

ढोल बाजै थाळी बाजै भेळौ बाजै बांकियौ
ग्रजंट नै मारने दरवाजे नांकियौ जूंझै ग्राऊवौ
हे ग्रो जूंझै ग्राऊवौ, ग्राऊवौ मुलकां में चावौ ग्रो
जूंझै ग्राऊवौ।

ऐसे वीर सपूतों द्वारा देश की धरती ग्रौर स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए यहां ग्रनगिनत बलिदान दिये गये। इस बलिदानी परम्पराग्रों को ग्रक्षुण्ण रखने का श्रेय यहां की उन वीर माताग्रों को है जिन्होंने ऐसे नर-रत्नों को जन्म दिया एवं उन्हें ऐसे संस्कार प्रदान कर देश की रक्षा हेतु सर्वस्व न्यौछावर करने की प्रेरणा प्रदान की—

सुत मरियो हित देस रै, हरख्यौ बन्धु समाज।
मां नह हरखी जनम दै, जितरी हरखी ग्राज॥

7. क्षमा

क्षमा वीरों का भूषण माना गया है। यहां के वीर सपूतों के व्यक्तित्व को निखारने में क्षमा ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। क्षमा क्षत्रिय वीरों का एक ग्रनुपम ग्रौर स्वाभाविक गुण रहा है जिसकी मारवाड़ में भी सुदीर्घ परम्परा रही है। इस गुण से यहां के क्षत्रिय वीरों का वीरत्व ग्रौर भी गौरवान्वित हुग्रा तथा सांस्कृतिक चेतना देदीप्यमान हुई। ग्रपनों को ही नहीं शत्रु को भी क्षमा-याचना करने पर क्षमा कर देना यहां नैतिक दायित्व माना जाता था। इसके कई उदाहरण हमें ख्यातों, बातों, साहित्यिक ग्रौर ऐतिहासिक सभी स्रोतों से ज्ञात होते हैं। पृथ्वीराज चौहान ने ग्रपने प्रबल शत्रु मोहम्मद गौरी को कहते हैं कि सत्रह बार क्षमा कर एक कीर्तिमान स्थापित किया।

मारवाड़ के क्षत्रिय वीरों ने ग्रपने युग में इस परम्परा का निर्वाह भी बड़ी दृढ़ता से किया। हमारे यहां तो क्षमा का महत्व बहुत रहा है ग्रौर पौराणिक ग्राख्यानों के माध्यम से भी इस गुण का विकास करने की सीख देने के प्रयास यहां सतत जारी

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

रहे। उदाहरणार्थ निम्नलिखित दो पंक्तियां द्रष्टव्य हैं—

क्षमा बडन को चाहिए, छोटन को उत्पात।
का हरि को घटि गयो, जो भृगु मारी लात॥

क्षमा वीरों का महान् गुण माना गया है और मारवाड़ के वीरों में क्षमा तो जीवन का महत्वपूर्ण अंग बना हुआ रहा है। क्षमा के बिना वीरत्व कभी शोभा नहीं पाता, यह जनधारणा आज भी यहां बहुत लोकप्रिय रही है। अपनी शरण में आये शरणागत की रक्षा एवं माफी मांगने वाले को माफी बख्शना आम रिवाज रहा है। शक्तिशाली ही क्षमा के गुण को धारण कर सकता है और उसका भली प्रकार निर्वाह भी। अतः क्षमावान वीर यहां बड़े आदर और सम्मान के साथ याद किये जाते रहे हैं।

8. शरणागतवत्सलता

क्षमा की भांति शरणागतवत्सलता को भी यहाँ की सांस्कृतिक चेतना का महत्वपूर्ण तथ्य कहा जा सकता है। यहां के शासकों को शरणागतवत्सलता प्रिय रही है। मारवाड़ के शासक ही नहीं, यहां के जागीरदार तथा साधारण स्तर के वीर पुरुष भी इस परम्परा का पालन करने में गौरव का अनुभव करते थे। इस मान-बिन्दु की रक्षार्थ वे बड़े से बड़ा संकट व जोखिम झेलने को भी तत्पर रहते थे। मुगल सम्राट अकबर जैसे शक्तिशाली शासक के गुलाम सफरदीन व उसके परिवार के सदस्यों को (जिन पर अकबर किसी कारणवश कुपित हो गया) मेड़ताधिपति जयमल मेड़तिया ने शरण दी। सफरदीन के परिवार को नागोर से मेड़ता तक निरापद लाने हेतु जयमल मेड़तिया का पुत्र सादुळ मेड़तिया बादशाही डाक-चौकी के सिपाहियों से लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। इतना ही नहीं इस शरण की बदौलत जयमल को अन्ततः अपने पैतृक राज्य मेड़ता से भी हाथ धोना पड़ा और मेवाड़ में जाकर रहा। कालान्तर में महाराणा ने उसे बदनोर की जागीर प्रदान की। शरणागतवत्सलता के लिए उसने हर संकट को स्वीकार किया। पैतृक राज्य त्याग दिया परन्तु शरणागत का परित्याग नहीं किया।

इसी भांति दुर्गादास राठौड़ ने औरंगजेब के पौत्र और पौत्री बुलन्द अख्तर और सूफीयतुन्निसा को आश्रय दिया। जब अकबर (औरंगजेब का पुत्र) के भागने के समय उसके परिवार के सदस्य मारवाड़ में ही रह गये थे। दुर्गादास राठौड़ ने तो उनके लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा की भी समुचित व्यवस्था की और उचित समय पर उन्हें औरंगजेब को सौंपा। यही नहीं कवि कलश जिसे शंभाजी के साथ औरंगजेब ने कैद कर लिया था, उसके परिवार को भी दुर्गादास राठौड़ ने आश्रय (शरण) देकर, भरण-पोषण तथा सुरक्षा की व्यवस्था की। इस प्रकार यहां के वीरों की शरणागतवत्सलता बड़ी ही अनुपम रही है।

पं. रामकर्ण आसोपा ने भी इस बात को स्वीकार करते हुए लिखा है कि—"शरणागतवत्सल राजपूत जाति अपने आश्रय में आये हुये को प्राण रहते उसके शत्रु के अधीन नहीं करती। अपने शरण में आये व्यक्ति तो क्या पशु-पक्षियों की रक्षा करने में भी यहां के क्षत्रिय वीर पीछे नहीं रहे। नीमाज ठाकुर जगरामसिंह विजय-

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

रामोत एक बार जब औरंगजेब के काल में दिल्ली स्थित चामू ठाकुर के डेरे पर गये हुए थे तब तीर से घायल हुआ एक मोर डेरे में आ गिरा। उसे लेने हेतु उसका शिकारी जो एक शाही अमीर था, वहां आया और उसने अपना शिकार मांगा। ठाकुर जगरामसिंह ने कहा "शिकार तुम्हारा है मगर हमारे डेरे में आने से हमारा शरणागत हो चुका है अतः यह तुम्हें नहीं दिया जा सकता।" इस बात की अवहेलना करते हुए उस शाही अमीर ने जब जबरन मोर लेने को हाथ बढ़ाया तो जगरामसिंह ने तत्काल तलवार के वार से उसका हाथ काट डाला। इस बात से दिल्ली का बादशाह औरंगजेब बहुत नाराज हुआ और निमाज ठाकुर के विरुद्ध कमरदी खां के नेतृत्व में सेना भेजी गई और मोर के लिए युद्ध हुआ।

महाराजा मानसिंह ने अंग्रेजों से शत्रुता मोल लेकर व उनकी नाराजगी की कोई परवाह न करते हुए स्वतंत्रता प्रेमी देशभक्त अप्पाजी भोंसले को शरण प्रदान की तथा अंग्रेजों की लाख कोशिश के बाद भी महाराजा मानसिंह ने अपने शरण में आये अप्पाजी भोंसले को उन्हें सौंपना स्वीकार नहीं किया। इस प्रसंग का एक कवित्त यहां द्रष्टव्य है—

आये हो शरण जान मान कमधेस मौको
मानत हूँ धन्य-धन्य ऐसो अवसर मैं।
लोक बीच याही काज बाजत है छत्री हम
यातौं अब सफल करोंगौ भुजवर मैं।
नागपुर नाथ जिन आपको अनाथ जानो
रावरे निमत्त कर दीनौ सर-घर मैं।
राखिहौं सजत्न यों सुरेस सो बचायकर
राख्यौ हिमगिरि पुत्र सिंधु ज्यों उदर मैं॥

इस प्रकार यहां के क्षत्रियों में शरणागतवत्सलता का यह संस्कार विद्यमान रहा और आज भी कुछ न कुछ मात्रा में विद्यमान है।

9. दानशीलता

यहां के शासकों और जागीरदारों ने समय-समय पर ब्राह्मणों और चारणों को दानस्वरूप नकद राशि, मूल्यवान वस्तुएँ और जागीरें प्रदान की, जो उनकी दानवीरता का जीता जागता प्रमाण है। चारणों, भाटों को दी गई जमीन या गांवों की जागीर यहां 'सांसण' कहलाती थी तथा सांसण में प्राप्त उस सम्पत्ति का उपभोग उनकी सन्तान पीढ़ी-दर-पीढ़ी किया करती थी। मारवाड़ के प्रायः प्रत्येक शासक और हरएक जागीरदार ने कोई-न-कोई गांव या जमीन सांसण में देकर दान की परम्परा को अक्षुण्ण रखा। अन्नदान और वस्तुओं का दान भी समय-समय पर एवं पावन पर्वों तथा सामाजिक और पारिवारिक उत्सवों पर किया जाता था।

यहाँ के शासकों द्वारा प्रमुख चारण कवियों को दिये गये 'लाख पसाव' और 'करोड़ पसाव' उनकी दानप्रियता के ही प्रतीक कहे जायेंगे। इसी प्रकार 'तुलादान' देने की परम्परा भी यहां रही है जिसका निर्वाह यहां के शासकों ने जन्मदिवस (बरस-

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America: HHFA(USA)

गांठ) पर या किसी तीर्थस्थल पर करके वे अपने पुण्यार्थ हेतु अपनी दानशीलता की भावना को प्रकट करने में पीछे नहीं रहे। विद्यादान को महत्वपूर्ण व सबसे श्रेष्ठ माना जाता था। दान के महत्व को द्विगुणित करने हेतु कुछ लोग गुप्तदान का सहारा भी लेते थे। सार्वजनिक निर्माण के कार्य में भी समाज के सम्पन्न दानवीर उत्साह से सक्रिय सहयोग प्रदान करते थे। इनकी दानशीलता धर्म से प्रभावित व प्रेरित रही है।

महाराजा अभयसिंह ने 'बिणद सिणगार' (जो 'सूरजप्रकास' का संक्षिप्त स्वरूप है) की रचना पर कविया करणीदान को 'कविराज' की उपाधि और 'लाखपसाव' दिया। लाखपसाव तो जोधपुर के कई शासकों ने यहां के श्रेष्ठ रचनाकारों को दिये परन्तु जो सम्मान महाराजा अभयसिंह ने कविया करणीदान को दिया वह बड़ा अनूठा है। इस प्रसंग का एक दोहा आज भी यहां बहुत लोकप्रिय है—

अस चढियौ राजा अभौ, कवि चाढ़े गजराज।
पोहर हेक जलेब में, मौहर चले महाराज।।

इसी प्रकार महाराजा मानसिंह (जोधपुर) ने बांकीदास आशिया को कविराजा की उपाधि व लाखपसाव देकर सम्मानित किया। महाराजा मानसिंह ने अपने आश्रित अनेक कवियों को सम्मान व जागीरें प्रदान कीं। ऐसा माना जाता है कि उन्होंने 61 कवियों को सांसण दिये। इस प्रसंग की यह पंक्ति साक्षी है—

"इगसठ सांसण अप्पिया, माने गुमनाणी।"

10. वचन-पालन

वचन से मुकर जाना यहां सामाजिक कलंक के रूप में देखा जाता रहा है। इसी कारण वचन-पालन की मर्यादा व उसके महत्व की समाज में बहुत बड़ी महत्ता थी—

वैंण लाज श्रीराम राज ले भरथ समप्यौ।
वैंण लाज जगदेव कमल कंकालणि अप्यौ।
वैंण लाज बलिराव पिंड पाया लपटायौ।
वैंण लाज जुजिठल्ल जाइ वन वास वटायौ।
वड वडा सुभट एकाधिपति, वयण लाज बद्धा वहे।
मम जाहु वैंण मंडण नरां, अमर वैंण ऊदो कहे।।

वचन पालन की इस महत्ता का लोकजीवन में भी अत्यधिक प्रचार-प्रसार था। इसीलिए जिस व्यक्ति की 'जबान का पतियारा' (वचन का विश्वास) नहीं होता उसकी समाज में कोई प्रतिष्ठा और साख नहीं होती थी। इस प्रकार वचनपालन में 'सत्यं वद' की पुरातन परम्परा का ही निर्वाह भी परोक्ष रूप में होता था और इसकी पालना करने में यहां के लोग आत्मतुष्टि का अनुभव करते थे।

राजस्थान के लोक-देवताओं में पाबूजी राठौड़ का महत्वपूर्ण स्थान है—

पाबू हड़बू रामदे, मांगळिया मेहा।
पांचू पीर पधारजो, गोगादे जेहा।।

पाबूजी राठौड़ के लोकनायकत्व में एवं उनके व्यक्तित्व के निर्माण में जिन

Digitization by Hindu Heritage Foundation of America. HHFA(USA)

महत्वपूर्ण चारित्रिक गुणों का योगदान रहा उनमें वचनपालन भी एक है। धांधल के पुत्र पाबू में बचपन से ही विचक्षण गुण थे तभी तो देवल चारणी ने अपनी प्रिय घोड़ी, जिसको कई वीर पहले भी मांग चुके थे उन्हें न देकर, पाबू राठौड़ को दे दी। देवल चारणी ने यह घोड़ी पाबू राठौड़ को इस शर्त पर दी कि यह मेरी घोड़ी गायों की रखवाली करती है अतः जब कभी इन गायों पर विपदा आयेगी तो तुम्हें (पाबू) आकर रक्षा करनी होगी। पाबू ने जब देवल चारणी की गायों की रक्षा करने का वचन दिया तभी अपनी मनपसंद 'काळवी' घोड़ी को प्राप्त कर सका। देवल चारणी को दिये गये वचन को पाबू राठौड़ ने जिस उत्साह से निभाया वह आज भी प्रेरणा प्रदान करता है।

जब पाबू राठौड़ ऊमरकोट सोढ़ों के यहां विवाह रचाने गया तब जायल के जिन्दराव खीची ने मौका देखकर देवल चारणी की गायें घेर लीं। देवल चारणी ने पाबू के पास जाकर पुकार की और उसकी पुकार को सुनते ही पाबू राठौड़ ने अविलम्ब चंवरी में भांवरे खाती हुई अपनी नवविवाहिता पत्नी सुपियारदे सोढी का हाथ छोड़, गठजोड़ा काटकर, काळवी घोड़ी पर सवार होकर अपने वचन के निर्वाह हेतु निकल पड़ा। जिन्दराव से जाकर युद्ध किया। जिन्दराव से देवल चारणी की गायें छुड़वायी और इस युद्ध में पाबू राठौड़ वीरगति को प्राप्त हुआ। उस वीर के द्वारा वचन-निर्वाह हेतु प्राणोत्सर्ग करना आज भी आदरणीय व सम्मानजनक माना जाता है और पाबू की यशगाथा को यहां बड़े उत्साह और चाव से सुना जाता है।

वचन-पालन की इस परम्परा का अद्भुत ढंग से निर्वाह करने वालों में बल्लू चांपावत का नाम सर्वप्रथम जिह्वा पर अनायास ही आ जाता है जिसने अमरसिंह राठौड़ के शव को लाने हेतु आगरा में श्रावण सुदि 3 वि.सं. 1701 को कबन्ध युद्ध करके अमरसिंह राठौड़ को दिये वचन की पालना को पूर्ण किया—

बल्लू कहे गोपाल रो, सतियां हाथ संदेश।
पतसाही घड़ मोड़ नै, आवां छां अमरेस॥

बल्लू चांपावत के सम्बन्ध में ऐसी लोकमान्यता भी है कि बल्लू ने अपने पिता को मरते समय यह वचन दिया था कि मैं दो बार वीर की भांति युद्ध करके मरूंगा। बल्लू चांपावत के सभी भाई वीर थे पर एक की वीरता पर उसके पिता को संदेह था कि यह वीरोचित मृत्यु को प्राप्त नहीं करेगा। अतः अन्त समय में इसी दुविधा के कारण उनके प्राण अटके हुए थे। जब वीरवर बल्लू को अपने पिता की दुविधा या उनके मन का संकोच ज्ञात हुआ तो उसने अपने भाई की ओर से वीरोचित मृत्यु को प्राप्त करने का वचन दिया। इस जनधारणा के अनुसार बल्लू देबारी के युद्ध में महाराणा राजसिंह के पक्ष में युद्ध करते हुए दूसरी बार वीरगति को प्राप्त हुआ और अपने पिता को दिये हुए वचन का निर्वाह किया।

मित्र तो क्या शत्रु को भी यदि कोई वचन दे दिया जाता तो उसकी भी पूर्ण अनुपालना की जाती। जब एक बार किसी को वचन दे दिया जाता तो उससे मुकरना यहां वीरोचित कर्म के विरुद्ध माना जाता था। एक उदाहरण यहां इस प्रसंग का

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America, HHFA(USA)

द्रष्टव्य है—

"मारवाड़ के शासक महाराजा जसवन्तसिंह प्रथम ने शाहशुजा के निवेदन पर जब उसे सहायता देने का वचन दे दिया तो उसे दिये गये वचन के मुताबिक महाराजा जसवन्तसिंह प्रथम ने खजवा के युद्ध (वि.सं. 1715) में औरंगजेब की सेना पर आक्रमण किया। महाराजा जसवंतसिंह को कुछ समय पूर्व ही जयपुर नरेश जयसिंह के प्रयास से औरंगजेब द्वारा दी गई मनसबदारी की कुछ भी परवाह न करके शाहशुजा के साथ तय हुयी बातचीत के अनुरूप निश्चित समय पर आक्रमण कर दिया जबकि स्वयं शाहशुजा निश्चित समय पर वादे के अनुरूप कार्य नहीं कर सका।

ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं कि जब राजनैतिक लाभ या अधिकार प्राप्ति की वंचनाएँ भी यहां के वीरों को सत्य के पथ का अनुगमन करने से विचलित नहीं कर सकीं। ऐसे वचन-पालक वीरों के आख्यान लोक-समाज में बहुत ही श्रद्धा व आदर के साथ याद किये जाते रहे हैं। जिन्होंने इन आदर्शों की अवहेलना की उन्होंने भले ही उस समय स्थिति का लाभ उठा लिया हो परन्तु जनमानस में उनके प्रति सम्मान की भावना कभी नहीं रही।

11. आखड़ी (दृढ़ संकल्प)

दृढ़ संकल्प की भावना ने यहां के निवासियों को कठिन से कठिन परिस्थिति में और बड़ी से बड़ी विपत्ति में भी जूझने का अतुलित साहस व प्रेरणा प्रदान की तथा संघर्ष करने हेतु आत्मबल जगाया जिसके फलस्वरूप यहां के सामाजिक जीवन में अद्भुत जीवटता का समावेश हो सका।

मारवाड़ के वीरोपाख्यानों व ऐतिहासिक बातों का अध्ययन करने से यह बात ज्ञात होती है कि मध्यकाल में मारवाड़ के वीरों में आखड़ी (प्रण, संकल्प) लेने की एक विचित्र-सी परम्परा भी रही है। इसे युद्ध-कुशल वीरों के आत्म-सम्मान, युद्धोत्सुक्य व स्वाभिमानी स्वभाव का प्रतिफल कहा जा सकता है क्योंकि जो जितनी ज्यादा आखड़ियां लेता उसका समाज में उतना ही अधिक वर्चस्व, प्रभुत्व व सम्मान बढ़ता। इसके साथ ही उसे लोकप्रसिद्धि भी मिलती।

राव गांगा ने बहुतसी आखडियां ले रखी थीं। राठौड़ खींवा उदावत के दूसरों की प्रतिज्ञा तोड़ने की आखड़ी थी। (भांजणी परत वहतो थो) इसी प्रकार "राठौड़ जैतसी उदावत बडो रजपूत थो। घणी आखड़ी वहतौ। पारकी छठी रौ जागणहार (शत्रुओं की मौत को जगाने वाला) पारकी चाडा (पुकार) रौ सारणहार (सुननेवाला), राठौड़ां वड़ा वड़ा दावा वाळिया।"

आखड़ियों में रामदास वेरावत संभवत: सबसे अग्रणी था—रामदास वेरावत के 'चौरासी आखड़ी' और 'उन्नीस विरुद्ध' थे। रामदास वेरावत की 84 आखड़ियों (प्रतिज्ञाओं) में दो आखड़ियां यह भी थीं कि वह ढोल बजने पर खड़ा नहीं रहता था (ढोल बाजीयां ऊभा रेण री आखड़ी), भागते हुए शत्रु का पीछा नहीं करता था (भाजे तिण लारे जावा री आखड़ी)।

आखड़ी का निर्वाह व्यक्ति विशेष की दृढ़ संकल्पशक्ति का ही परिचायक है

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

जिससे उसकी सामर्थ्य का भी पता लगता है क्योंकि संकल्प या किसी प्रण का आजीवन निर्वाह करना बहुत ही दुष्कर होता है। यहां के वीरों का दृढ़ संकल्पी स्वभाव इस बात को उद्घाटित करता है कि मनुष्य मात्र परिस्थिति का दास नहीं है। उन्हें चुनौतियों से सदा प्रेरणा मिलती तथा अद्भुत वीरोचित कार्य करने में असीम आनन्द की अनुभूति होती थी।

आखड़ी परम्परा के निर्वाह में यहां के किसी वीर द्वारा ली गयी आखड़ियों में यहां की संस्कृति के मानबिन्दु अथवा संस्कृति के मान्य आदर्श सम्मिलित होते थे क्योंकि उन आखड़ियों की कुछ बातों का सीधा सम्बन्ध यहां की सांस्कृतिक परम्पराओं से होता था। अतः उनकी पालना करना एक तरह से यहां के सांस्कृतिक मूल्यों को समाज में प्रतिष्ठापित करना ही था। प्रत्यक्ष रूप से इस परम्परा से यहां के वीर और उन स्वाभिमानी वीरों की दृढ़ संकल्पी भावनाओं को आत्मतुष्टि भी मिल जाती थी तथा परोक्ष रूप में यहां के समाज को सांस्कृतिक चेतना का लाभ प्राप्त हो जाता था।

12. स्वामिभक्ति

स्वामिभक्ति जिसे यहां 'स्याम धरम' कहा जाता था उसकी अनुपालना यहां की संस्कृति की खास विशेषता रही है। "सौ सुकृत अेकै पालड़ै एकौ स्याम धरम" की प्रवृत्ति ने यहां की संस्कृति को वैशिष्ट्य प्रदान किया और इस प्रवृत्ति ने शासकीय इकाई को मजबूत आधार प्रदान कर विपरीत परिस्थितियों से सतत जूझने की प्रेरणा यहां के निवासियों को दी।

मारवाड़ में स्वामिभक्ति की प्रवृत्ति को प्रमुखता के साथ निभाया। ऐसे स्वामिभक्त लोगों में दुर्गादास राठौड़ का नाम अग्रणी है जिसने औरंगजेब के कुचक्रों और नापाक इरादों को नेस्तनाबूत कर, जिस प्रकार से मां मरुधराधीश दोनों की रक्षा की वह सर्वविदित है। महाराजा जसवन्तसिंह प्रथम के नवजात उत्तराधिकारी अजीतसिंह की दुर्गादास ने रक्षा ही नहीं की उसके वयस्क होने तक उसका लालन-पालन का दायित्व भी निभाया। मारवाड़ की स्वतंत्रता के लिए वह वीर लगभग तीन दशक तक संघर्षरत रहा तथा अजीतसिंह को अपने पैतृक राज्य का शासक बनाकर जिस स्वामिभक्ति का परिचय दिया ऐसे उदाहरण अन्यत्र बहुत कम देखने को मिलते हैं। मुगल सम्राट औरंगजेब द्वारा दिये जाने वाले प्रलोभन और राजकीय सम्मान को तुच्छ समझ कर उसको ठुकराया और अपने स्वामिभक्ति रूपी मानबिन्दु की मर्यादा का पालन कर जो उच्च आदर्श प्रस्तुत किया वह अनुकरणीय और वंदनीय है। अपने स्वामी के प्रति अटूट श्रद्धा और अगाध विश्वास रखना यहां के वीरों की प्रथम कसौटी रही है और इस कसौटी पर खरा उतरने का हर वीर प्रयास करता था। स्वामिभक्ति यहां के वीरों के लिए सदैव अनुकरणीय रही और समाज में उसकी सर्वसम्मत मान्यना प्रसिद्ध रही है—

सखी अमीणौ साहिबौ, निरभै काळौ नाग ।
सिर राखै मिण सामध्रम, रीझै सिंधू राग ।।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America, HHFA(USA)

13. त्याग

यहां के वीरों का त्याग भी अनुपम और बेजोड़ रहा है। जिस सम्पत्ति को वे बड़े यत्न एवं परिश्रम से प्राप्त करते, अवसर आने पर उसे त्यागने से किंचित् भी नहीं हिचकिचाते थे। ऐसे त्यागी वीरों के प्रसंगों से मारवाड़ का इतिहास और भी देदीप्यमान एवं उज्ज्वल बना। यहां के त्यागी और बलिदानी वीरों ने अपनी सांस्कृतिक थाती की सुरक्षा एवं उसकी गौरवशाली परम्पराओं, मर्यादाओं तथा मान-बिन्दुओं की प्रतिष्ठा के लिए बड़ी से बड़ी भौतिक सुख-सुविधाएं प्रदान करने वाली सम्पदा को ठुकराया। ऐसे त्यागी वीरों में बल्लू चांपावत का नाम अग्रणी है। वि. सं. 1701 में नागौर के राव अमरसिंह राठौड़ के वीरगति प्राप्त होने की सूचना जब बल्लू चांपावत को मिली जो स्वयं शाहजहां के काल में मुगल मनसबदार था उसने बादशाही मनसब की परवाह नहीं की और अमरसिंह राठौड़ का शव किले से बाहर लाकर अमरसिंह की रानी तक पहुंचाया जो सती होने जा रही थी और अपने पति के शव की प्रतीक्षा में थी। इस प्रयोजन में बल्लू चांपावत ने बहुत बड़ी जागीर और केवल शाही मनसब ही नहीं त्यागा अपितु अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं के निर्वाह हेतु उसने अपने प्राणों का भी उत्सर्ग कर दिया।

14. प्रतिशोध की भावना

यहां के क्षत्रिय समाज में प्रतिशोध लेने की उत्कटता की अनूठी प्रवृत्ति देखने को मिलती है। यहां के स्वाभिमानी वीर जब तक प्रतिशोध नहीं लेते थे तब तक बड़े बेचैन रहते थे तथा अपने ऊपर बहुत बड़े बोझ का अनुभव करते थे। मारवाड़ी में एक कहावत है "वैर न बूढ़ो होय' अर्थात् समय निकल जाने के बाद भी प्रतिशोध पुराना नहीं होता। यहाँ तो युग बीत जाने पर प्रतिशोध लेने की परम्परा रही है—

"बारह बरसां बापरौ, लेवै वैर लंकाळ ।।"

प्रतिशोध की भावना का उन्माद योद्धाओं में एक नवीन उत्साह का संचार करता था। प्रतिशोध या वैर लेने की होड (प्रतिस्पर्धा) लग जाती थी और एक दूसरे से पहले वैर लेने को उत्सुक रहते थे। इतना ही नहीं मारवाड़ के अति उत्साही योद्धा "उधारे वैर" (दूसरों का प्रतिशोध या बदला) लेने को भी उतने ही अधीर और उतावले हो उठते थे जितना स्वयं का वैर लेने को होते थे। एक उदाहरण यहां द्रष्टव्य है—

"राठौड़ सेखौ सूजावत सेवकी री बेढ़ राव गांगौ मारीयौ तद सूराचंद रा चहुआंणां रै माथै राठौड़ां रो वैर थो, सु सेखै मरतौ कह्यो—राठौड़ जैतसी ऊदावत नुं कहज्यौ तैजसी डूंगरसिंघोत नुं कहज्यौ यो दावौ नाळज्यौ। पछै राठौड़ जैतसी सूराचंद झूंबीया। तेजसी चढ़ण री तैयारी कीधी थी तां पैली जैतसी जी झूंबीया।"

ऐसे युद्ध उन्मादी वीरों में प्रतिशोध की भावना अपनी पराकाष्ठा तक पहुंच चुकी थी तथा तत्कालीन समाज के अन्य वर्गों के लोग भी इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। यह प्रतिशोध लेने की परम्परा बड़ी अद्भुत और विचित्र थी जिसका सिलसिला कई बार तो पीढियों तक चला करता था और कहीं कहीं प्रतिशोध लेने

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

के पश्चात् विवाह सम्बन्ध स्थापित कर वैर समाप्त किया जाता था।

उपर्युक्त मानबिन्दुओं का यहां की सांस्कृतिक चेतना को परिष्कृत करने में महत्व-पूर्ण योगदान रहा है। इन मान बिन्दुओं की रक्षा से जो जातीय संस्कार बने उससे युद्ध जैसे विकट समय में भी शस्त्रविहीन शत्रु पर तथा बाल, अबला, ब्राह्मण पर वार न करने जैसे धर्मयुद्ध के नियमों की पालना की परम्परा विकसित हुई। इन संस्कारों से यहां का इतिहास ही प्रभावित नहीं हुआ वरन् यहां का सामाजिक और धार्मिक जीवन भी अनुप्राणित हुआ। इन मान बिन्दुओं की रक्षा से आदर्श जीवन-मूल्यों की स्थापना हुई और मारवाड़ की संस्कृति में मौलिकता व स्थानीय रंगत का जो अद्भुत सम्मिश्रण हुआ उससे उसकी आभा और भी निराली व अनूठी बनी।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मारवाड़ में भक्ति काव्य परम्परा

डॉ. जगमोहनसिंह परिहार

ऐतिहासिक एवं साहित्यिक तथ्यान्वेषण द्वारा प्राप्त घटनाओं और प्रमाणों के परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट हो जाता है कि राजस्थान की धरती, हँसते-हँसते अपना प्राणोत्सर्ग कर देने वाले अदम्य योद्धाओं के साथ लौकिक-जीवन के मृग-मरीचिका-सम और क्षणिक सुख-सुविधाओं से आप्लावित-आच्छादित जीवन के पीछे न भाग कर, आध्यात्मिकता, सदाचार, आत्म-शुद्धिकरण, चारित्र्य-बल तथा मानवीय दृष्टिकोण को भौतिकता के धरातल से आध्यात्मिकता के दिव्याकाश तक ऊँचा उठाने का सुमधुर सन्देश देने वाले सन्त-साधकों की धरती भी रही है। राजस्थान के विषम वातावरण तथा यहां की कष्टसाध्य परिस्थितियों ने लोक-जीवन में जहाँ कठिनाइयों का सहर्ष सामना करने की अद्‌भुत शक्ति प्रदान की है वहीं इस पावन वसुन्धरा ने, ऐसे अनेक मुक्तिकामी सन्त-महात्माओं को भी उत्पन्न किया है जिनकी आध्यात्मिक अनुभूतियों के आलोक ने पथ-भ्रमित मानवता के मार्गदर्शन की, स्तुत्य-भूमिका का निर्वाह किया। मानवीय-जीवन को असत्य से सत्य, अज्ञान से ज्ञान, अधर्म से धर्म, अनीति से नीति तथा दानवता से मानवता की ओर ले जाने की दृष्टि से, मारवाड़ में रचित भक्ति-वाङ्मय की अप्रतिम भूमिका रही है।

विपुल एवं विविध विषयक साहित्य-प्रणयन की दृष्टि से यद्यपि राजस्थान के साहित्यकार अग्रगण्य रहे हैं परन्तु यह दुर्भाग्य की बात है कि राजस्थान में रचित वीर-रसात्मक काव्य कृतियों को ही आधार मानकर यहां के साहित्य को वीर-रस के साहित्य-विशेषण से ही अभिभूत किया जाता रहा है। राजस्थान में परिवर्तित राजनैतिक घटनाक्रम के कारण, युद्धों का प्राधान्य अवश्य रहा है और तत्सम्बन्धी साहित्य भी यहां प्रभूत परिमाण में लिखा गया है। ऐसे साहित्य में राजा-महाराजाओं तथा लोकनायकों द्वारा सम्पादित युद्धों का इतिवृत्तात्मक उल्लेख होने के कारण उनके संरक्षण के निमित्त भी काफी सजगता बरती गई परन्तु दूर-दराज के स्थानों, उपाश्रयों अथवा अज्ञात एकाकी स्थानों में रहकर भक्ति-साधना में निरत रहने वाले सगुण भक्तों तथा निर्गुण सन्तों की वाणियों की, लिखित-अलिखित स्वर-लहरियों और उनकी प्रतिध्वनियों के खोज-प्रयास का उत्साहवर्द्धक रूप में प्रदर्शन नहीं हो पाया। अतः मौन साहित्य-साधकों तथा आध्यात्मिक जीवन में डूबे रहकर साहित्य-प्रणयन करने वाले ऐसे भक्तों के उत्कृष्टतम ग्रन्थ समुचित सुरक्षा तथा संरक्षण के अभाव में काल-कवलित होते रहे या फिर साहित्यान्वेषियों की पहुंच से दूर, वैसे ही उपेक्षित अवस्था में पड़े रहे। आज भी राजस्थान में, भक्तों और सन्तों की चर्चा चलती है तो अधिकांश विद्वान् मीरांबाई अथवा कतिपय ज्ञात लोक देवी-देवताओं

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

अथवा इने-गिने सन्तों के नामोल्लेखों को, राजस्थानी भक्ति-साहित्य परम्परा की लक्ष्मण रेखा समझ बैठते हैं जबकि राजस्थान में रचा गया भक्ति साहित्य भी, वीर-रस के साहित्य जितना महत्वपूर्ण और जन-मानस को दिशा-दृष्टि प्रदान करने की सामर्थ्य रखने वाला है। इतना ही नहीं, कबीर तथा नाथ-सम्प्रदाय की वैचारिकी के अतिरिक्त जाम्भोजी का विश्नोई सम्प्रदाय, पीपा सम्प्रदाय, जसनाथी सम्प्रदाय, दादू पंथ, रज्जब पंथ, चरणदासी-लालदासी सम्प्रदाय, रामस्नेही सम्प्रदाय, निरंजनी सम्प्रदाय, राजाराम सम्प्रदाय तथा नवल सम्प्रदाय का उद्भव और विकास राजस्थान में ही हुआ। राजस्थान में रचित सगुण और निर्गुण भक्ति वाङ्मय की विविध रूपता तथा प्रचुरता को दृष्टिगत रखते हुए इस निबन्ध में 'मारवाड़ में भक्ति काव्य परम्परा' का विश्लेषणात्मक एवं संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

राजस्थानी रामभक्ति काव्य-परम्परा में, भक्तकवि माधौदास दधवाड़िया का, प्रमुख स्थान माना जा सकता है। ये केशवदास गाडण के समकालीन, चूंडा दधवाड़िया के पुत्र और मारवाड़ राज्य में स्थित बलूंदा ग्राम के निवासी थे। समसामयिक काव्यकृतियों में उल्लिखित विवरणों के आधार पर इनका जन्मकाल विक्रम संवत् 1610 से 1615 के बीच स्थिर होता है। ये जोधपुर-नरेश सूरसिंह के कृपापात्र थे। अपने समय के प्रसिद्ध कृष्णभक्त कवि पृथ्वीराज राठौड़ ने भी, माधौदास के प्रति शुभ-कामनाएँ व्यक्त करते हुए लिखा था—

चूंडे चत्रभुज सेवियौ, ततफल लागो तास।
चारण जीवो चार जुग, मरो न माधौदास॥

माधौदास ने 'रामरासौ', 'भासा दसम स्कंध' तथा 'गजमोख' ग्रन्थों का प्रणयन कर, अपने भक्तिभावों का सशक्त भाषा-शैली में निरूपण किया है। इन ग्रंथों में 'रामरासौ' रामभक्ति काव्य-परम्परा का अद्वितीय ग्रन्थ है। इसमें लगभग सोलह सौ छन्दों में मर्यादापुरुषोत्तम भगवान श्रीराम की सरस कथा का चित्रण किया गया है। महाकाव्यजनित विशेषताओं के समायोजन के कारण 'रामरासौ' को राजस्थानी भक्ति साहित्य का प्रथम महाकाव्य कहा जा सकता है। साहित्यिक डिंगल तथा बोलचाल की राजस्थानी भाषा के समन्वित प्रयोग के कारण 'रामरासौ', जन-जन का गलहार-सा बन गया है।

भगवान श्रीराम मर्यादा के रक्षक तथा सत्य और न्याय के हितैषी थे। अनीति के पथ पर चलने वाले अभिमानी रावण ने, सीता का हरण कर श्रीराम से शत्रुता मोल ली। राम ने रावण को समझाने का हर सम्भव प्रयास किया परन्तु लंकापति रावण नहीं माना। अतः रावण के दर्प-दलन के लिए युद्ध अनिवार्य हो गया। सत्य के प्रतीक राम और असत्य के प्रतीक रावण के बीच लड़े गये रोमांचक युद्ध का, कवि माधौदास ने अत्यन्त सजीव, सरस तथा अलंकृत वर्णन किया है। उदाहरण—

मिलै सैन सूरिवां, रीछ वानर राकसां।
मिलै बाण गुण मूंठि, मिलै पंखणि ग्रीध मंसा॥
मिलै मोद अमरा, मिलै निसचरां अमंगल।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मिलै काल दहकंद, मिलै साइक नभ मंडल ।।
सय रथ मिलै देवा सुरा, वीर मिलै वीरां वरण ।
संभिलै ताभ तिहुंलोक सुख, मिलै राम रामण मरण ।।

कवि पूरण भाटी का रचनाकाल, सत्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध निर्धारित होता है । ये जोधपुर राज्य में स्थित आसानाडा ग्राम के निवासी थे । आसाजी भाटी के पुत्र, भक्त पूरण ने रामभक्ति के अनेक छन्द लिखे हैं । उदाहरण—

भाई व्है तो लषमण जेड़ौ, त्यागी अर अनुरागी ।
पिता मिलै तो दसरथ जेडा, सुत खातिर मर जासी ।।
सीता जेड़ी सती साधवी, बिहूं कुल तारणवाळी ।
पूत राम सो मिल जावै, वो भवसागर तर जासी ।।

मध्यकाल के रामभक्त कवियों में मंछाराम का विशेष स्थान है । इनका जन्म जोधपुर नगर के शाकद्वीपीय ब्राह्मण बक्शीराम के घर विक्रम संवत् 1827 में हुआ था । मंछाराम, जोधपुर के कलाप्रेमी महाराजा मानसिंह के समकालीन थे । अपनी काव्य-प्रतिभा से मंछाराम ने, महाराजा मानसिंह को बहुत प्रभावित किया । 'रघुनाथ रूपक गीतां रौ' कवि मंछाराम की लोकप्रिय रचना है । छन्दशास्त्र की दृष्टि से उपादेय इस ग्रन्थ में, भक्त कवि ने भगवान श्रीराम की कथा का भी चित्ताकर्षक शैली में निरूपण कर, अपने बहुआयामी गुणों को प्रस्तुत किया है । राजस्थान की प्रसिद्ध छन्दविधा 'गीत' में कवि ने राम का यश-वर्णन किया है । डिंगल भाषा में रचित काव्य की रीतियाँ छन्द-वैविध्य, छन्द-लक्षण, अलंकार तथा काव्य के गुण-दोषों के कारण यह ग्रन्थ लोक-जीवन में बहुत प्रसिद्ध रहा है । ग्रन्थ की भाषा प्रौढ, परिमार्जित, साहित्यिक विशेषताओं से परिपूर्ण तथा प्रवाहयुक्त है । डॉ. ग्रियर्सन ने भक्ति और रीति के इस ग्रन्थ को डिंगल काव्य परम्परा का श्रेष्ट ग्रन्थ बतलाया है ! उदाहरण के लिए राम की सेना द्वारा समुद्र बांधने की घटना का शब्दचित्र देखिए—

कमठ पर भार पड़ छिलै रथ कचरकां
मचरकां सेस रा हले माथा ।
लार लंगर लियौ पदम दस आठ कप,
सोय धर कूल वप जोस ताजा ।।
नाम रघुबीर मग काज तूणीर सूं,
सोखवा नीर धनु तीर साजा ।
विकल जल जीव लख जलध कर जोर कर,
रूप दुज हुय कह्यौ राम राजा ।
धार तुव नाम तिरवाय गिर धू पड़े,
प्रभु मो ऊपरै बांध पाजा ।।

राजस्थानी राम भक्ति काव्य प्रणयन करने वाली कवयित्रियों में प्रताप कुँवरी का विशेष स्थान है । इनका जन्म जोधपुर के समीप स्थित जाखन ग्राम में, गोविन्द दास भाटी के यहां, विक्रम संवत् 1873 में हुआ था । प्रताप कुँवरी बाल्यकाल से

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

ही कुशाग्र बुद्धि और भक्ति रस में तल्लीन रहकर भगवद् भक्ति करती थी। इनका विवाह जोधपुर के विद्यानुरागी तथा कलाप्रेमी महाराजा मानसिंह के साथ हुआ था। प्रताप कुँवरी की रचनाओं में ज्ञान सागर, ज्ञान प्रकाश, प्रताप पचीसी, प्रेम-सागर, रामचन्द्र नाम महिमा, रामगुण सागर, रघुवर स्नेह लीला, रामसुजस पचीसी, रघुनाथजी के कवित्त तथा रामप्रेम सुख सागर उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। कवयित्री प्रताप कुंवरी ने सरल, सुबोध तथा सरस राजस्थानी भाषा में अपने भक्ति भावों का प्रकाशन किया है। प्रसाद गुण शैली में रचित इनके पद और हरजस जोधपुर, जैस-लमेर और बीकानेर सम्भाग में बहुत प्रसिद्ध रहे हैं।

जाखन निवासी लक्ष्मणसिंह भाटी की पुत्री रतन कुँवरी की गणना भी, राज-स्थानी राम भक्ति काव्य-परम्परा के महत्त्वपूर्ण रचनाकारों में होती है। कवयित्री की कुछ शान्त रस प्रधान रचनाएँ 'मारवाड़ी भजन संग्रह' में सग्रहीत हैं। अपनी रचनाओं में भक्त कवयित्री ने भगवान राम के रूप-सौन्दर्य तथा उनसे मिलने की आतुरता के भावों का प्रकाशन किया है। उदाहरण के लिए राम के दर्शनों को व्यग्र, भक्त-कव-यित्री के मनोभावों का शब्दचित्र देखिए—

रघुवर म्हारा रे, म्हांकू दरस दिखाजा रे।
तो देखन की चाह घनी है, टुक इक झलक दिखाजा रे।
लाग रही तेरी कैते दिन की, मीठा बैन सुणाजा रे।
रतन कुंवरी तोसौं या विनती, अेक बार बस आजा रे।।

महाराजा मानसिंह की उपपत्नी तुलछराय भी भगवान राम की भक्त थीं। इनकी स्फुट रचनाओं में श्रीराम के प्रति अनन्य प्रेम के भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। उदाहरण—

मेरी सुध लीजो जी रघुनाथ।
लाग रही जिय केते दिन की, सुनो मेरे दिल की बात।
मोको दासी जान सियाबर, राखो चरण के साथ।
तुलछराय कर जोड़ कहे, मेरो निज कर पकड़ो हाथ।।

जोधपुर-नरेश सूरसिंह के कृपापात्र नरहरिदास बारहठ लाखनौत भी रामभक्ति धारा के अच्छे कवि थे। 'अवतार चरित्र' ग्रन्थ में कवि नरहरिदास ने रामकथा को अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। विविध अवतारों के परिप्रेक्ष्य में कवि ने भगवान राम के चरित्र और विविध प्रसंगों का चित्ताकर्षक भाषा शैली में निरूपण किया है।

भगवान राम के चरित्र के सम्बन्ध में डिंगल के प्रसिद्ध कवि अल्लूनाथ की षट्-पदियाँ भी प्रसिद्ध रही हैं। अल्लूनाथ प्रणीत कवित्तों में घट-घट में व्याप्त परमात्मा के सम्बन्ध में भक्ति-उद्गारों को व्यक्त किया गया है।

राम के नैतिक आदर्श तथा अनुकरणीय जीवन-चरित्र से प्रभावित होकर अनेक जैन रचनाकारों ने भी काव्य-प्रणयन किया है। जैसलमेर के कुशललाभ ने 'पिंगल सिरोमणि,' ब्रह्मजिनदास ने 'राम चरित्र,' विनय समुद्र ने 'पदम चरित्र' समयसुन्दर

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

ने 'सीताराम चौपई' और जनसारंग ने 'राम चरित्र' ग्रन्थों के माध्यम से रामकथा का बड़ा ही सरस तथा मनोरम वर्णन प्रस्तुत किया है।

मारवाड़ में कृष्ण-भक्ति काव्य भी बहुत अधिक परिणाम में लिखा गया। कृष्ण-भक्ति के साथ, भक्त-शिरोमणि मीरांबाई का नाम अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। मीरांबाई, मेड़ता के राठौड़ दूदाजी के पुत्र रतनसिंह की पुत्री थी। मीरां का जन्म विक्रम संवत् 1555 की वैशाख शुक्ला तृतीया को हुआ था। इनका विवाह मेवाड़ के महाराणा सांगा के पुत्र भोजराज के साथ हुआ था। मीरां के मन में बाल्यकाल से ही कृष्ण के प्रति अनन्यता विद्यमान थी और भोजराज के असामयिक निधन ने मीरां के लौकिक जीवन को, आध्यात्मिकता की ओर मोड़ दिया। सांसारिक बन्धनों की परिधि को लांघ कर मीरां ने सरल एवं सहज भाषा में अपने कृष्ण-भक्ति भावों का प्रकाशन किया है। कृष्ण के भक्ति-प्रेम में डूबी मीरांबाई के पद राजस्थान में ही लोकप्रिय नहीं हैं वरन् इन्हें पूरे भारतवर्ष में श्रद्धा और भक्ति के साथ गाया जाता है। उदाहरण—

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर-मुकुट, मेरो पति सोई।
छांडि दई कुल की कानि, कहा करिहै कोई।
संतन ढिग बैठ-बैठ, लोक-लाज खोई।
अंसुवन-जल सींच-सींच, प्रेम बेल बोई।
अब तो बेल फैल गई, आणंद फल होई।
भगती देख राजी हुई, जगत देखि रोई।
दासी मीरां लाल गिरधर, तारो अब मोई।।

मीरां के काव्य की लोक-प्रसिद्धि का सबसे बड़ा कारण यही है कि मीरां ने अपने हृदय की व्याकुलता का अकृत्रिम रूप से प्रकाशन किया है। उनके पदों में अलंकारों की चमक-दमक नहीं, छंदोबद्ध प्रवृत्ति के प्रति भी विशेष आग्रह नहीं, और न ही शब्द-चयन में विद्वत्ता-प्रदर्शन की मिथ्या आतम-श्लाघा ही दिखाई देती है। मीरां के काव्य में निहित असीम प्रेम, अनन्य भक्ति तथा विरह की मार्मिक अभिव्यंजना ने उसे व्यक्तिगत धरातल से उठाकर, जन-जन का अपना काव्य बना दिया है। कृष्ण भक्ति के साथ जुड़कर, मीरां का नाम कृष्ण के साथ एकाकार हो गया है। यही कारण है कि मीरां के नामोल्लेख के बिना, कृष्ण-काव्य की पूर्णता की कल्पना तक नहीं की जा सकती।

बीकानेर राजवंश के राठौड़ पृथ्वीराज का नाम, मध्यकाल के शीर्षस्थ भक्त-रचनाकारों में आता है। इनकी रीति, नीति, साहित्य सेवा और वीरता से प्रभावित होकर बादशाह अकबर ने अपने नौ-रत्नों में पृथ्वीराज को सम्मिलित किया था। पृथ्वीराज प्रणीत भक्ति रचनाओं में वसदेवरावउत रा दूहा, दशरथदेवउत रा दूहा, भागीरथी रा दूहा, बीठळ रा दूहा, देवी स्तुति, वेलि क्रिसन रुकमणी री तथा भक्ति और अध्यात्म की अन्य रचनाएँ प्रमुख हैं। पृथ्वीराज प्रणीत 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' कृष्ण

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

भक्ति काव्य-परम्परा की अत्युत्तम रचना है। 'वेलि' में शृंगार और भक्ति की उक्तियों के सरस और प्रभावशाली चित्राम खींचकर पृथ्वीराज ने इस भ्रम का निवारण किया है कि ब्रजभाषा जैसी मृदुता, लालित्य और कोमलता अन्य भाषाओं के काव्य में सम्भव नहीं है। भाषा, साहित्य, भक्ति और शृंगार—प्रत्येक दृष्टि से 'वेलि' अपना विशिष्ट स्थान रखती है। इसकी असंख्य टीकाएँ भी इसकी प्रसिद्धि की परिचायक हैं। तीन सौ छन्दों की 'वेलि' का प्रत्येक छन्द अनमोल है। उदाहरण—

अणियाळा नयण बाण अणियाळा, सजि कुंडळ खुरसाण सिरि।
वळे बाढ दे सिळी-सिळी वरि, काजळ-जळ वाळियौ करि ।।
ज्यूं सहरी भ्रूह नयणमृग जूता, विसहर रासि कि अलकवक्र।
वाळी किरि वांकिया बिराजै, चंद रथी ताटंक चक्र ।।
सिणगार करे मन कीधौ स्यामा, देवितणा देहरा दिसि।
होड छंडि चरणे लागा हंस, मोती लगि पाणही मिसि ।।

रोहड़िया शाखा के चारण कवि ईसरदास की राजस्थान और गुजरात में बहुत मान्यता रही है। इनका जन्म जोधपुर के समीप भाद्रेस ग्राम में विक्रम संवत् 1595 में हुआ था। ईसरदास प्रणीत भक्ति रचनाओं में हरिरस, छोटा हरिरस, बाल लीला, गुण भागवंत हंस, गरुड़ पुराण, गुण आगम, देवियाण, रास कैलास, सभा पर्व आदि लोक-प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। 'हरिरस' ग्रन्थ को अनूठे रसायन की संज्ञा दी गई है—

सरव रसायन में सरस, हरिरस समी न कोय।
हेक घड़ी घर में रहे, सह घर कंचन होय ।।

'हरिरस' ग्रन्थ को सब रसों का सिरमौर बताया गया है—

हरिरस हरिरस हेक है, अनरस अनरस आंण।
विण हरिरस हरि भगति विण, जनम वृथा कर जांण ।।

'हरिरस' एकोपासना का दिव्य आदर्श प्रस्तुत करने वाला ग्रन्थ है जिसमें सगुण और निर्गुण भक्ति का समन्वय कर भक्ति के क्षेत्र में उत्पन्न वैषम्य को मिटाने का स्तुत्य प्रयास किया गया है। उदाहरण—

हरि हरि करंता हरख कर, अरे जीव अणबूझ।
पारस लाधो ओ प्रगट, तन मानव में तूझ ।।
नारायण ना विसरिये, नित प्रत लीजै नांम।
जे साधो मिनखां जनम, करियै उत्तम कांम ।।

प्रसिद्ध भक्त कवि अल्लूनाथ कविया का जन्म विक्रम संवत् 1560 के आसपास सिणला ग्राम में हुआ था। अल्लूनाथ की अगाध ईश्वर-भक्ति से प्रभावित होकर आमेर-नरेश पृथ्वीराज कछवाह के पुत्र रूपसिंह ने इन्हें कुचामन के समीप जसराणा ग्राम प्रदान किया था। लोक जीवन में कवि अल्लूनाथ की सिद्धि के अनेक चमत्कार प्रचलित हैं। कवि अल्लूनाथ के कवित्त डिंगल भक्ति काव्य-परम्परा में अद्वितीय माने जाते हैं। अपरिमित ज्ञान, आध्यात्मिक आलोक और अनुभूति के रस में डूबे अल्लूनाथ के कवित्त प्रभावशाली तथा जीवन की क्षण-भंगुरता को समझ-परख कर, पर-

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation-of-America- HHFA(USA)

ब्रह्म से स्नेह-सम्बन्ध जोड़ने की शिक्षा देने वाले हैं। पौराणिक आख्यानों तथा नवीन प्रतीकों के समन्वय से भक्त-कवि का कथ्य बहुत प्रभावी रूप में अभिव्यक्त हुआ है। उदाहरण—

गोप नार चित्त हरण प्रेम लच्छण समप्पण।
कुंज विहारी क्रस्न रास ब्रन्दावन रच्चण ।।
गोवरधन ऊधरण ग्राह मारण गज तारण।
जरासिंध सिसपाळ भिड़े भू-भार उतारण ।।
जमलोक दरस्सण परहण भो-भग्गो जीवण मरण।
ओ मंत्र भलो निस दिन अलू सिमर नाथ असरण सरण ।।

मारवाड़ के टहला ग्राम में 1679 ई. में जन्मे तेजसिह काव्य-प्रतिभा के धनी होने के साथ-साथ उच्च कोटि के भक्त भी थे। तेजसिह के लिखे 'मुक्ति प्रकास' तथा 'भगवद्गीता का भाषानुवाद' उपलब्ध हुये हैं। सरल भाषा में निर्मित शान्त रस प्रधान ये रचनाएँ दार्शनिक तथा भक्ति-भावों को सुन्दर रूप से अभिव्यक्त करने वाली रचनाएँ हैं।

विक्रम संवत् 1875 में जालोर के समीप रामसीण ग्राम में जन्मे मुसलमान कवि कृष्णदास छीपा की गणना भी मारवाड़ के श्रेष्ठ कृष्ण-भक्त कवियों में की जा सकती है। कृष्णदास छीपा ने राम, कृष्ण तथा हनुमान की भक्ति में प्रभावशाली रचनाएँ लिखी हैं। इनमें 'जानकी मंगल', 'तत्त्वबोध', 'गोपीकृष्ण प्रेमलीला' तथा 'हनुमानजी रो अष्टक' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उदाहरण के लिए भक्त-कवि द्वारा प्रदर्शित, कृष्ण भक्ति के उद्गार देखिए—

मांगत नांही कछु मनमोहन। ताकत हूं शरणागत तेरौ ।।
प्राण रखो तो रखो प्रभु। लाज रखो न तो पिंजर लेरौ ।।
चूक पड़ी तो हूं लघु चाकर। गोविन्द आपको तोल घणेरौ ।।
संत अनन्त की सहाय करो। हरिमोहन यों पकरो कर मेरो ।।

मारवाड़ के अन्य प्रमुख कृष्ण भक्त रचनाकारो में लधराज, तत्त्ववेत्ता, हमीरदान, ब्रजभान किशोरी, बीरां तथा जोधपुर-नरेश अजीतसिंह का विशेष स्थान है। महाराजा अजीतसिंह ने 'गुणसागर', 'गज उद्धार', 'निर्वाण दूहा' तथा 'दुर्गापाठ भासा' ग्रन्थ लिखकर, अपने भक्ति-भावों का प्रकाशन किया है।

मारवाड़ सम्भाग में 'माहेरा' काव्य भी बहुत लोकप्रिय रहा है। विवाह के अवसर पर आज भी 'माहेरा' भरा जाता है और 'माहेरा' काव्य गाया जाता है। 'माहेरा' के रचनाकारों में मीरबांई, नरसी मेहता, बख्तावर, बसन्त और रतना खाती का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस काव्य विधा में, भक्त नरसी की अनन्य भक्ति और भगवद् अनुकम्पा द्वारा माहेरा भरने की घटना का सजीव और भावप्रवण चित्रण किया गया है। लोकजीवन में प्रसिद्ध है कि 'माहेरा' का पाठ करना गौ-दान और भूमि-दान से भी श्रेष्ठ है और इसके पठन-पाठन से मोक्ष की प्राप्ति होती है। उदाहरण के लिए मीरांबाई रचित 'माहेरा' के समापन की पंक्तियां

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

देखिए—

गंगा जमुना सुरसत्ती, श्रौर कासी श्रर प्राग ।
भगती सुजस श्रवणां सुनै, ताकौ पूरण भाग ।।
मीरां कृत यो माहेरो, संतन को सुख मूल ।
जो सजन श्रवणां सुनै, पाप जरत जम ऊल ।।
भूमिदान गोदान सम, सुनत पूज्यै श्रैसे होइ ।
मैं मीरां हरिजस कह्यौ, सुनूं सखी सतौ जोइ ।।

राम श्रौर कृष्ण भक्ति के समान राजस्थान के लोकमानस पर शाक्त सम्प्रदाय तथा सम्बन्धित विचार दर्शन का भी उल्लेखनीय प्रभाव रहा है । शाक्त सम्प्रदाय के श्रनुयायी देवी दुर्गा की शक्ति के रूप में श्राराधना करते हैं । यहां के नर-नारियों ने देवी के विविध श्रवतारों की श्राराधना कर, श्रपने भाव-प्रसूनों का श्रर्घ्य चढ़ाया है । इन देवी-श्रवतारों में ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, कापाली, वाराहि, नरसिंहि, शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघण्टा, स्कन्दमाता, कुष्माण्डा, कात्यायनी, कालरात्रि, महागौरी, श्रम्बे, जगदम्बा, दुर्गा, चामुण्डा, चण्डी, भवानी, भगवती, शिवा, शांकरी, पार्वती, नारायणी, मंगला, हिंगुलाज, श्रावड़, करणी, जीण, नागणेची प्रभृति रूप श्रत्यधिक प्रसिद्ध रहे हैं ।

वीरता के प्रति विशेष श्रनुरक्ति के कारण राजस्थान में शक्ति-सम्बन्धी साहित्य का प्राचुर्य दिखाई देता है । मध्यकाल में निर्मित देवी भक्ति रचनाश्रों में श्रीधर की 'शप्तशती रा छन्द', कुशललाभ की 'देवी सातसी' तथा 'भवानी छन्द' ईसरदास की 'देवियाण', जसवन्त की 'त्रिपुर सुन्दरी री वेलि', लधराज की 'कालकांजी रा दूहा' तथा 'देवी विलास', श्रजीतसिंह की 'दुर्गापाठ भासा' श्रौर जयचन्द यति की 'माताजी री वचनिका' उल्लेख्य रचनाएँ हैं ।

विक्रम संवत् 1776 में नागौर के कुचेरा ग्राम में, जैन कवि जयचन्द यति ने 'माताजी री वचनिका' कृति का प्रणयन कर, श्रपने भक्ति-भावों का प्रकाशन किया है । इस वचनिका का लेखन, जोधपुर-नरेश श्रजीतसिंह के शासनकाल में किया गया था । उदाहरण—

चढैं प्रचण्ड चण्ड मुण्ड खंड खंड खूंदता ।
कसीस त्रीस टंक बांण क्रण झालि कूदता ।।
जलन्त श्राप रोस जे कठोर काजि काहलां ।
करंति देव मेछ कोटि डाकरे खळां डळां ।।
बिहामणां श्रजांन बाह चूंच भूंच छाकिया ।
श्रोघाट रूप हेक भांति, श्राप जोम पाकिया ।।
भखे सहूजा भुजा लहू बणै जवांन वाळवां ।
करंति देव मेघ कोटि डाकरे खळां डळां ।।

इन भक्ति रचनाश्रों के श्रतिरिक्त देवी के रौद्र-रूपों से सम्बन्धित काव्य भी यहां प्रचुरता से लिखा गया । बखता खिड़िया रचित 'श्रभयसिंघजी रा कवित्त', केशवदास

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation-of-America. HHFA (USA)

गाडण का 'गज गुण रूपक बन्ध,' करणीदान कविया का 'सूरज प्रकास,' वीरभाण रतनू का 'राजरूपक' आदि ग्रंथों में, युद्ध-वर्णन के प्रसंगों में शक्ति के प्रति भक्ति-भावों की झलक स्पष्ट देखी जा सकती है। युद्ध-वर्णन के प्रसंगों में बावन भैरूं, चौसठ योगिनियां, शक्ति के रौद्र रूपों, हाथ में खड्‌ग-खप्पर लिए रक्त फव्वारों के बीच उल्लसित होकर दौड़ती तथा मुण्डमाल धारण करती अप्सराओं के वर्णन, लोमहर्षक तथा युद्ध की बीभत्सता को और अधिक बढ़ाने वाले हैं।

देवी के रौद्र-रूपों के अतिरिक्त, सौम्यरूप चित्रण में भी यहां के रचनाकार अग्रणी रहे हैं। शिव-पार्वती स्तुति और गंगा के पवित्र जल के प्रति राजस्थानी कवियों ने अपने भक्ति-उद्‌गार प्रकट किए हैं। कवि बाँकीदास ने गंगा के निर्मल-नीर की महत्ता इन शब्दों में व्यक्त की है—

पाप जिता तूं पलक में, सुरसरि हरण समत्थ।
इत्ता पाप ऊमर-मही, सो कुण करण समत्थ॥
छटा अलौकिक छाय, ऊँची लहरां ऊपड़ै।
मुगत निसेणी माय, सुख देणी असुरा सुरां॥

सगुण भक्ति के समान, मारवाड़ संभाग में संत-साहित्य भी प्रभूत परिणाम में लिखा गया। यहां के नर-नारियों के विचार-दर्शन पर, नाथ भक्ति का दीर्घकालीन प्रभाव दिखाई देता है। लोक-जीवन पर ही नाथ भक्ति का प्रभाव परिलक्षित नहीं होता अपितु भारत के समस्त संत-सम्प्रदाय, किसी न-किसी रूप में नाथ वैचारिकी से प्रभावित रहे हैं। पाँचवीं-छठी शताब्दी से लोक मानस पर प्रभाव डालने वाले नाथ धर्म का उन्नीसवीं शताब्दी में तीव्र गति से प्रसार हुआ। राजस्थान में तत्कालीन समयावधि में निर्मित शिव और शक्ति के भव्य मन्दिर, नाथ भक्ति के, लोक जीवन पर पड़ने वाले महत्त्व को दर्शाते हैं। जोधपुर के महाराजा मानसिंह नाथ भक्ति और दर्शन से इतने अधिक प्रभावित थे कि उन्होंने नाथों के संरक्षण के लिए जोधपुर में महामन्दिर तथा उदयमन्दिर जैसे भव्य मन्दिरों का निर्माण करवाया। महाराजा मानसिंह स्वयं भी नाथ धर्म के अनुयायी थे। उनके लिए प्रसिद्ध है—

जोध बसायो जोधपुर, ब्रज कीनो बृजपाल।
लखनऊ दिल्ली काशी, मान कीयौ नेपाल॥

मानसिंह प्रणीत भक्ति ग्रन्थों में 'श्री जालन्धर नाथ जी रो चरित ग्रन्थ', 'जलंधर चन्द्रोदय', 'नाथ चरित', 'नाथ वर्णन ग्रन्थ,' 'मान पंडित संवाद', 'अनुभव मंजरी', 'मान दसा कथन' प्रभृति उल्लेख्य ग्रन्थ हैं। भक्त कवि मान का आराध्य देव पूजा, व्रत आदि आडम्बरों से द्रवित नहीं होता। वह तो सर्व शक्तिमान, विलक्षण, सर्वव्यापी और घट-घट के मर्म-महत्त्व को जानने वाला है—

त्याग और ग्रहण को झौड़ पड्यौ,
ये झौड़ अबै तुम दूर निवारो।
आतम अेक रहे सबमें,
यह भूल करे क्यों हा-हा कारो॥

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

साधु और ग्रहस्थ में दोय लखे,
सब जांय मिलै वो पीव पियारो।
गृहस्थ सन्यस्थ नहीं उनमें,
कहे मान वही निज पीव हमारो ।।

महाराजा मानसिंह के अतिरिक्त केशवदास गाडण, सबळदान तथा पीरदान लाळस ने भी नाथ भक्ति सम्बन्धी काव्य का प्रणयन किया है।

नाथ पंथ के समान, मारवाड़ के जन-मानस पर कबीर पंथ के विचार-दर्शन का भी बहुत प्रभाव पड़ा है। उन्नीसवीं शताब्दी में अनेक कबीर पंथियों ने मारवाड़ में आकर, मानवतावादी विचारों के संपोषक संत कबीर के विचारों का प्रचार-प्रसार किया। संत लालदास और लच्छीराम ने मारवाड़ रियासत में आकर, कबीर-पंथ के विचारों तथा सिद्धान्तों को जन-जन तक पहुँचाया। इन दोनों सन्तों के अथक प्रयासों के कारण ही कबीर वांणियों की राजस्थानी भाषा में रूपान्तरण और प्रसारण सम्भव हो सका।

नागौर परगने के पीपासर ग्राम में जन्मे पंवार क्षत्रिय जाम्भोजी ने विक्रम संवत् 1542 में बीकानेर के समीप स्थित संभराथळ में जाम्भोजी विश्नोई सम्प्रदाय की स्थापना की। वन-सम्पदा और जीव-जन्तुओं की रक्षा की दृष्टि से जाम्भोजी के उपदेशों का विशेष महत्व है। इस धर्म का मारवाड़ संभाग में ही नहीं वरन् पूरे राजस्थान में द्रुतगति से प्रसार हुआ। बीस तथा नौ सिद्धान्तों पर आधारित होने के कारण इस सम्प्रदाय को 'बीसनोई सम्प्रदाय' के नाम से सम्बोधित किया जाता है। हरे वृक्षों की सुरक्षा तथा जीव हत्या पर प्रतिबन्ध के अतिरिक्त इस सम्प्रदाय में वर्ग-समाज की स्थापना पर जोर दिया गया है।

जसनाथी सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक संत जसनाथ का जन्म विक्रम संवत् 1539 में एक जाट परिवार में हुआ था। इस सम्प्रदाय के अनुयायी बीकानेर, जोधपुर, उदयपुर तथा जैसलमेर में हैं। संत जसनाथ रचित 'जसनाथ पुराण' में उनकी ज्ञान, भक्ति और वैराग्यमूलक वाणियाँ संग्रहीत हैं। इस विचार दर्शन का प्रभाव भी मारवाड़ संभाग में देखा जा सकता है। अपनी शिक्षा में जसनाथ ने जीव हिंसा, धूमपान, मद्यपान और दहेज जैसी बुराइयों से बचकर सत्य, शील, सन्तोष तथा सदाचार पथ पर चलने का परामर्श दिया है। संत जसनाथ ने क्षण भंगुर जीवन से मोह छोड़कर परमात्मा की भक्ति का सुझाव देते हुए लिखा है—

काची काया गळबळ जासी, कूं कूं बरणी देहा।
माटी में माटी मिल जासी, भसम उड़े ज्यूं खेहा ।।

रामस्नेही सम्प्रदाय के प्रसार की दृष्टि से भी मारवाड़-संभाग समृद्ध रहा है। इस सम्प्रदाय में निर्गुण-निराकार 'राम' के नाम का जाप किया जाता है। सम्प्रदाय के प्रमुख केन्द्र शाहपुरा, सिंहथल-खेड़ापा तथा रैण में है। मारवाड़ में इस सम्प्रदाय की बहुत मान्यता है। संत रामचरण की वांणी में सादा जीवन उच्च विचार तथा राम नाम स्मरण पर जोर दिया गया है। उदाहरण—

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

रामहिराम अखंडित ध्यावत, राम बिना सब लागै खारौ ।
रामहिराम लियां मुख बोलत, रामहि ग्यान रु राम बिचारो ।
रामहिराम करै उपदेशहिं, रामहि जोग रु जिग्य पसारो ।
रामचरण इसे कोइ साधु है, सो हो सिरोमणि प्राण हमारो ।।

मारवाड़-संभाग में स्थान-स्थान पर निर्मित रामद्वारे 'रामस्नेही सम्प्रदाय' के लोक जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव के प्रतीक कहे जा सकते हैं ।

नागौर के हरसोलाव ग्राम में विक्रम संवत् 1840 में हरिजन परिवार में जन्मे महर्षि नवल का भी संत-समाज में महत्वपूर्ण स्थान रहा है । नवल सम्प्रदाय का मुख्य मन्दिर, जोधपुर में बाईजी का तालाब क्षेत्र में है । संत नवल ने 'नवलेश्वर अनुभव वांणी' में सीधी, सरल भाषा में 'राम' नाम की महत्ता को समझाया है । उदाहरण–

साधो भाई ! हम निरगुण दीदारा ।
मैं हूं अनाम नाम में नाहीं, अखै सरूप हमारा ।
मैं अविगत अनादि नाद में नाहीं, सदा अखण्ड निरधारा ।
नांव-नांव मेरे कोई नाही, नहीं धारूं अवतारा ।।

इन सम्प्रदायों के अतिरिक्त मारवाड़ के जनजीवन पर दादू पंथ, रज्जब पंथ, लालदासी सम्प्रदाय, अलखिया सम्प्रदाय प्रभृति विचार-दर्शनों का भी उल्लेखनीय प्रभाव पड़ा ।

जातिगत संकीर्णता से ऊपर उठकर मातृभाव तथा मानवता का सन्देश देने वाले सन्तों में, राजारामजी की भी विशेष महत्ता है । लूनी के समीप शिकारपुरा में, विक्रम संवत् 1939 की चैत्र सुदि नवमी को, साधारण किसान परिवार में उत्पन्न संत राजाराम ने आध्यात्मिक ज्ञानालोक द्वारा लोक-जीवन को दिशा-दिग्दर्शन करवाया । संत राजाराम का मन्दिर शिकारपुरा में स्थित है । संत राजाराम ने आम बोलचाल की भाषा में गहन-गम्भीर ज्ञानामृत लुटाया । काम, क्रोध, लोभ तथा मोह का परित्याग कर, परमात्मा भक्ति में तल्लीन रहने वाले ऐसे महान् संत की वांणियाँ आज भी मानव-जीवन को सदाचार के पथ पर चलने का सन्देश देती हैं । उदाहरण—

सरवर तीर के वृक्ष को काटो मती किसान ।
पंछी बैठे पेड़ पर, सांझ पड़े उड़ आन ।।
पर निंदिया पर धन तजो, तजो पराई नार ।
झूठ बोलणो छोड़कर, सांचा वचन उचार ।।

आधुनिक काल के संत-महात्माओं में बन्जारा जाति में उत्पन्न संत चूनाराम का भी विशेष स्थान है । इनके लिखे 'श्रीवेदान्त प्रश्नोत्तरी' तथा 'श्री अनुभव पदावली' महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं । लोक जीवन को मद्यपान, जुआ, चोरी, वैश्यावृत्ति, हिंसा और माँस भक्षण जैसे दुर्गुणों से बचने का सन्देश देकर मानव सेवा, कर्त्तव्यनिष्ठा तथा भगवद् भक्ति की ओर प्रवृत्त करने में संत चूनाराम ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया । उदाहरण के लिए इनका एक पद देखिए—

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

जगत में सात व्यसन दु:खदाई ।
जो कोई सात व्यसन को भोगे, घोर नरक में जाई ।।
पैला व्यसन है जुआ खेलणा, सुण लो कान लगाई ।।
मदिरा पान व्यसन दूसरा, तीजा मांस को खाई ।।
चोरी करना चौथा गिणलो, हिंसा पांचवीं बुराई ।।
वैश्या संग व्यसन है छट्ठो, यांनै तजदौ भाई ।।
पर-नारी सूं नेह सातवों, अे सातों दुखदाई ।।

संत हरीराम की गणना भी आधुनिक युग के महत्वपूर्ण संतों में होती है। झोरड़ा संभाग में संत हरीराम के विचार-दर्शन का व्यापक प्रभाव देखा जा सकता है। संत हरीराम के मानवसेवी तथा आध्यात्मिकता से परिपूर्ण व्यक्तित्व पर कान-दान 'कलिपत' ने 'श्री हरी लीला इमरत' पुस्तक में प्रकाश डालते हुए लिखा है—

सोवत जागत उठत बैठत, अेकहि रट लगी यहु मेरा ।
खावत पीवत बोलत चालत, पागल ज्यूं क्यूं लेत हिलोरा ।।
और की ठौर पे ढोर क्यूं वैठो, झूठाहि जग निमित्त भर डेरा ।
कान्ह कहे मन मानले मूरख, यां कोऊ नां दिखेऊ रे तेरा ।।

देश, समाज, जाति और धर्म की रक्षार्थ प्राणों की बाजी लगाने वाले योद्धाओं की मान्यताएँ प्रत्येक समाज में होती है। नि:स्वार्थ भाव से लोकसेवा के दुर्गम और कंटकाकीर्ण मार्ग पर चलकर, अजर-अमर हो जाने वाले ऐसे युगपुरुषों के नाम इतिहास में स्वर्णाक्षरों में जगमगाया करते हैं। भारतीय लोकमानस पर लोक देवी-देवताओं का उल्लेखनीय प्रभाव रहा है। सत्य और न्याय की रक्षा के लिए अपने प्राणों को तुच्छ समझने वाले समाज-हितैषी योद्धाओं के समक्ष समाज युगयुगों से श्रद्धावनत होता आया है। राजस्थान की गौरवशाली वसुन्धरा की इन्हीं विशेषताओं को लक्ष्य कर, उचित ही कहा गया है—

केसर नह निपजै अठै, नंह हीरा निपजंत ।
सिर कटिया खग सांभणा, इण धरती उपजंत ।।

लोक देवता पाबूजी द्वारा चँवरी पर फेरे खाते हुए सहायता की याचना पर गौ-रक्षार्थ अपने प्राणों को न्यौछावर कर देने की घटना, कोई साधारण घटना नहीं है। राजस्थान के लोक-देवी-देवताओं का इतिहास ऐसे उदाहरणों से परिपूर्ण है। रामदेवजी, हड़बूजी, मेहाजी, तेजाजी, गोगाजी, मल्लीनाथजी, देवजी, हरष और जीणमाता एक से बढ़कर एक उदाहरण हैं जिन्होंने सत्य, न्याय, परस्पर स्नेह, साम्प्रदायिक सद्भाव, समानता और मानवीय आदर्शों के लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया। लोक-देवी-देवताओं के साहित्य का भी यहाँ के लोक जीवन पर अमिट प्रभाव पड़ा है। इन लोक देवताओं के सम्बन्ध में यह दूहा बहुत प्रसिद्ध रहा है—

पाबू हड़बू रामदे, मांगलिया मेहा ।
पाँचू पीर पधारज्यो, गोगाजी जेहा ।।

मारवाड़ में भक्ति काव्य की परम्परा की अन्य रचनाओं में, चिमनदान कविया

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America, HHFA(USA)

की 'हरिजन मोख्यारथी', 'रामदेव चरित' तथा 'पिछमी पीर रा चाँद', डॉ. नारायण सिंह भाटी की 'मीरां', शिवदानसिंह की 'राजाराम रामायण एवं जीवन चरित्र', डॉ. शक्तिदान कविया की 'करणी शतक' तथा कानदान 'कल्पित' रचित 'श्री हरी लीला इमरत' महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं।

इन रचनाओं के अतिरिक्त मारवाड़ के रचनाकारों ने स्फुट भक्ति काव्य लिखकर भी अपने भक्ति भावों का प्रकाशन किया है। ऐसे असंख्य दूहे, सोरठे, पद, सबद, रमेणी तथा वाणियों से मारवाड़ का भक्ति-भण्डार समृद्ध है। उदाहरण—

तरवर सरवर सन्त जन, चौथो बरसण मेह।
परमारथ रे कारणै, चारों धारै देह॥
सबसों मीठो बोलणो, करणौ पर-उपकार।
नारायण या जगत् में, यह दो बातें सार॥
जसवंत शीशी काँच की, जैसे नर की देह।
जतन करन्ता जावसी, हरि भजि लावा लेह॥
दस दुवार को पींजरो, तामै पंछी पौन।
रहन अचंभौ है जसा, जात अचंभौ कौन॥

इस प्रकार से कहा जा सकता है कि मारवाड़ में सगुण और निर्गुण भक्ति काव्य-प्रणयन की दीर्घकालीन परम्परा रही है। मध्यकाल से लेकर आज तक मारवाड़ में वीर रस का उत्कृष्टतम साहित्य ही नहीं लिखा गया वरन् भक्ति रस का साहित्य-प्रणयन करने की दृष्टि से भी यहां के रचनाकारों ने असाधारण विद्वत्ता का परिचय प्रस्तुत किया है। यहां के मुक्तिकामी भक्तों की भक्ति रचनाएँ निःसन्देह आत्मा और परमात्मा को जोड़ने वाले सेतु के समान हैं। सामाजिक विषमता को पाटने, ऊंच-नीच की दुर्भावना को मिटाने, समस्त जीवों के प्रति समता और ममता के मनोभाव उत्पन्न करने तथा घट-घट में व्याप्त ब्रह्म के मर्म-महत्व को समझाने के लिए मारवाड़ के भक्ति साहित्य का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मारवाड़ियों का बेजोड़ रूप-लावण्य एवं व्यक्तित्व

महीपालसिंह राठौड़

किसी भी समाज के व्यक्तित्व का विश्लेषण करने से पूर्व उसके रूप-रंग और शारीरिक बनावट पर दृष्टिपात करें तो अधिक उचित रहेगा। क्योंकि चरित्र अथवा व्यक्तित्व का आधार मात्र यह मानव देह ही है। वस्तुतः प्रकृति ने मारवाड़ियों को सुन्दर, चित्ताकर्षक देह व रूप-रंग देकर असीम कृपा की है। रूप के पारखी यह भली भांति जानते हैं कि भारतवर्ष में रूप-रंग व शारीरिक सुडौलता की दृष्टि से सुन्दर लोग सौराष्ट्र से लेकर कश्मीर तक विशेष रूप से मिलेंगे पर उनमें भी मारवाड़ के लोगों का रूप तो सुन्दरतम कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

मारवाड़ी पुरुष औसत मध्यम कद वाले होते हैं। वे न तो अमेरिकन के तुल्य अधिक लम्बे और न पिग्मियों की तरह नाटे कद के होते हैं। उनका गेहुँवा अथवा लाल मिश्रित पीतवर्ण रूप-लावण्य का प्रतीक है। फिर उनके श्याम कुन्तल बाल, गोल शिर, मृगनयन, शुक-नासिका, मुक्ता सदृश्य दन्त, छोटी मुँह-फाड़ व ओष्ठ, गोल ठोडी, दबी हुई हिचकी, लम्बी ग्रीवा, भौंहों से भिड़ने वाली बिच्छु के डंक तुल्य काली मूंछें व नारियल जटा-सी लम्बी दाढ़ी, केहरी कटि व छाती, लम्बे हाथ व नीचे का मांसल तंग को विधाता ने बड़ी चतुराई से बनाया है। इन शारीरिक लक्षणों के प्रतीक स्वरूप मुझे स्मरण हो आता है महाकवि कालिदास विरचित 'रघुवंश महाकाव्य' के प्रथम सर्ग के तेरहवें श्लोक का जिसमें राजा दिलीप के शारीरिक लक्षणों के लिए कहा गया है—

> व्यूढोरस्को वृषस्कन्धः शालप्रांशुर्महाभुजः।
> आत्मकर्मक्षमं देहं क्षात्रो धर्म इवाश्रितः॥

(चौड़ी छाती वाले, बैल के कन्धे के समान कन्धे, साल सरीखे ऊँचे, लम्बी भुजा वाले अपने काम के करने में समर्थ देह को धारण किये हुये, जैसे क्षत्रियों का धर्म पराक्रम हो, उसके समान दिलीप हुये।)

जिस प्रदेश के पुरुषों का रूप भी जब इतना मन-मोहक है तब उन माताओं के रूप-लावण्य का तो बखान कहाँ तक करें जिनकी कोख से ऐसी सुडौल सन्तति का जन्म होता है। मारवण, मूमल, सूमल, भारमली, जैसी अनिंद्य सुन्दरियों की कहानियां कपोल-कल्पित नहीं हैं वरन् गाँव-गाँव ऐसी पद्मनियां देखी जा सकती हैं। पूंगलगढ़ की पद्मनियां तो जग-विख्यात रही हैं, जिसका पूर्वी भाग मारवाड़ प्रदेश के अन्तर्गत आता है। ऐसी पद्मनियां जब सोलह शृंगार कर निकलती हैं तो इन्द्र की अप्सराओं के तुल्य प्रतीत होती हैं। यहाँ के नर-नारियों के लिए किसी कवि ने बड़ा उपयुक्त कहा है—

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America : HHFA(USA)

सदा सुरंगी कामण्यां, ओढ़े चंगा वेश ।
बांका भड़ खग बांधणां, अइजो मुरधर देश ।।

*　　　*

गंधी फूल गुलाब ज्यूं, उर मुरधर उद्यांण ।
मीठा बोलण मानवी, जीवण सुख जोधांण ।।

मारवाड़ के नर-नारियों के रूप का जितना बखान करें उतना अल्प रहेगा पर उससे भी अधिक महत्वपूर्ण यहाँ के जनसाधारण का उच्च व्यक्तित्व है । युगों के संस्कारमय जीवन ने मारवाड़-वासियों के व्यक्तित्व को बारीकी से तराशा है । आस्तिक सरल स्वभाव, वचन पालन, आडम्बर शून्यता, अतिथि सत्कार, कुशल व्यवहार, परिश्रमी जीवन और मीठी बोली जनसाधारण मारवाड़ी व्यक्तित्व के अभिन्न अंग हैं । ये सभी लक्षण न्यूनाधिक रूप में सत्पुरुषों के गुणों के नजदीक हैं जैसा कि आदि कवि-कुल-शिरोमणि वाल्मीकि ने कहा है,—"प्रशमश्च क्षमा चैव आर्जवं प्रियवादिता" अर्थात् शान्ति, क्षमा, सरलता और मधुर भाषण—ये सत्पुरुषों के लक्षण हैं । जनसाधारण के व्यक्तित्व स्तर से ऊपर यहाँ के अधिक संस्कार-सम्पन्न समुदायों में व्यक्तित्व का वह उच्च स्तर अभी भी देखने को मिलेगा जो आज के भौतिक व भोग-प्रधान युग में लुप्त प्राय: हो चुका है । जिसका आकलन एक दोहे के द्वारा बहुत भली प्रकार हुआ है—

काछ द्रढ़ा, कर बरसणां, मन चंगा मुख मिट्ठ ।
रण सूरा जग वल्लभा, सो रजपूती दिट्ठ ।।

मारवाड़ी समाज में चोरी और जोरी को 'अमीणी' (कलंक) अथवा सबसे हेय दृष्टि से देखा जाता है । जिस व्यक्ति में ऐसी चारित्रिक दुर्बलतायें हैं उसे समाज सदैव पतित मानता है चाहे वह अरबपति हो या राजमंत्री । आम मारवाड़ी लोगों का चोरी व जोरी विमुक्त व्यक्तित्व उच्च सांस्कृतिक स्तर का परिचायक है । मारवाड़ी व्यक्तित्व की यह खूबी है कि वह घर व खेत में, गाँव अथवा शहर में, मन्दिर अथवा मेले में सभी जगह एक जैसा है । पाश्चात्य जगत् की भांति यहां दोहरा व्यक्तित्व नहीं पाया जाता, जहां जीवन को सार्वजनिक व घरेलू या निजी जीवन की काल्पनिक परिधियों में बांटा गया है । वस्तुत: मनुष्य की समस्त क्रियाओं का योग ही उसका व्यक्तित्व है अत: उसको निजी व सार्वजनिक सीमाओं में बांटना मूर्खतापूर्ण ही नहीं वरन् यह एक बहुत बड़ा धोखा और सीधी-सादी मानवता के साथ कुटिल व्यक्तियों द्वारा ठगी का धन्धा है । घर में चरित्रहीन व लम्पट व्यक्ति सार्वजनिक जीवन में कैसा स्वच्छ, चरित्र व आदर्शवान ? सार्वजनिक या राजनैतिक जीवन में अरबों रुपये का कमीशन, घूंसखोरी, चोरी, डकैती या गबन करने वाला घर अथवा निजी जीवन में कैसा साहूकार और ईमानदार । हमारा व्यक्तित्व एक ही सिक्के के दोनों पक्ष है, जिसे विभक्त नहीं किया जा सकता । हमारे यहां लोक व्यवहार में उसी व्यक्ति को भला कहेंगे जिसका आचरण मनसा, वाचा, कर्मणा श्रेष्ठ हो । इसीलिये कहा गया है—

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मन मैला, तन ऊजळा, बुगला कपटी होय ।
तासूं तो कागा भला, तन-मन एकी होय ।।

वचन पालन मारवाड़ी समाज के व्यक्तित्व का प्रधान गुरग है । रघुवंशियों द्वारा युगोंपूर्व प्रतिपादित इस आर्यावृत देश में "प्राण जाइ पर वचन न जाई" का आदर्श मारवाड़ियों के रोम-रोम में समाया हुआ है । सगाई-विवाह, व्यापार, रुपये, सोना, चाँदी, पशुधन, जमीन-जायदाद आदि सभी लेन-देन केवल जबान पर या मौखिक स्वीकृति पर होते हैं । एक बार कह दिया सो लोहे की लकीर । समाज में ऐसे ही लोगों का यशोगान होता है—

मरद तो जब्बान बंको, कूख बंकी गोरियां ।
सुरहल तो दूधार बंकी, तेज बंकी घोड़ियां ।।

मारवाड़ के सत् पुरुषों के वचन पालन की जीवन घटनायें हमारी संस्कृति और इतिहास की बड़ी महत्वपूर्ण घटनायें बन गई हैं । पाबूजी राठौड़ द्वारा देवल चारणी को दिए वचन, वीर तेजा जी के लाछा गूजरी व विषधर सर्प को दिए वचन, बल्लूजी चांपावत द्वारा अपने पिता गोपीनाथ जी, अमरसिंह जी राठौड़ व उदयपुर महाराणा को दिए वचन, जाम्भोजी द्वारा राव दूदा जी (मेड़ताधिपति) को दिए वचन आदि की कहानियों से मारवाड़ की संस्कृति व इतिहास के प्रेमीजन सुपरिचित हैं । और वे यह भी भली भांति जानते हैं कि मारवाड़ में जगह-जगह वचनसिद्ध महापुरुषों के दृष्टान्त विद्यमान हैं जो मरुवासियों को सतत् प्रेरणा देते रहेंगे ।

अतिथि सत्कार की उत्कृष्ट भावना मारवाड़ियों के व्यक्तित्व में चार चांद लगा देती है । उनका अतिथि सत्कार जग विख्यात रहा है । इसका राज यह है कि मारवाड़ में 'मेह' (वर्षा) तो सबसे कम होती है पर यहां 'नेह' (स्नेह) का सरोवर सदा भरा रहता है । यहां एक लोकोक्ति बड़ी प्रचलित है कि "घरां आयोड़ो और घरां जायोड़ो बराबर हुवे है ।" अर्थात् घर पर आया अतिथि घर के पुत्र-पुत्रिवत होता है ।

अतिथि की आवभगत करना एक पुण्य अर्जित करना है । वैदिक संस्कृति के 'अतिथि देवो भव' की मूल भावना का न्यूनाधिक रूप में यहाँ प्रत्यक्ष प्रमाण मिलेगा । अतिथि के आगमन पर निर्धन से निर्धन व्यक्ति घर में भोज्य सामग्री के उपलब्ध न होने पर आस-पड़ौस से उधार लेकर अपने अतिथि की स्वादिष्ट व्यंजनों से सेवा करेगा । सारी तकलीफें उठाकर भी जब अतिथि विदाई की आज्ञा चाहेगा तो यजमान यही कहेगा कि, मेह और मेहमान कुण के घणां ठहरे ?" अर्थात् हम आपको मेहमानदारी के लिए और रोकना चाहते हैं और आप विदाई लेना ही चाहते हैं । इसके ठीक विपरीत तरस आता है उन पाँच सितारा होटल व महानगरों में बहुमंजिली इमारतों के मालिकों के प्रति जो साधन-सम्पन्न होकर भी अपने यहाँ एक भी अतिथि अथवा असहाय को बिना भरपूर रुपये झड़काये घण्टे भर का विश्राम भी नहीं करने देते । यह धनवानों की संस्कृति है तो वह निर्धनों की । एक कृष्ण पक्ष है तो दूसरा शुक्लपक्ष । एक में स्वार्थ, लोभ, रूखापन व कृतघ्नता है तो दूसरी में परोपकार,

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

त्याग, आत्मीयता, कृतज्ञता और करुणा का सागर लहराता दिखाई देता है।

जिस प्रकार मनुष्य के कर्म उसके व्यक्तित्व को परखने की कसौटी है उसी प्रकार उसकी भाषा-वाणी भी उतना ही सशक्त माध्यम है। किसी देश, प्रदेश की शिष्ट, मीठी बोल-चाल की भाषा, वार्तालाप आदि वहाँ की उन्नत संस्कृति के आधार हैं। मारवाड़ी लोगों की मीठी वाणी विश्व विख्यात है। यहाँ मध्यकालीन सामन्ती युग में राजा-महाराजाओं, राव-उमरावों, जागीरदारों, दीवान व मुस्तदियों, सेठ-साहूकारों, दरबारी कवियों, पण्डितों, चारण, भाटों और मांगणयारों ने दैनिक जीवन में शिष्टाचार, औपचारिकता, अदब और तमीज निर्वाह के लिए जिस मीठी शिष्ट बोली का सृजन किया, वह बेजोड़ है। मीठेपन के साथ-साथ मारवाड़ियों की भाषा बहुत ही मर्यादित है। विश्व की किसी भी भाषा में ऐसी उच्च कोटि की श्रेष्ठताएँ नहीं हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि कई प्रान्तीय और वैदेशिक भाषाएँ ऐसी हैं जिनके सुनने से अजनबी को यह आभास नहीं होता कि वक्ता निवेदन करना चाहता है अथवा वाक्युद्ध। वास्तव में उच्च संस्कारमय परम्परा के अभाव में यह शिष्ट सुललित, मर्यादित और मधुर भाषा-वाणी का गुण किसी भी कौम में कभी स्वतः नहीं आ सकता। इसलिए कहा गया है—

कांसी, कुत्तो, कुभारजा, कर लागां कूकंत।
सीसो सोनो सापुरस, मधुर बाण बोलंत॥

मारवाड़ियों की बोल-चाल की भाषा में दादोसा, बाबोसा, दादीसा, भाभूसा, काकोसा, काकीसा, कँवरसा, नानूसा, मामूसा, नानीसा, मामीसा, लाडेसर, लाडली, बापजी, अन्नदाता, आप पधारो सा, बिराजोसा, जल अरोगावो सा, आराम फरमावो सा, राज पधारचा सोभा होसी सा आदि ऐसी असंख्य कर्णप्रिय शब्दावलियां हैं जो हर आदमी हर दिन विपुलता के साथ प्रयोग करता है। सही बात तो यह है कि अलग-अलग पारिवारिक सम्बन्धों को सम्बोधित करने के लिए इतने अलग-अलग शब्द विश्व के किसी भाषा-साहित्य में नहीं मिलेंगे। अतः इनके समानअर्थी या पर्याय शब्द अन्य शब्दकोषों में अनुपलब्ध हैं। गांव में सभी बड़े-बूढ़ों को सम्मान स्वरूप बाबा व काका शब्दों से सम्बोधित किया जाता है। गांव में जन्मी स्त्रियों को बहन-बेटी तुल्य समझकर उनके पति देवों को बिना किसी विभेद के सभी लोग जंवाई या पावणां (महमान) कह कर पुकारते हैं।

प्रसंगवश मारवाड़ी लोगों की मर्यादित भाषा व वाणी का एक उदाहरण प्रस्तुत करना चाहूंगा जो पर्याप्त ही नहीं वरन् विलक्षण है, विश्व की किसी भी समृद्ध या असमृद्ध भाषा-साहित्य या बोल-चाल की भाषा में ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलेगा।

यहां बोल-चाल की लोक-भाषा में स्त्रियों की एक अवस्था विशेष के लिए 'पग भारी है', 'पेट सूं है', 'आस ठहरगी' आदि बहुत ही मर्यादित शब्दावलियों का प्रयोग होता है। इससे भी बड़ी बात यह है कि अलग-अलग पशुओं में इसी अवस्था विशेष के लिए अलग-अलग शब्द प्रयुक्त किये जाते हैं, उदाहरणार्थ—'घोड़ी सूभर है', 'गाय धीणे हूगी', 'भैंस हरी हुयोड़ी है' आदि। मैं संस्कृति के अध्येताओं से निवेदन करना

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

चाहूंगा कि इस कौम व भाषा के सिवाय विश्व में वह कौन-सी कौम या भाषा है जिसने मर्यादित बोली का इतना उच्च स्तर स्थापित किया हो ? कोई नहीं ।

अन्त में यह कहना समीचीन होगा कि मारवाड़-वासियों का चित्ताकर्षक रूप-रंग, सीधा, सरल, आस्तिक भाव, परिश्रमी पर आत्म-संतोषी जीवन और उसके साथ मीठी कर्णप्रिय मर्यादित भाषा व बोली ने मिलकर उनके व्यक्तित्व को बहुत परिष्कृत कर संवारा है, उजाला है जिसे वर्तमान की पाश्चात्य कलुष से संरक्षित रखना समय की अहम् पुकार है । यह तो मैं अवश्य स्वीकार करूंगा कि देश और विदेशों में गिरते हुए चारित्रिक मूल्यों के साथ-साथ मारवाड़ियों के चरित्र में भी गिरावट आई है पर आम मारवाड़ी अभी भी अपने प्राचीन परम्परावादी आत्म-संयमी जीवन की पटरी से उतरा नहीं है ।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मारवाड़ के वीरों का रण-कौशल

डॉ. हुकमसिंह भाटी

मारवाड़ के राठौड़ों ने अपनी वीरता, रण-कौशल, अतुल साहस, अद्वितीय पराक्रम एवं उदारता आदि क्षत्रियोचित गुणों से जिस इतिहास का निर्माण किया, वह अपने आप में अप्रतिम है। अपने वीरोचित कार्यों के कारण वे भारत में ही नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व के इतिहास में सुविख्यात रहे हैं। अपनी मातृभूमि की अखण्डता व स्वतंत्रता तथा अपने मान-बिन्दुओं (गौ, धर्म, धरा, ध्वज, ब्राह्मण, मन्दिर, नारी, तीर्थ आदि) की रक्षार्थ उन्होंने इस धरती को रक्त-रंजित कर दिया। यहां माताएँ अपने पुत्रों में ऐसे सुसंस्कार निर्माण के लिए उन्हें बाल्यकाल से ही शिक्षा देती हुई कहती हैं—

इळा न देणी आपणी, हालरियां हुलराय।
पूत सिखावे पालणे, मरण वड़ाई मांय।।
धरम जातां धरा पळटतां, त्रिया पड़तां ताव।
अैं तीनूं दिन मरण रा, कहा रंक कहा राव।।

जेम्स टॉड जैसे सुप्रसिद्ध विदेशी इतिहासकार ने राठौड़ों को विश्व की सबसे बहादुर व शूरवीर कौम के रूप में सम्बोधित किया है। उसका यह कहना, "There is not a petty state in Rajasthan that has not had its Thermopolye and scarcely a city that has not produced its Leonidas" मारवाड़ की वीर प्रसविनी धरा की ओर विशेष इंगित करता है। मेरे विचार से टॉड महोदय 'नगर' शब्द की जगह गांव और झोंपड़ी शब्दों का प्रयोग करते तो और भी अधिक सही होता जैसा कि किसी कवि ने भी कहा है—

धोरां घाट्यां ताल रो, आंटीलो इतिहास।
गांव-गांव थरमापली, घर घर ल्यूनीडास।।

वस्तुतः मारवाड़ के वीर सपूतों ने धर्म युद्ध को जीवन में सबसे मंगलकारी अवसर के रूप में स्वीकारा तथा खाट की मौत को अपकीर्ति दायक माना। वे सदैव कहा करते थे—

सूर न पूछे टीपणौ, सुकन न देखे सूर।
मरणां ने मंगल घिणे, समर चढ़ै मुख नूर।।

साथ ही उनकी गीताकार के इस शाश्वत संदेश में पूरी आस्था व निष्ठा थी कि—

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयं।। गीता 2/37

(या तो तू युद्ध में मारा जाकर स्वर्ग को प्राप्त होगा अथवा संग्राम में जीतकर पृथ्वी

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

का राज्य भोगेगा। इस कारण हे अर्जुन ! तू युद्ध के लिये निश्चय करके खड़ा हो जा।) यहां मैं एक उदाहरण प्रस्तुत करना चाहूंगा जब मारवाड़ के राजाधिराज अभयसिंह ने विद्रोही सरबुलन्दखां का दमन करने के लिए अपने सामन्तों से राय चाही। तब सामन्तों का प्रत्युत्तर इस प्रकार था, "मैं सबसे पहिले रणभूमि में अपना जीवन देकर अप्सराओं की वर माला को ग्रहण करने की अभिलाषा करता हूं। आओ, मेरे शरीर को लाल रंग के वस्त्रों से शोभायमान करो, पीछे शत्रुओं के रुधिर से तलवार और भालों को रंगकर सरबुलन्द का मस्तक लेकर क्रीड़ा करूंगा। जेतावत फतेसिंह और करणोत अभयकर्ण ने जोधा नेता की इस युक्ति को भली भाँति से समर्थन दिया, समस्त वीर एक स्वर से युद्ध ! युद्ध ! कहकर चिल्ला उठे। कोई-कोई वीर लाल वस्त्रों को धारण करके मानों सूर्य लोक के जीतने को तैयार हुए। ऊँचे स्वर से चांपावत कर्णसिंह ने कहा, "अप्सरागण अमृत के पूर्ण पात्र हाथ में लिये सूर्यलोक में हमारे साथ आदर सहित सम्भाषण करेंगी। प्रत्येक राजपूत सामन्त और समस्त कवियों ने एक स्वर से कहा—'युद्ध ! युद्ध !' इसके पीछे बख्तसिंह ने उठकर अपने भाई अभयसिंह और सामन्तों को बुलाकर कहा कि, "आप लोग इस स्थान पर विश्राम करिये, मैं अकेला ही सबसे पहले सेना को चलाकर सरबुलन्द के अहंकार को चूर्ण करता हूं। आप इन्हीं डेरों में विश्राम कीजिये।" तुरन्त ही एक बड़े पात्र में लाल जल लाया गया, वह पात्र मारवाड़ के महाराज के सम्मुख रखा गया। अभयसिंह ने उस पात्र में से जल लेकर उन बैठे हुए वीरों के ऊपर उसे छिड़कते हुए कहा, "इस युद्ध में प्राण त्याग करने से अवश्य ही अमरपुर में जाना होगा।"[1] यहाँ तक कि उन्होंने कविकुलशिरोमणि कालिदास द्वारा प्रतिपादित 'क्षत्रिय' शब्द की परिभाषा—

क्षतात्किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः।
राज्येन किं तद्विपरीतवृत्तेः प्राणैरुपक्रोशमलीमसैर्वा ।। रघुवंश ।। 2/53

(उन्नत जो क्षत्रिय वर्ण शब्द का वाचक क्षत्र शब्द है सो 'क्षत अर्थात् नाश से जो बचावे वह क्षत्रिय कहलाता है' इस व्युत्पत्ति से संसार में 'पङ्कज' की तरह योगरूढ़ि से प्रसिद्ध हैं, अतः उस क्षत्र शब्द से विपरीत व्यापार करने वाले अर्थात् नाश से नहीं रक्षा करने वाले पुरुष का राज्य और अपकीर्त्ति से मलिन हुए प्राण ये दोनों व्यर्थ हैं) को अपने जीवन में पग-पग पर चरितार्थ कर दिखाया। मारवाड़ की रक्षार्थ व अपनी आन-बान के लिए जीवन पर्यन्त युद्ध करने वाले राव चूण्डा, रिड़मल, जोधा, सातल, मालदेव, दूदा, जयमल, जैता-कूंपा, चन्द्रसेन, सूरसिंह, सलखा, जसवन्तसिंह, अमरसिंह, दुर्गादास, कल्लारायमलोत, वीरमदेव, अभयसिंह, बखतसिंह, बल्लूजी आदि सपूतों को कौन नहीं जानता ? राठौड़ों ने अपने जीवनकाल में यों तो असंख्य लड़ाइयां लड़ीं हैं पर भारतवर्ष के लोमहर्षक युद्धों में उनकी अग्रणी भागीदारी और अनुपम रण-कौशल से उनकी ख्याति देश भर में फैल गई। जेम्स टॉड का यह कहना बहुत प्रास-

---

1 जेम्स टॉड, राजस्थान का इतिहास, जिल्द तृतीय, अनु. बलदेवप्रसाद मिश्र, पृ. 180-81

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

गिक लगता है कि "·····कुछेक राठौर वीरों ने उस उखड़े हुए वंशवृक्ष को भारत के रेगिस्तान में फिर लगाया। वह फिर लगाया हुआ राठौरों का वंश वृक्ष मरुभूमि की परम बालू के ऊपर थोड़े ही समय में सजीव हो उठा और उसकी बड़ी-बड़ी शाखाओं ने चारों ओर फैलकर राठौरों के गौरव को पुनः प्रकाशित कर दिया।"[1]

राठौड़ वीरों ने समय व परिस्थितियों के अनुसार युद्ध पद्धति को अपनाया, खुले मैदान में आमने-सामने लड़कर अपनी तलवार की तेज़ धार से शत्रुओं के मस्तक को धड़ से अलग किया और भाले की तीखी नोंक से प्रहार कर विपक्षियों को मृत्यु की गोद में सुलाया।

उन्होंने विकट से विकट परिस्थितियों में कभी भी युद्ध की भारतीय पौराणिक मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं किया, जैसा कि मुगल और अन्य विदेशी आक्रान्ताओं ने किया था। विदेशी आक्रान्ताओं की यह मान्यता है कि "Everything is fair in Love and War" अथवा "काफिरों को मारो" यहाँ की युद्ध मर्यादाओं के समक्ष बहुत घिनौनी प्रतीत होती है। मारवाड़ के वीरों ने कभी भी असहाय, निहत्थे, आत्म-समर्पित व शरणागत पर वार नहीं किया। शत्रु को छल-कपट या धोखा देकर विजित करने का प्रयास निन्दनीय समझा गया। उन्होंने शत्रु नारियों पर न हाथ उठाया और न कभी उनके पूजा स्थलों को खण्डित किया। इस प्रकार मरुधरा के रण-बांकुरे रामायण तथा महाभारत कालीन युद्ध नियमों, मर्यादाओं और परम्परा का अक्षरसः पालन करते रहे हैं।

वैदिक काल से लेकर अद्यावधि विश्व में वीरों की कोई गणना नहीं। पर सिर कटने पर भी तलवार चलाते शत्रुओं का संहार करते रहने का विलक्षण उदाहरण विश्व में अन्यत्र दुर्लभ है। हाँ! मारवाड़ के सैकड़ों गांवों में इस प्रकार के जुंझार हुए हैं जिनके स्मारक विद्यमान हैं और वे कोटि-कोटि लोगों के पूजनीय हैं। इसलिये मारवाड़ की संस्कृति को कभी-कभी 'जुझारु संस्कृति' के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इस सम्बन्ध में कवि के निम्नलिखित भाव दृष्टव्य हैं—

केसर नह निपजै अठै, नह हीरा निपजंत।
सिर कटियां खग सांभणा, इण धरती उपजंत॥

मारवाड़ में यह घटना सर्व विदित है कि एक बार दिल्ली के बादशाह ने सिर कटने पर भी तलवार चलाकर जंग करते रहने का प्रत्यक्ष प्रमाण चाहा। जिस पर रोहिन्डी (जिला-नागौर) के ठाकुर ने इस चुनौती को सहर्ष स्वीकार कर सिर कटने के उपरान्त सैकड़ों तुर्कों को मक्का पहुंचा दिया। इसकी स्मृति में निम्नलिखित दोहा कहा गया है—

दिल्ली सराया पातशाह, रोहिन्डी रजपूत।
मक्का गणां की मैल दी, तुरकां की ताबूत॥

---

1 जेम्स टॉड, राजस्थान का इतिहास, जिल्द तृतीय, अनु. बलदेवप्रसाद मिश्र, पृ. 12

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मारवाड़ के राठौड़ों के रणकौशल का इतिवृत्त पराक्रमी राव सीहा की प्रबल भुजाओं से प्रारंभ होता है जिसने आतताइयों से लोहा लेकर 9 अक्टूबर 1273 ई. को अपने प्राण न्यौछावर किये। पाली से चौदह मील उत्तर-पश्चिम में बीठू गांव के पास खड़ी देवली (स्मारक) आज भी उस वीर की याद दिलाती है। उसमें अश्वारूढ़ राव सीहा को शत्रु की छाती में भाला मारते हुए दिखाया गया है। इस भाले को उसके वंशजों ने सम्भाला और सैकड़ों लड़ाइयां लड़ राठौड़ राज्य स्थापित करने के उस सपने को साकार किया जिसे सीहा ने कभी सोचा था।

खानवा के संग्राम में राठौड़ों की भूमिका

राणा सांगा व बाबर के बीच 17 मार्च 1527 ई. को खानवा के रणक्षेत्र में घमासान युद्ध हुआ। राणा के सहायतार्थ राजपूताने के अनेक राजाओं एवं प्रतिष्ठित सरदारों ने युद्ध में भाग लिया, जिसमें जोधपुर के राव गांगा व मेड़ता के राव वीरमदे का नाम विशेष उल्लेखनीय है। गांगा और वीरमदे क्रमश: 3000 व 4000 सैनिकों सहित राणा सांगा की सहायतार्थ गये। बाबर के पास बहुत बड़े तोपखाने के अतिरिक्त युद्ध कौशल की नवीन जानकारी होने से राजपूतों को परास्त होना पड़ा परन्तु राठौड़ों ने इस युद्ध में अपनी तलवार के जौहर दिखाने में कोई कमी नहीं रखी। युद्ध में वीरमदे के अनुज रायमल व रतनसिंह ने बड़ा पराक्रम दिखाया और वे दोनों वीर शत्रुओं का संहार करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए जिसका यशगान एक कवि ने निम्न प्रकार से किया है—

विहंसी बिड़देत कमंध अतली बल,
लहो छत्तीसां भुजां बललेव।
राजा रावल राण मुरड़ता,
दोयण हट किया वीरमदेव ।। 1 ।।
पत मेड़तो समर पतसांह,
अरियां मुंह मोड़तां उखेद।
वीरमदेव आवतां वांसे।
उमरावां पावी उम्मेद ।। 2 ।।
द्राटक धर खाटक दूदावत,
धड़च मुगल मार खमधार।
दशशंसां नोशंस दुसङ्गल,
वीसशंस हुवो तिणवार ।। 3 ।।
जोधहरी जोधरिण जूटो,
जवानां ऊबल तो जमजाल।
पीले खाल हूत पालट तां,
राव राठौड़ थियो रिछपाल ।। 4 ।।
खन रायमल वन्धवर है रिण,
समवड़ भूप दाख्यो ओ शाप।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

सांगे राण कुशल घर आवे,
योह वीरमदे तणो प्रताप ।। 5 ।।

राठौड़ों का कामरां से युद्ध

बाबर की मृत्यु होने पर उसका राज्य उसके पुत्रों में विभाजित हो गया । कामरां ने लाहौर को अपने अधिकार में कर स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की । उसने एक बड़ी फौज के साथ मारवाड़ की ओर प्रस्थान किया । सतलज को पार कर मुगल सेना ने भटनेर (हनुमानगढ़) का घेराव किया । भटनेर उस समय खेतसी (कांधल के पुत्र) के अधिकार में था, वह मुगलों की अधीनता स्वीकार करने से इन्कार कर युद्ध करने को उद्यत हुआ । तीर और तोपों की वर्षा करते हुए जब मुगलों ने कोट की दीवार पर चढ़कर भीतर प्रवेश करने का प्रयास किया तो खेतसी द्वार खोलकर उन पर टूट पड़ा और अपने कई योद्धाओं के साथ लड़ता हुआ मारा गया । वहां से कामरां ने बीकानेर जाकर अपना डेरा डाला और बीकानेर राव जेतसी को अधीनता स्वीकार करने के लिए कहा, इस पर जेतसी ने अपना दूत भेजकर कामरां को कहलवाया, "जिस प्रकार मेरे वंश के मल्लीनाथ, सातल, रणमल, जोधा, बीका, दूदा, लूणकर्ण, गांगा आदि ने मुसलमानों का गर्व भंजन किया था, उसी प्रकार मैं भी तेरा नाश करूगां।" कामरां ने आगे बढ़कर बीकानेर के गढ़ पर अधिकार कर लिया परन्तु जेतसी ने एक बड़ी सेना एकत्रित कर अपने भाइयों तेजसी, रतनसी, नेतसी, रामसी एवं अपने कई सरदारों सहित 26 अक्टूबर 1534 ई. को रात्रि के समय मुगलों की सेना पर आक्रमण कर दिया । राठौड़ों के इस प्रबल हमले का सामना मुगल नहीं कर सके और उन्हें गढ़ छोड़कर भागना पड़ा । जेतसी की यह विजय राठौड़ों के इतिहास में चिरकाल तक अमर रहेगी । उसने रात्रि में अचानक हमला कर बड़ी ही सूझ-बूझ का परिचय दिया ।

सुमेल-गिर्री के युद्ध में राठौड़ों का रण-कौशल

1543 ई. के नवम्बर मास में शेरशाह सूरी ने मारवाड़ पर आक्रमण करने के लिये प्रस्थान किया । 5 जनवरी 1544 ई. को सुमेल नाला के तट पर मारवाड़ और शेरशाह की सेनाओं के बीच घमासान युद्ध हुआ । यद्यपि अपने सरदारों के प्रति संदेह हो जाने से राव मालदेव ने रणक्षेत्र से पलायन कर लिया परन्तु उसके स्वामीभक्त सरदारों जैता व कूंपा ने विपक्षियों से युद्ध कर रणकुशलता का असाधारण परिचय दिया । उन्होंने एक बार तो शेरशाह की सेना के छक्के छुड़वा दिये परन्तु विशाल फौज के आगे उन्हें सफलता नहीं मिली और वे कितने ही राठौड़ों के साथ वीरगति को प्राप्त हुए । इस युद्ध में जैता व कूंपा के अतिरिक्त वेरसी, जयमल बीदावत, खेमकर्ण उदावत, जयसी उदावत, पचायण करमसोत, सुरताण, बीदा-बाला वत, भारमलोत, रायमल अखैराजोत, भवानीदास, हमीर सीहावत, भोजा पंचायणोत, हरपाल, उदयसिंह जैतावत, भदा पंचायणोत आदि अनेक राठौड़ योद्धा रणक्षेत्र में खेत रहे, फिर शेरशाह ने अग्रसर होकर जोधपुर किले पर जब अधिकार किया उस समय शंकर उदावत, अचला शिवराजोत, त्रिलोक-सी वरजांगोत, राणा वीरमोत, सींघण

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

खेतसीग्रोत, पता दुर्जनसालोत ग्रादि ग्रनेक राठौड़ गढ़ के रक्षार्थ लड़ते हुए काम ग्राये।

हुसैन कुली की जोधपुर पर चढ़ाई

राव मालदेव के उत्तराधिकारी राव चन्द्रसेन ने ग्रकबर की ग्रधीनता स्वीकार नहीं की, इसलिए ग्रकबर ने 1565 ई. में हुसैन कुली की ग्रध्यक्षता में एक विशाल सेना जोधपुर पर भेजी। चन्द्रसेन ने पहले ग्रागे बढ़कर हुसैन कुली खां से युद्ध किया, परन्तु खुले मैदान में युद्ध करने में उसे कोई सफलता नहीं मिली, तब उसने पलायन कर जोधपुर के दुर्ग में रहकर उससे युद्ध करने का निश्चय किया। यद्यपि ग्रकबर-नामा के लेखक ग्रबुल फजल ने तो यह लिखा है कि कुछ समय में ही जोधपुर दुर्ग को जीत लिया गया, परन्तु स्थानीय ख्यातों के ग्रध्ययन से पता चलता है कि छः माह तक घेराव रहा ग्रौर राठौड़ बड़ी कुशलता से ग्रपने गढ़ की रक्षा में सफल हुए। ग्राखिरकार किले पर से पत्थर, गोले इत्यादि बरसाकर राठौड़ों ने कई मुगलों का विनाश किया। ग्रन्त में जब गढ़ में खाद्य सामग्री ग्रौर गोला बारूद का ग्रभाव हो गया तो राव चन्द्रसेन किला छोड़ने के लिए मजबूर हो गया। इस ग्रभियान में किशनदास दुर्जनसालोत, वैरसल पातावत, बीजा वीरमोत, सूरा गांगावत, राणा उदावत ग्रादि ग्रनेक राठौड़ योद्धा गढ़ के रक्षार्थ लड़ते हुए काम ग्राये।

चित्तौड़ के तीसरे साके में राठौड़ों की भूमिका

चित्तौड़ के तीसरे साके (1567 ई.) में विशेषरूपेण राठौड़ों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। जयमल मेड़तिया राठौड़ ने दुर्गाध्यक्ष के रूप में जो भूमिका निभाई, वह इतिहास में सदा ग्रमिट रहेगी। करीब छः महीने तक चले संघर्ष में जयमल राठौड़ ने बड़ी कुशलता से विपक्षियों का सामना कर ग्रसाधारण साहस का परिचय दिया ग्रौर ग्रन्त में वह मुगलों से लड़ता हुग्रा काम ग्राया। इस ग्रभियान में प्रताप, ग्रर्जुन, रूपसी, करमचन्द ग्रादि कितने ही शूरवीर मेड़तिया राठौड़ों ने ग्रपने प्राणों की ग्राहुति दी। राठौड़ जयमल ग्रौर उसके बहनोई पत्ता सीसोदिया के ग्रनुपम परा-क्रम ग्रौर शौर्य से मुग्ध होकर सम्राट ग्रकबर ने उन दोनों की गजारूढ़ पाषाण मूर्तियों का निर्माण करवा के ग्रपने किले के मुख्य द्वार पर स्थापित किया। काउंट नोग्रर ने जयमल के ग्रद्‌भुत शौर्य से प्रभावित होकर उसे 'चित्तौड़-केसरी' (Lion of Chittor) की संज्ञा दी। प्रसिद्ध इतिहासकार कर्नल टॉड जयमल की वीरता, साहस ग्रौर स्वामी-भक्ति से बहुत प्रभावित हुग्रा, उसने ग्रपनी एनॉल्स में लिखा है—

"परन्तु मेवाड़ के इतिहास की विपत्तियों के विवरण से भरे हुए पन्नों में सबसे ग्रधिक प्रकाशमान नाम बदनोर के जयमल (राठौड़) एवं केलवा के पत्ता के हैं, जो मेवाड़ के उच्च श्रेणी के सोलह उमरावों में से थे तथा जिनके नामों को प्रत्येक चारण ग्रौर सच्चे राजपूत पवित्र मानते हैं ग्रौर जिनको स्वयं ग्रकबर ने ग्रपनी लेखनी से ग्रजर-ग्रमर कर दिया है। इसमें प्रथम (जयमल) मारवाड़ की वीर शाखाग्रों में सबसे ग्रधिक बहादुर राठौड़ों की मेड़तिया शाखा के थे ग्रौर दूसरा (पत्ता) चूण्डावतों की एक प्रधान शाखा जगावतों के मुखिया थे। जयमल ग्रौर पत्ता के नाम घर-घर में

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

सुविख्यात हैं, जिनको मेवाड़ से कभी पृथक नहीं किया जा सकता और जब तक राजपूतों के पास उनके पूर्वजों की सम्पत्ति का कुछ भी अंश अथवा पुरातन घटनाओं की कुछ भी यादें शेष रहेंगी तब तक उनके नाम बड़े सम्मान व गौरव के साथ स्मरण किये जायेंगे ।''

हल्दीघाटी के युद्ध में राठौड़ों का युद्ध-कौशल

मारवाड़ के राठौड़ वीर मेवाड़ के युद्ध अभियानों में भी पीछे नहीं रहे । हल्दीघाटी का युद्ध और मेवाड़ महाराणा की ओर से लड़े जाने वाले अनेक युद्धों में भाग लेकर अपनी तलवार के चमत्कार दिखाए । सम्राट अकबर के विरुद्ध 18 जून 1576 ई. को लड़े जाने वाले हल्दीघाटी के प्रसिद्ध युद्ध में रामदास मेड़तिया व उसके पुत्र किशनदास ने अद्भुत वीरता का परिचय दिया था । अंत में रामदास मेड़तिया कछवाहा जगन्नाथ के हाथों मारा गया । रामदास के साथ अनेक राठौड़ वीर काम आये । रामदास के लिये कवि केसरीसिंह बारहठ ने लिखा है--

जयमल सुत सप्तम जुरचो, हरदी थाट हरोल ।
मरचो गिरचो तउ बीसरचो, नहिं उदारता कोल ।।

शाही चढाइयों में राठौड़ों की रणकुशलता

मोटा राजा उदयसिंह (जोधपुर) द्वारा अकबर की अधीनता स्वीकार किये जाने पर मुगल व राठौड़ों के बीच युद्धों का दौर समाप्त हो गया, फिर तो जोधपुर व अन्य राठौड़ शासकों ने शाही सेवा में रहकर, की जाने वाली विभिन्न शाही चढ़ाइयों में भाग लिया और रणकुशलता के अद्भुत उदाहरण भारत के इतिहास में प्रस्तुत किये ।

1584 ई. में जब गुजरात के बागी मुजफ्फर खां पर सेना भेजी गई तो उसमें मोटा राजा ने भाग लिया । महाराजा सूरसिंह ने दक्षिण के अभियानों में भाग लेकर रणकुशलता का परिचय दिया और विशेष ख्याति अर्जित की । इसी प्रकार सूरसिंह के उत्तराधिकारी गजसिंह ने बागी खुर्रम पर चढ़ाई कर अपनी वीरता का परिचय दिया और दक्षिण में रहकर उसने अनेक युद्धों में भाग लिया । इन युद्धों में मेड़तिया, चांपावत, कूंपावत आदि अनेक राठौड़ों ने प्राणों की आहुति देकर अपनी स्वामीभक्ति का परिचय दिया ।

बीड़ की लड़ाई में राठौड़ों की भूमिका

बीड़ शहर पर शेर ख्वाजा का अधिकार था । वहां 1599 ई. में हब्शियों ने आक्रमण कर दिया । शेर ख्वाजा ने उनका साहसपूर्वक सामना किया और शाही सेना की ओर से मुख्यरूपेण मेड़तिया राठौड़ों ने बड़ी वीरता से युद्ध किया । मेड़ता के राव केशवदास और गोपालदास ने अद्भुत वीरता का परिचय दिया । और अंत में नरबद, प्रयागदास, उग्रसेन, नरसिंघदास, देवीदास आदि अनेक राठौड़ों के साथ वीरगति को प्राप्त हुए ।

उपद्रवी कोलियों का दमन

1605 ई. में जब गुजरात के उपद्रवी कोलियों ने सिर उठाया तो महाराजा

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

सूरसिंह ने उन पर चढ़ाई की। चांपावत, कूंपावत, मेड़तिया आदि राठौड़ों ने मांडव के निकट शिविर डालकर कोलियों पर आक्रमण किया। राठौड़ों के तेज हमले के आगे वे नहीं टिक सके और उन्हें परास्त होकर भागना पड़ा। इसमें हरिसिंह चांदावत, दलपत चांदावत और सगतसिंह मेड़तिया के अलावा अनेक दूसरे राठौड़ भी काम आये।

दौलताबाद का घेराव

जोधपुर राठौड़ राजाओं की तरह बीकानेर के राठौड़ नरेशों ने भी शाही सेवा में रहकर रणकुशलता के अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत किये। शाहजहाँ ने 1632 ई. में महावत खां की नियुक्ति दक्षिण में की। बीजापुर के आदिलशाह ने जब रणबाजखां को मुगल सेना का सामना करने के लिए दौलताबाद की ओर भेजा तो फतह खां ने घबराकर महावत खां से सहायता मांगी, इस पर रतलाम के राठौड़ महेशदास के अतिरिक्त अनेक दूसरे राठौड़ों ने भी इस अभियान में भाग लिया। दौलताबाद का किला बहुत सुदृढ़ था। सुरंग लगाकर दीवारें तोड़ी गईं, फिर भीषणतम आक्रमण किया गया जिसमें वृन्दावनदास, चतुरसिंह, भीम आदि मेड़तिया राठौड़ वीरता से लड़ते हुए काम आये। इसके बाद जब परेंडे के किले का घेराव किया गया उस समय बीकानेर के महाराजा कर्णसिंह ने शाही सेना की ओर रहकर शत्रुओं को खदेड़ने में सफलता प्राप्त की।

नागोर के राव अमरसिंह राठौड़ ने अपनी तलवार के चमत्कार दिखाकर राठौड़ शौर्य का सिक्का जमाया था। राठौड़ योद्धाओं ने उनके नेतृत्व में रहकर शाही चढ़ाइयों में भाग लिया और काबुल के अभियान (1641 ई.) व ईरान के बादशाह के विरुद्ध लड़े गये युद्धों में रणकुशलता के अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत किये। अन्त में वह 25 जुलाई 1644 ई. को अपने गौरव रक्षा हेतु शाही दरबार में जूझता हुआ परमेश्वर की ज्योति में लीन हुआ। उनकी शूरवीरता व स्वाभिमान पर पर्याप्त काव्य सृजित हुआ है जिसमें से केवल दो दोहे ही यहां पर्याप्त होंगे -

उन मुख सूं गगो कह्यो, इन हत्थ लई कटार।
वार कहण पायो नहीं, जमदढ़ हो गई पार॥

* *

पाव मेर लोह से हलाई सारी पातसाही।
होती शमशेर तो छिनाय लेतो आगरो॥

धरमत के युद्ध में राठौड़ों की भूमिका

उज्जैन में लड़े जाने वाले धरमत के प्रसिद्ध युद्ध में राठौड़ों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। शाहजहाँ और औरंगजेब के बीच लड़े जाने वाले इस युद्ध में जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह और रतलाम के राठौड़ राजा रतनसिंह ने शाहजहाँ का पक्ष लिया। 15 अप्रेल 1658 ई. को दोनों सेनाओं में भीषण युद्ध हुआ उसमें महाराजा जसवन्तसिंह शत्रु सेना के बीच घिर गये, ऐसी स्थिति में राठौड़ सरदारों ने अपना पूरा जोर महाराजा की रक्षा करने में लगा दिया और युद्ध क्षेत्र से उन्हें विलग करने

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

में जुट गये। इसके बारे में यह प्रसिद्ध है--

ओछी वाढो ने, जसराज ने काढो।

राठौड़ वीर आसकरण और महेशदास ने आगे बढ़कर महाराजा जसवंतसिंह के घोड़े की बागें पकड़ीं और महाराजा को बलात् युद्ध क्षेत्र से निकाल ले गये, तत्पश्चात् राठौड़ सेना के सेनापतित्व का भार रतनसिंह ने अपने कंधों पर लिया। वह शाही सेना के साथ अपने जीवन के अन्तिम युद्ध करने को आगे बढ़ा। रतनसिंह अलौकिक वीरता और अद्वितीय साहस के साथ शत्रुओं पर टूट पड़ा। उसके कई घोड़े बारी-बारी से घायल होकर रणक्षेत्र में गिर पड़े, अन्त में घावों से जर्जित होकर रतनसिंह भी धराशायी हुआ और इसके साथ ही युद्ध का अन्त हो गया। रतनसिंह के अद्भुत साहस व शौर्य को देखकर डिंगल (राजस्थानी) भाषा के दो महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखे गये—रतनरासौ (कुम्भकरण) और राठौड़ रतनसी री वचनिका (जग्गा खिड़िया)। इस युद्ध में निम्नलिखित राठौड़ों ने प्राणों की आहुति देकर कर्त्तव्यपरायणता का परिचय दिया—

चांपावत —वीठलदास गोपालदासोत, गिरधरदास मनोहरदासोत, दयालदास सुरजमलोत, भींव वीठलदासोत, बीजेराम हरीदासोत, नरसिंघदास अमरौ सुरजनोत, रामचन्द नरहरदासोत, लिखमीदास जोगीदासोत, कीरतसिंघ मानसिंवोत।

कूंपावत —किलांणदास बैरीसालोत, अमरो हरीदासोत, लाडखांन जैसिंघोत, खेतसी बलुवोत, भावसिंघ किशोरदासोत, दुवारकादास लाड़खानोत।

ऊदावत —बलरांम दयालदासोत, कुम्भकरण बलरामोत, वीरमदे मुकन्ददासोत, सूरदास वेणीदासोत, देवीदास सूरदासोत, आसकरण बलरामोत।

जैतावत —करण सुजाणसिंघोत, जोगराज कुम्भकरणोत, ऊदैभाण भगवानदासोत, कांनो गोयंददासोत।

करमसोत —पृथ्वीराज दलपतोत, जैतसी मुकंददासोत, गोरधन माधोदासोत, इन्द्रभाण सबलसिंघोत, गिरधरदास माधोदासोत।

मेड़तिया —सबलसिंह उदयसिंहोत, गोपीनाथ गोकलदासोत, मुरारदास गोयंददासोत, गिरवरदास सुजाणसिंहोत, कल्याणदास मोहणदासोत, विजयसिंह रामसिंहोत, हिन्दूसिंह नेतसिंहोत, नाथूसिंह जगतसिंहोत, पृथ्वीसिंह श्यामसिंहोत।

जोधा —परतापसिंह करमसिंहोत, जगतसिंह देईदासोत, रतन गोपालदासोत, ईसरदास माहासिंहोत, वीरमदे मोहणदासोत।

भादावत —पूरणमल जसावत, गोयंददास मानावत, गोवरधन भगवानदासोत, बिहारीदास केसोदासोत।

ऊहड़ —मेघराज उरजनोत, नारायणदास गोयंददासोत।

पातावत —भगवानदास मांडणोत, भगवानदास सकतावत, तोगो रामदासोत, जगन्नाथ चांदावत।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

रूपावत —सबलसिह, ग्रासकरण पुरावत ।
पूरबीया —उदैसिह बाजखानोत ।
महेचा —मनोहरदास केसोदासोत ।
भींवोत —ग्रमरो सुजावत, रूपसी सुजावत, लघो लिखमीदासोत ।

धरमत के युद्ध में ग्रतुल पराक्रम प्रदर्शित करने वाले बीकानेर के महाराजा कर्णसिह के तीसरे पुत्र पद्मसिह का नाम विशेष उल्लेखनीय है । उसने ग्रपने पिता कर्णसिह ग्रौर ग्रपने भाई ग्रनूपसिह के साथ रहकर दक्षिण के युद्ध ग्रभियानों में कई बार वीरता के जौहर दिखलाये ।

1672 ई. में पद्मसिह का छोटा भाई मोहनसिंह शहजादे मुग्रज्जम के साले मुहम्मदशाह मीर तोजक के साथ लड़ता हुग्रा ग्रौरंगाबाद में मारा गया तब पद्मसिह ने दीवानखाने में पहुंच कर इतनी जोर से तलवार से प्रहार किया कि दीवानखाने का खंभा टूट गया ग्रौर मुहम्मदशाह उसकी तलवार का शिकार बना । पद्मसिंह ने बड़ी फूर्ति से उस पर प्रहार किया, इस पर किसी कवि ने यह सोरठा कहा—

एक घड़ी ग्रालोच, मोहन रे करतो मरण ।
सोह जमारो सोच, करता जातो करण वत ।।

इसका ग्राशय यह है कि मोहनसिह के मरण पर यदि एक घड़ी भर भी विचार करता रह जाता तो हे करणसिह के पुत्र, तेरा सारा जीवन सोच करते ही व्यतीत होता ।

दक्षिण में ताप्ती नदी के तट पर मराठों से युद्ध कर सावतराय ग्रौर जादूराय नामक मराठा वीरों को कई ग्रादमियों सहित मारकर 14 मार्च 1683 ई. को परलोकगामी हुग्रा । उसके वीरतापूर्वक युद्ध कर प्राणोत्सर्ग करने पर स्वयं बादशाह ने फरमान भेजकर महाराजा ग्रनूपसिंह के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए लिखा "पद्मसिंह जो ग्रपने सहयोगियों में सर्वश्रेष्ठ ग्रौर उमरावों में शिरोमणि था, राजभक्ति एवं ग्रनुपम वीरता के साथ युद्ध करता हुग्रा रणक्षेत्र में वीरगति को प्राप्त हुग्रा, यह समाचार सुन हमें बड़ा भारी दुःख हुग्रा है, परन्तु उस स्वार्थत्यागी वीर ने ग्रपने सम्राट के लिए युद्ध क्षेत्र में प्राण त्याग किया है ग्रतः उसकी मृत्यु धन्य है ग्रौर गौरवपूर्ण हुई है ।" कर्नल पॉलेट ने लिखा है "पद्मसिह बीकानेर का सर्वश्रेष्ठ वीर था ग्रौर जनता के हृदय में उसका वही स्थान है, जो इंग्लैण्ड की जनता के हृदय में 'रिचर्ड डी लायन हार्टेड' (सिंह हृदय रिचर्ड) का है ।"

उसकी तलवार 8 पौंड वजन की, 3 फुट 11 इंच लम्बी व $2\frac{1}{2}$ इंच चौड़ी है, उसके शस्त्राभ्यास का खांडा 25 पौंड वजन का, 4 फुट 6 इंच लम्बा, $2\frac{1}{2}$ इंच चौड़ा है, जिसको ग्राजकल का पहलवान सरलता से नहीं चला सकता है । ये दोनों बीकानेर के शस्त्रागार में सुरक्षित हैं । पद्मसिह तलवार चलाने में बड़ा निपुण था, इसके लिए यह दोहा प्रसिद्ध है—

कटारी ग्रमरेस री, पद्मे री तरवार ।
सेल तिहारी राजसी, सरायो संसार ।।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

राठौड़ों का कड़ापा दर्रे में अफगानों से युद्ध

1673 ई. में जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह को इस आशय का शाही फरमान प्राप्त हुआ कि वह शीघ्र काबुल पहुंचकर विद्रोही अफगानों को शांत करे, इसलिये महाराजा जसवंतसिंह अपनी राठौड़ सेना के साथ कूच कर पेशावर पहुंचे। 21 फरवरी को वे कड़ापा के दर्रे में पहुंचे। अफगानों से राठौड़ों ने भीषण युद्ध किया और अफगानों का संहार करते हुए अनेक राठौड़ वीर काम आये। उनमें किशनसिंह श्यामसिंहोत, प्रतापसिंह गोपीनाथोत, बीसनसिंह गिरधरदासोत, कुशलसिंह श्यामसिंहोत, कान्हा गोकलदासोत, मोहब्बतसिंह सबलसिंघोत, विजयसिंह रामसिंघोत आदि अनेक राठौड़ वीर इस युद्ध में काम आये।

महाराजा जसवंतसिंह की मृत्यु के पश्चात् औरंगजेब ने जोधपुर राज्य को खालसा घोषित कर दिया। तदुपरांत मारवाड़ के राठौड़ों ने बालक अजीतसिंह को जोधपुर राज्य दिलवाने हेतु मुगल सत्ता से 30 वर्ष तक लगातार संघर्ष कर रण-कौशल के अद्‌भुत उदाहरण राजस्थान के इतिहास में प्रस्तुत किये। राठौड़ों ने यहां की सांस्कृतिक गरिमा की रक्षा करने एवं अपने उच्च आदर्श को कायम रखने के लिए बलिवेदी पर चढ़ाकर अपना नाम अमर कर दिया। समर्पित भाव से लड़ने वाले चांपावत, मेड़तिया कूंपावत, जैतावत आदि राठौड़ों ने पग-पग पर लड़ाइयाँ कर मुगलों से लोहा लिया। इसमें विशेष रूपेण दुर्गादास राठौड़ का नाम उल्लेखनीय है, जिसने राठौड़-मुगल संघर्ष में दिशा निर्देश देकर राठौड़ों का मार्ग प्रशस्त किया। दुर्गादास के असाधारण साहस व वीरता से औरंगजेब का दिल भी दहल गया था। इस सम्बन्ध में यह पद्य प्रसिद्ध है—

दुर्गो आसकरण रो, नित उठ बागा जाय।
अमल औरंगां उतरे, दिल्ली धड़का खाय।।

पुष्कर के युद्ध में (1879 ई.) मुगलों से लोहा लेकर राजसिंह (आलणियावास) ने रणकुशलता के अदभुत उदाहरण प्रस्तुत किये और अपने कई भाई-भतीजों सहित प्राणोत्सर्ग कर अपना नाम अमर व अजर कर दिया। मुट्ठी भर राठौड़ मुगलों की विशाल सेना के आगे जब नहीं टिक सके तो उन्होंने आमने-सामने लड़ाई करना स्थगित कर सोनग चांपावत और राठौड़ वीर दुर्गादास के नेतृत्व में छापामार युद्ध प्रणाली अंगीकार की। वे यत्र-तत्र मुगलों की चौकियों पर अचानक छापा मार कर उनको क्षति पहुंचाते रहे।

महाराजा अभयसिंह की अहमदाबाद पर चढ़ाई

गुजरात का हाकिम सरबुलंद खां मराठों से सांठ-गांठ कर शाही आज्ञा की उपेक्षा करने लगा था, अतः बादशाह ने उसकी जगह जोधपुर के महाराजा अभयसिंह की नियुक्ति की परन्तु सरबुलन्द खां अहमदाबाद से नहीं हटा। अतः महाराजा ने उस पर चढ़ाई की। राठौड़ों की सेना में चांपावत, कूंपावत, उदावत और मेड़तिया राठौड़ शामिल थे। अहमदाबाद और भद्र के किले पर पांच मोर्चे लगाये गये। 20 अक्टूबर 1730 ई. को दोनों पक्षों में भीषण लड़ाई हुई। राठौड़ों ने अपनी रण-

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

कुशलता का परिचय देकर विजयश्री अर्जित की। इसमें निम्नलिखित योद्धाओं ने अपने प्राणों की बलि दी—करणसिंह चांपावत (पाली), गुलाबसिंह मेड़तिया (पांचवा), भोमसिंह मेड़तिया (सीरासण) हठीसिंह जोधा, भगवानदास धांधल (बूंटेलाव), किशनसिंह चांपावत (नारनड़ी), रामसिंह कूंपावत (रामासणी), सुरतानसिंह कूंपावत (सक्तिसिंहोत), अर्जुनसिंह कूंपावत, भोजराजसिंह मेड़तिया (सूरियावास), शम्भुनाथ-सिंह मेड़तिया, सरदारसिंह मेड़तिया, हठीसिंह जोधा, गुमानसिंह जोधा (हठीसिंहोत), जोरावरसिंह जोधा (कुशलसिंहोत), हठीसिंह मेड़तिया (नौखां), पद्मसिंह मेड़तिया (दौलतसिंहोत), चतुरसिंह करणोत (फतेसिंहोत), करणसिंह जोधा (हरनाथोत), प्रतापसिंह जोधा (राजसिंहोत)।

इस प्रकार मारवाड़ के राठौड़ों ने तलवार के चमत्कार प्रदर्शित कर भारत ही नहीं अपितु विश्व के इतिहास में ख्याति प्राप्त कर अपने कुल को गौरान्वित किया। छत्तीस राजवंशों में इस प्रकार का सर्वाधिक गौरव प्राप्त करने का सौभाग्य राठौड़ों को मिला है। राठौड़ों की इस जगविख्यात शूरवीरता और रण-कौशल के लिए कवियों ने इनको 'रण-बंका' के सर्वोच्च सम्मान से सम्बोधित किया है, जिसकी साक्षी निम्न प्रकार है—

बळ हट बंका देवड़ा, किरतब बंका गौड़।
हाडा बंका गाढ़ में, रणबंका राठौड़॥

* *

रट्ठोरन की शूरता, सो है जगत प्रसिद्ध।
ताही साथ उदारता, सर्व भांति है सिद्ध॥

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मारवाड़ के प्रवासी महाजनों की सांस्कृतिक विरासत

ओंकार श्री

राजस्थान के अतीत कालीन राजतंत्र व वर्तमान भारतीय लोकतंत्र में मारवाड़ी महाजनों की व्यावसायिक नैतिकता, समता धारित सामाजिकता, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक अस्मिता की भाव भूमि वहुत दिव्य है।

इतिहास साक्षी है कि मारवाड़ के महाजन समुदाय ने सार्वभौमिक राष्ट्रीय भावात्मक एकता को दृढीभूत करने के अपने सारे मनोरथों की पृष्ठ शक्ति को, अपनी लोकमान्य परम्पराओं तथा सांस्कृतिक गरिमाओं से अभिभूत रखा है।

मारवाड़ के प्रवासी महाजन समुदाय ने; मुगल साम्राज्य से लेकर आज तक यदि अपनी संस्कृति, अपनी भाषा, अपने पहिनावे, अपने भोजन तथा अपनी आध्यात्मिकता न अपनायी होती तो उसका अस्तित्व ही विलीन हो जाता।

संस्कृति सुसंस्कृत होती है संस्कार से। संस्कार सम्पुष्ट होते हैं आचार-व्यवहार से। एक पहिचान कायम होती है इस सम्बल पर एक कौम की। जाति-जाति से जानदार जाना जाता है कोई देश-जाति-संस्कृति के मानवीय आधार पर।

राजस्थान का जन-इतिहास अभी लिखा जाना शेष है। इसी जन में महाजन। महानता हो जिस जन की वह कहलाता है महाजन। उसकी लिखत-पढत-भणत-गिणत-गणित महाजनी। महाजन जिस पथ पर चले वह वरेण्य, वह वंदनीय, अनुकरणीय होता है। मारवाड़ का महाजन जो कल-आज मारवाड़ी कहा-माना-जाना-पहिचाना जाता है, उसके महाजन पद की विरासत है उसकी संस्कृति।

क्या है महाजनी संस्कृति! जीवट, औदार्य और करुणा, सहकार भाव और योगस्थ प्रवृत्ति--ये गुण हैं राजस्थान की संस्कृति के। जीवट में शौर्य, औदार्य में दानप्रवणता, करुणा में मानवीयता, सहकार भाव में एकत्व और योगस्थ प्रवृत्ति में एकाग्रता—महाजन का यही पंथ। यही श्रेयस। यही उसकी विरासत।

इतिहास साक्षी है

गीता में वैश्य के कर्म, कृषि, गौ-रक्षा और वाणिज्य कहे गये हैं। राजस्थान का महाजन कृषि और गौ-पालन के साथ वाणिज्य व राजकर्म, समाज-धर्म आदि बहुविध आयामों में श्रमरत रहा है, आजादी से पूर्व तक, विराट-सघन ग्रामीण परिवेश में आज भी।

इस धरती के साहसी वणिक् सपूतों व उनके साथ परिव्राजक की भूमिका निभाने वाले चरैवेति-दूतों की। इस कौम ने अपनी जन्मभूमि का त्यागकर सम्पूर्ण भारत व विश्व में कर्म भूमि-श्रमणादर्श प्रस्तुत किया है।

इतिहास साक्षी है कि मारवाड़ की महाजन कौम ने अपनी बेजोड़ मिलनसारिता

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

कायम कर, वे जहां गये, उस मिट्टी में रम-रस-पच गये। यह खासियत और यह खूबी राजस्थान की मिट्टी की है कि यहां की मिट्टी संसार की किसी मिट्टी की इज्जत खराब नहीं करती।

जैन मुनियों के संग न्यारियों के रूप में उड़ीसा-बिहार-आदिवासी-वन भूमि तक जो राजस्थान प्रव्रजित हुआ, उसकी इतिहास कड़ी को मुर्शिदाबाद (अब बंगला देश में) के जगत सेठों से लेकर जब हम आज के धनाढ्य मारवाड़ी बहुराष्ट्रीय व्यवसायी वर्ग से जोड़ते हैं तो सूत्र एक ही अटूट हाथ लगता है कि इस मारवाड़ की मिट्टी के जाये-जनमों ने मानवीयता कभी नहीं खोई। सहिष्णुता के बल पर इन्होंने अपनी छाप जमायी। साख के बल पर ये श्रेष्ठ (सेठ) हुए। ये ईमानदारी से नहीं डिगे। साहूकार शाह कहलाये। उनकी इस मानवीयता, सहिष्णुता, ईमानदारी और साख-दारी की जड़ में था राजस्थान की मिट्टी का अपराजेय आत्मबल।

यह अपराजेय आत्मबल ही है वो शक्ति जो आज भी मारवाड़ी को अपनी पहि-चान का समसामयिक बोध प्रशस्त किए हुए है।

भारत-समाज साक्षी है

स्वान्तः सुखाय—बहुजन हिताय ! यह है मारवाड़ी महाजनी—पैठ और पद्धति की उत्कृष्टता और सफलता का मूल सूत्र, मूल मंत्र, मूल तंत्र यही है। कमाओ और गमाओ की वैलासिक उपभोक्ता संस्कृति और शोषक पूंजीतंत्र से मुक्त मारवाड़ का महाजन समुदाय पैसे की इज्जत करता था, करना जानता था। वह सादा जिया, उसने सादा खाया-पिया। उसने ब्याज से जितना लिया उतना दिया भी खूब।

यह जो दिया-लिया है, इसी ने महाजन को मजबूत किया है। अंग्रेजों की तरह महाजन उठाऊ चूल्हे वाला नहीं रहा। वह जहां बसा, घर बनाकर बैठा, चूल्हा, चाकी, चौका-बर्तन से जुड़ कर जमीन से जुड़ा, बंगाल, बिहार, उड़ीसा, असम, कश्मीर से कन्याकुमारी और कामरूप तक।

महाजन बेघर रहता तो उखड़ जाता। उसने बेघरों को आसरा दिया। जनहित में वह जुटा तो ऐसा जुटा कि आज पूरा भारत-समाज उसका कृतज्ञ है कि मारवाड़ के महाजन ने देवस्थानों, धर्मशालाओं, शिक्षण संस्थानों, अबला-अनाथ-आश्रमों और स्वाधीनता आन्दोलन कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक संगठनों की शृंखलायें सदा बहार बनाये रखी। आश्चर्य में न पड़िये, मारवाड़ के महाजन वर्ग ने तीन चार शताब्दियों से इस भारत देश से जन-कल्याण हेतु करोड़ों की सम्पत्ति धन साधन रूप में निस्वार्थ भाव से समर्पित कर एक महनीय राष्ट्र भक्ति का आदर्श उपस्थित किया है।

भारत-समाज साक्षी है कि सम्पूर्ण भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन के अहिंसक व क्रांतिधर्मा स्वरूपों को साधन भूत-सशक्त करने में मारवाड़ ने सैकड़ों दानवीरों की महाजनी पंक्ति का पंक्तिभावन योग दिया है।

यह अवढरदान परम्परा राजस्थान में शताब्दियो में 'के दाता के सूर' की कर जोड़ के साथ अनवरत परम्परित रही है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

नीत गैल बरकत

मारवाड़ के महाजन समुदाय ने अपने सम्पूर्ण व्यावसायिक व औद्योगिक तंत्र की नीव में अपनी सच्चरित्रता का भराव भरा है। उसकी बही मात्र कागजी पुलिन्दा नहीं रही। वह रही पूज्य भाव से जुड़ कर। नियत का साफ महाजन अपनी गीदी को स्वामिधर्म से सन्नद्ध कर सदा खुशहाल रहता आया है। दीपावली पर्व पर वह खाता बदलता है पर पुश्तैनी नाता नहीं।

उसकी संस्कृति, वस्तुनिष्ठ नहीं तत्त्वनिष्ठ रही है। उसकी दवात और कलम उसकी जीविका के पवित्र साधन-भाव प्रतीक बनकर रहे। वह अभीत रहा आपदाओं से। पर सदा डरा तो पाप से, अनिष्ट कर्म से।

राजस्थानी जन-समुदाय संस्कृति के प्रतिनिधि महाजन ने राजस्थान की साख सदा स्थायी रखी। दान और धर्मादा उसका दिखावा नहीं था। यह तो उसका नैमित्तिक धर्म था।

मारवाड़ी महाजनी पद्धति के देश-विदेश व प्रदेश के अध्येताओं का सर्व सम्मत मत यही है कि मारवाड़ का महाजन देश का साखदार बैंकर रहा। उसकी हुंडी सिकरती ही थी। उसने ही देश में अपनी अप्रतिम साख के बल पर समूचे देश का बैंकिंग-बीमा व्यवसाय हस्तगत किया, प्रवर्तित किया।

मारवाड़ के जगत-सेठ (नागौर मूल के) तथा चुरु के मिर्जामल पोद्दार खानदानों की परम्परा में मुगल बादशाहों, नवाबों, राजा महाराजाओं, जागीरदारों, ईस्ट इंडिया कम्पनी के गौरांगसरमायेदारों से लेकर आज की राजनीतिक पार्टियों तक मारवाड़ का धन, ऋण, अनुदान, तथा दान के रूप में सतत् प्रवाहित रहा है। यह धन-प्रवाह देश के आर्थिक विकेन्द्रीकरण की धुरी में आज भी अचल है।

महाजन-संस्था का सांस्कृतिक आधार

मारवाड़ी समाज के गहन अध्येता श्री टिम्स बर्ग के कथन का सत्य भणिये—

"मारवाड़ियों के विशिष्ट मूल्यों ने उन्हें पारस्परिक सामाजिक सहायता और आर्थिक मदद करने के अलावा शैक्षणिक, मनोरंजन आदि की दूसरी सुविधायें अपने सहधर्मी व्यापारियों और समाज में जुटाने के लिए प्रेरित किया। इन कदमों की वजह से व्यापारिक घरानों को अपने समाज के सदस्यों में अपेक्षित सहयोग और सम्मान प्राप्त हुआ।"

इस कथन पर गौर कीजिएगा तो पाइएगा कि मारवाड़ी समाज के कतिपय मान मूल्य थे। इस मान मूल्य के आधार में था आपसी सहकार। आपसी पन। एकता भाव। ये सारी गुणवत्तायें संस्कृति की।

श्री बालचन्द मोदी राजस्थानी महाजनी सभ्यता और संस्कृति के गम्भीर गवेषक थे। वे कहते हैं—

"बासा (रसौड़ा) वह स्थान जहाँ कर्मचारी जिनमें मुनीम, गुमाश्ते और सेठ एक साथ भोजन करते थे। भोर होते ही उठकर सब गंगा स्नान (कलकत्ते में) के लिये जाते और मन्दिर दर्शन के बाद अपना पहला भोजन पाते थे। काम की जगह नौ बजे

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

सब हाजिर। वे पूर्णतः धार्मिक ग्रौर सामाजिक चेतना से पूर्ण जागरूक होते थे। किफायत ग्रौर कठोर श्रम उनके जीवन का एक ग्रंग बन गया था।

संयुक्त परिवार प्रणाली, सामाजिक संगठन बोध, जीवन्त जातीय बोध, व्यवस्थापकीय कुशलता, व्यापारिक प्रतिभा, किफायतसारी, बैंकिंग की सहकारी व्यवस्था साझेदारी ग्रौर साख, धार्मिकता, परोपकारपरायणता—इन तत्त्व मूल गुणों पर प्रकाश डालते हुए 'मारवाड़ी समाज' ग्रंथ प्रणेता 'डॉ दशरथ कुमार टकनेत के शब्दों में—

"खास भौगोलिक, सामाजिक, ग्रार्थिक एवं सांस्कृतिक कारणों ने ग्रौर मारवाड़ी समाज की परिश्रमशीलता की स्वाभाविक-चारित्रिक विशेषता ने उन्हें विशेषतः योग्य बनाया है।"

मैं सार रूप में यह कहना समीचीन मानता हूं कि मारवाड़ी महाजनी शक्ति का मान मूल्य उसकी संस्कृति में समाविष्ट है।

सांस्कृतिक विरासत का मूलाधार

21 वीं सदी की ग्रोर तेजी से दौड़ते इस विकासशील देश की सदियों विकसित मारवाड़ की महाजन प्रणाली की सांस्कृतिक विरासत का मूलाधार तत्त्व था इस वर्ग की ग्रपनी लिपि (मुड़िया) का व्यवहार।

राजा टोडरमल प्रणीत इस मुड़िया लिपि का व्यापारिक व पत्राचारिक सूत्र हवा में उड़ाने का नहीं है। समूचे भारत के राजस्थानी व्यवसाइयों ने मुड़िया लिपि की एकरूपता कैसे कायम की? यह गम्भीर गवेषणा का विषय है। राजस्थानी-भाषा का मैं यह दुर्भाग्य ही मानता हूं कि इसने ग्रपने व्यवहार व व्यवसाय की, शासकीय फरमानों, तामीरी दस्तावेजों तथा जन-पत्राचार के मूल उद्गम-उत्स की इस संकेताक्षरी लिपि को खो दिया। गुजरात ने यह भाषा-लिपि-स्वरूप नहीं खोया।

ग्राज भी 10 प्रतिशत राजस्थानी महाजनों की पुरानी गीदियों, फर्मों व ग्रौद्योगिक प्रतिष्ठानों की वही लेखन, पत्राचार, हुंडी तथा रोकड़, नांवे, रोजनामचे तथा लेन-देन, गिरवी पत्रों का व्यवहार इसी लिपिमूल भाषा में होता है। महाजनी गणित विश्व में बेजोड़ रही है ग्रौर रहेगी।

मैं महाजन-ग्रस्तित्व का मूल मानता हूं उनका भाषायी एकरूपता का ग्राधार। साहित्यिक ग्रौर बौद्धिक भले राजस्थानी की एकरूपता की धन्धेबाजी करें—यह उन्हीं को ले डूब रही है।

जिस कौम की भाषा गई, उसकी भावना गई, उसकी जमीन खिसकी ही समझो।

भाषा-व्यवहार के बाद जो सांस्कृतिक मूलाधार इस महाजन कौम के पास है वह है जोखिम उठाने की क्षमता।

कल जोखिम नाम था बीमे का। ग्राज बीमा कोरी बीमा है। जोखिम की भाव-सीमा से बाहर इस जोखिम (बीमे) के सौदे में भी धर्मादा जुड़ता था।

जोखिम उठाई मारवाड़ी कौम ने भगवान के भरोसे। मुनीम गुमाश्तों की नियुक्ति के समय दोनों के बीच 'सांवरिये री साख' रहती थी। भाषा, जोखिम ग्रौर ईश्वर-

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

साख की बेल सदा हरी !

यात्रा जारी है

मारवाड़ के महाजन समाज ने व्यवसाय की धुरी पर अपने संस्कृति-रथ को अडिग रखा। न भूलें हम कि हिन्दी साहित्य की नाट्य-संगीत परम्परा को राजस्थानी समाज ने नृत्यसम्राट जमना प्रसाद पांडे और रागमूर्ति कृष्णानन्द व्यास का अवदान दिया है।

मारवाड़ पोषित पालित हिन्दी-अंग्रेजी पत्रकारिता की पीढ़ी परम्परा मूलचंद अग्रवाल से रामनाथ गोयनका तक आज भी अविचल है।

कलकत्ते व बम्बई की मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटियों तथा अ. भा. मारवाड़ी सम्मेलन सहित बीसियों प्रवासी महाजन संस्थाओं ने राजस्थान की संस्कृति को जीवन्त बनाये रखा है, सेवा, शिक्षा, चिकित्सा तथा सांस्कृतिक प्रदर्शनों व उत्सवों के रूप में।

कलकत्ते का बड़ा बाजार, हैदराबाद का बेगम बाजार, मद्रास का साहूकार पैठ तथा बम्बई की महालक्ष्मी-कालवा स्थित मारवाड़ी गीदियों व अट्टालिकाओं में राजस्थान रात दिन हंसता, गाता व प्रसन्नचित्त रहता है।

बम्बई में मनमोहन रास मंडल की होली पर्व की डांडिया गैर तथा कलकत्ते में श्यामजी खाटू उत्सव तथा तीज तिंवारों की धूम मची रहती है। पीढ़ियों के उत्तराधिकार में राजस्थान की 'गणगौर' बंगलोर में, रामदेव की आराधना ध्रुव महाराष्ट्रीय गांवों में, इन्दौर, उज्जैन, गुजरात तथा उत्तर प्रदेश के नगर ग्राम मण्डलों में मारवाड़ी उत्सव का माहौल जिन्दाबाद है।

कानपुर में टेसिटोरी जिन्दाबाद है। कलकत्ते की रॉयल एशियाटिक सोसाइटी जिन्दाबाद है।

जैन साधुओं, सनातनधर्मी महात्माओं तथा आर्य समाजी उपदेशकों ने राजस्थान की सांस्कृतिक विरासत का ध्वज आज भी उन्नत बनाये रखा है। पर यह सारा सरंजाम अभी उस पीढ़ी के हाथों में ही है, जिसने महाजन संस्कृति को जिया है, उसे जिन्दा रखा है।

दिया जलता रहे

राजस्थान के गांवों, ढाणियों व कस्बों से उठकर प्रवासित हुए महाजनों की धार्मिक-सांस्कृति परम्परा में बाबा रामदेव, गोगाजी, करणी, जसनाथ या जसनाथजी, श्यामजी खाटूवाले, सिकराय माता, सालासर हनुमान, केशरियाजी, श्रीनाथजी, वेणेश्वरधाम तथा शेखावाटी क्षेत्रीय जीणमाता, पुष्कर, गलताजी आदि देवधामों की यात्रायें आज भी निरन्तरित है।

निरन्तरित है असम के पर्वतीय क्षेत्रों से लेकर बंगाल के चौबीस परगने में, उड़ीसा के आदिलोक से लेकर भगवान वेंकटेश्वर तक प्रवासियों की यात्रायें।

परिव्राजक प्रवासी महाजन न जात झड़ूला भूले हैं न जम्मा जागरण। गायन, वादन, नर्तन संगीत की त्रिधारा का प्रवाह सरस है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

बिड़ला संगीत-संस्कृति व लोक कला संवर्द्धन की अकादमी से लेकर मद्रास की राजस्थान एसोसिएशन के संस्था फलक राजस्थानी संस्कृति से आज भी ओतप्रोत है। जमुना पांडे, गजानन वर्मा, रामरिख मनहर, सत्यप्रकाश जोशी, डॉ. मनोहरलाल गोयल, दिनेश मिश्र, सीताराम महर्षि, ओम व्यास, विश्वेश्वर शर्मा, ऋषि जैमिनी कौशिक, बरुआ तथा रतनशाह प्रभृति प्रवासी सांस्कृतिक प्रचेताओं ने राजस्थान की संस्कृति का—भाषा, साहित्य, पत्रकारिता तथा कवि सम्मेलनों, नाटकों व विचार मंचों को रौशन बनाये रखा है। दिया जलता रहे सतत् !

7134

राजस्थानी कौम के नाम

मारवाड़ के महाजनों की सांस्कृतिक विरासत के बहु आयामी मुद्दों की शालीनता और कुलीनता की श्रेष्ठताओं की ऊर्जा अभी ठंडी नहीं पड़ी है।

आगे विकट मोड़ है। दुःख के साथ कहना होगा कि अब तेजी से मारवाड़ी पगड़ियां और साफे, औरतों की पौशाकें और आभूषण, प्राचीन गीदियां, बहियां और मुनीम गुमाश्तों की, दलालों की, आढ़तियों और सटोरियों की कदीमी साखें कमजोर पड़ रही हैं।

शाह हीरानन्द (जगत सेठ) से रामकृष्ण बजाज (टेक्नोक्रेट) तक की लम्बी महाजन पंक्ति ने अब एक चौड़ी-गहरी दरार, सांस्कृतिक सर्वनाश के खतरे की घंटी बजा रहे हैं।

हर दूजे तीजे साल देश में मारवाड़ी बस्तियों और बाजारों में हंगामे, आगजनी, हत्याकांड तेजी पकड़ते जा रहे हैं।

यहां से विदा हुई महाजनी लिखावट-भाषा-लिपि अब प्रवासी क्षेत्रों से तीन तेरह होने में है।

यह क्षय-काल है। इसी काल खंड में मारवाड़ की महाजन कौम का तेजी से हो रहा पाश्चात्यीकरण खतरनाक है।

जहां, खतरा देश के सम्मुख राजनीतिक भ्रष्टाचार और अनाचार ने खड़ा कर दिया है वहां राजस्थान, अपने भीतर और बाहर सांस्कृतिक विभाजन की कगार पर आ खड़ा हुआ है।

राजस्थान बच सकता है अपनी मातृभाषा राजस्थानी को आदर देकर, अपनी सांस्कृतिक इयत्ता और अस्मिता को अंगीकार कर। किसी प्रान्त ने भाषा, भोजन, भेष और पारम्परिक भाव परिवेश को नहीं भुलाया। राजस्थान ने यह अपराध ओढ़ा नहीं उसे ओढ़ाया गया है। सांस्कृतिक विरासत का तेज तकाजा है कि 'लबादा उतार फेंक दो।'

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मारवाड़ में संस्कृतसाहित्य की विविध विधाओं का विकास

डॉ. गणेशीलाल सुथार

मारवाड़ की सांस्कृतिक परम्परा आज भी अन्य क्षेत्रों से उसके वैलक्षण्य को ख्यापित करती है। भारतीय संस्कृति की उत्कृष्टता का सर्वाधिक अनुसरण करने वाले क्षेत्रों में मारवाड़ अन्यतम है। अतिथिसत्कार, वाणी की मधुरिमा, गोसेवाव्रत, परम आस्तिकता, गुरुशुश्रूषा, औदार्य, पराक्रम और शारीरिक सौष्ठव आदि विशेषताओं के लिये यह मरुधरा भारत में ही नहीं, विश्व में भी विश्रुत है। 'अतिथिदेवो भव' यह औपनिषद उपदेश यहाँ सर्वथा चरितार्थ है। महर्षि वेदव्यास का 'वचने का दरिद्रता ?' यह उपदेश यहाँ मधुर वाग्व्यवहार के कारण साकार हो गया है। कविकुलचूडामणि कालिदास द्वारा—"प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि।

स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः।।"[1]

इस श्लोक में निर्दिष्ट मनुष्येश्वर दिलीप का 'प्रजापितृत्व' मारवाड़ के नरेशों तथा प्रजा में अनुशासन रक्षण तथा भरण के प्रति तत्परता के कारण चरितार्थ हुआ।

साहित्यिक दृष्टि से भी यह क्षेत्र उन्नत रहा है। राजस्थानी भाषा और साहित्य की समृद्धि के लिये तो यह केन्द्र-भूमि है। देव-भाषा संस्कृत के विकास के लिये भी इस क्षेत्र का प्रशंसनीय योगदान है। यद्यपि यहाँ सुरसरस्वती के समाराधक साहित्यकारों की संख्या अधिक नहीं है, तथापि गुणात्मक दृष्टि से उत्कृष्ट संस्कृत-कृतियों के कारण संस्कृत भाषा और साहित्य के विकास में इस क्षेत्र का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। यह भी उल्लेखनीय है कि मारवाड़ के नरेश संस्कृत के साहित्यकारों को समुचित सत्कारयुक्त आश्रय प्रदान कर उनकी सतत् साहित्य साधना में सहायक सिद्ध हुए। यह खेद का विषय है कि मारवाड़ के संस्कृतसाहित्यकारों की कृतियों का आज तक सांगोपांग अनुशीलन नहीं हो सका है। अनेक ग्रन्थ अभी तक प्रकाशन की प्रतीक्षा में है। हाँ, मारवाड़ के संस्कृत साहित्यकारों के व्यक्तिगत और कृतित्व के विषय में परिचयात्मक लेख अवश्य प्रकाशित हुए हैं। शोध-विद्वानों द्वारा उनका साहित्यिक परिशीलन सर्वथा अपेक्षित है।

"जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम्।।

यह परम सुखद तथ्य है कि मारवाड़, मुख्यतः सूर्यनगर जोधपुर में संस्कृत के ऐसे महान् साहित्यकार हुए हैं और आज भी विद्यमान हैं, जिन्होंने संस्कृत साहित्य की विविध विधाओं से सम्बन्धित ग्रन्थों की रचना की है। उन सभी मनीषियों की समस्त

---

1 रघुवंश, प्रथम सर्ग, श्लोक 24

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

कृतियों की विशेषता का निरूपण एक लेख में सम्भव नहीं है, अतः यहाँ कतिपय प्रमुख कृतियों का विमर्श प्रस्तुत है।

महाकाव्यों का प्रणयन

मारवाड़ के प्राचीनतम और सर्वश्रेष्ठ महाकवि के रूप में 'शिशुपालवध' के कर्ता 'माघ' का नाम सुप्रथित ही है। यह सुनिश्चित है कि महाकवि माघ का जन्म भीनमाल के एक प्रतिष्ठित धनाढ्य ब्राह्मण-कुल में हुआ था। क्रान्तदर्शी सत्कवि कालातीत होते हैं। अमृत के पीने से केवल पीने वाला ही अमर बन जाता है, परन्तु कवि की वाणी दोनों (कवि तथा कवि द्वारा वर्णित पात्रों) के यशोरूपी शरीर को अमर बना देती है—

"वन्द्यः कोऽपि सुधास्यन्दास्कन्दी स सुकवेर्गुणः।
येनायाति यशः काये स्थैर्यं स्वस्य परस्य च।।"[1]

कवि की तुलना प्रजापति ब्रह्मा के साथ की गई है, क्योंकि दोनों रम्यनिर्माणशाली होते हैं तथा अतीत काल को साक्षात् प्रस्तुत करने की अलौकिक क्षमता से युक्त होते हैं—

"कोऽन्यः कालमतिक्रान्तं नेतुं प्रत्यक्षतां क्षमः।
कविप्रजापतींस्त्यक्त्वा रम्यनिर्माणशालिनः।।"[2]

संस्कृतसाहित्य में महाकवि माघ के स्थान का निर्धारण सूर्य को दीपक से प्रकाशित करने जैसा होगा। वे अपने अप्रतिम कवित्व के कारण स्वतः प्रतिष्ठित हैं। वे सर्वश्रेष्ठ संस्कृतमहाकवियों की त्रयी में अन्यतम हैं और संस्कृतमहाकाव्यों की बृहत्त्रयी में उनका महाकाव्य। माघ की कीर्तिलता केवल एक ही महाकाव्य 'शिशुपालवध' रूपी वृक्ष पर अवलम्बित है। इस महाकाव्य में श्रीकृष्ण के द्वारा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में चेदिनरेश शिशुपाल के वध का सांगोपांग वर्णन है। इस काव्य की उत्कृष्टता के कारण रसिक जन माघ के सामने भारवि को हीन समझते हैं—"तावद् भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः।" उपमा, अर्थगौरव तथा पदलालित्य—इन तीन गुणों का सुभग सहास्तित्व माघ के कमनीय काव्य में प्राप्त होता है, अतः 'माघे सन्ति त्रयो गुणाः" यह उक्ति उनके बारे में सुप्रसिद्ध है। महाकाव्य में उत्कर्षाधायक तत्त्वत्रयी उनके महाकाव्य में समुच्चित रूप से विद्यमान है।

माघ केवल सरस कवि ही नहीं थे, प्रत्युत एक प्रकाण्ड सर्वशास्त्रतत्त्वज्ञ विद्वान् थे। दर्शनशास्त्र, संगीतशास्त्र तथा व्याकरणशास्त्र में उनकी विद्वत्ता अप्रतिम थी! उनका पाण्डित्य एकाङ्गी नहीं, प्रत्युत सर्वगामी था। अतएव उन्हें 'पण्डित-कवि' कहते हैं। एक और उल्लेखनीय विशेषता यह है कि महाकवि भारवि द्वारा प्रवर्तित अलङ्कृत-शैली का पूर्ण विकसित स्वरूप माघ के महाकाव्य 'शिशुपालवध' में प्राप्त होता है, जिसका प्रभाव बाद के कवियों के ऊपर बहुत ही अधिक पड़ा। पं. बलदेव उपाध्याय

---

1 राजतरंगिणी, 1/3
2 वही, 1/4

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

ने उचित ही कहा है—"अलङ्कृत महाकाव्य की यह आदर्श कल्पना महाकवि माघ का संस्कृतसाहित्य को अविस्मरणीय योगदान है, जिसका अनुसरण तथा परिवृंहण कर हमारा काव्यसाहित्य समृद्ध, सम्पन्न तथा सुसंस्कृत हुआ है।"[1]

महाकवि माघ के 'शिशुपालवध' के प्रत्येक पक्ष की विशेषता का साहित्यिक अध्ययन विद्वानों ने किया है; शायद ही कोई पक्ष अछूता रहा है।

महाचित्रकाव्य का प्रणयन

मारवाड़ में बीसवीं शताब्दी के महाकवियों में पण्डित नित्यानन्द शास्त्री का नाम सर्वप्रथम आता है। उन्होंने संस्कृतसाहित्य की विविध विधाओं पर उत्कृष्ट कृतियों का प्रणयन कर सुरसरस्वती की सतत् सेवा की है। यहाँ आशुकवि के 'श्रीरामचरिताब्धिरत्नम्' नामक महाचित्रकाव्य की विशेषता का संक्षिप्त निरूपण किया जा रहा है। कवि ने इस ग्रन्थ को 'महाचित्रकाव्य' शब्द से अभिहित किया है। महाकवि भट्टि द्वारा प्रवर्तित शास्त्रकाव्य या वैयाकरणकाव्य का अनुसरण करते हुये कवि ने इस महाचित्रकाव्य का प्रणयन किया है। केवल सूत्ररटन और सूत्रानुसारिणी शब्दसिद्धिप्रक्रिया से व्याकरणशास्त्र में अबाधित गति प्राप्त नहीं हो सकती–इस वस्तु-स्थिति को सम्यक्तया समझते हुए आशुकवि ने इस महाचित्रकाव्य द्वारा व्यवहारोपयुक्त व्याकरण (Applied grammar) की शिक्षा दी है। भट्टिकाव्य (रावणवध) का—

"दीपतुल्यः प्रबन्धोऽयं शब्दलक्षणचक्षुषाम्।
हस्तादर्श इवान्धानां भवेद् व्याकरणादृते ॥"

इस श्लोक द्वारा अभिव्यक्त वैशिष्टच प्रस्तुत महाकाव्य में भी चरितार्थ होता है। यह काव्य आशुकवि के ज्येष्ठभ्राता पं. भगवतीलाल द्वारा रचित 'शाण' नामक संस्कृत-टीका से भी संवलित है। टीकाकार ने प्रस्तावना में इसके मुख्य तथा गौण विषय का निर्देश करते हुए व्याकरणज्ञान के लिये इसकी उपयोगिता का उल्लेख इस प्रकार किया है—"पूर्वं तावद् मुख्यो भक्तिविषयः, इतः परं व्याकरणविषयः। आमूल-चूलं काव्येऽत्र तथा कविनैष विषय उदाहृतः, येन श्रीरामचन्द्रे स्मर्यमाणे समुपस्थिता स्यात् कौमुदी। किं बहुना, केषुचित्तु स्थलेषु वैकल्पिका विधयोऽपि निरूपिताः। क्वचित् क्वचित्तु उपमा अपि व्याकरण-सम्बन्धिन्यो दर्शिता।" अर्थात् इस महाकाव्य का मुख्य विषय भक्ति है और उसके पश्चात् गौण विषय है—व्याकरण। कवि ने इस काव्य में भक्ति विषय इस प्रकार वर्णित किया है कि श्री रामचन्द्र के स्मरण के साथ व्याकरण-कौमुदी भी उपस्थित हो जाती है। कतिपय स्थलों पर वैकल्पिक विधियों का भी निरूपण किया है। कहीं-कहीं व्याकरण सम्बन्धी उपमाएँ भी प्रस्तुत की हैं। कवि के द्वारा विद्या की अधिष्ठात्री सरस्वती की प्रार्थना हेतु किया गया व्याकरण सम्बन्धी मनोहारी उपमा का प्रयोग ध्यातव्य है।

"प्रभेव सूर्यस्य तमो हरन्ती
तिष्ठन्त्यथाऽन्तः कमलेऽलिनीव।

---

1 संस्कृत साहित्य का इतिहास, शारदा संस्थान, वाराणसी (1973), पृ. 201

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

ष्ठां स्थामिव व्याकरणव्यवस्था
त्वमम्ब वाग् मां कुरु विज्ञमज्ञम् ।।"[1]

अर्थात् हे मातः वाग्देवि ! सूर्यप्रभा की तरह तम (अज्ञानान्धकार) का हरण करती हुई और कमल में अलिनी (भ्रमरी) की तरह हृत्कमल में विराजमान आप मुझ अज्ञ (मूढ़) को उसी प्रकार विज्ञ (विशेषज्ञानशाली) बना दें जिस प्रकार व्याकरणशास्त्र की मर्यादा ष्ठा धातु को स्था में परिणत कर देती है।

यद्यपि व्याकरणज्ञान को लक्ष्य में रखकर इस ग्रन्थ का निर्माण हुआ है, तथापि, जैसा कि टीकाकार के कथन से स्पष्ट है, मुख्य विषय तो भगवद्भक्ति ही है और यह काव्य ही नहीं, महाकाव्य है, व्याकरण-ग्रन्थ नहीं है। अत एव आशुकवि ने इसमें महाकाव्य के आवश्यक गुणों का निवेश बड़ी योग्यता के साथ किया है। कवि ने प्रस्तावना में इस कृति के प्रति वाल्मीकिरामायण में भगवद्भक्ति द्वारा ब्रह्मप्राप्ति का रेलगाड़ी के रूपक द्वारा सुन्दर निरूपण किया है—

"एषा मत्कृतिमेलरेलशकटी श्रीमूलरामाय-
णलोहाध्वाश्रयतो निरञ्जनबलाऽप्युद्भक्तिविद्युद्बलात् ।
यान्ती विश्रमधाम्नि सर्गभुवनेऽप्याप्ता विरामं मना-
गन्ते गन्तृजनाञ्जवेन नयति ब्रह्मास्पदं शाश्वतम् ।।"

अर्थात् यह मेरी कृतिरूपी मेल रेलगाड़ी वाल्मीकीय मूलरामायणरूपी लोह की पटरी (Rail track) के आश्रय से एञ्जिन रहित होने पर भी उत्कृष्ट भक्ति रूपी विद्युत् के बल से चलती हुई, इस सृष्टिलोक-रूपी विश्रामस्थल (Station) पर भी थोड़ी देर के लिये रुक कर अन्त में यात्रियों (मुमुक्षु ज्ञानियों) को शाश्वत ब्रह्मपद तक पहुँचा देती है। अगाधवैदुष्यसम्पन्न होने पर भी सरलस्वभाव कवि ने पाण्डित्य के अहङ्कार का परिहार करते हुए कहा है—

"न व्याकरणे पटिमा नव्या करणे न धीश्च तर्कस्य
नालंकृतिगुणदाक्ष्यं नालं कृति गुणनिका च मे स्फुरति ।
रसमयता वाचि न पुनरसमयता कुत्रचिच्च दृश्यते
चरितमदो रामस्याचरितमदोषं ततो मया सर्वम् ।।"

अलङ्कृतशैली के महाकाव्य का प्रणयन

मारवाड़ के लिये यह अत्यधिक गौरव का विषय है कि संस्कृतकाव्य की अलङ्कृत शैली को विकास की पराकाष्ठा प्राप्त कराने वाले महाकवि माघ के लगभग 1300 वर्ष पश्चात् भी 'जरासन्धवधम्' नामक उत्कृष्ट महाकाव्य का प्रणयन कर उनकी काव्यशैली को निरन्तरता प्रदान करने वाले आधुनिक संस्कृतमहाकवि गोस्वामी हरिराय यहां विराजमान हैं। स्वयं महाकवि ने महाकवि माघ की काव्यसरणि के अनुसरण का स्पष्ट निर्देश किया है—"प्रस्तुतमिदं— जरासन्धवधमहाकाव्यम्—यत्र मया महाकविश्रीमाघसरणिरेवोररीकृतेति निरपह्नवम्। यतो एतैरेव कालिदासमार-

---

1 श्रीरामचरिताब्धिरत्न, 1/2

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

विमाघश्रीहर्षादिभिः पूर्वसूरिभिः कृतवाग्द्वारे शास्त्रेऽस्मिन् मम गतिरिति निःसन्देहं स्वीकुर्वे। तद्यथा—

काव्येऽस्मिन् काव्यतत्त्वज्ञैर्लक्ष्यतामनसूयिभिः।
प्रतिभाऽनवरोधेन श्रीमाधोऽनुसृतो मया॥
(सर्गः—20, श्लोकः—85)

अपि च

काव्यान्तरे वायसतीर्थदृष्टेर्लक्ष्मीपतेः कीर्तिमात्रचारौ।
माघप्रबन्धे यदि पक्षपातो विपश्चितां माऽनुचितो विभातु॥"
(सर्गः—20, श्लोकः—86)

बीस सर्गों में समाप्त इस महाकाव्य में वैदर्भी रीति का अनुसरण किया गया है। इस काव्य की संक्षिप्त, परन्तु सारगर्भित प्रस्तावना में पं. गोपालदास 'गञ्जा' ने इसके स्वरूपगत वैशिष्टच का उल्लेख करते हुए कहा है—"इन्द्रवज्रा-वंशस्थवसन्ततिलका-मन्दाक्रान्तादिभिर्बहुभिश्छन्दोभिः रक्तोक्त्यर्थान्तरन्यासोत्प्रेक्षोपमाद्यलंकारैश्च समन्वितं भाषालालित्येन युक्तमिदं काव्यं यूनः कवेः प्रतिभां ख्यापयति। काव्येऽस्मिन् वीररसस्य प्राधान्यम्। यत्र शृङ्गाररसप्रयोगः स त्वत्यन्तं मनोहरः कवेः प्रतिभां च व्यनक्ति। श्लेषानुप्रासादिभि, द्विगुणं समुल्लसति।"

गोस्वामीजी ने इस महाकाव्य के उन्नीसवें सर्ग में अनेक अर्वाचीन चित्रबन्धों का रमणीय चित्रण किया है। यथा—वेणुबन्ध का विन्यास—

"नश्यन्ति प्रमदार्ताः, न श्यन्ति प्रमदार्ताः।
नश्यन्ति प्रमदार्ताः, न श्यन्ति प्रमदार्ताः॥"
(सर्ग—19, श्लोक—133)

कवि ने चित्रबन्धों का प्रयोग करते हुए कहा है कि उनका सम्पूर्ण आयास विद्वज्जनमनोमोद के लिये है, मात्सर्यग्रस्त व्यक्तियों के लिये नहीं—

"गौणीकृत्य रसं क्वचिद्विरुचये चित्रैः प्रयत्नैर्मया
बन्धैर्बद्धमिदं स्वयं बहुविधैरवक्तिनैः सर्वथा।
तत्तत्तत्त्वविदां मुदे हि न पुनश्छिद्रस्पृशां दुर्हृदां
भेदज्ञाः भ्रमरा भवन्त्युदरुहां नैवोत्कटा मर्कटाः।"[1]

महाकवि द्वारा प्रयुक्त 'विदाङ्कुर्वताम्' के युक्तत्वविमर्श से व्याकरणशास्त्र तथा वेदान्त में उनके पाण्डित्य का परिचय प्राप्त होता है। कविवर माघ की तरह वे पदों के ललित विन्यास में निपुण हैं, नित-नूतन श्रुतिमधुर शब्दावली के श्लाघ्य शिल्पी हैं। पदलालित्य और पदमाधुर्य को ख्यापित करने वाले कतिपय हृदयावर्जक पद्य उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हैं—

"अनङ्गरङ्गञ्जगदङ्गनाजनैः पिपासितं रुच्यधरीकृतारुणम्।
समस्तमाधुर्यरसैकनिर्झरं सुधानिधिं धारयतोऽधरं स्मितम्॥"[2]

---

1 जरासन्धवधम्, 20/88

2 वही, 1/17

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

"मनीषिणः सच्छरणार्हणक्षणप्रधारणाकारणकीर्तिधारिणः ।
रणानणूच्चैरणदुत्कवारणगणार्णवप्लावितरैपवौजसः ।।"[1]
"सतः सतः साधु सतां ततां ततिं प्रति प्रतीपस्य कृते दुरात्मनाम् ।
सुखस्य नित्यं शरणार्थिनोऽर्थिनः कृपाभराक्रान्तकृतान्तदन्तिनः ।।"[2]
"काचित्कचानामतिमेचकानां निकञ्च्य किञ्चित्किल कुञ्चितत्वम् ।
संस्मृत्य कृष्णं रुचिवृत्तिसाम्यान्मनस्युपालम्भवती चुकोप ।।"[3]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि महाकवि माघ द्वारा परिष्कृत अलङ्कृत-शैली की काव्यविधा के विकास में 'जरासन्धवधम्' महत्त्वपूर्ण योगदान है ।

छन्दोऽलङ्कार ग्रन्थ की रचना

यद्यपि संस्कृतसाहित्य में छन्दों और अलङ्कारों के विवेचन के लिये अनेक ग्रन्थों की रचना हुई है, तथापि जोधपुरवास्तव्य आशुकवि पण्डित नित्यानन्द शास्त्री द्वारा रचित 'लघुच्छन्दोऽलङ्कारदर्पण' नामक ग्रन्थ का प्रातिस्विक वैशिष्ट्य है । कवि ने कवित्व के लिये अत्यन्त अपेक्षित छन्दःशास्त्र और अलङ्कारशास्त्र का महत्त्व हृदय से अनुभूत कर इस ग्रन्थ का निर्माण किया है । मारवाड़ के सस्कृत ग्रन्थों में इस विधा का यह एक ही ग्रन्थ प्राप्त है । यह कथन अतिशयोक्ति नहीं होगा कि समस्त संस्कृत वाङ्मय में इस विधा का अन्य ग्रन्थ विरल ही है । इस ग्रन्थ का अन्य नाम 'देवीस्तव' है । यह नित्यानन्दिका नामक स्वोपज्ञ टीका तथा कविवर के ज्येष्ठ भ्राता पं. भगवतीलाल द्वारा रचित हिन्दी अनुवाद से संवलित है । इसकी उपयोगिता, प्रयोजन, रचना की प्रेरणा तथा पूर्ववर्ती ग्रन्थों में वैलक्षण्य का परिचय देने के लिये यही उचित प्रतीत होता है कि मैं स्वयं शास्त्रीजी के संस्कृत-प्रास्ताविक के सम्बन्धित अंश को हिन्दी में प्रस्तुत करूँ । पण्डितजी कहते हैं —"परम आर्हत वाग्भट ने अलङ्कार-को पार करने के लिये उडुप की तरह 'वाग्भटालङ्कार' नामक सरलतर अलङ्कार-शास्त्र का निर्माण किया है । कविकुलचूडालङ्कार कालिदास ने छन्दोग्रन्थ रूपी शिखरी (पर्वत) के शिखर पर आरोहण (सोपान) की तरह 'श्रुतबोध' नामक सुबोध छन्दोग्रन्थ का निर्माण किया है । इस ग्रन्थद्वयी के द्वारा तत्तत् शास्त्र में जिस प्रकार प्रवेश प्राप्त किया जा सकता है, उस प्रकार ग्रन्थान्तर से नहीं । परन्तु इन दोनों ग्रन्थों में लक्षणों और उदाहरणों का क्रम होने पर भी अन्य ग्रन्थों के पद्योदाहरणों में संघटित किये बिना कालान्तर में छन्द तथा अलङ्कार छात्रवर्ग की स्मरणसरणि में आरूढ नहीं हो पाते—यह विज्ञवरों को अविज्ञात नहीं है । इस प्रकार अन्य ग्रन्थों के पद्योदाहरणों में अलङ्कारों और छन्दों को घटित करने का पुनः पुनः अनुशीलन सम्भव न होने से वे विषय छन्दोऽलङ्कार शास्त्र के प्रवेशार्थी विद्यार्थियों को अधिकतर प्रयास के बिना हृदयङ्गम नहीं होते—इस विचार से चित्त में यह चिन्तनधारा

---

1 जरासन्धवधम्, 1/39
2 वही, 1/44
3 वही, 3/19

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

प्रस्फुटित हुई कि किसी देवी की स्तुति को अभिलक्षित कर मुझे एक लघुग्रन्थ ग्रथित करना चाहिये, जिसमें वाग्भटालङ्कार के अलङ्कार तथा श्रुतबोध के छन्द दर्पण में युगपद् प्रतिभासमान पदार्थद्वय की तरह एक साथ प्राप्त हो जाय तथा देवीस्तवन के पाठ से फलप्राप्ति और छन्दोऽलङ्कारविज्ञता दोनों की सिद्धि सम्भव हो सके ।"[1] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कवि ने एक ही ग्रन्थ में श्रुतबोध के छन्दों और वाग्भटालङ्कार के अलङ्कारों का सन्निवेश कर दिया है । विद्यार्थी को उन-उन अलङ्कारों और छन्दों के उदाहरणों का ग्रन्थान्तर में अन्वेषण नहीं करना पड़ता है । इस ग्रन्थ की यह विलक्षणता उल्लेखनीय है कि कवि ने प्रत्येक पद्य में पहले सम्बन्धित अलंकार और बाद में छन्द का भी नामनिर्देश युक्तिपूर्वक कर दिया है ।[2] उदाहरणार्थ यहाँ एक पद्य प्रस्तुत है—

"मधुकृदम्ब ! यथा क्रमनीरजं
द्रुतविलम्बितयातमहं श्रये ।
जयति यन्निजभा-मृदुता-गतैः
किसलयं च विसं च सितच्छदम् ॥"[3]

यहाँ कवि ने यथा क्रम शब्द के द्वारा अलङ्कार तथा द्रुतविलम्बित छन्द का नामनिर्देश किया है । वस्तुतः यह ग्रन्थ आशुकवि पं. नित्यानन्द की युगांतरकारिणी प्रतिभा का परिचायक है । इस ग्रन्थ के बारे में आशुकवि के ज्येष्ठ भ्राता ने उचित

---

1 लघुच्छन्दोऽलङ्कारदर्पणापरनामा देवीस्तवः (वेङ्कटेश्वर मुद्रणयन्त्रालय, बम्बई, संवत् 1969) —तत्रालङ्कारनिबन्धसिन्धुसंतरणार्थमुडपमिव निरमायि परमार्हतेन श्रीमता वाग्भटेन वाग्भटालंकाराभिधानमलङ्कारशास्त्रं सरलतरम् । छन्दोग्रन्थ-शिखरिशिखरारोहणार्थं चारोहणमिव व्यररचत्कविकुलचूडालंकारः कालिदासः श्रुतबोधनामानं सुबोधं छन्दःसन्दर्भम् । एतदुभयद्वारेण यथा लब्धुं प्रभवति तत्त-च्छास्त्रमहामन्दिरप्रवेशं जनो, न तथान्येन । परं सत्यपि तत्र तत्र तत्तल्लक्षणो-दाहरणक्रमे, ग्रन्थान्तराऽन्तः पातिपद्योदाहरणसंघटनं विना कालान्तरे न हि स्मरणसरणिमारोहन्ति च्छात्रवर्गस्यालंकाराश्छन्दांसि चेत्यपि न ह्यविज्ञातं वरीवर्ति विज्ञवराणाम् । सत्सु महानिबन्धेषु संघटयमानेष्वपि च तत्र तत्रोदाहर-णेषु क्रमाद्दर्शनेन पुनः पुनरनुशीलनासंभवाद्विना भूयांसं प्रयासं न खलु हृदयकष-पट्टमवगाहते तत्तच्छास्त्रं प्रविविक्षूणां सुतरां तत्तद्विषयाः । इत्याकलय्य व्यचिन्तयं चेतसि, यदुत कस्या अपि देवतायाः स्तवमुद्दिश्य तथा मयैको लघुरेव ग्रन्थो ग्रन्थ-नीयः यत्र हि दर्पण इव वाग्भटालंकारीया अलंकाराः श्रुतिबोधीयानि च्छन्दांसि च समं दृश्येरन् । येन देवतास्तवपाठेन फलप्राप्तिश्छन्दोऽलङ्कारविज्ञत्वं चेत्युभय-मपि सिद्ध्येत् ।

2 तत्र च प्रतिपद्यं पूर्वमलंकारस्य ततश्छन्दसो नामाऽपि युक्त्या असूचयम् । —लघु-च्छन्दोऽलङ्कारदर्पण (प्रास्ताविक)

3 लघुच्छन्दोऽलङ्कारदर्पण, श्लोक-संख्या 26

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

ही कहा है—

"भो भूमण्डलमण्डिपण्डितवरा ! नत्वा विनीतोऽर्थये ।
ग्रन्थो मेऽनुचरस्य लोचनसुधासम्पातनैः पूयताम् ।।
अलंक्रियासु कुशलान्याप्नुवन्त्यखिलासु ते ।
अलंक्रियासु कुशलाश्छन्दःसु च भवन्त्यतः ।।
पाठ्यतां पाठकैरेष कथकैः कथ्यतां तथा ।
गायकैर्गीयतां सम्यक् श्रूयतां श्रावकैः पुनः ।।"

पद्यव्याकरण का निर्माण

संस्कृतवाङ्मय में पद्यव्याकरण का प्रवर्त्तन करने वाले विद्वानों में जोधपुरवासी वैयाकरणकेसरी पं. लालचन्द्र का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। एक ओर जोधपुरवास्तव्य आशुकवि नित्यानन्द ने 'श्रीरामचरिताब्धिरत्न' नामक चित्रमहाकाव्य में व्याकरणसम्बन्धी नियमों का सन्निवेश कर महाकवि भट्टि द्वारा प्रवर्तित वैयाकरण-काव्य या शास्त्रकाव्य की परम्परा को आगे बढ़ाया, तो दूसरी ओर पण्डित लालचन्द्र ने व्याकरणशास्त्र को इस अभिनव विधा में निबद्ध कर संस्कृतवाङ्मय की श्रीवृद्धि में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। कविवर द्वारा रचित खण्डद्वयात्मक पद्यव्याकरण संस्कृत और प्राकृत के व्याकरणशास्त्र का विलक्षण ग्रन्थ है। इसके पद्यकौमुदी नामक प्रथम खण्ड में पाणिनीय व्याकरण की सूत्रानुसारिणी प्रक्रिया वसन्ततिलका छन्द में निबद्ध 338 ललित पद्यों में परिष्कारपूर्वक संक्षेप में प्रस्तुत की गई है। प्रसाद-शैली में रचित पद्य अत्यधिक चित्तानुरञ्जक हैं। कविवर इस ग्रन्थ की रचना में न तो अपने पाण्डित्य के प्रदर्शन के लिये प्रवृत्त हुए थे और न निज कवित्वोत्कर्ष के लिये, अपितु शिष्यहित के प्रयोजन से ही उन्होंने इतना परिश्रम किया था। व्याकरणशास्त्र में प्रवेशार्थी शिष्यगण स्वल्प श्रम से पाणिनीय शब्दानुशासन में प्रवीण हो जायँ—इस प्रयोजन से शिष्यदया के वशीभूत होकर कविवर ने उक्त ग्रन्थ का निर्माण किया था, जैसा कि ग्रन्थ के प्रारम्भ में किये गये उल्लेख से स्पष्ट है—

"आशान्वितोऽस्मि निजचित्त उताहमीशात्
नित्यं श्रमः सफलतां मम चैष्यतीह ।
शाब्दीयशिष्यसुकृतेऽखिलसंस्कृतीये
स्वल्पश्रमेण पठनाय सुपुस्तकेऽयम् ।।
गद्यात्मकेषु किल दीर्घतरेषु सत्सु
श्रीशाब्दबोधनपरेष्वमितेषु भूम्याम् ।
शब्दार्णवप्रतरणे पिहितोद्यमानां
पद्यप्लवं विरचयामि मुदे शिशूनाम् ।।"

प्रशस्तिकाव्यों का प्रणयन

बृहत्कवि पं. लालचन्द्र द्वारा रचित 'यशवन्तयशोदीपिका', 'मोक्षमूलरयशोदीपिका' तथा 'ज्युबिलीप्रमोदिका' नामक प्रशस्तिकाव्य उनके उत्कृष्ट कवित्व के परिचायक हैं। संस्कृतसाहित्य के इतिहासकारों ने आश्रयदाता राजाओं के चरितकाव्यों को ऐति-

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

हासिक काव्यों की कोटि में परिगणित किया है, अतः इस दृष्टि से 'यशवन्तयशोदीपिका' ऐतिहासिक काव्य की कोटि में भी रखा जा सकता है। 'यशवन्तयशोदीपिका' और 'मोक्षमूलरयशोदीपिका' अभी तक अप्रकाशित हैं। 'ज्युबिलीप्रमोदिका' नामक काव्य प्रकाशित है। कवि ने सन् 1887 में सम्पन्न महाराज्ञी विक्टोरिया के ज्युबिलीमहोत्सव के बारे में अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिये इस ग्रंथ का प्रणयन किया था। यह ग्रंथ अंग्रेजी अनुवाद से भी संवलित है।

इस कृति का संस्कृत के इतर काव्यों से अनितरसाधारण वैलक्षण्य यह है कि इसमें संस्कृत-शब्दों के साथ अंग्रेजी शब्दों का संस्कृतीकरण किये बिना ही सन्निवेश कर दिया है, जो अत्यन्त चमत्कृतिपूर्ण है। संस्कृत के साहित्यकार गद्य में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करने में हिचकिचाते हैं; पद्य में छन्दोनियम का अतिक्रमण किये बिना संस्कृतशब्दों के साथ उनका समावेश तो संस्कृतकवियों के लिये एक बड़ी चुनौती है।

पं. लालचन्द्र ने इस प्रकार सफल प्रयोग कर संस्कृत की औदार्यशक्ति का ही परिचय नहीं दिया है, अपितु इस कृति के असंस्कृतज्ञों तथा संस्कृत के अल्पज्ञों के लिए भी सुबोध बना दिया है। स्वयं कवि ने इस प्रयोजन का उल्लेख किया है। संस्कृत के अगाध वैदुष्य से सम्पन्न होने पर भी कवि ने इस लक्ष्य को सदैव ध्यान में रक्खा कि उनके ग्रन्थ की भाषा तथा शैली सुबोध और सरल हो। उदाहरण के रूप में यहाँ एक-दो उदाहरण प्रस्तुत हैं, जिनसे इस काव्य के बारे में उक्त प्रशंसावाक्य प्रमाणित हो सकें—

"हिन्दस्य हर्पदगवर्नरजेन्रलोऽपि
एजन्टगोरनरजन्रलवाल्टरोऽपि।
श्रीपुल्टिकल्टरजिडेण्टसुपौलटोऽपि
सर्वे प्रसादसुमुखा मम सन्तु नित्यम्॥
श्रीयोधनाथयशवन्तमहाधिराजः
श्रीमत्प्रतापहरिकर्नलमाननीयः।
श्रीमत्कमाण्ड् इन चीजकिशोरसिंहः
सर्वे प्रसादसुमुखा मम कृत्यतोऽपि॥"

(ज्युबिलीप्रमोदिका)

अंग्रेजी ही नहीं, हिन्दी, राजस्थानी आदि भाषाओं में प्रयुक्त प्रचलित शब्दों का भी कहीं-कहीं प्रयोग कर दिया गया है। जैसे - कवि ने तार (Telegram) शब्द का प्रयोग इस प्रकार किया है—

"तारेण दूरवसतां विपलैर्घटीभिः
सम्प्राप्नुवन्ति चरितानि सुवांछितानि।
यान्यक्षराणि तरतारमुखोद्गतानि
तान्येव तत्र गमनात् समनूद्गिरन्ति॥"

(ज्युबिलीप्रमोदिका)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

कवि ने तत्कालीन सेनापति श्री किशोरसिंहजी की प्रेरणा से इस काव्य की रचना की थी, जैसा कि निम्नलिखित पद्य से स्पष्ट है—

"प्रोक्तं किशोरहरिणोत्सवके सुजाते
मह्यं तदा त्वमपि संस्कृतभाषया वै ।
ग्रन्थं रचस्व ज्युबिलिस्मरणार्थमेनं
प्रामोदिकाज्युबिलिकाभिधया प्रसिद्धम् ।।"

(ज्युबिलीप्रमोदिका)

कवि ने आङ्ग्लभाषा तथा अन्य भाषाओं के शब्दों का सन्निवेश इस कौशल से किया है, जिसके कारण यह प्रतीत होता है मानो ये संस्कृत-शब्द ही हों। कवि के इस चमत्कृतिजनक कवित्व से प्रभावित होकर पाश्चात्य संस्कृतसुधी प्रो. मैक्समूलर ने निम्नलिखित शब्दों में प्रशंसा व्यक्त की थी --I admire your power of wielding the Sanskrit language to an art to which we poor mlecchas can not aspire........But we are pleased to see that the spirit of the ancient Rishies is not quite extinct and look forward to a great future for the gifted sons of Aryavarta."[1]

ऐतिहासिक महाकाव्यों का प्रणयन

संस्कृत साहित्य में इस विधा की भी प्राचीन परम्परा है। कवियों ने आश्रयदाता की कीर्ति को अक्षुण्ण बनाये रखने के प्रयोजन से उनका जीवनचरित गद्य या पद्य में निबद्ध करने का प्रयास किया। परन्तु उनका यह प्रयास शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से ही अभिप्रेरित था; ऐतिहासिक तथ्य देने का प्रयास अत्यल्प था। प्राचीन ऐतिहासिक महाकाव्यों में कल्हणविरचित राजतरंगिणी प्रामाणिक रूप से ऐतिहासिक तथ्यों का निरूपण करने वाला ऐतिहासिक महाकाव्य माना जाता है। कल्हण निष्पक्ष ऐतिहासिक था, यद्यपि कवि स्वयं को इतिहासवेत्ता न मान कर विशेष रूप से कवि मानता है। कवि अपने आदर्श को अभिलक्षित कर कहता है—

"श्लाघ्यः स एव गुणवान् रागद्वेषबहिष्कृता ।
भूतार्थकथने यस्य स्थेयस्येव सरस्वती ।।"

(राजतरंगिणी)

मारवाड़ में ऐतिहासिक महाकाव्य के प्रणेता के रूप में पण्डितप्रवर जगज्जीवन भट्ट का नाम प्रसिद्ध है। उनके द्वारा रचित 'अजितोदय' ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण महाकाव्य है। परम हर्ष का विषय है कि यह ऐतिहासिक महाकाव्य प्रकाशित हो चुका है। जगज्जीवन भट्ट महाराज अजीतसिंह के समसामयिक थे। इस महाकाव्य में वि. सं. 1730 से 1781 तक की घटनाओं का वर्णन है। महाराज जसवन्तसिंह (प्रथम) के आकस्मिक देहावसान के पश्चात् मारवाड़ की राज-

---

1 ये प्रशंसायुक्त विचार प्रो. मैक्समूलर द्वारा ऑक्सफोर्ड से दिनांक 28-10-1890 को पं. लालचन्द्र को प्रेषित पत्र में व्यक्त किये गये थे।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

नीतिक और सामाजिक स्थिति तथा मुगल सम्राट् औरंगजेब की मनोवृत्तियों का स्पष्ट चित्रण इस महाकाव्य में प्राप्त होता है। मुगलकालीन भारतीय इतिहास तथा संस्कृति की मुख्य धाराओं का समुचित ज्ञान करने के लिये यह ग्रन्थ अतिमहत्त्वपूर्ण है। कवि ने महाराज अजीतसिंह के गुणों से प्रेरित होकर इस ऐतिहासिक महाकाव्य की रचना की थी, जैसा कि निम्नलिखित पद्य से स्पष्ट है—

"राज्ञोऽनेकगुणार्णवस्य सकलक्षोणीशचूडामणे
राठोड़ान्वयजाम्बुजव्रजवनप्रोल्लासकाहर्मणेः ।
वक्ष्ये चित्रमथाऽजितस्य नृपतेः प्रीत्या चरित्रं शुभं
यद्यस्मि प्रतिबद्धवागपि मुदा वाग्देवताप्रेरितः ।।"

(अजितोदयम्, 1/4)

जोधपुर नगर के वर्णन से सम्बन्धित एक पद्य यहां निदर्शना के लिए प्रस्तुत है—

"अस्ति क्षितौ हृतसमत्रिदिवाभिमानं,
सस्यग्गवाक्षनिकरैरुपराजमानम् ।
शश्वत् सुहृज्जनमनोनयनानुपेयं,
द्रङ्गं च योधपुरमित्यभिधानगेयम् ।।"[1]

यह भी उल्लेखनीय है कि यह महाकाव्य जोधपुर के ही अन्य सुप्रथित महाकवि नित्यानन्द शास्त्री द्वारा सम्यक्तया सम्पादित है।

जोधपुरवास्तव्य आधुनिक महाकवि गोस्वामी हरिराय द्वारा रचित 'पुरुषसम्भवमहाकाव्यम्' ऐतिहासिक महाकाव्य के रूप में विशेषतया उल्लेखनीय है। संस्कृत के ऐतिहासिक महाकाव्यों की प्रणयनपरम्परा को सानुबन्ध रखने के लिये गोस्वामीजी का योगदान अविस्मरणीय है। प्रस्तुत ग्रन्थ में पूर्ण पुरुष भगवान् श्रीनाथजी (श्रीकृष्ण) के सम्भव (प्राकट्य) का वर्णन होने से इसका सम्पूर्ण नाम 'श्रीगोवर्धनधर-प्राकट्योपाख्यं पुरुषसम्भवम्' रखा गया है। इसमें श्रृङ्गार, वीर आदि सभी प्रमुख रसों की शोभन संसृष्टि हुई है, परन्तु मुख्य (अङ्गी) रस भक्ति रस है। पाञ्चाली शैली में निबद्ध इस महाकाव्य में 12 सर्ग हैं। यह उल्लेखनीय है कि महाकवि ने कल्हण के आदर्श को लक्षित कर इस ऐतिहासिक महाकाव्य में ऐतिहासिक तथ्यों को प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। अतः इस दृष्टि से यह महाकाव्य अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। जहाँ एक ओर काव्यानुशीलन कुशल विद्वानों द्वारा इसका काव्यसौष्ठव समीक्षणीय है; वहाँ दूसरी ओर इतिहासविदों द्वारा इसमें प्रस्तुत ऐतिहासिक तथ्यों की प्रामाणिकता परीक्षणीय है।

इस ग्रन्थ के स्वरूप तथा रचनोद्देश्य को प्रामाणिक रूप से स्पष्ट करने के लिये यही उचित प्रतीत होता है कि स्वयं महाकवि के 'प्राक्कथन' से सम्बन्धित अंश को उद्धृत किया जाय। वह इस प्रकार है—"प्रस्तुत ग्रन्थ 'पुरुष-संभवमहाकाव्यम्' अवश्य ही एक साहित्यिक कृति है, तथापि इसमें वर्णित तथ्यात्मक कथावस्तु के कारण

---

1 अजितोदयम्, 1/5

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मुख्यतया यह ऐतिहासिक कृति बन गई है, इसमें सन्देह नहीं।" "……तथापि मूलतः चौपासनी के गोस्वामी, उनके सेव्यस्वरूप श्री श्याममनोहर जी एवं भक्त कवि सूरदास की भगवत्सेवा आदि लुप्तप्राय ऐतिहासिक घटनाओं को प्रकाश में लाना ही इस महाकाव्य का मुख्य उद्देश्य है।" कवि का यह स्पष्ट उद्घोष है कि काव्यशास्त्रीय परिपाटी का यथाशक्य निर्वाह करते हुए ऐतिहासिक तथ्यों के निरूपण में काल्पनिकता को अवकाश नहीं दिया है। कवि ने ऐतिहासिक घटनाओं को अक्षुण्ण रखते हुए रसालङ्कारादि का भी यथोचित निर्वाह किया है। इस ऐतिहासिक महाकाव्य के बारे में समीक्षात्मक सम्मति प्रस्तुत करते हुए स्व. प्रोफेसर डी. डी. हर्ष ने उचित ही कहा है—"The epic thus brings to light the forlorn and forgotten chapter of the religious history of medieval Marwar, on the one hand, and serves as a landmark and as a lighthouse of pure poetry in Sanskrit, on the other."

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि महाकवि ने इस कृति द्वारा संस्कृतसाहित्य की 'ऐतिहासिक महाकाव्य' नामक विधा के विकास में विशिष्ट योगदान किया है।

गीतिकाव्य की रचना

गीतिकाव्य भी एक उत्कृष्ट काव्यविधा है। इसका सर्वाधिक विकसित स्वरूप संस्कृतसाहित्य में प्राप्त होता है। गीतिकाव्य सुरभारती का परम रमणीय अंग है। संस्कृत में गीतिकाव्य के दो प्रकार प्राप्त होते हैं—मुक्तक तथा प्रबन्ध। महाकवि कालिदास द्वारा विरचित 'मेघदूत' नामक प्रबन्धात्मक गीतिकाव्य संस्कृत का आद्य और उत्कृष्ट गीतिकाव्य है। मेघदूत की काव्यसुषमा से आकृष्ट होकर उसका अनुकरण करते हुए परवर्ती कवियों ने भी 'सन्देशकाव्यों' या 'दूतकाव्यों' का प्रणयन किया।

मारवाड़ के आशुकवि पं. नित्यानन्द शास्त्री ने भी उस दूतकाव्य-परम्परा को अक्षुण्ण रखते हुए 'हनुमद्दूतम्' की रचना कर संस्कृतसाहित्य में इस विधा के विकास के लिये उल्लेखनीय योगदान किया है। आचार्य बलदेव ने संस्कृतसाहित्य के इतिहास में उनकी कृति का उल्लेख[1] किया है। यह कृति प्रकाशित है।

यद्यपि गेयता गीतिकाव्य का अनिवार्य उपादान होने से प्रत्येक गीतिकाव्य में सुलभ होती है, तथापि जयदेव का 'गीतगोविन्द' गेयता की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ गीतिकाव्य है। उसमें रागबद्ध गेयता, कोमल कान्त पदावली तथा मधुर भावों के अतिरेक की पराकाष्ठा है। कविकुलचूड़ामणि कालिदास की कविता में भी वैसा मधुर भाव नहीं प्राप्त होता है।

यह परम प्रसन्नता का विषय है कि मारवाड़ में भी जयदेव की कोमल कान्त पदावली और भावसान्द्रता से प्रभावित होकर कविवर जगदीशचन्द्र आचार्य ने 'संगीतलहरी' नामक मुक्तक गीतिकाव्य की रचना की है। काव्य के यत्किञ्चित्' से

---

1 संस्कृतसाहित्य का इतिहास, पृ. 331

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

कवि के वचन यहाँ उद्धृत हैं—"राग-रागिणी-समन्वित शब्दसामर्थ्य और ललित-पदावलीयुक्त जयदेव की रचनाओं से लेखक बहुत प्रभावित हुआ। संगीतबद्ध गीत-रचना का मैंने प्रयास किया और भिन्न-भिन्न रागों में काव्यरचना की।"

इस गीतिकाव्य में विविध विषयों से सम्बन्धित विविध रागबद्ध गीत प्राप्त होते हैं। यह उल्लेखनीय है कि कवि ने ध्रुपद और ख्याल की गायकी के रूप में भी अपने विचार व्यक्त किये हैं। वस्तुतः बीसवीं शताब्दी में भी जयदेव के गीतगोविन्द की शैली का सफल निर्वाह कर कविवर जगदीशचन्द्र आचार्य ने सुरसरस्वती की श्लाघनीय समाराधना की है। इस काव्य के भावसौष्ठव और शब्दमाधुर्य आदि की अनुभूति के लिये यहां कतिपय उद्धरण प्रस्तुत हैं—

(1) "हे रसने रट राधारमणम्।
अयि रसने रट राधारमणम्
जप जगदीशं पदगतशरणम्॥ ध्रुव॥ 1॥
क्षणभङ्गुरजीवनकलिकेयम्
श्व उषसि विकसेदथवा नेयम्।
भज यदुवरमधुसूदनमेनम्
जप जगदीशं पदगतशरणम्॥ हे रसने॥ 2॥
मलयगिरेः शुचिशीतलमरुतां
तनुसुखदो न भवेदुपभोगः।
भज भवरोगहरं हरिमेनम्
जप जगदीशं पदगतशरणम्॥ हे रसने॥ 3॥"

(पृष्ठ 1)

(2) "अधरमधुरमुरलीधारी
खेलति राधाहृदयविहारी॥ ध्रुव.॥ 1॥
यमुनातटगतकुञ्जनिकुञ्जे
विदलितमानसकिल्विषपुञ्जे
विचरति दानवदर्पविदारी॥ अधर.॥ 2॥
कोकिलकल रवमञ्जुलनदितम्
व्रजललनामुखमधुरं हसितम्
शरदि चन्द्रिकारासविहारी॥ अधर.॥ 3॥

(पृष्ठ 39)

स्तोत्र-रचना

संस्कृत का स्तोत्रसाहित्य अतिविशाल, सरस तथा हृदयावर्जक है। स्तोत्रकाव्यों में शिव, विष्णु, सूर्य, भगवती दुर्गा, लक्ष्मी, गङ्गा, यमुना, गोदा आदि की महिमा का गान करते हुए भक्तकवियों ने अपने कोमल तथा भक्तिप्रपूरित भावों को अभिव्यक्त किया है। संगीत का पुट मिल जाने से इनका प्रभाव दुगुना हो जाता है।

मारवाड़ में इस विधा का विकास करने वाले कवियों में आशुकवि नित्यानन्द

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

शास्त्री तथा कविवर जगदीशचन्द्र आचार्य का नाम विशेषत: उल्लेखनीय है। आशुकवि द्वारा रचित 'लघुच्छन्दोऽलङ्कारदर्पण', जिसका दूसरा नाम 'देवीस्तव' है, छन्दों एवं अलङ्कारों के परिज्ञान के लिये ही उपकारक नहीं है, अपितु दधिमथी देवी के स्तवन का ग्रंथ होने के कारण देवतास्तव के पठन से जन्य फल का प्रापक भी है। इस ग्रन्थ के वैशिष्टय का उल्लेख पहले कर दिया गया है। वस्तुत: यह एक उत्कृष्ट स्तोत्रकाव्य है। निश्चित ही इस ग्रन्थ से संस्कृतस्तोत्रसाहित्य की श्रीवृद्धि हुई है। अलङ्कारों के समाप्त होने पर स्रग्धरा छन्द का उदाहरण देने के इच्छुक कविवर ने कविरचना के स्वरूप का निरूपण करते हुए देवीस्तव का उपसंहार इस प्रकार किया है—

"अर्थोत्कर्षप्रपूर्णा ललितपदगति: संस्फुरच्चारुवृत्ता-
लंकारालंकृता सद्गुणगणगुणिता सद्रसा दोषहीना।
सद्वर्णस्रग्धरा सा कविवररचनेवोल्लसत्साधुरीति-
र्नित्यानन्दप्रदात्री दिशतु दधिमथी भक्तिमद्भ्य: प्रमोदम् ।। 40 ।।"

इसके अतिरिक्त कवि ने 'मारुतिस्तव' तथा 'विविधदेवस्तवसङ्ग्रह' नामक स्तोत्र-ग्रन्थों की भी रचना की थी।

कविवर जगदीशचंद्र आचार्य द्वारा विरचित 'मन्दाकिनी-माधुरी' नामक लघु स्तोत्र-काव्य से भक्ति तथा माधुर्य की अनुपम धारा प्रवाहित होती है। इसमें कुल 32 पद्य हैं। कवि ने कोमल कान्त पदावली से भगवती मन्दाकिनी की महिमा का गान किया है। भाषा के लालित्य तथा भावों के अतिरेक को निर्दशित करने के लिये कतिपय पद्य यहाँ उद्धृत हैं—

"कल्याणी कुमुदेशकुन्दधवला धाराधरोल्लासिनी
शर्वांगस्थविरा शिवामृतमयी नीलाम्बरश्रीयुता।
तन्वन्त:करणा सलीलसलिला स्वर्गापगा पावनी
मन्दोत्तुंगतरंगभंगतटिनी मन्दाकिनी पातु माम् ।। 1 ।।"

"यन्मूर्तंस्तवने नितान्तमुपमामालोपमारूपको-
त्प्रेक्षानन्वयकाव्यलिंगयमकानुप्राससारादय:।
मोदन्ते मधुरप्रसादजननव्यापारचित्रस्मिता
मोन्दोत्तुंगतरंगभंगतटिनी मन्दाकिनी पातु माम् ।। 8 ।।"

"सिद्धानां गिरिकन्दरासु वसतां ब्रह्मैकनिष्ठावतां
यौगालौकिकसिद्धिलब्धपरमज्ञानोल्लसच्चेतसाम्।
सर्वेषामनुकम्पया तनुभृतां कल्याणमातन्वतां
मातस्त्वत्तटवासिनामनुपमं दृश्यं परं शोभनम् ।। 23 ।।"

गद्यकाव्य की रचना

संस्कृत भाषा के गद्यसाहित्य की अपनी व्यावर्तक विशिष्टता है। संस्कृतसाहित्य में गद्य ही कवियों की कसौटी माना गया है—"गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति।" कथा तथा आख्यायिका के रूप में उत्कृष्ट गद्यकृतियाँ उपलब्ध हैं। संस्कृतगद्य की अनेक

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

विशिष्टताओं में मुख्य है—ओजः गुण, जैसा कि कहा भी है—"ओजः समासभूयस्त्व-मेतद् गद्यस्य जीवितम् ।" गद्यकारों की त्रयी—सुबन्धु, बाण और दण्डी—अपनी विशिष्ट गद्यशैली के कारण विश्वविश्रुत है ।

यह परम प्रसन्नता का विषय है कि गद्यकविचूडामणि बाण की 'कादम्बरी' को उपजीव्य के रूप में स्वीकार कर मारवाड़ के गद्यकवि जगदीशचन्द्र आचार्य ने 'मकरन्दिका' नामक गद्यकृति का निर्माण किया है । कविवर की यह कृति गद्यकवीश्वर बाणभट्ट को ही समर्पित है—"कादम्बरीरचयित्रे कवीश्वराय श्रीबाणभट्टाय सादरं समर्पिता ।" बाण की 'कादम्बरी' का गद्य स्निग्ध, रसपेशल, हृदयावर्जक 'पाञ्चाली' शैली का भव्य प्रतीक है, जिसका प्रभूत प्रभाव 'मकरन्दिका' के रचयिता पर पड़ा है । 'मकरन्दिका' की कथा कवि की कमनीय कल्पना से प्रसूत है । इसके नामकरण की सार्थकता की ओर संकेत करते हुए कवि ने कहा है—

"कथायां रमते यत्र नायिका मकरन्दिका ।
बुधस्तत्पठने पश्येन्मकरन्दं पदे पदे ॥"

(मकरन्दिका, पृ. 5)

बाण के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए कवि ने अधिकांशतया पाञ्चाली शैली का प्रयोग किया है, परन्तु कहीं-कहीं वैदर्भी शैली का भी अवलम्ब लिया है । कवि के ही शब्दों में—"Makarandika abounds in so many paragraphs in prose in Pancali style; but its struture is simple and rhythmical as it gives pleasure to the reader who carefully reads it. At some places the style is Vaidarbhi also." कवि ने "गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति" इस उक्ति को स्वीकार करते हुए कहा है कि इस कृति में गुण, शैली, कल्पना तथा विशिष्ट शब्दावली का मञ्जुल समन्वय है । पाठक को सन्देहवृत्ति (Idea of suspense) प्रदान करने के लिये कथा में भूत-प्रेत, अतिमानव, यक्ष, गन्धर्व आदि तत्त्वों का समावेश किया गया है । 'मकरन्दिका' के वैशिष्ट्य का निर्देश करते हुए आचार्य डॉ. रामचन्द्र द्विवेदी ने अपनी समीक्षात्मक सम्मति में उचित ही कहा है—"चम्पूरीत्या निबद्धा कालिदासबाणभट्टसंयोगं प्रकटयन्ती सद्यः प्रकाशिता मकरन्दिकेयं सुमनसां मनांसि वसन्तोपवनसरोवरजलश्रीमहेश्वरनिकेतननगरादिविविधवर्णनोपबृंहितप्रणयनिवेदनेन नूनमावर्जयिष्यतीत्यत्र नास्ति मे सन्देहलेशावसरः । वस्तुतः साहित्यस्यापूर्वं किमपि सौभाग्यमिदं यदधुनाप्यायचार्यसदृशाः कवीश्वरास्तस्य श्रियभजस्रं वर्धयन्ति ।"

विस्तार-भय के कारण अधिक न कह कर इस गद्यकृति से कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत हैं, जिनसे गद्यरसिक पाठकों को आनन्दानुभूति हो सके । कवि द्वारा कथाप्रारम्भ से पहले किया गया शिवस्तव अत्यधिक आह्लादजनक है—"अनन्तब्रह्माण्ड वितान-व्याप्तात्मसकललोकललामभूतस्वर्लोकेन्द्रेन्द्रप्रभृत्यनेक-नाकौकः सिद्धकिन्नरगन्धर्वयक्ष-राक्षसगणविहितार्हणोऽनल्पविकल्पतल्पशायिन्यनेकदिव्याप्सरोऽविरलोपासितदिनकरकरोत्फुल्लीकृतकनकपुण्डरीककिञ्जल्करेणुकाञ्चनीभूतकल्लोलमञ्जुकलरवबाहिन्यमरसरिद-

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

लंकृतजटाजूटः..................ओजःपुञ्ज सौदामिनीरजतरेखालंकृतविष्णुपदचुम्बितशृंग समूहमण्डनकिरीटोत्तरदिगजेयदुर्गावनिभृदिन्द्रनन्दिनीभूषितदक्षिणेतरांगदेशो महेशो भवतु भवतां निःश्रेयसाय ।"

(मकरन्दिका, पृ. 5)

वर्णनों को संश्लिष्ट तथा प्रभावोत्पादक बनाने और भावों में तीव्रता का आधान करने के लिये कवि ने बाण की तरह उपमा, उत्प्रेक्षा, श्लेष आदि अलङ्कारों का अत्यधिक कमनीय प्रयोग किया है। शिवस्तव में प्रयुक्त 'ओजः-पुञ्ज' शब्द अत्यधिक साभिप्राय है। कवि प्रभावशाली गद्य के लिखने में नितान्त निपुण हैं। उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का कमनीय प्रयोग दर्शनीय है—"अत्र कुवलयवलयैरिवालंकृता, दलदरविन्दमकरन्दपानलोलुपभ्रमरालिगुञ्जनगीतैरिव प्रमुदिता, प्रसन्नवारिचञ्चलतरंगचित्रमयदुकूलेनेव शोभमाना.........त्रिसन्ध्योपासनाक्लृप्तोचितवेशसपर्यासमारम्भा योगिनीव........ भाले चान्द्रमसीं कलां दधाना, माहेश्वरीरूपेव जलश्रीर्नितरां शुशुभे ।" (मकरन्दिका, पृ 11-12) मकरन्दिका के कमनीय अंगों के अलौकिक सौन्दर्य के निरूपण से कवि का अद्भुत् वर्णन कौशल ध्यातव्य है—"प्रफुल्लपुण्डरीकदलायतलोचना, खचितनानाकुसुमशोभितकबरीकलापा, कुंकुमरागालंकृतसीमन्ता ....कन्दर्पविहारस्थलं गोपयन्तीव नूपुरनादसमाकृष्टहंसमिथुना, रम्भोरुः, सौन्दर्यमूर्तिः सा मकरन्दिका रराज ।"

(मकरन्दिका, पृ. 29)

समासबहुल ओज गुण से मण्डित शैली का अधिकांशतः आश्रय लेते हुए भी कवि ने कहीं-कही छोटे-छोटे अतिसरल वाक्यों का प्रयोग कर वैदर्भी शैली में भी अपनी विलक्षणता प्रदर्शित की है। यथा—"राज्ञी तत्र प्रथमत आहूता। तस्यै रुद्रसेन इदं फलं ददौ। सा काले सुन्दरं तेजोमयं कुमारं प्रासूत। स राजकुमारः प्रासादे प्रतिदिनं ववृधे। तस्य नामाभिधानं चित्रकेतुरिति ख्यातम् ।" (मकरन्दिका, पृ. 17) आचार्य बलदेव उपाध्याय ने उचित ही कहा है—"कवि किसी एक शैली का क्रीतदास नहीं होता। वह तो विषय के अनुसार अपनी शैली को परिवर्तित किया करता है।" संस्कृतसाहित्य का इतिहास, पृ. 398)

स्मृति (धर्मशास्त्रीय ग्रंथ) की रचना

संस्कृतभाषा में रचित स्मृतिसाहित्य भी समृद्ध है। विद्वानों को यह सुविदित है कि भारत में सभी वर्णों और सभी आश्रमों के आचारसम्बन्धी नियमों के निर्धारण हेतु समय-समय पर युगानुरूप स्मृतियाँ रची गई। याज्ञवल्क्यस्मृति में बीस स्मृतियों के नामनिर्देश से इस कथन की पुष्टि हो जाती है। मरुवासी महामहोपाध्याय रेउ ने लिखा है कि दुर्भाग्यवश बारहवीं शताब्दी से युगानुरूप स्मृति का निर्माण शिथिलता को प्राप्त हो गया था। उनका कथन है कि मनुस्मृति की सर्वप्राचीनता और सर्वमान्यता भले ही रही हो, परन्तु इस परिवर्तित समय में उसके अनुसार आचारपालन महान् पुरुषों के लिये भी असम्भव हो गया है, फिर साधारण जनों के बारे में तो कहना ही क्या ? भिन्न-भिन्न स्मृतियों में तो मतभेद है ही, परन्तु एक स्मृति में भी मतभेदों का अभाव नहीं है। दूसरी बात यह है कि समय-परिवर्तन के कारण बहुत

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

से प्राचीन आचार अमान्य हो गये हैं। यदि ध्यानपूर्वक समीक्षण किया जाय तो ज्ञात होता है कि प्राचीन महर्षियों के नाम से प्रख्यात स्मृतियाँ अर्वाचीन प्रतीत होती हैं और उनमें प्रक्षिप्त मत भी उपलब्ध होते हैं। महामहोपाध्याय रेउ ने इन दोषों को सोदाहरण प्रस्तुत किया है। इस प्रकार की विषम स्थिति के कारण महान् विचारक पं. विश्वेश्वरनाथ रेउ ने बीसवीं शताब्दी में 'विश्वेश्वरस्मृति' नामक युगानुरूप स्मृति का निर्माण कर एक महान् कर्तव्य का निर्वाह किया है। यह मरुभूमि धन्य है, जहाँ स्मृतिसाहित्य की अवरुद्ध धारा को पुनः प्रवाहित करने वाले स्मृतिकार हुए।

दो भागों में विभक्त इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में मनुस्मृति में कथित आचार-विचारों की सकारण-युगानुरूप व्याख्या की है। स्मृतिकार ने उचित ही कहा है—

"पुरातनं मानवधर्ममेव सम्यक् परिष्कृत्य युगानुरूपम्।
विश्वेश्वरेणात्र कृते प्रयत्नेऽत्यावश्यको विज्ञसुदृष्टिपातः॥"

इस ग्रन्थ के द्वितीय भाग में सम्पूर्ण आर्यदाय भाग का युगानुरूप विवेचन किया गया है। प्रत्येक प्रान्त में प्रचलित विधान इसमें परिश्रमपूर्वक संगृहीत हैं। इस ग्रंथ के संशोधक आशुकवि नित्यानन्द शास्त्री ने कहा है—"श्री विश्वेश्वरनाथ रेउमहोदयेन इममार्यविधानाभिधानं महान्तं ग्रन्थमारचय्यातीवोपकृतः संस्कृतसाहित्यसंसारः।" यह उल्लेखनीय है कि ग्रन्थ 'कलावती' नामक हिन्दी टीका से भी संवलित है। पं. कैलास-नाथ काटजू, धर्मशास्त्र के विश्वविश्रुत इतिहासकार पी. वी. काणे, भट्ट मथुरानाथ शास्त्री आदि मनीषियों ने इस ग्रन्थ की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी।

युगानुरूप परिवर्तनों का दिङ्निर्देश करने के लिये इस ग्रंथ से कुछ श्लोक यहाँ प्रस्तुत हैं—

"द्विजातयस्तथा शूद्रा हिन्दवो द्विविधा मताः।
कर्मणां च तयोर्व्याख्या शास्त्रेषु विशदा कृता॥
परमद्यात्र संजाते मिश्रणे तूक्तकर्मणाम्।
वर्णानां मिश्रणे चापि दुष्करो वर्णनिर्णयः॥"

सन्तति के बारे में—

"पालने शिक्षणे कष्टं कष्टं वृत्त्यर्जनेऽपि च।
अतोऽल्पैव जनिः श्रेष्ठा परिवृते युगेऽधुना॥"

मितलोभ के बारे में—

"लोभाभावोऽतिलोभश्च द्वावेतौ हानिदौ यतः।
अर्थप्रधाने कालेऽस्मिन् मितलोभो भवेत् ततः॥"

विद्या के बारे में—

"वेदशास्त्रपुराणानां स्थाने विद्या तु लौकिकी।
जीविकार्थं प्रचलिता प्रबला समयस्थितिः॥"

उपसंहारतः यह कहा जा सकता है कि मारवाड़ में संस्कृतवाङ्मय की प्रायः सभी विधाओं से सम्बन्धित उच्चकोटि की कृतियों का सर्जन हुआ है। वस्तुतः महा-कवि जगज्जीवन भट्ट, बृहत्कवि पं. लालचन्द्र, आशुकवि पं. नित्यानन्द शास्त्री, गद्य-

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

कवि जगदीशचन्द्र प्राणशंकर आचार्य, महाकवि गोस्वामी हरिराय आदि श्रेष्ठ साहित्य-कारों का नाम आधुनिक संस्कृतसाहित्य के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य है। आधुनिक स्मृतिकार के रूप में महामहोपाध्याय विश्वेश्वरनाथ रेउ का नाम विशेषत: उल्लेखनीय है। इन साहित्यकारों की कतिपय कृतियाँ तो उच्च अध्ययन के लिये पाठ्यग्रन्थ के रूप में स्वीकरणीय हैं। साहित्यानुशीलनकुशल विद्वानों का यह कर्तव्य है कि वे इनकी कृतियों के साहित्यिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से समीक्षात्मक अध्ययन में प्रवृत्त हों तथा शोध-विद्यार्थियों को प्रवृत्त होने के लिये प्रेरित करें। संस्कृतानुरागी मरुवासियों तथा प्रकाशनसंस्थाओं का यह कर्तव्य है कि वे इनकी अप्रकाशित तथा पूर्व प्रकाशित, परन्तु अब दुर्लभ कृतियों के पुन: प्रकाशन के लिये सक्रिय हों।

यह ध्यातव्य है कि इस लेख में चर्चित कृतियों के अतिरिक्त भी इन साहित्यकारों की कृतियाँ हैं, जिनमें से कतिपय कृतियों के वैशिष्टच का उल्लेख उनके अप्रकाशित होने के कारण संभव नहीं हो सका है। लेख के कलेवर की सीमा होने के कारण कतिपय प्रकाशित कृतियों का भी उल्लेख नहीं हो सका है। आधुनिक संस्कृतसाहित्य के इतिहासकारों का पावन कर्तव्य है कि वे मारवाड़ के सम्पूर्ण संस्कृतसाहित्यकारों के जीवनवृत्त, समस्त कृतियों के वैशिष्टच तथा योगदान का विशद निरूपण करें।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मारवाड़ के जैन सन्त कवि

डॉ. देव कोठारी

राजस्थान की पहचान वीरभूमि के नाम से की जाती है परन्तु यह वीरभूमि के साथ-साथ धर्म-भूमि की अभिधा से भी अलंकृत है। यहां शक्ति और भक्ति दोनों ही एक माला के दो मनके हैं। इनसे मानवता का मोल पिछले सैकड़ों वर्षों से आंका जाता रहा है। धर्म इस धरती, धान और धन का दूसरा नाम है। वैदिक, वैष्णव, शैव और शाक्त की भांति जैन-धर्म भी यहां का बहुत पुराना धर्म है।

जैन धर्म के अन्तिम तीर्थंकर महावीर स्वामी के समय से ही इस धरती पर जैन धर्म के प्रचार का प्रमाण साहित्य में देखने को मिलता है। भगवान महावीर के संसार पक्ष के मामा और लिच्छवी गणतंत्र के प्रधान राजा चेटक की बड़ी पुत्री प्रभावती का विवाह सिन्धु सौविर के राजा उदायन से हुआ। उदायन जैन धर्म का अनुयायी और संरक्षक था। यह सिन्धु सौविर वर्तमान में पश्चिमी राजस्थान के जैसलमेर जिले का एक हिस्सा गिना जाता है। ई. सन् 1276 का एक शिलालेख भीनमाल से मिला। इस शिलालेख से पता चलता है कि स्वयं भगवान महावीर भीनमाल नगर में आये थे। आबू रोड से आठ किलोमीटर पश्चिम में मुंगस्थल नाम के स्थान से सन् 1369 ई. का एक और शिलालेख मिला है जिससे ज्ञात होता है कि महावीर स्वामी ने अर्बुद की धरा का भी स्पर्श किया।

भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् राजस्थान में बहुत से मन्दिरों का निर्माण हुआ। वीर-निर्वाण संवत् 203 में आर्य सुहस्ती के उपदेश ने घंवाणी में पदम प्रभु की मूर्ति स्थापित हुई। इसी तरह विक्रम की दूसरी शताब्दी के आसपास सिरोही क्षेत्र के बसन्तगढ के अन्दर जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ की खड़-गासन मूर्ति की स्थापना हुई। ओसियां की जीवंत स्वामी की और बाद में जिनेश्वर सूरि की प्रेरणा से जैसलमेर के लोद्रवा में पार्श्वनाथ के मन्दिर की स्थापना से ज्ञात होता है कि मारवाड़ में जैन धर्म के प्रचार-प्रसार की परम्परा बहुत पुरानी है। जिन-दत्त सूरि पश्चिमी राजस्थान के कल्पवृक्ष थे। हेमचन्द्राचार्य के काल में आबू के जैन मन्दिर की कारीगरी का जो विस्तार हुआ वह जग-प्रसिद्ध है। अचलगढ़ चन्द्रावती, ब्राह्मणवाड़, सांचोर, जालोर, जोधपुर, नागोर, बीकानेर इत्यादि नगरों और आस-पास के क्षेत्र में जैन धर्म का जो प्रचार और फैलाव हुआ वह उल्लेखनीय है।

यहां महावीर के पश्चात् कई जैनाचार्यों का पदार्पण हुआ। इन जैनाचार्यों के यहां चतुर्मास हुये, उन्होंने संघ निकाले, नये तीर्थों की स्थापना की, नये मन्दिरों का निर्माण करवाया और उनकी प्रतिष्ठा कराने के साथ जैन सन्तों ने अपनी लेखनी के माध्यम से नवीन साहित्य-सृजन भी किया। वह नवीन सृजन हस्तलिखित ग्रंथों में

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

ग्राज तक सुरक्षित है। जैसलमेर, बीकानेर, नागोर, जालोर, सिरोही, ग्राबू, भीनमाल ग्रौर जोधपुर के हस्तलिखित ग्रंथ भण्डारों में जैन संतों के बहुत से प्रबन्ध काव्य ग्रौर मुक्तक काव्य मिलते हैं जिससे यह बात प्रमाणित होती है कि मारवाड़ जैन संत-कवियों के विचरण ग्रौर साहित्य सृजन का एक लुभावना क्षेत्र रहा है। इन संत कवियों के ग्रन्तर्गत दो तरह के संत कवि दृष्टिगोचर होते हैं। एक तो वे संत कवि जिनका जन्म भी यहीं हुग्रा, संयम-साधना की भी यहीं पालना की ग्रौर नया साहित्य भी लिखा। दूसरे संत कवि वे हैं जिनकी जन्मभूमि तो मारवाड़ नहीं रहा परन्तु मारवाड़ में बैठकर साहित्य-सृजन किया। इस ग्रालेख में इन दोनों तरह के जैन संत कवियों का उल्लेख करने की मैंने कोशिश की है। परन्तु जैन संत कवियों की सूची बहुत लम्बी है, फिर प्राकृत ग्रौर ग्रपभ्रंश तथा संस्कृत भाषा में भी इनकी कलम चली है तो राजस्थानी भाषा में भी खूब लिखा है। महावीर स्वामी ने ग्रपने उपदेश लोक-भाषा ग्रर्ध मागधी में दिये। वह परम्परा ग्राज तक चल रही है ग्रौर जैन संतों का राजस्थानी में साहित्य सृजन करना उस परम्परा का ही परिणाम है।

मारवाड़ में सर्वप्रथम किस जैन संत-कवि ने राजस्थानी भाषा में लिखना प्रारम्भ किया इस विषय पर प्रामाणिक रूप से कुछ कहना बहुत कठिन है। वि. सं 835 में उद्योतन सूरि ने जालोर में बैठकर ग्रंथ 'कुवलयमाला' की रचना की। यह ग्रंथ प्राकृत में लिखा गया है परन्तु इसमें मरुभाषा के नाम से राजस्थानी का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार 10वीं शताब्दी में सिद्धर्षि नामक एक दूसरे संत कवि ने भीनमाल में 'उपमिति भव प्रपन्च कहा' रूपक ग्रंथ बनाया। इसमें भी राजस्थानी भाषा का ग्रादि स्वरूप देखने को मिलता है। ग्रपभ्रंश की रचनाएँ भी इसी क्षेत्र में लिखी हुई मिलती हैं, उनमें धनपाल कवि की सांचोर में लिखी 'सत्यपुरीय महावीर उच्छाह' रचना प्रमुख है। इस रचना के ग्रन्तर्गत सांचोर के महावीर जिनालय की मूर्ति महमूद गज-नवी ने वि.सं. 1081 में तोड़ने की कोशिश की परन्तु उसे सफलता हाथ नहीं लगी, उस बात का वर्णन है उसी भांति बाह्मणवाड़ में बारहवीं शदी से सिंह कवि ने 'पुज्जुनकहा' नामक काव्य ग्रन्थ लिखा। ये दोनों ही रचनाएँ ग्रपभ्रंश की हैं परन्तु इनमें प्राकृत के बाद के राजस्थानी का साहित्य स्वरूप देखने को मिलता है। जिन-दत्त सूरि की ग्रपभ्रंश काव्यत्रयी के ग्रन्तर्गत छपी हुई है।

तेरहवीं शदी राजस्थानी का ग्रादिकाल माना जाता है। इस काल से राजस्थानी जैन संतों की स्वतंत्र रचनाएँ मिलनी प्रारम्भ होती हैं। सर्वप्रथम रचना नागोर के वादिदेवसूरि के शिष्य वज्रसेनसूरि की 'भरतेश्वरबाहुबली घोर' मिलती है। यह पैंता-लिस छन्दों की रचना है ग्रौर इसमें जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के पुत्र भरत ग्रौर बाहुबली के युद्ध का वर्णन है। वि. सं. 1258 में वर्तमान जोधपुर जिले के खेड़ नगर में शांतिनाथ जिनालय की प्रतिष्ठा जिनपति सूरि ने करवायी। जिनपति सूरि के पश्चात् उनकी गद्दी पर जिनेश्वर सूरि बैठे। जिनेश्वर सूरि की लिखी 'महावीर जन्माभिषेक' श्री बासूपूज बोलिका चर्चरी शांतिनाथ बोली नामक राजस्थानी रचनाएँ मिलती हैं। जिनपति सूरि के एक ग्रन्य शिष्य सुमतिगणि ने

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

'नेमिरास' की रचना की। इसके अन्तर्गत बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ के चरित्र का वर्णन है। इस तरह तेरहवीं शदी के अन्दर जो राजस्थानी जैन संत रचनाएँ मिलती हैं वे सब राजस्थानी की रचनाएँ तो हैं किन्तु इन पर अपभ्रंश और गुजराती का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है।

चौदहवीं शदी में खरतरगच्छ के आचार्य जिनेश्वर सूरि का शिष्य उपाध्याय लक्ष्मीतिलक एक प्रसिद्ध विद्वान और सन्त कवि था। साठ छन्दों का "शांतिनाथ देव-दास' लक्ष्मीतिलक रचित राजस्थानी का काव्य है। इसमें खेड़ नगर के शांतिनाथ जिनालय की प्रतिष्ठा और वि. सं. 1313 में जालोर के शांतिजिनालय की प्रतिष्ठा का ऐतिहासिक वर्णन है। कालान्तर में इस रास को जालोर में मंचित भी किया गया। जोधपुर राज्य के कोरटा गांव में वि. सं. 1363 में प्रज्ञातिलक के समय में 'कच्छूली रास' नामक राजस्थानी रचना भी मिलती है।

15 वीं शदी के उत्तरार्द्ध में पीपलगच्छ का हीरानन्द सूरि एक अच्छा सन्त कवि हुआ, इसकी वस्तुपाल तेजपाल रास, विद्याविलास पवाड़ा, कलिकाल रास नामक रचनाएँ मिलती हैं। इसकी 'जम्बूसामी विवाहउल' रचना सांचोर में लिखी हुयी है। इसी तरह सोलहवीं शदी के प्रारम्भ में वि. सं. 1505 में संघकलस नामक संत ने 'सम्यक्त्व रास' मारवाड़ के तलवाडापुर (तिलवाड़ा) में बनाया। मारवाड के समियाणा ग्राम में जन्मे नाहटा गौत्रीय गुणरत्न सूरि के देहावसान के पश्चात् उनके शिष्य पद्मनन्दिरगणि ने 'गुणरत्न सूरि विवाहलउ' नाम की 49 छन्दों की एक रचना लिखी। पद्ममन्दिर सूरि के राजस्थानी में लिखे हुये दो स्तवन भी मिलते हैं। ये दोनों ही स्तवन वि. सं 1543 में लिखे गये। पहला स्तवन वरकाणा पार्श्वनाथ का स्तवन है जिसमें 20 गाथा हैं और दूसरा जालोर नवफणा पारस दस भव स्तवन है जिसमें 35 गाथा हैं।

इस प्रकार तेरहवीं शदी से लेकर सोलहवीं शदी तक मारवाड़ में हुये जैन संत कवियों का संक्षेप में मैंने संकेत किया है। सोलहवीं शदी के पश्चात् से और अब तक पिछले पांच सौ वर्षों में मारवाड़ में बहुत से जैन संत कवि हुये, उन सबका वर्णन और उल्लेख इस आलेख में करना संभव नहीं है। इसलिए मैं यहां मारवाड़ के कुछ मुख्य मुख्य राजस्थानी जैन संतों का उल्लेख कर रहा हूँ।

(1) **पार्श्वचन्द्र सूरि**—पार्श्वचन्द्र सूरि मारवाड़ का एक प्रमुख और उल्लेखनीय जैन संतकवि हुआ है। कालान्तर में इसके नाम पर जैन मूर्तिपूजक समाज में पार्श्व-चन्द्र गच्छ चल पड़ा। बीकानेर में इस गच्छ की श्री पूजगादी और नागौर में इस गच्छ का उपासरा है। इनका जन्म सिरोही राज्य के हमीरपुर गांव की पोरवाल जाति के सेठ वेलगशाह की धर्मपत्नी विमला दे की कोख से वि. सं. 1537 में हुआ। नौ वर्ष की आयु में दीक्षा ली, सतरह बरस की उम्र में उपाध्याय पद मिला और अठाईस वर्ष की आयु में आचार्य पद प्राप्त कर लिया। वि. सं. 1612 में जोधपुर में आपका स्वर्गवास हुआ। गद्य और पद्य दोनों में ही आपने लिखा। पद्य में आपकी 92 रचनायें मिलती हैं। पार्श्वचन्द्र सूरि की अधिकांश रचनाओं में जैन सिद्धान्तों का

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

वर्णन है।

(2) **विजयदेव सूरि**—ये पार्श्वनाथ गच्छ परम्परा के संत कवि थे। इनके द्वारा रचित 'शीलरास' की साहित्य जगत में बहुत सराहना हुयी। इस रचना की पचासों प्रतियां हस्तलिखित ग्रन्थ भण्डारों में मिलती हैं। 80 पद्यों की इस रचना में शील धर्म का वर्णन है और जालोर में इसकी रचना की गयी।

(3) **वाचक नियमसमुद्र**—ये उपकेश गच्छ के मध्य हर्षसमुद्र के शिष्य थे। बीकानेर में रचित उनकी बहुत-सी रचनाएँ मिलती हैं। जोधपुर और तिंवरी में रचित दो रचनाएँ मिलती हैं। इनका रचनाकाल वि. सं. 1583 से 1614 तक माना जाता है। अब तक इनकी 25 रचनाओं का पता लग पाया है जिनमें—'विक्रम पंचदण्ड चौपई', 'चित्रसेन पद्मावती रास', 'चन्दन बाला रास' आदि रचनाएँ उल्लेख योग्य हैं।

(4) **वाचक मालदेव**—बीकानेर रियासत के भटनेर कस्बे को जिसे आजकल हनुमानगढ़ कहा जाता है, उस जगह पहले बड़गच्छ का अच्छा खासा प्रभाव था। इस बड़गच्छ के वाचक भावदेव सूरि का शिष्य वाचक मालदेव मारवाड़ का एक अच्छा जैन सन्त कवि था। इसकी रचनाएँ संस्कृत और प्राकृत में भी मिलती हैं परन्तु राजस्थानी में रचित रचनाओं को बहुत प्रसिद्धि मिली। मालदेव कृत 'पुरन्दर चौपई' का तो अत्यधिक प्रचार हुआ। विक्रम और भोज की कथाओं को आधार बनाकर इन्होंने अनेक रचनाएँ लिखीं। गीत, स्तवन और सज्झाय संज्ञक रचनाएँ भी मिलती हैं।

(5) **महोपाध्याय पुण्यसागर**—ये खरतरगच्छ के संत कवि थे। वि. सं. 1604 में 'सुबाहु संधि' नामक रचना जैसलमेर में लिखी। इसके 89 पद्य हैं। 'साधु वन्दना', 'नमि राजर्षि गीत' और अनेक स्तवन भी लिखे। इनके शिष्य पद्मराज भी अच्छे संत कवि थे जिनकी लिखी हुई 'अभयकुमार चौपई' प्रसिद्ध है। इसका रचनाकाल वि. सं. 1650 और रचनास्थल जैसलमेर है।

(6) **साधु कीर्ति**— जैसलमेर में बृहद्ज्ञान भण्डार की स्थापना करने वाले जिनभद्र सूरि की परम्परा में अमरमाणिक्य के शिष्य उपाध्याय साधु कीर्ति भी राजस्थानी के उल्लेखनीय संत कवि थे। गद्य और पद्य दोनों में ही इनकी रचनाएँ मिलती हैं। नागौर में वि. सं. 1636 में रचित नेमिराजर्षि चौपई इनकी प्रमुख रचना है। अमरसर में लिखा (वि. सं. 1638) 'शीतल जिन स्तवन' भी मिलता है।

(7) **कनकसोम**—उपाध्याय साधु कीर्ति के गुरुभाई कनकसोम वि. सं. 1632 में 'जिनपालित जिनरक्षित रास' और वि. सं. 1655 में 'थावचा सुकोशल चरित' नागोर में लिखी इनकी दो मुख्य रचनाएँ हैं। गीत, स्तवन और इनके लिखे सज्झाय भी मिलते हैं। इनका रचनाकाल वि. सं. 1615 से 1655 तक माना जाता है।

(8) **कुशललाभ**—मारवाड़ में राजस्थानी के जैन संतों में वाचक कुशललाभ का नाम आदर के साथ लिया जाता है। ये खरतरगच्छ के अभयधर्म के शिष्य थे। जैसलमेर के रावल मालदेव के कुंवर हरराज के पठनार्थ इन्होंने वि. सं. 1616 में ढोलामारू और वि. सं. 1617 में माधवानन्द कामकन्दला नामक रचनाएँ लिखीं।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America, HHFA(USA)

ये दोनों रचनाएँ लौकिक प्रेम की काव्यमय कथाएँ हैं। इसका राजस्थान में बहुत प्रचार हुआ। राजस्थानी भाषा के छन्दों के आधार पर कुशललाभ ने पिंगल सिरोमणी ग्रन्थ भी बनाया। इनकी—'तेजसार रास', 'अगड़दत्त रास', 'जिनपालित-जिनरक्षित संधि', 'दुरगा सतसई', 'पूजा वाहण गीत', 'पार्श्व स्तवन', 'नवकर छन्द', 'गौड़ी पार्श्व छन्द', 'शत्रुंजय यात्रा स्तवन' आदि छन्द रचनाएँ हैं।

(9) **कविवर हीरकलश**—ये खरतरगच्छीय हर्षप्रभ के शिष्य थे। बीकानेर और नागौर इनका विचरण क्षेत्र रहा। ये ज्योतिष के भी प्रसिद्ध विद्वान थे। राजस्थानी भाषा में इन्होंने 'हीरकलश जोइसहीर' नामक 905 छन्दों वाली रचना लिखी जिसका बहुत सम्मान हुआ। इनकी दूसरी रचनाओं में 'मुनिपति चौपई', वि. सं. 1618 बीकानेर, 'सोलह सपन सज्झाय' वि. सं. 1622 राजलदेसर, 'आराधना चौपई', वि. सं. 1623 नागौर, 'सिंघासन बत्तीसी', वि. सं. 1636 मेड़ता, 'जीभदांत वाद' वि.सं. 1643 बीकानेर, 'हीयाली' वि.सं. 1643 बीकानेर आदि लगभग 30 रचनाएँ उपलब्ध हैं।

(10) **चरित्रसिंह**—ये मतिभद्र के शिष्य और 'मुनिमालिका' नामक ग्रन्थ के रचयिता थे। जैसलमेर इनका मुख्य विचरण क्षेत्र रहा। राजस्थानी में रचित इनकी रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—'षठस्थान प्रकरण संधि', 'चतुस्मरण प्रकरण सधि', वि. सं. 1631, 'मुनिमालिका', वि. सं. 1636, 'साधुगुणस्तवन'।

(11) **हेमरत्न सूरि**—ये पूर्णिमा गच्छ के अनुयायी और ज्ञान तिलक सूरि के शिष्य थे। राजस्थानी भाषा में रचित 'गौरा बादल पद्मिणी चउपई' इनकी उल्लेखनीय काव्य कृति है। इसकी रचना वि.सं. 1645 में समदड़ी नगर में ताराचन्द कावड़िया की आज्ञा से की। इनकी अन्य रचनाएँ हैं—'अमर कुमार चौपई', वि. सं 1638 बीकानेर, 'लीलावती चौपई', वि. सं. 1673 पाली और 'महिपाल चौपई'।

(12) **सारंग**—संत कवि सारंग मड़ाहड़ गच्छ के पद्मसुन्दर के शिष्य और राजस्थानी भाषा की प्रसिद्ध रचना कृष्ण रुक्मणी री वेलि की संस्कृत टीका के कर्ता थे। इनका विचरण क्षेत्र जालोर था। इस क्षेत्र में विचरण करते हुए इन्होंने वि. सं. 1639 में 'विल्हण पंचासिका चौपई', वि. सं 1645 में 'भोज प्रवन्ध चौपई' और 'वीरांगद चौपई' की रचना की।

(13) **महोपाध्याय समयसुन्दर**—ये राजस्थानी भाषा के सबसे बड़े जैन संत कवि और गीतकार थे। इनका जन्म सांचोर नगर में वि. सं. 1610 में पोरवाल जाति के श्रावक रूपजी की धर्मपत्नी लीलादेवी की कोख से हुआ। इनका रचनाकाल वि सं. 1640 से 1700 तक रहा। मेड़ता, जालोर, नागौर और जैसलमेर में विचरण करते हुए इन्होंने राजस्थानी के अनेक प्रबन्ध और मुक्तक काव्य लिखे। इनका अन्तिम विचरण क्षेत्र गुजरात रहा। इनकी 'सीताराम चौपई' राजस्थानी रामायण के नाम से बहुत ही लोकप्रिय है। 'मृगावती रास', 'पुण्यसार रास', 'वस्तुपाल तेजपाल रास', 'स्थूलिभद्द रास', 'वल्कल चीरी रास', 'प्रियमेलक रास', 'चार प्रत्येक बुद्ध रास', 'साम्ब प्रद्युम्न चौपई', 'चम्पक श्रेष्ठी चौपई', 'धनदत्त चौपई' और इस तरह की

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

छोटी-बड़ी पांच सौ से अधिक रचनाएँ हैं। गीतों में तो इनकी जोड़ आज भी कोई नहीं कर सकता। 'समयसुन्दर रा गीतड़ा और राणे कुम्भे रा भीतड़ा' कहावत इनके गीतों की श्रेष्ठता और प्रसिद्धि का प्रमाण है।

(14) **सहजकीर्ति**—महामहोपाध्याय सहजकीर्ति खरतरगच्छ की क्षेमकीर्ति शाखा के वाचक हेमनन्दन के शिष्य थे। ये व्याकरण, कोष और संस्कृत भाषा के माने हुए विद्वान थे, परन्तु राजस्थानी में भी बहुत काव्य रचा, जिसमें मुख्य रचनाएँ इस प्रकार हैं—'सुदर्शन चौपई' वि. सं. 1661 बगड़ी, 'कलावती चौपई' सं. 1667, 'देवराज बच्छराज चौपई' 1675 बीकानेर, 'नरदेव चौपई' 1682 पाली।

(15) **श्रीसार**—ये महोपाध्याय सहजकीर्ति के गुरुभाई और खरतरगच्छ की क्षेमकीर्ति शाखा के वाचक हेमनन्दन के शिष्य थे। इनका विचरण क्षेत्र सेत्रावा, जैसलमेर, फलौदी और पाली रहा। 'आणंद श्रावक री संधि' नामक रचना का राजस्थानी साहित्य जगत में खूब प्रचार हुआ। इन्होंने पृथ्वीराज राठौड़ कृत 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' की संस्कृत टीका भी लिखी। इनकी अन्य दूसरी रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—'जिनराज सूरि रास' वि. सं. 1681 सेत्रावा 'पारसनाथ रास' वि. सं. 1683 जैसलमेर, 'सतरभेदी पूजा स्तवन', फलोदी, 'मोती कपासिया छन्द' वि सं. 1689 फलौधी, 'सार बावनी' वि. सं. 1682 पाली, 'मृगापुत्र चौपई' वि.सं. 1677 बीकानेर आदि।

(16) **विनयमेरु**—विनयमेरु खरतरगच्छ के अनुयायी हेम धर्म के शिष्य थे। इनकी जैसलमेर में लिखी 'शत्रुंजय रास' वि. सं. 1679, 'देवराज बच्छराज प्रबन्ध', 'रीणी अर पन्नवणा विचार स्तवन' 1692 साचोर में लिखी काव्य रचनाएँ मिलती हैं।

(17) **जिनराज सूरि**—बीकानेर निवासी बोथरा धर्मसी की पत्नी धारलदे की कोख से वि. सं. 1647 में इनका जन्म हुआ। नौ वर्ष की अवस्था में दीक्षा ग्रहण की। इनका दीक्षा नाम राजसमुद्र था। जिनसिंह सूरि के पट्टधर शिष्य थे। वि. सं. 1668 में वाचक पद और वि. सं. 1674 में इन्हें मेड़ता में आचार्य पदवी मिली और इनका नाम जिनराज सूरि रखा गया। वि. सं. 1678 में 'शालिभद्र रास' की रचना की, इस रचना को बहुत लोकप्रियता मिली। इनकी दूसरी रचनाओं में 'कयवन्ना रास' 'गजसुकमाल रास', फुटकर गीत और कवित्त भी बड़ी संख्या में मिलते हैं।

(18) **जिनहर्ष**—इनका जन्म नाम जसराज और दीक्षा नाम जिनहर्ष है। खरतरगच्छ की क्षेम शाखा के ये सन्त कवि हैं। इनकी पहली रचना वि. सं. 1704 की लिखी मिली है। जिनहर्ष के लिखे गये 70 के करीब तो प्रबन्ध काव्य और बहुत से गीत, कवित्त, छप्पय आदि भी मिलते हैं। मारवाड़ में पैदा होने के उपरान्त भी दीक्षा के बाद जिनहर्ष ने राजस्थान में कम विचरण किया। ये अधिकतर गुजरात के पाटन नगर में ही रहे और वहां रहते हुए साहित्य सृजन किया। इनकी प्रारम्भिक रचनाएँ बाड़मेर, सांचोर में लिखी मिलती हैं जिनमें 'मत्योसररास' वि. सं. 1718 'मृगावती चौपई' 1714 सांचोर आदि मुख्य रचनाएं हैं।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation-of-America, HHFA(USA)

(19) **जिन समुद्रसूरि**—इनका जन्म संवत् और जन्मस्थान अभी तक अज्ञात है, परन्तु इनकी रचनाओं में इनके पिता का नाम शाह हरराज और माता का नाम लखमादेवी तथा जाति श्री श्रीमाल का उल्लेख मिलता है। इनका साधु अवस्था का नाम महिमसमुद्र और आचार्य पदवी मिलने के बाद जिन समुद्र सूरि के नाम से इनको ख्याति मिली। ये बेगड़गच्छ के सन्त कवि थे और जिनचन्द्र सूरि के स्वर्गवास के पश्चात् वि. सं. 1713 में आचार्य बने। इनकी रचनाओं से ज्ञात होता है कि इनका विहार और रचना क्षेत्र जैसलमेर, सिन्ध और जोधपुर रहा। इनकी तीस के करीब बड़ी रचनाए और शेष स्तवन, फाग, छत्तीसी इत्यादि छोटी और फुटकर रचनाएं मिलती हैं। मुख्य बड़ी रचनाएं इस प्रकार हैं—'वसुदेव चौपई', 'ऋषिदत्ता चौपई', 'रुकमणी चरित्र', 'हरिबल चौपई', 'इलार्च कुमार चौपाई', 'प्रवचन रचना वेलि', 'शत्रुंजय रास'।

(20) **अभयसोम**—ये सोमसुन्दर के शिष्य और संत कवि थे। इनकी राजस्थानी रचनाए वि. सं 1711 से 1747 तक मिलती हैं। वि. सं. 1723 में इन्होंने सिरोही और उसके आस-पास के क्षेत्र में विचरण किया और सिरोही में 'खापरा चोर चौपई' की वि. सं. 1723 में रचना की। इनकी दूसरी रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—'वैदर्भी चौपाई', 'चन्द्रोदय कथा चौपाई', 'जयन्ति संधि', विक्रम लीलावती चौपई', 'मानतुंग मानवती चौपई', 'वस्तुपाल तेजपाल चौपई', गुणावली चौपई'।

(21) **महोपाध्याय धर्मवर्द्धन** -इनका जन्म नाम धर्मसी और सन्त कवि के रूप में इनका नाम धर्मवर्द्धन था। इनकी दीक्षा जिनचन्द्र सूरि के हाथों वि. सं. 1713 में सांचोर में हुई। ये राजस्थानी के अच्छे कवि थे। इन्होंने प्रबन्ध और मुक्तक दोनों ही प्रकार के साहित्य का सृजन किया। इनकी कुछ प्रमुख रचनाएँ 'श्रेणिक चौपई' 1719 वि 'अमरसेन वयरसेन चौपई' 1724, 'सुरसुन्दरी रास' 1736 बिलाड़ा, 'दशाणभद्र चौपई' 1757 मेड़ता, 'शील रास गाथा' बीकानेर, 'धर्मबावनी' कुण्डलियां, स्तवन आदि।

(22) **कीर्तिसुन्दर**—कीर्तिसुन्दर भी अच्छे संत कवि थे। जैतारण, मेड़ता इत्यादि स्थानों पर लिखी इनकी रचनाएँ मिलती हैं जिनमें 'अयवन्ती सुकुमाल चौढ़ालियो', 'माकड़ रास', 'ज्ञान छत्तीसी', 'अभयकुमारादि पाँच साधुरास' आदि मुख्य हैं। इनका रचनाकाल वि. सं. 1757 से 1762 तक मिलता है।

(23) **कुशलधीर**—ये जिनमाणक्य परम्परा के वाचक कल्याणलाभ के शिष्य थे। इनकी रचनायें सांचोर, सोजत, जोधपुर आदि स्थानों पर लिखी मिलती हैं। इन्होंने 'कृष्ण रुकमणी री वेलि' पर 'बालावबोध' भी लिखा। 'शीलवती रास' वि. सं. 1722 सांचोर, 'लीलावती रास' वि. सं. 1728 सोजत, 'भोज चौपई' वि. सं 1729 सोजत आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं।

(24) **आनन्दघन**—इनका जन्म का नाम लाभानन्द था। आनन्दघन के नाम से इन्होंने बहुत से पदों की रचना की। मेड़ता इनके साहित्य सृजन का मुख्य स्थल था। इनके फुटकर पद मिलते हैं जिनमें अध्यात्म की अनुभूति है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

(25) **रायचन्द**—इनका जन्म वि. सं. 1796 को आश्विन शुक्ला एकादशी को जोधपुर में हुआ। इनके पिता का नाम विजयचन्द धारीवाल और माता का नाम नन्दादेवी था। वि. सं 1814 में पीपाड़ नगर में स्थानकवासी आचार्य जयमल के शिष्य बने तथा वि स. 1861 में रोहट में इनका स्वर्गवास हुआ। इन्होंने राजस्थानी में खूब लिखा। इनकी छोटी-मोटी दो सौ रचनाएँ मिलती हैं जिसमें—'जम्बू स्वामी री सज्झाय', 'नन्दन मणिहार री चौपई', 'आसाढ़ भूति रो चौढालियो', 'सती नरमदा चौपाई', 'करकडू चौपई', 'राजा श्रेणिक रो चौढालियो', तथा पच्चीसी संज्ञक कई रचनाएँ प्रसिद्ध हैं।

(26) **विनयचन्द** –इनका जन्म वि. सं 1897 की आश्विन शुक्ला चतुर्दशी को फलौधी (मारवाड़) में हुआ। इनके पिता का नाम प्रतापमल पुंगलिया और माता का नाम रंभा था। सोलह वर्ष की उम्र में ये जैन सन्त बने और वि. सं. 1972 में इनका स्वर्गवास हुआ। ये शान्त स्वभाव वाले तथा कवि-हृदय संत थे। इनकी रचनाओं में—'अनाथी री सज्झाय', 'अन्जना सती रो रास', 'गौतम रास', 'धन्नाजी री सज्झाय', 'नेमजी रो ब्यावलो', 'सुभद्रा सती चौपई', 'नेमिनाथ राजीमती रो बारह मासियो' आदि प्रमुख हैं।

(27) **आचार्य सन्त भीखणजी**--जैन श्वेताम्बर तेरापंथ के प्रवर्त्तक संत भीखणजी राजस्थानी के बहुत बड़े कवि और लेखक थे। इनका जन्म वि. सं. 1783 की आषाढ़ शुक्ला त्रयोदशी को हुआ। वि सं. 1817 की आषाढ़ी पूर्णिमा को इन्होंने तेरापंथ की स्थापना की। इनकी रचनाएँ 'भिक्षु ग्रंथ-रत्नाकर' के नाम से दो भागों में छपी हैं। ये राजस्थानी के बहुत बड़े साहित्यकार थे तथा गद्य और पद्य दोनों में रचनाएँ लिखीं। इनकी गद्य रचनाओं में हुण्डिया, चरचाएँ, थोकड़े आदि प्रमुख हैं।

जयाचार्य ये तेरापंथ के चौथे आचार्य थे। इनका जन्म जोधपुर के रोहट गांव में वि. सं. 1860 की आश्विन शुक्ला चतुर्दशी को हुआ था। ये जन्मजात आशुकवि थे। अब तक प्राप्त जानकारी के अनुसार ये राजस्थानी के सबसे बड़े साहित्यकार माने जाते हैं। छोटी-बड़ी इनकी 128 रचनाएँ मिलती हैं जिसमें 'भगवती री जोड' नामक रचना सबसे बड़ी है, जिसमें एक लाख पद्य परिमाण हैं। इनकी सब रचनाएँ अब प्रकाशित हो रही हैं।

(29) **अन्य संत कवि** – मारवाड़ के जैन सन्त कवियों की सूची बहुत लम्बी है। ऊपर जिन कवियों का उल्लेख किया उनके अलावा बहुत से ऐसे कवि हैं जिनका संकेत इस लेख में स्थानाभाव के कारण नहीं किया जा सका, इसका यह अर्थ नहीं कि उनका साहित्य कम लिखा हुआ है या कम मूल्यवान है।

मूल्यांकन—ऊपर वर्णित संत कवियों का साहित्य प्रबन्ध और मुक्तक दोनों ही तरह का है। प्रबन्ध में भी महाकाव्य और खण्ड-काव्य दोनों ही हैं। विषय-भेद की दृष्टि से ये प्रबन्ध काव्य पांच प्रकार के हैं—

(1) धार्मिक और पौराणिक प्रबन्ध काव्य –सीताराम चौपई—समय सुन्दर

(2) ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्य—संघपति सोमजी निर्वाण वेलि—समय सुन्दर

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

(3) उपदेशात्मक प्रबन्ध काव्य—बारह व्रत रास—उपा. गुणविनय
(4) कथात्मक प्रबन्ध काव्य—पार्श्वनाथगुणवेलि—जिनराज सूरि
(5) प्रेम व्यंजना मूलक प्रबन्ध काव्य—मृगावती रास—समय सुन्दर

मुक्तक काव्य नौ प्रकार के मिलते हैं, जिनके विषयवार नाम इस प्रकार हैं—

(1) धार्मिक और सैद्धान्तिक मुक्तक काव्य—बारह भावना गीतम्—समय सुन्दर
(2) स्तुति प्रधान मुक्तक काव्य—संखेश्वर पार्श्वनाथ स्तवन—समय सुन्दर
(3) उपदेशात्मक मुक्तक काव्य—तम्बाकू त्याग सज्झाय—धर्मवर्द्धन
(4) तीर्थ और यात्रा प्रधान मुक्तक काव्य—अष्टादशतीरथभास—समय सुन्दर
(5) ऋतु और तिथि सम्बन्धी मुक्तक काव्य—ज्ञान पंचमी वृहत्स्तवन—,,
(6) ऐतिहासिक मुक्तक काव्य—गीत राउल अमरसिंघ रो—धर्मवर्द्धन
(7) बुद्धि परीक्षा सम्बन्धी मुक्तक काव्य—हीयाली गीतम्—समय सुन्दर
(8) वर्णनात्मक मुक्तक काव्य—सत्यासिया दुष्काल वरणन—समय सुन्दर
(9) अन्य—नारी कुंवर सवैया धर्मवर्द्धन

काव्य के रूपभेद की दृष्टि से भी मारवाड़ के जैन संत कवियों का साहित्य अलग-अलग रूपों में मिलता है। प्रबन्ध काव्य रास, चौपई, वेलि, फागु, चर्चरी, चरित, संधि, मंगल आदि रूपों में उपलब्ध होते हैं। इसी प्रकार मुक्तक काव्य भी अलग-अलग तरह से मिलते हैं, जैसे—

संख्या मूलक—पंचक, अष्टक, बत्तीसी, छत्तीसी, पचासा, बावनी, सतरी।
छन्द मूलक—छप्पय, गीत, कवित्त, ढाल, ढालिया, दोहा।
वन्दना मूलक—स्तुति, स्तवन, स्तोत्र, पूजा, वन्दना।
बुद्धि परीक्षा मूलक—हीयाली, गूढा, सिलोका।
तीर्थ यात्रा मूलक—तीर्थमाला, चैत्यपरिपाटी।
स्वाध्याय मूलक—सज्झाय।

इस तरह मारवाड़ के जैन संत कवियों की एक लम्बी परम्परा रही है और उनके द्वारा रचित विभिन्न तरह का साहित्य मिलता है जिससे यह सिद्ध होता है कि मारवाड़ की धरती वीरों के साथ धर्म और भक्ति की भूमि भी है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मध्यकालीन मारवाड़ का राजस्थानी साहित्य

डॉ. विक्रमसिंह गून्दोज

"साहित्य का अर्थ है शब्द और अर्थ का यथावत् सहभाव। सार्थक शब्द मात्र का नाम साहित्य है।" विद्वानों द्वारा साहित्य की जो यह परिभाषा की गई है, वह अत्यन्त व्यापक है। इसमें मनुष्य की सारी बोधन और भावन-चेष्टा समाविष्ट हो जाती है। गद्य और पद्य सभी प्रकार की रचनाएँ तथा ग्रन्थ समूह इसमें सम्मिलित होते हैं। साहित्य में मनुष्य के भावों और विचारों की अभिव्यक्ति तो होती है, इसके साथ ही मानव की रागात्मक चेष्टाओं और सामाजिक मूल्यों का समावेश उसमें होता है। साहित्य और समाज के बीच अनन्य सम्बन्ध होने के कारण ही सामाजिक मूल्यों का निरूपण और उसका विवेचन हमें साहित्य में देखने को मिलता है। यहां यह बात दृष्टव्य है कि साहित्य, साहित्य होता है, इतिहास नहीं। अतः साहित्य में सामाजिक विवेचन का प्रवाह हर युग में न्यूनाधिक मात्रा में मिलेगा, किन्तु यह वर्णन इतना विशद नहीं होगा कि तत्कालीन सामाजिक परिवेश के सम्पूर्ण घात-संघातों की पूर्ण जानकारी प्राप्त हो, फिर भी वह इनसे सर्वथा अछूता भी नही रहता। इसीलिए साहित्य में जो कुछ वर्णन मिलता है, उससे युगीन-सामाजिक चेतना का बोध अवश्यंभावी होता है। सामाजिक मूल्यों व प्रमुख घटनाओं के उल्लेख में इतिहास की कई बातें साहित्य द्वारा प्रकट होती हैं, वे कम महत्वपूर्ण नहीं होती। इस प्रकार इतिहास व सांस्कृतिक अध्ययन के आधार के रूप में साहित्य भी एक महत्वपूर्ण साधन स्रोत का कार्य करता है।

राजस्थान का कलात्मक वैभव सर्वविख्यात है। विभिन्न कलाओं को प्रश्रय देने वाली इस वीर वसुन्धरा का प्राचीन साहित्यिक गौरव भी किसी प्रान्तीय भाषा के साहित्यिक गौरव से कम नही है। यह खेद और दुर्भाग्य की बात है कि इस प्रदेश के निवासियों ने अपनी मातृभाषा की महत्ता को भलीभांति नहीं समझा, परिणामस्वरूप वह अब तक संवैधानिक मान्यता से वंचित है। इतनी सशक्त और विस्तृत साहित्य-सृजन से युक्त भाषा, जिसका शतांश भी अब तक प्रकाश में नहीं आया है और ज्ञात अज्ञात स्थानों पर हस्तलिखित ग्रंथों में पड़ा है या फिर लोक-जिह्वा पर जीवित है, वह भाषा संवैधानिक मान्यता के लिए तरस रही है। इस प्रदेश के लोग विकास के क्षेत्र में अगुआ होने का दम भर लें, पर उनकी सांस्कृतिक पहचान और जीवन्तता की निशानी निज भाषा का गौरव तो आंखों से ओझल है। भला फिर वे कैसे सशक्त, समर्थ और समृद्ध कहलाने योग्य हैं। सदा ही इस भाषा की उपेक्षा रही हो, यह बात नहीं है। बीते काल पर दृष्टि डालकर देखें तो यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होगा कि यहां इस भाषा का कितना व्यापक प्रभाव व प्रचार-प्रसार था।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA (USA)

यह निर्विवाद सत्य है कि मारवाड़ अथवा मरुदेश की भाषा जिसका प्राचीन नाम मरुभाषा था, इस प्रदेश की प्रधान भाषा थी। यही भाषा मध्यकालीन राजस्थान की साहित्यिक भाषा भी थी जो थोड़े बहुत स्थानीय परिवर्तनों के साथ समूचे प्रदेश में जिस भांति प्रचलित थी, आज भी समूचे राजस्थान में आंचलिक हेरफेर के साथ व्यवहृत होती है जिसका प्रादुर्भाव 8 वीं 9 वीं शताब्दी के मध्य हुआ माना जाता है। उत्तर मध्यकाल में मरुभाषा के अलावा यहां पिंगल नामक भाषा का विकास भी हुआ। मरुभाषा में ब्रजभाषा के सम्मिश्रण से जो भाषा बनी वह पिंगल कहलायी। अनेक चारण कवियों और संत कवियों ने इस काल में बहुत-सी रचनाओं का सृजन इस भाषा के माध्यम से भी किया परन्तु उसमें भी मरुभाषा की छाप बहुत गहरी है।

राजस्थान का इतिहास बड़ा गौरवपूर्ण रहा है और सामान्यतया राजस्थानी साहित्य को वीररस का साहित्य माना जाता है। यह धारणा यथार्थ एवं सुदृढ़ होते हुए भी एकाङ्गी है क्योंकि वीरभूमि राजस्थान में भारत की अन्य प्रान्तीय भाषाओं की भांति राजस्थान में शृंगार और भक्ति रस की अत्यन्त वेगवती धाराएँ प्रवाहित हुई हैं। वीर रस के साथ साथ भक्ति और शृंगार रस से राजस्थानी का मध्यकाल गौरवान्वित है।

यहां के मध्यकालीन साहित्य में वीर, भक्ति और शृंगार की त्रिवेणी का अपूर्व संगम हुआ है। इस अपूर्व संगम के साथ यहां के साहित्य की एक और विशेषता उल्लेखनीय है, वह है—यहां ऐसे अनेक कवि हुए हैं जिन्होंने वीररम के साथ-साथ भक्ति की भी उच्चकोटि की रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। भक्तकवि ईसरदास का "हरिरस" भक्ति का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है तो उनकी रचना "हाला झालां रा कुण्डळिया' वीर रस की सर्वश्रेष्ठ कृतियों में गिनी जाती है। इसी प्रकार पृथ्वीराज राठौड़ ने 'वेलि' के माध्यम से वीर, भक्ति और शृंगार रस की धाराएँ एक साथ प्रवाहित की हैं वह सर्वविदित है। मध्यकालीन मारवाड़ के इस राजस्थानी साहित्य की विविध धाराओं का संस्कृति सापेक्ष विवेचन हम उसके विभाजन के बाद ही भली भांति कर सकते हैं।

भाषा मनुष्य के विकास का सबसे महत्वपूर्ण साधन हुआ करती है और उसकी विकासोन्मुख गतिविधियों और रागात्मक प्रवृत्तियों की अभिव्यंजना हमें साहित्य में देखने को मिलती है। सम्पूर्ण प्राचीन राजस्थानी साहित्य को उसकी शैलीगत भिन्नता के आधार पर प्रायः चार भागों में इस प्रकार विभाजित किया है—(1) जैन साहित्य (2) चारण साहित्य (3) भक्ति साहित्य और (4) लोक साहित्य। इस विभाजन को अधिकतर विद्वानों ने स्वीकार किया है। परन्तु राजस्थानी साहित्य के इस विभाजन को पूर्ण वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता। इसके समग्र अध्ययन की सुविधा के लिए राजस्थानी साहित्य का विभाजन निम्न प्रकार से किया जाना उचित है—

(1) संभ्रांत वर्गीय साहित्य

(2) धार्मिक साहित्य

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

(3) लोक साहित्य

(1) संभ्रांत वर्गीय साहित्य

संभ्रांत वर्गीय साहित्य से तात्पर्य उस शिष्ट साहित्य से है जिसका सृजन शास्त्रीय परम्पराओं के अनुरूप किया गया हो। चूंकि ऐसे साहित्य का सृजन और पठन पाठन का प्रचलन संभ्रांत वर्गीय लोगों में ही प्रायः अधिक रहा है अतः इसे इस नाम से संबोधित किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में इसे शिष्ट साहित्य या शास्त्रीय साहित्य भी कह सकते हैं। इस संभ्रांत वर्गीय साहित्य को मोटे रूप से दो मुख्य भागों में बांटा जा सकता है—

(1) चारण साहित्य

(2) चारणेतर साहित्य

चारण साहित्य

चारण साहित्य के प्रणेता चारण रहे हैं और चारणों की अत्यधिक देन होने के कारण इसे चारण साहित्य के नाम से अभिहित किया जाना उचित है। चारणों के सम्बन्ध में बारहठ किशोरसिंह की मान्यता है कि चारण लोग सिंध से पहले गुजरात की तरफ आये, फिर मारवाड़ में उन्होंने प्रवेश किया। गुजरात में रहने वाले चारण 'काछेला चारण' और मारवाड़ में रहने वाले 'मारू चारण' कहलाये। कोशकार सीताराम लाळस के अनुसार—"चारणों का यहां के राजपूत शासकों के साथ घनिष्ट सम्बन्ध रहा। उन्होंने अपने आश्रयदाताओं को संघर्ष के समय में कर्त्तव्य पथ से विमुख होने से रोका, उनमें नवप्रेरणा व आत्मबल का संचार किया। चारण एक प्रकार से मध्यकालीन राजपूत संस्कृति के प्रेरक स्रोत रहे हैं।"

चारण शैली की अधिकांश रचनाएँ डिंगल नाम से अभिहित हैं। डिंगल का अधिकांश साहित्य वीर-रसात्मक है और ऐतिहासिक प्रसंग काव्य में गुम्फित है। गीत इस शैली की प्रमुख विधा रही है तथा वैण सगाई का प्रयोग इस शैली की अपनी विशेपता है। डा. हीरालाल माहेश्वरी की मान्यता है कि—"चारण साहित्य को ठीक से समझने और उसका उचित मूल्यांकन करने के लिए तत्कालीन राजपूत जीवन को भलीभांति समझना होगा। चारणों ने अपने साहित्य में वीरत्व की जीवन्त झांकी के दर्शन कराये हैं। इस साहित्य में प्राणदायिनी प्रेरणा, ओजस्विनी शक्ति, कर्त्तव्य के प्रति जागरूकता, लड़कर प्राण त्यागने की मस्ती और अनूठे तथा पावन प्रभाव के दर्शन होते हैं। राजपूती चरित्र की जो विशेपताएं हैं, वे इस साहित्य में पूर्णतया प्रतिबिम्बित हुईं। वीरता उसकी बपौती रही है और मरण उसका त्यौहार।" मध्ययुग में शौर्य और वीरता के प्रतीक राजपूत ही थे और उन्हीं के संरक्षण में यहां की सभ्यता और संस्कृति फली-फूली तथा विकसित हुई। इस वीर जाति और वीर भूमि की उज्ज्वल कीर्ति गाथाएँ और सांस्कृतिक धरोहर की अमूल्य थाती चारण साहित्य में ही सुरक्षित है।

चारण साहित्य में वीर रस की प्रधानता है और उनका यह वीररसात्मक साहित्य प्रायः पूरा का पूरा ऐतिहासिक परिवेश में सृजित है। वीररस के अतिरिक्त

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

भक्ति, नीति, शृंगार, वैराग्य, ज्ञान, उपदेश इत्यादि अनेक विषयों की रचनाओं से यह ज्ञात होता है कि उन्होंने विभिन्न विषयों को अपना प्रतिपाद्य बनाया। बारहट आसा, बारहट ईसरदास, दुरसा आढ़ा, जग्गा खिड़िया, माधोदास दधवाड़िया, रामदान लालस, वीठू मेहा, सांदू माला, केशवदास गाडरा, बारहट लक्खा, शंकर बारहट, अखा बारहट, वीरभाण रतनू, कविया करणीदान, बखता खिड़िया, हुकमीचंद खिड़िया, सगता सांदू, खेतसी सांदू, सांदू पृथ्वीराज, सांदू रामा, सिढायच पूना, जाड़ा मेहडू, भीमा आसिया, चूंडा दधवाड़िया, चारण भूधरदास, कल्याणदास मेहडू, आढा किसना दुरसावत, सिढायच गेंयो तुंकारो, बारहट एजन, गाडण कोळो मेहाव्रत आदि अनेक चारण कवि, जिनकी पूरी सूची देना यहां सम्भव नहीं, मध्यकालीन मारवाड़ के राजस्थानी साहित्य के महत्वपूर्ण रचनाकार थे। यहां की सांस्कृतिक परम्पराओं का इन रचनाकारों ने अपनी कृतियों में जो सुन्दर और प्रभावी चित्रण प्रस्तुत किया है, उससे भावी पीढ़ियां प्रेरणा प्राप्त करती रही हैं। डिंगल गीत जहां चारणों की अपनी उपज है, वहीं झूलणा, छप्पय, कुण्डळिया, दोहा आदि छन्दों पर उनका एकाधिकार दृष्टिगोचर होता है। भाषा में प्रवाह और ओज ऐसे अनुपम गुण हैं, जो हिन्दी वीर काव्य में कम देखने को मिलते हैं। इसीलिए भारतीय वाङ्मय को मारवाड़ के इन चारणों की विशिष्ट देन है। साथ ही स्वाधीनता की भावना को उजागर करने में उनकी महती भूमिका रही है।

चारणेतर साहित्य

चारणों के अतिरिक्त राजपूत, मोतीसर, भोजक, ब्राह्मण, ओसवाल, ढाढी, ढोली सेवग आदि चारणेतर जातियों के कवियों ने जो रचनाएँ शिष्ट शैली में लिखीं उसे चारणेतर साहित्य के अन्तर्गत माना जा सकता है। यहां यह बात द्रष्टव्य है कि शिष्ट साहित्य के निर्माण में चारणेतर जातियों के रचनाधर्मियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है और राजस्थानी के शिष्ट साहित्य की कई प्रमुख रचनाओं का सृजन इनके द्वारा ही हुआ है। चारण कवियों की एक विशिष्ट परम्परा रही है और अधिकांश कवि उस परम्परा के अनुरूप ही साहित्य सृजन करते रहे जबकि चारणेतर साहित्य में उस परम्परा से सान्निध्य रखते हुए भी भावों की अभिनव व्यंजना, विषय वैविध्य, प्रसंगानुकूल विशिष्ट शब्द योजना एवं सांस्कृतिक गरिमा की जो अनुपम छवि देखते हैं वह इस साहित्य की अपनी विशेषता है। राजस्थानी की क्लासिक रचनाओं में चारण कवियों की अपेक्षा चारणेतर जातियों के कवियों की रचनाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उदाहरणस्वरूप कृष्ण रुक्मणि की वेलि की रचना पृथ्वीराज राठौड़ ने तथा माधवानल कामकंदला व ढोला मारू री चौपाई जैसी शिष्ट साहित्यिक कृतियों की रचना जैन कवियों ने की है। पृथ्वीराज राठौड़, मुहणोत नैणसी, पद्मनाभ, कुशललाभ, नयचन्द्र सूरि, बहादर ढाढी, चतरा मोतीसर, मंछाराम सेवग इत्यादि कई ऐसे रचनाकार हुये हैं जिन्होंने विविध विधाओं व विषयों को लेकर चारणेतर साहित्य की श्रीवृद्धि में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया और उसकी कृतियाँ यहां सांगत वर्ग में बड़े सम्मान व आदर के साथ देखी जाती रही हैं।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

(2) धार्मिक साहित्य

धर्म मानव जीवन को बहुत अंशों और विविध क्षेत्र में प्रभावित करता रहा है। जिस साहित्य में धर्म का प्राधान्य हो वह धार्मिक साहित्य कहलाता है। मध्यकाल में मारवाड़ में पनपने और विकसित होने वाले विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों और पंथों का साहित्य इस श्रेणी का ही है। इसमें कबीर, दादू, निरंजनी, रामस्नेही, नाथ सम्प्रदाय, दसनामी, वल्लभ सम्प्रदाय, जैन सम्प्रदाय इत्यादि विभिन्न विचारधाराओं और मत-मतान्तरों की रचनाएँ धार्मिक साहित्य में सम्मिलित की जा सकती हैं। यहां के धार्मिक साहित्य को मुख्यरूप से तीन भागों में बांटा जा सकता है—(i) जैन साहित्य (ii) सन्त साहित्य और (iii) भक्ति साहित्य।

(i) **जैन साहित्य**—जैन शैली का साहित्य अधिकांश जैन यतियों, जैन साधुओं और उनके अनुगामी श्रद्धालु श्रावकों द्वारा लिखा गया है। यहां के हस्तलिखित ग्रंथालयों में सुरक्षित कृतियों में जैन विषयक सामग्री का बाहुल्य है। जैनागम के मूल ग्रंथों के अतिरिक्त अनेक टीकाएँ, बालावबोध, टब्बा, ढालें, सिज्झायें, रास, स्तवन स्तोत्र, चोढालिये, सिलोके वार्तिक आदि नामों से उल्लेखित कृतियों में जैन धर्म के नियमों और आदर्शों का कई प्रकार से वर्णन किया गया मिलता है। यहां जैन साहित्य बहुत बड़े परिणाम में लिखा गया। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि सभी भाषाओं के जैन साहित्य में विषय वस्तु की एक-सी समानता मिलती है। इसी कारण जैन कवि के सामने कथानकों का स्वरूप प्राय: निश्चित रहता था और प्रतिभा सम्पन्न कवि परम्परा में बधी कथा में काव्यानुगत प्रसंगों पर कवित्व का प्रदर्शन व धार्मिक तत्त्वों का विवेचन करते। चरित चउपई, रास संज्ञक रचनाओं में जैन शैली के रचनाकारों ने पौराणिक पात्रों, लोककथाओं, प्रसिद्ध वीरों, दानियों और धार्मिक प्रवृत्ति के नायकों, व्रत कथाओं, धार्मिक उपदेशों आदि नाना प्रसंगों को अपनी कल्पना और प्रतिभा के आधार पर अपनाया है। पौराणिक व सनातन धर्म के आख्यानों व मिथकीय मूल्यों के समानान्तर कई जैन रचनाओं में वर्णन मिलता है जिसके घटना प्रसंगों को उन्होंने तर्क-वितर्क के सारे मनमाने ढंग से तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत किया गया है। ऐसा करने का उनका मंतव्य अपनी धार्मिक श्रेष्ठता सिद्ध करना ही रहा है। जैन साहित्य में गेय रचनाओं का भी बाहुल्य देखने को मिलता है जिसमें स्थानीय राग-रागिनियों का सम्मिश्रण भी उल्लेखनीय है। मालदेव, पुण्यसागर, पद्मराज, कनकसोम, साधुकीर्ति, विमलकीर्ति, विमलरत्न, हेमरत्न सूरि, गुणविनय, सहजकीर्ति, श्रीसार, समयसुन्दर, जिनहर्ष, जिनसमुद्र सूरि,जयमल्ल, रायचन्द्र इत्यादि अनेक रचनाकार हुए हैं। चारण कवियों की भांति जैन साहित्य के इन रचनाकारों की पूर्ण सूची देना इस निबन्ध में सम्भव नहीं है। जैन रचनाकारों ने जैन धर्म के अतिरिक्त भी अन्य विषयों पर कई महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखे हैं जिनमें कुशललाभ आदि का नाम प्रमुख है। इस प्रकार जैन धर्म के अलावा जैन रचनाकारों ने विविध विषयों पर जो लेखनी चलायी वह पूरे समाज में सहर्ष स्वीकारी गयी और उनकी कई रचनाएँ यहां अत्यधिक लोकप्रिय हुई।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation-of-America HHFA(USA)

(ii) **सन्त साहित्य**—यहां संत साहित्य से तात्पर्य ऐसे साहित्य से है जिसमें अधिकतर निर्गुण भक्ति का गुणगान मिलता है। यहां का सन्त साहित्य उत्तरी भारत की सन्त परम्परा से प्रभावित होने के बाद भी उसकी एक विशेषता यह है कि उसका झुकाव अधिकतर निर्गुण भक्ति की ओर रहा है। यहां के सन्तों ने, यहां की भाषा में नवीन उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं आदि के माध्यम से अपने भावों की अभिव्यक्ति को जो नया रूप दिया है वह बड़ा ही प्रभावोत्पादक और सरस है। सन्त साहित्य के रचनाकारों की अपनी शैली है जिसमें बोलचाल की राजस्थानी भाषा के अतिरिक्त विभिन्न पड़ौसी प्रान्तीय भाषाओं और खड़ी बोली का प्रभाव भी पाया जाता है। सन्त साहित्य के निर्माण में विभिन्न धर्मावलम्बियों और मतमतान्तरों के अनुरूप पंथीय साहित्य की संरचना अधिक हुई और उसमें अपने सम्प्रदाय की गुरु परम्परा गुरुवाणी, आराध्य अर्चना, ईश्वरीय माया, उसके रूप व गुण का गुणगान तथा जगत की मिथ्या बातों से दूर रह कर कल्याणकारी आचरण की सीख इसमें प्राय: देखने को मिलती है। सन्त साहित्य में अध्यात्म की सरल उदाहरणों द्वारा जो सहज अभिव्यंजना की गयी है वह उसकी अपनी विशेषता है और साधारण पढ़े लिखे लोगों को भी उसे हृदयंगम करने में विशेष प्रयास की आवश्यकता नहीं होती। निर्गुण ब्रह्म की जो अवधारणा है वह सगुण से कुछ क्लिष्ट है परन्तु इन सन्तों में ऐसी प्रतिभा थी कि स्थानीय उपमाओं, रूपकों और दृष्टान्तों के माध्यम से उसे सरल और बोधगम्य बना दिया। सन्तों ने सांसारिकता त्याग दी थी किन्तु संसार के कल्याण की भावना से वे कभी विमुख नहीं हुये।

मध्यकाल में सन्तों और उनके साहित्य ने यहां जो लोक शिक्षण का कार्य किया वह महत्वपूर्ण कहा जायेगा। उस समय जब प्रमुख प्राचीन भारतीय शिक्षण संस्थाओं का आक्रान्ताओं द्वारा विध्वंस और विनाश हो चुका था और लोकशिक्षण की सारी व्यवस्था चरमरा गयी थी उस समय संतों ने शिक्षक की महती भूमिका निभाई। अपनी वाणियों के माध्यम से उन्होंने जनकल्याण का निरन्तर प्रयास किया और लोगों को आचरणगत व शिष्टाचार की शिक्षा देकर उन्हें मानवीय गुणों से संस्कारित करने में सन्तों व सन्तसाहित्य की प्रमुख भूमिका रही है।

संतसाहित्य में यहां कबीर, दादू, गोरख, रैदास आदि संतों की वाणियों का प्रभाव अधिक दृष्टिगोचर होता है। इसके अतिरिक्त मीरां, दरियावजी, रामचरणदास, जांभोजी जैसे अनेक प्रसिद्ध संतों व इनके अतिरिक्त अनेक स्थानीय संतों की वाणियां व भजन अपने अपने अंचलों में बड़े चाव से गाये जाने की परम्परा रही है। संत साहित्य की भाँति ही यहां भक्ति साहित्य का प्रचार-प्रसार भी मध्यकाल में अधिक हुआ।

(iii) **भक्ति साहित्य**—धार्मिक साहित्य के अन्तर्गत निर्गुण भक्ति का साहित्य संत साहित्य की अनुपम देन है तो सगुण भक्ति के अन्तर्गत राम और कृष्ण भक्ति की ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी दोनों ही प्रकार की शाखाओं का यहां प्राबल्य रहा है। संतों की निर्गुण निराकार ईश्वर की परिकल्पना की अपेक्षा अवतारी राम और कृष्ण

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

की लीलाएँ यहां के जनमानस को अधिक सरस और रोचक प्रतीत हुईं। इसलिए इन दोनों के चरित्रों पर उनकी आराधना व पूजा के लिये बहुत-सा भक्ति साहित्य लिखा गया। मध्यकालीन परिस्थितियों के परिणाम स्वरूप सगुण भक्ति की ओर यहां के लोगों का झुकाव अधिक रहा और सम्भवतः लोक-देवताओं, लोक-देवियों, झूंझारों, भोमियों, पितरों, सतियों आदि के प्रति विशेष आकर्षण का कारण भी तत्कालीन परिस्थितियां ही रही होंगी। इन सब के गुणगान और महिमा वर्णन में यहां बहुत-सा साहित्य लिखा गया।

भक्ति साहित्य की सरसता ने मध्यकालीन मारवाड़ की राजनैतिक उथल-पुथल, संघर्ष और नैराश्यपूर्ण स्थितियों से यहां के जनमानस में शान्ति और आशापूर्ण वातावरण निर्माण करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। तुलसी, सूर और मीरां आदि भक्तों के पदों ने यहां की जनता में आत्मप्रेरणा प्रदान की और उनके साहित्य ने जन-मन में आशा के दीप जलाकर भक्ति की मन्द पड़ती लौ को पुनः प्रज्वलित किया। मध्यकाल में यहां राम और कृष्ण की भक्ति यहां के जनमानस के साथ अंतरंगता से जुड़ी हुई थी और जिस प्रकार उत्तर प्रदेश में तुलसी व सूर की रचनाओं को बड़े चाव से पढ़ा जाता था उसी भांति इन भक्तों की रचनाओं का यहां विशेष प्रचलन था। विवेच्य काल में यहां राम और कृष्ण भक्ति को राज्याश्रय भी मिला। विभिन्न राजवर्गीय व साधन-सम्पन्न लोगों द्वारा अपने अपने इष्ट देव राम और कृष्ण के बड़े-बड़े मन्दिर बनवाये गये। जन सहयोग से भी कई मन्दिरों का निर्माण हुआ। राम और कृष्ण से सम्बन्धित धार्मिक महत्व के ग्रंथों का अनुवाद व टीकाएँ आदि लिखी गयीं जिसमें गीता और रामचरित मानस प्रमुख है। राम कथा के आधार पर यहां अनेक काव्य ग्रंथ लिखे गये। रघुवर जसप्रकाश, रघुनाथ रूपक आदि ग्रंथों में राम कथा के माध्यम से छन्द व अलंकारों का वर्णन किया गया है।

मारवाड़ में नाथ सम्प्रदाय का प्रभाव प्राचीन काल से रहा है। यहां नाथों के अनेक 'आसन' हैं। प्रायः यहां के प्रत्येक बड़े गांव में नाथ पंथ का ऐसा 'आसन' मिल जायेगा। इस सम्प्रदाय के चमत्कारी साधुओं को यहां के शासकों से ही नहीं, छोटे-बड़े जागीरदारों से भी जमीन आदि दान में प्राप्त हुई। दान में प्रदत्त ऐसी जमीन को यहां 'डोळी' नाम से पुकारा जाता रहा है। जिस गांव में नाथ पंथ का ऐसा 'आसन' या गद्दी होती, उस गांव के किसान आदि भी वहां अपनी श्रद्धानुसार कुछ-न-कुछ दान अनाज के रूप में प्रदान करते थे। कुछ गांवों में यह परम्परा आज भी प्रचलित है, परन्तु अब यह विलुप्त होती जा रही है। मध्यकालीन मारवाड़ में नाथों को अच्छा सम्मान मिला हुआ था तथा उनके तांत्रिक चमत्कारों के कई किस्से लोक-जीवन में प्रचलित रहे हैं। इस पंथ के जोगी घर-घर जाकर भिक्षाटन से अपनी उदर पूर्ति करते थे। वे अपने इकतारे पर गोपीचंद, भरथरी आदि राजाओं की कथा व शिव ब्यावला आदि लोक-काव्य की सरस भावभूमि में गा-गाकर उन्हें लोकप्रिय बनाने के पीछे नहीं रहे।

यही कारण है कि यहां शैव मत का प्रचार-प्रसार बहुत ही व्यापक और शिव

Digitization by Hindu-Heritage Foundation of America - HHFA (USA)

भक्ति यहां बहुत लोकप्रिय रही। मारवाड़ की कठोर जलवायु और मध्यकाल के संघर्षपूर्ण जीवन में शंकर जैसा महादेव ही यहां के लोगों की जन-आकांक्षा और जीवन में नवउत्साह और चेतना जागृत कर उनकी धार्मिक आस्था का उपयुक्त केन्द्र बिन्दु था। यहां के अभावग्रस्त व कष्ट सहिष्णु लोगों द्वारा शिव की पूजा-अर्चना करना आसान व सरल था।

इसी प्रकार यहां ऐसे अन्य दूसरे पंथ व सम्प्रदायों की भक्ति के प्रति जनमानस अधिक आकृष्ट हुआ, जिसमें सैद्धान्तिक विवेचना की गूढ़ता व कर्मकाण्डों की बहुलता के विपरीत सरल, अनौपचारिक व बहुत ही सहज जिनके नियम थे। इनमें कबीर, दादू पंथ का प्रभाव अधिक रहा, इसके अतिरिक्त रामस्नेही, विश्नोई, निम्बार्क, निरंजनी आदि अन्यान्य सम्प्रदायों के प्रति भी यहां के लोगों का रुझान काफी था जिसका विस्तृत विवेचन अध्याय तीन में किया गया है।

यहां के विभिन्न ग्रामों में जिस संख्या में शिव मन्दिर बने मिलते हैं उनसे शैव भक्ति के प्रचार-प्रसार का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। प्रायः प्रत्येक गांव में छोटा-बड़ा शिवालय बना हुआ है। शिव के विशाल व प्राचीन मन्दिरों में जो प्रायः विजन प्रदेश या पहाड़ी क्षेत्रों में बने हुए हैं वहां भी मारवाड़ की जनता अपने भक्ति-भाव को प्रदर्शित करने व आराध्य की पूजा-अर्चना के लिए जाती रही है। शिवभक्ति का रामभक्ति के साथ तुलसी ने जो समन्वय स्थापित किया उसकी सहज अनुभूति हमें मध्यकालीन मारवाड़ की जनता के भक्तिसाहित्य में दृष्टिगोचर होती है। रामलीला और कृष्णलीला के मचन की परम्परा से राम व कृष्ण भक्ति को यहां लोकप्रियता हासिल हुई और इस भक्ति-भावना का यहां प्रचार-प्रसार अत्यधिक हुआ। गांव के ठाकुरों, सेठ-साहूकारों व धर्मपरायण श्रद्धालु भक्तों द्वारा चतुर्मास में रामचरित मानस व गीता भागवत आदि धर्म ग्रंथों के पाठ का आयोजन भी करवाया जाता था जो यहां के लोगों की भक्तिपरायणता का ही प्रतीक कही जायेगी। यही भक्ति भावना यहां के भजनों व हरजसों से भी अभिव्यक्त होती है।

विवेच्यकाल में मारवाड़ के राठौड़ शासकों द्वारा विशेषकर कृष्ण भक्ति को प्रश्रय मिला। जोधपुर के शासक महाराजा जसवन्तसिंह प्रथम के समय औरंगजेब के मूर्तिभंजक प्रयास से भयभीत हो वृन्दावन से श्रीनाथजी का विग्रह जोधपुर के समीप कदमखण्डी और चौपासनी में लाया गया और कुछ समय तक यहां रखने के बाद मेवाड़ की ओर ले जाया गया[1] यह इतिहास प्रसिद्ध घटना सर्वविदित है। यहां के अन्य राजाओं, सामन्तों, जागीरदारों व गांव के कई ठाकुरों ने अपनी धर्मपरायणता व भक्ति भावना प्रदर्शित करते हुए मन्दिरों व पवित्र धार्मिक स्थलों की व्यवस्था हेतु द्रव्यदान के अतिरिक्त जमीन व कुओं का दान दिया गया। यहां के शासकों द्वारा ही नहीं रानियों द्वारा भी मन्दिरों के निर्माण व उनकी पूजा की नियमित व्यवस्था हेतु बहुत-सा द्रव्य दान किया गया। इतना ही नहीं, ठकुरानियों, माजियों, पड़दायतों व

1 पं. विश्वेश्वरनाथ रेउ : मारवाड़ का इतिहास : प्रथम भाग : पृ. 240

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

पासवानों तक ने मन्दिरों का निर्माण करवाया ।

यहां की शासकीय इकाई व ग्राम जनता चाहे किसी भी मत-मतान्तरों में विश्वास रखने वाली या पंथ या सम्प्रदाय से सम्बन्ध रही हो, शक्ति की उपासना में उसकी ग्रास्था सदैव बनी रही । राम या कृष्ण चाहे किसी में श्रद्धा रखने वाले यहां के शासकों द्वारा शक्ति ग्रौर शौर्य की प्रतीक दुर्गा, ग्रम्बिका ग्रादि देवियों की उपासना भी की जाती रही है । राजपूत ग्रौर चारण तो सदैव शक्ति-उपासक रहे हैं । मारवाड़ के राठौड़ राजपूतों की कुलदेवी नागणेचियां रही है ।[1] इसी प्रकार ग्रन्य राजपूतों ग्रौर विभिन्न जातियों की ग्रपनी-ग्रपनी कुलदेवी के प्रति ग्रगाध ग्रास्था रही है, जो ग्राज तक भी कई ग्रंशों में विद्यमान है । मारवाड़ में चारणों द्वारा दुर्गा की वंदना तथा उसकी लीला का गान ग्रपने साहित्य में बहुत ग्रधिक मात्रा में किया गया है । जैन यतियों द्वारा भी दुर्गा की स्तुति में यहां कई काव्य रचे गये ।[2]

ग्रादि शक्ति के विभिन्न स्वरूपों के साथ चारण समाज में उत्पन्न विभिन्न देवियों जैसे करणी, ग्रावड़ ग्रादि का भी यहां बड़ा वर्चस्व रहा है । मध्यकाल के जनजीवन पर इन देवियों का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है । इनसे न केवल यहां के शासकों ने वरन् ग्राम नागरिक ग्रात्मबल व प्रेरणा प्राप्त कर विधर्मियों से ग्रपने धर्म व संस्कृति की रक्षा करने हेतु सदैव प्रयत्नशील रहे ।

मध्यकाल की राजनैतिक उथल-पुथल के उस ग्रस्थिर माहौल में जनता की ग्राशा का केन्द्र उसकी ईश्वर के प्रति ग्रास्था ग्रौर भक्ति में ही रह गया था । इस युग में यहां भक्ति साहित्य का खूब सृजन हुग्रा, सगुण व निर्गुण दोनों तरह के भक्तिमार्ग यहां पनपे, परन्तु सगुण धारा का बोलबाला ग्रधिक रहा । इसके फिर कई विभाजन रामाश्रयी, कृष्णाश्रयी, प्रेममार्गी, ज्ञानमार्गी ग्रादि किये जा सकते हैं । पर मूल बात यह है कि यहां के लोकमानस में ईश्वर की ग्राराधना व परमेश्वर की ग्रनुकम्पा प्राप्त कर इस मोहमाया से भरे भवसागर से पार उतरने हेतु भक्ति रूपी सहज नाव का सहारा लिया गया । इस क्रम में यहां के विभिन्न लोक-देवताग्रों की ग्राराधना भी जारी रही । यही नहीं यहां ग्रनेक ऐसे भक्तजनों का प्रादुर्भाव भी हुग्रा, जिनके निर्मल ग्राचरण व पवित्र भक्ति से ग्राने वाली पीढ़ियां युगों तक इस निवृत्ति मार्ग की ग्रोर ग्रग्रसर होने को प्रेरित होती रही । भक्ति साहित्य के सृजन मे नरहरिदास, ईसरदास, माधोदास दधवाड़िया, पृथ्वीराज राठौड़, चूंडा दधवाड़िया ग्रादि कई प्रमुख रचनाकार ग्रग्रणी थे । मीरां, करमाबाई, धन्ना भगत इत्यादि ग्रनेक भक्त शिरोमणि इस क्षेत्र में उत्पन्न हुए कि यह वीर भूमि संतों व भक्तों की क्रीड़ास्थली बन गयी । उनका जीवन स्वयं प्रेरणा का स्रोत था एवं उनकी रचनाएँ ग्राज तक यहां के जनमानस के हृदयों को ग्रालोड़ित करती हैं ।

(iv) **लोकसाहित्य**—लोकसाहित्य लोकसंस्कृति का एक ग्रभिन्न ग्रंग है । जन-

---

1 पं विश्वेश्वरनाथ रेऊ : मारवाड़ का इतिहास, प्रथम भाग, पृ. 47

2 द्रष्टव्य—जैन जाति जैचन्द कृत माताजी री वचनिका, परम्परा, भाग 20

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America, HHFA(USA)

संस्कृति का दर्पण हम लोकसाहित्य को कह सकते हैं। लोकभाषा और लौकिक शैली में लिखा साहित्य जिसे लोकसाहित्य कह कर पुकारते हैं किसी देश या प्रान्त के जन-जीवन को, वहां के लोकमानस की सही झांकी को प्रस्तुत करता है। लोक की युग-युग की वाणी साधना इसमें सुरक्षित होती है। कितने ही ज्ञात-अज्ञात जन-कवियों ने अपनी सरल और सरस वाणी में अपने जीवन के जीवन्त अनुभवों को इसमें ढाल-कर जन-साधारण के लिए अमूल्य खजाना प्रस्तुत किया है। कोशकार सीताराम लाळस का यह कथन सही ही है कि "लोकगीत, पवाड़े, लोककथाएँ, कहावतें मुहा-वरे आदि राजस्थानी लोकसाहित्य के अमूल्य रत्न हैं। लोकसाहित्य जितने बड़े परिमाण में यहां सुरक्षित है उतना शायद ही किसी अन्य भारतीय भाषा में उप-लब्ध होगा।" लौकिक प्रेमकाव्य, लोकगीत, लोककथाएँ, लोकगाथाएँ, आदि ऐतिहासिक, अर्द्ध ऐतिहासिक, काल्पनिक और पौराणिक आदि विविध प्रसंगों पर आधारित हैं तथा इसकी शैली का अपना ही अनूठा अन्दाज है। भावों की सहज व सरल अभिव्यक्ति लोकसाहित्य की प्रमुख विशेषता है।

वस्तुत: लोकसाहित्य यहां के लोक-जीवन की ऐसी स्वाभाविक अभिव्यक्ति है जिसमें सतत् जीवन्तता और प्रवहमानता विद्यमान है। लोकसाहित्य के एक एक पहलू पर विस्तार से विवेचन करने पर ही उसकी समग्र खूबियां पाठकों के सम्मुख आ सकती हैं। यहां संक्षेप में केवल यही कहा जा सकता है कि यहां की आडम्बरहीन संस्कृति की अक्षुण्ण सरिता लोकवाणी के रूप में लोकसाहित्य में प्रवाहित हो रही है जिसमें अवगाहन यहां का लोकजीवन सदियों से आह्लादित व आनन्दित होता रहा है।

साधनहीन मरुस्थल में जहां पानी तक सरलता से सुलभ नहीं है, लोकगीतों और लोकगाथाओं की सहस्र धाराओं से यहां बसे मानवों की संस्कृति को सरस और भाव प्रवण बनाते रहे हैं।

ख्यात, बात, विगत, वंशावली, हाल, हकीकत, याददास्त, बही, रासो, विलास, प्रकास, रूपक, वचनिका, दवावैत, वेलि, झमाल, झूलणा, सिलोका, निसांणी, दूहा, गीत, छन्द, चौपाई, कवित्त, परची, पच्चीसी, बत्तीसी, बावनी, शतक, सतसई, इत्यादि राजस्थानी साहित्य में जो विविध संज्ञक रचनाएँ उपलब्ध होती हैं उनमें यहां का प्राचीन सांस्कृतिक वैभव बिखरा पड़ा है। इस गौरवपूर्ण सांस्कृतिक वैभव को जो हमें सौभाग्य से विरासत में प्राप्त हुआ है, उसे हम विस्मृत करते जा रहे हैं। यह एक बहुत बड़ी और खतरनाक भूल है जिसका खमियाजा हमें ही नहीं, आने वाली कई पीढियों को युगों-युगों तक भुगतना पड़ेगा। अपने कुल की परम्पराओं और मर्यादाओं का पालन करने वाला कुल की समृद्धि व ख्याति फैलाने वाले को सपूत कहा जाता है। इसके विपरीत जो आचरण करता है वह कपूत कह कर पुकारा जाता है क्योंकि उसे न अपने कुल की मर्यादाओं व विशिष्ट परम्पराओं का ख्याल है, न किसी और बात का। ठीक इसी तरह हम जिनकी अपनी बहुत प्राचीन समृद्ध और उपयोगी परम्परायें हैं सांस्कृतिक मान्यताएँ हैं उनका हम ख्याल नहीं कर रहे हैं।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

दिन-प्रति-दिन उन्हें भूलते जा रहे हैं भला ऐसे पथ का अनुसरण करने वालों को किस सम्बोधन से पुकारा जाय जो स्वनाश का मार्ग स्वेच्छा से अपनाये जा रहे हैं।

हमारा प्राचीन साहित्य बड़ा सुसम्पन्न और समृद्ध रहा है। उसकी एक सुदीर्घ परम्परा रही है। उसी से प्रेरणा पाकर यहां का इतिहास इतना गौरवान्वित हुआ है। यहां की विभिन्न कलाएँ इतने उच्च शिखर पर पहुँच पायी हैं और यहां की संस्कृति बेजोड़ व बेमिसाल बन पायी है। यहाँ के साहित्य में क्या नहीं है? सामाजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, नैतिक, आयुर्वेदिक, खगोल शास्त्रीय, ज्योतिष, मंत्र-तंत्र, नीति शास्त्र, संगीत इत्यादि विविध पहलुओं से संबधित भरपूर सामग्री है। आवश्यकता बस यह है कि ऐसे विविध पहलुओं का आधुनिक संदर्भों में विश्लेषण कर उनका जीवन में प्रयोग करें और इसमें छिपे पड़े ज्ञान, कौशल व सांस्कृतिक वैभव की अपनी अमूल्य विरासत को प्रकाश में लावें।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मारवाड़ के दो अज्ञात संस्कृत काव्य

ओ३म् प्रकाश शर्मा

विषयवस्तु की पूर्व पीठिका के रूप में राजपूताने में व्याप्त अतीत के स्वर्णिम वैभव के पृष्ठों को अनावृत कर रहा हूँ। ईसा से हजारों साल पहले यहाँ एक संस्कृति थी जो सिन्धु सभ्यता की ताम्रकालीन संस्कृति के समकालीन थी। यहाँ सरस्वती की घाटी में विश्व सभ्यता के प्राचीनतम ग्रन्थ वेदों की रचना हुई थी। सरस्वती की कलकलाहट के बीच कभी यह घाटी वैदिक मन्त्रों व ऋचाओं से गुंजायमान रही होगी। इसी घाटी में दक्षिण की तरफ कभी नैमिषारण्य रहा होगा जहाँ ऋषि-गण बैठकर सूतजी के मुख से कथा का आस्वादन करते थे। किन्तु दुःख है कि यह वैभव आज घग्गर की बाढ़ में बह चुका है—अतीत के मूक साक्षी कुछ टीले आज भी अपनी राम कहानी कहते-से नजर आते हैं। फिर आया महाकाव्य काल जो शिवि, यौधेय, मालव एवं मध्यमिका गणराज्यों का साक्षी है। यहाँ का उत्तरी भाग तथा पूर्वी भाग मत्स्य कहलाता था जहाँ अर्जुन ने कभी राजा विराट के यहाँ बृहन्नला के रूप में अज्ञातवास किया था। अनेक वर्षों तक शकों तथा यूनानी आक्रमण को झेलने वाले भग्नावशेष आज भी यहाँ देखे जा सकते हैं। हर्ष की मृत्यु के पश्चात् यहाँ राजपूतों का उदय हुआ था।

एक ओर जहाँ इस प्रदेश में शौर्य, वीरता एवं मातृभूमि की रक्षार्थ आत्मोत्सर्ग की कथाओं का अंबार है, वहाँ कला एवं साहित्य का वैभव भी आश्चर्यजनक है। स्थापत्य व कला को छोड़कर हम वर्तमान आलेख में साहित्यिक उन्नयन पर ही अग्रसर हो रहे हैं। अगर हम 500-1200 ई. पर एक सरसरी निगाह डालें तो इस क्षेत्र में सम्पन्न साहित्यिक कार्य राजस्थान के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखने लायक है। भारत के महान् ज्योतिर्विद वराहमिहिर को जहाँ जन्म देने का श्रेय इस प्रदेश को प्राप्त है वहाँ इनके ग्रन्थ पर टीका लिखने वाले ब्रह्मगुप्त भिन्नमाल वास्तव्य है। संस्कृत महाकाव्यों में शिशुपालवध अपनी विशिष्ट वैदुष्यपूर्ण शैली के लिये सुविख्यात है—इसके प्रणेता माघ कवि भी भिन्नमाल वास्तव्य थे। जैन साहित्य के अनेक ग्रंथों के प्रणेता सिद्धार्थ सूरि ने भी यहाँ जन्म लेकर इसी नगर को अलंकृत किया था। छन्दशास्त्र के प्राचीन ग्रन्थ कुवलयमाला का प्रणेता उद्यतोन सूरि जालोर नगर का निवासी था। इसके अलावा पृथ्वीराज विजय का रचयिता जयानक, ललितविग्रह नाटक का कर्त्ता सोमदेव, हमीर महाकाव्य का रचयिता नयचन्द्र सूरि जैसे अनेक विद्वान् इसी प्रदेश से किसी-न-किसी रूप से सम्बद्ध रहे हैं।

कालान्तर में राजस्थान के अतीत के स्वर्णिम वैभव को दर्शाने वाला यह सुन्दर महल इस्लाम की आँधी व तूफान में धू-धू कर जल गया। यहाँ के अदूरदर्शी राजाओं

Digitization by Hindu Heritage Foundation of America. HHFA(USA)

की आपसी कलह के फलस्वरूप मुस्लिम आक्रान्ता यहाँ के शासक बन बैठे। मातृभूमि की आँखें एक सच्चे सपूत को निहारते हुए पथरा गईं, जो इस बिखराव को एक सूत्र में पिरोकर मजबूत बना दें।

कुतुबुद्दीन, रजिया सुल्तान, अलाउद्दीन एवं बलबन के खूँखार आक्रमणों से त्रस्त एवं विजय व पराभव की कुण्ठा के बीच में भी यहाँ साहित्य-सृजन अनवरत बना रहा। संस्कृत एवं राजस्थानी दोनों ही भाषाओं में बराबर कार्य होता रहा। इसके कतिपय निदर्शनों में भट्टि काव्य, राज विनोद, कर्मचन्द्र वंशोत्कीर्तनम्, अमरसार, अमर काव्य, राजरत्नाकर, ईश्वरविलास, संगीतराज, संगीतशृंगार, कर्णावतंस, साहित्यरत्नाकर, अनूपविलास एवं जयसिंह कल्पद्रुम आदि प्रमुख हैं।

जोधपुर के संस्थापक राव जोधा से राव मालदेव पूर्व तक अगर कोई संस्कृत काव्य रचा गया हो तो उसकी जानकारी नहीं है। हाँ, राव मालदेव विरचित एक 'त्रिपुरा भारती लघुस्तव' प्रकाशित रूप से उपलब्ध है। स्वयं मालदेव अथवा धावक कवि की अनुसृति में प्रचुर सम्पदा के मोहवश महाराजा मालदेव का नाम लिख दिया गया हो—कुछ भी कह पाना सम्भव नहीं है। फिर भी इतना निश्चित है कि राव मालदेव निर्विवाद रूप से साहित्यसेवी व विद्यानुरागी थे।

मारवाड़ाधिपति महाराजा सूरसिंह (1595-1619 ई.) अत्यन्त विद्यानुरागी थे। इनकी आज्ञा से जोधपुर नगर वास्तव्य श्रीमाली ज्ञातीय माधवभट्ट ने 'सूरसिंह वंश-प्रशस्ति' नामक एक काव्य की रचना की थी, जिसे अन्य स्थलों पर 'राष्ट्रकूट-वंशावली' अभिधान से भी बोधित किया गया है। चार सर्गात्मक इस काव्य के प्रथम सर्ग में पौराणिक क्रमानुसार ब्रह्मा द्वारा सृष्टि संरचना वर्णित है। इसी अनुक्रम में मरीचि से लेकर राजा बंभ तक विस्तृत वंशावली दी गई है। इस क्रम में कवि ने इन पौराणिक शासकों के जीवन एवं तत्कालीन युद्धपरक घटनाओं का प्रमुख रूप से चित्रण किया है। द्वितीय सर्ग बंभ वंशान्वयियों से प्रारम्भ कर राव जोधा तथा बीकानेर एवं मेड़ता के प्रमुख राठौड़ों का चित्रण किया गया है। तृतीय सर्ग में राव मालदेव से सूरसिंह तक के राजाओं का वर्णन है तथा अन्तिम सर्ग में महाराजा सूरसिंह की गुजरात एवं दक्षिण भारत की विजययात्राओं का विस्तार से उल्लेख है।

'सूरसिंह वंशप्रशस्ति' मूलतः एक ऐतिहासिक काव्य है, जिसमें काव्य एवं इतिहास का सुन्दर समन्वय है। काव्य का अंगी रस वीर है। युद्ध के नीरस वर्णनों से विकल मानवीय मन को रिझाने हेतु काव्य में स्थान-स्थान पर शृंगारपरक विश्राम-शय्याओं का निर्माण किया गया है, जहाँ प्रकृति के सुरम्य वातावरण में परभृतों का कमनीय कलरव व षट्पदों के मधुर गुञ्जन के साथ कोमलाङ्गियों के हास-परिहास भी वर्णित है। शब्द एवं अर्थालंकारों के प्रयोग एवं वैविध्य में कवि निष्णात प्रतीत होता है।

प्रशस्तिकार ने काव्य के द्वितीय सर्ग में सम्राट् जयचन्द्र के पुत्र जयसेन का उल्लेख किया है। बांकीदास की ख्यात, नैणसी की ख्यात, राठौड़ां री वंशावली, राठौड़ वंश री विगत आदि में इस नामधारी जयचन्द्रात्मज का उल्लेख नहीं है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation-of-America, HHFA(USA)

आधुनिक इतिहासकारों ने भी इसका उल्लेख नहीं किया है। बीकानेर नरेश रायसिंह के शिलालेख में भी इसका उल्लेख नहीं है।

काव्यप्रणेता माधवभट्ट जोधपुर में ब्रह्मपुरी मोहल्ले के निवासी थे। इनकी हवेली आज भी ब्रह्मपुरी में बनी हुई है। तुलादान का चबूतरा एवं माधवेश्वर का मन्दिर अतीत की एक दुःखान्तिका के साक्षी हैं—दयादेव भट्ट की अकाल मृत्यु की। चिमनीचरित एवं भीमप्रबन्ध में प्राप्त कथा के अनुसार माधवभट्ट के पुत्र दयादेव को मुगल सम्राट् शाहजहाँ के उमराव अलावर्दीखान के अन्तःपुर में शाहजादियों को पढ़ाने के लिये नियुक्त किया गया था। निगरानी हेतु एक नाजर एवं दासी को भी नियुक्त किया गया था। एक दिन अलावर्दीखान की पुत्रवधू महल की खिड़की से देखकर दयादेव के सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाती है तथा दासी के माध्यम से प्रणय याचना करती है। ब्राह्मण पुत्र की अनिच्छा के बावजूद काल की क्रूर गति के कारण चिमनी व दयादेव एकाकार होकर निरन्तर प्रणय परिपाक की स्थिति में आ जाते हैं। चिमनी दयादेव को चार मूल्यवान मोती भी भेंट करती है। धीरे-धीरे यह प्रणय-कथा बादशाह के पास पहुँच जाती है तथा सम्राट् की आज्ञा से दयादेव को जिन्दा दीवार में चुनवा दिया जाता है। इस दारुण समाचार से उसकी माँ अत्यन्त विलाप करती है तथा पुत्र-वियोग में अपने आपको अग्नि को समर्पित कर महासतीत्व का वरण करती है। इन घटनाओं से माधवभट्ट का मन भी विषाद से भर उठता है तथा वे अपनी समस्त सम्पत्ति तुलादान के चबूतरे पर बैठकर दान कर देते हैं। महासती के हाथ का निशान आज भी माधवभट्ट की दुखद आत्माहुति के रूप में हवेली में देखा जा सकता है। माधवेश्वर का जीर्ण मन्दिर मानो उस 400 साल पुराने अत्याचार का मौन विरोध कर रहा है।

मारवाड़ का द्वितीय वर्ण्य काव्य 'तख्तविलास चम्पू' 19वीं शताब्दी की संस्कृत साहित्य परम्परा का एक अद्वितीय उदाहरण है। पिछली शताब्दियों में भी यहाँ हिन्दी, राजस्थानी एवं संस्कृत ग्रंथों का बराबर प्रणयन होता रहा था। विस्तारभय एवं अप्रासंगिकतावश यहाँ राजस्थानी हिन्दी ग्रंथों का वर्णन नहीं किया जा रहा है। मारवाड़ के महाराजा अजीतसिंह (1707-1724) के काल में दो महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक काव्यों की रचना की गई थी। जगजीवन भट्ट ने 'अजीतोदय' एवं दीक्षित बालकृष्ण ने 'अजीत चरित्र' नामक काव्य लिखा था। 'अजीतोदय' में मारवाड़ की ऐतिहासिक घटनाओं व मुगल-मारवाड़ सम्बन्धों का विस्तार से वर्णन है। इसके अलावा जोधपुर नगर का वर्णन, मण्डोर के बगीचे का सौन्दर्य तथा जन्म, मृत्यु व विवाहादि अनेक विषयों का इसमें समावेश है। महाराजा अभयसिंह के सम्मान में (1724-1749) 'अभयोदय' काव्य लिखा गया तथा भीमसिंह की प्रशंसा में (1793-1803) 'भीमप्रबन्ध' नामक काव्य की रचना की गई। इसके अलावा 'मानसिंह प्रशस्ति', 'मानभास्करोदय चम्पू' नामक दो अल्प ज्ञात काव्य भी मिलते हैं, जिनमें तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था के साथ-साथ उस युग की परम्परा, विचारधारा एवं सामाजिक संगठन के भी दर्शन होते हैं।

Digitization by Hindu Heritage Foundation of America. HHFA(USA)

वास्तव में संस्कृत भाषा एवं साहित्य के संरक्षणार्थ महाराजा मानसिंह के काल में जोधपुर दुर्ग में 'पुस्तक प्रकाश' नाम से हस्तलिखित ग्रन्थों का एक संग्रहालय खोला गया तथा तत्कालीन मारवाड़ में उपलब्ध महत्वपूर्ण हस्तलिखित ग्रन्थों की पाण्डुलिपियाँ मंगवाकर यहाँ सुरक्षित रखी गईं। 1885 ई. में इस संग्रह में 1230 हस्तलिखित ग्रन्थों का संग्रह था जिनका सम्बन्ध इतिहास, काव्य, वेद, दर्शन, व्याकरण, काव्यशास्त्र, संगीत, कोष आदि विविध विषयों से था। नाथ सम्प्रदाय के प्रभाव के कारण योग के भी अनेक ग्रन्थ यहाँ इकट्ठे हो गये थे जिनमें अद्भुत योग, गोरक्ष संहिता, जलंधर संहिता आदि प्रमुख हैं। मानसिंह द्वारा प्रणीत मुण्डकोपनिषद् की टीका एवं नाथ चरित्र भी इस संग्रह के महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं।

मानसिंह के दत्तक पुत्र तखतसिंह (1843-1873) स्वयं संस्कृत भाषा के विद्वान् व विद्याप्रेमी थे। इनके आश्रित शेष नामक कवि ने 'तखतविलास चम्पू' नामक काव्य की रचना की। 'गद्यपद्यमयंकाव्यम् चम्पूरित्यभिधीयते' के अनुसार गद्य-पद्य के सुन्दर समन्वय के साथ काव्य की संयोजना की गई है। जहाँ समास बहुलता के कारण गद्य भाग कहीं-कहीं क्लिष्ट बन पड़ा है, वहीं सरसता व सरलता के कारण पद्य भाग मनोहारी बन पड़ा है।

सम्पूर्ण काव्य को छः काण्डों में विभाजित किया गया है। प्रारम्भ में ही जोधपुर भोगिशैल पर्वत एवं तखतसिंह का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन मिलता है। जहाँ जोधपुर नगरी को भूमिलोक में श्रेष्ठतम, भोगिशैल पर्वत को महीतल में प्राप्त पर्वतों से पवित्रतम तथा महाराजा तखतसिंह को स्वयं चतुरानन राजोत्तमराजराजः कहकर कथाप्रसंग को आगे बढ़ाते हैं। आलोच्य कृति में तखतसिंह को विविध शास्त्रों का ज्ञाता, धर्मज्ञ, दानी, मानी एवं सुरराज के समान पराक्रमी कहा गया है।

अनेक भोगों से संवृत एवं मेरुमन्दर व कैलास की सम्पत्ति की समता रखने वाले तखतसिंह इन ऐहिक भोगों को व्यर्थ मानकर तीर्थयात्रा का मानस बनाते हैं। मंत्रिगण महाराजा की प्रस्तावित गंगा यात्रा से विषादमग्न हो जाते हैं। राजा के मंत्रिगण, योद्धाओं एवं अन्य सलाहकारों ने विस्तारपूर्वक निवेदन किया कि आपके लिये गंगा यात्रा की कतई आवश्यकता नहीं है क्योंकि राजा को अपने कर्तव्यों के पालन के कारण अप्रयत्न से ही दान, तीर्थ, तप एवं यश प्राप्त हो जाते हैं; अतः राजा का धर्म तो सत्यपरिपालन है जो स्वयं धर्म, तप, दान एवं तीर्थ है। मन्त्री हंसराज के निवेदन करने पर कि आपको महाराजा मानसिंह ने सुयोग्य समझ कर ही गुर्जर देश से यहाँ बुलवाया है; अतः आप पराक्रम से अर्जित इस राज्य की सत्य एवं निष्ठापूर्वक रक्षा कीजिये तो तखतसिंह राजा भगीरथ द्वारा गंगावतरण की पौराणिक कथा सुनाकर अपने मत को पुष्ट कर लेते हैं तथा गंगा यात्रा हेतु अपने परिवार, मन्त्रिगण व सेनादि लेकर निकल पड़ते हैं। तखतसिंह की गंगा यात्रा का काव्य के द्वितीय सर्ग में बड़ा ही रोचक वर्णन है। आगे जयपुराधिपति रामसिंह से आतिथ्यादि प्राप्त करने के बाद इन्द्रप्रस्थ की यात्रा का वर्णन है। तत्पश्चात् हरिद्वार में गंगा पूजा व अर्चना का वर्णन है। इस अवसर पर तखतसिंह ने गंगा स्तोत्रकी (10

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America, HHFA(USA)

श्लोकात्मक) भी रचना की एवं ब्राह्मणों को प्रभूतमात्रा में दान देकर सन्तुष्ट किया। उसके अनन्तर मथुरा एवं पुष्कर यात्राओं का भी वर्णन है। पुष्कर प्रवास में तखतसिंह द्वारा 'पुष्कर स्तोत्र' नामक कतिपय पद्यों की रचना का उल्लेख है। अन्त में जोधपुर आगमन व स्वागतादि के पश्चात् काव्य का समापन है।

आलोच्य कृति निर्विवादरूपेण एक साहित्यिक रचना है जिसमें प्रणेता ने अपने अधिपति की वीरता, सौन्दर्य एवं कृतित्व का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है जो संस्कृत साहित्य के ग्रन्थों में सामान्य बात है। अंग्रेजों के साथ सन्धि हो जाने के कारण तखतसिंह को अपने जीवन काल में कभी कोई युद्ध करने का अवसर ही नहीं मिला और न ही तखतसिंह ऐहिक सुखों से कभी इतना विमुख हुआ जैसा कि प्रशस्तिकार ने उल्लेख किया है। तखतसिंह कभी संस्कृत भाषा का कवि या पण्डित रहा हो ऐसा भी मारवाड़ के किसी दस्तावेज से विदित नहीं होता; अतः निष्कर्षरूपेण यही कहा जा सकता है कि आलोच्य-चम्पू काव्य निःस्सन्देह एक उच्च कोटि की साहित्यिक रचना है जिसकी रसात्मकता के सहधर्मी अलंकार, छन्द, गुण एवं रीति आदि का परिपाक इस काव्य में भलीभाँति हुआ है।

तखतविलास चम्पू की रचना अभी हुई ही थी कि उसके कोई 25-30 वर्ष बाद संस्कृत के उद्भट् विद्वान् प. नित्यानन्दजी शास्त्री का वाग्विलास पल्लवित होने लगा। उनकी रामचरित्र कथा और विशेषकर हनुमद्दूत-काव्य मेघदूत के वर्णन को फिर से जीवित करने लगा। पीढ़ी और परम्परा से परम्परा विछिन्न नहीं होती। जहाँ महाकवि हरिराय ने अपने "जरासंधवध महाकाव्य" द्वारा मरुधरा में महाकवि माघ का निरन्तर अस्तित्व सिद्ध किया, वहीं जगदीशचन्द्र आचार्य की कादम्बरी का बार-बार स्मरण कराने वाली—'मंदाकिनी' और उससे भी ललित 'मकरन्दिका' उपन्यास ने वास्तव में साहित्य-सरोवर के हंसों को मकरन्द का आस्वादन कराया। पं. गोपीकिशन व्यास का 'साम्ब संभवम्' अथवा श्रीराम दवे का 'भृत्याभृत्य' काव्य को इस बात का संकेत मानना चाहिये कि साहित्य सुधासिन्धु वास्तव में मरुधरा में सतत् प्रवाहित रहा है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

विश्व का आठवाँ आश्चर्य

नाहरसिंह जसोल

राव जोधा ने गहरी सूझ-बूझ तथा बाहुबल से अपने पैतृक राज्य मण्डोर व वहाँ के किले को पुनः हस्तगत तो कर लिया पर परिस्थितिवश वह वहाँ निश्चित नहीं रह सका। अस्तु राव जोधा अपने राज्य की राजधानी व किला कहीं अन्यत्र उपयुक्त स्थान पर स्थापित करने की उधेड़-बुन में सदैव व्यग्र रहता था। दैव संयोग से वह देवी स्वरूपा करणी माताजी (देशनोक) के सान्निध्य में पहुंचा और अपनी व्यथा कह सुनाई। भक्तवत्सला करणीजी ने राव जोधा के आत्मनिवेदन पर चिडियानाथ पहाड़ी चोटी पर स्वयं के कर-कमलों द्वारा मेहरानगढ़ (जोधपुर दुर्ग) का शिलान्यास सन् 1459 ई. में किया, जिसकी पुष्टि निम्नलिखित दोहे से होती है

पनरा सौ पनरोतरै, जेठ मास में जाण।
सुद ग्यारस शनिवार ने, मंडियो गढ़ मेहराण।।

ऐसी जनश्रुति है कि जिस पहाड़ी पर मेहरानगढ़ किले का शिलान्यास किया गया था, वहाँ चिड़ियानाथ जी योगी तपस्या किया करते थे। राव जोधा ने योगीराज से निवेदन किया कि, "मैं यहाँ नया किला बनवाना चाहता हूं, अतः आप कहीं अन्यत्र पधार जायें।" चिड़ियानाथ जी ने जोधा से पूछा कि, "मेरे यहाँ रहने से तुम्हें कहाँ आपत्ति है?" तब राव जोधा ने अपने पूर्व मन्तव्य का स्पष्टीकरण देते हुए पुनः कहा कि, "आपके आश्रम के कारण मेरा गढ़ 'बांका' (टेढ़ा) हो जायेगा।" चिड़िया-नाथ जी ने मनोयोग से कहा कि, "भई! गढ़ तो बंका ही भला।" चिड़ियानाथ जी के ये बचन राव जोधा के लिए "Blessings in Disguise?" तुल्य सिद्ध हुए। पर इसके उपरान्त जोधा की हठधर्मिता के कारण आखिर चिड़ियानाथ जी अपनी धूणी के अंगारे झोली में भरकर वहां से सदा के लिए विदा हो गये। राव जोधा व अन्य भक्तजनों की अनुनय-विनय के उपरांत उन्होंने पालासनी गांव में अपना आश्रम पुनः स्थापित किया।

मेहरानगढ़ की कुण्डली के अनुसार इसका नाम 'चिन्तामणि' है, पर आकार-प्रकार में इसकी मयूराकृति होने से इसे मयूर ध्वज भी कहा जाता था, जो अब मेहरानगढ़ या जोधपुर के किले के नाम से जन-विख्यात है। मिहिर शब्द का अर्थ सूर्य से है तथा जोधपुर के शासक सूर्यवंशी थे, अतः 'सूर्यवंशियों का गढ़' नाम से अधिक लोकप्रिय हुआ।

मेहरानगढ़ आस-पास के समतल धरातल से करीब 400 फिट ऊँची एकाकी पहाड़ी पर अपने जीवन के संघर्ष व गौरवमय 530 वर्षों के साथ ज्यों-का-त्यों खड़ा अपना मौन सन्देश हर आगन्तुक को सुना रहा है, "ओह! मेरे प्रिय वत्स सैलानी!

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मुझे विस्फारित और कौतुहल भरी दृष्टि से क्यों निहार रहे हो ? मेरी जर्जर अवस्था में भी तुम्हें अचम्भा और नाज है, तब अगर तुम मेरे भरे-पूरे यौवन को देख पाते तो तुम्हारा क्या हाल होता ? पर दरअसल तुम्हें अपने आप पर भरोसा नहीं है और न भरोसा है तुम्हें अपने पूर्वजों पर। तुमने तकनीकी व वैज्ञानिक युग में जन्म लिया है। अतः कला व संस्कृति में तुम क्या जानो ? जीवन में शाश्वत मूल्यों का तुम्हारे पास कोई खाता नहीं। तुम सही मानो, यह सब कुछ सामन्ती युग के फौलादी महापुरुषों के करिश्मों की जीती-जागती तस्वीर है। मेरे स्वामियों ने उन निर्माता शिल्पियों में देवत्व जगाया और उनके हाथों ने मेरे प्रत्येक पत्थर में देवत्व को मूर्त कर दिया। बस ! मेरी सुकीर्ति, सुन्दरता, सुदृढ़ता, विशालकायता व अखण्डता का यही रहस्य है। मेरी आत्म-व्यथा की थाह लेने एक दिन एक युगपुरुष भी आ पहुंचा, जिसने मेरे मर्म को समझा और उसने कहा था, "इन्हें (दुर्ग को) देखने के लिये जिन आँखों, सुनने के लिये जिन कानों, समझने के लिये जिस हृदय और चिन्तन-मनन के लिये जिस मस्तिष्क की आवश्यकता होती है, कदाचित् ये सब हम लोगों के पास नहीं हैं।"[1]

स्थापत्य कला की दृष्टि से मेहरानगढ़ भारत में ही नहीं वरन् पूरे विश्व में शिरोमणि गढ़ कहा गया है—

सबहि गढ़ां शिरोमणि, अति ही ऊंचौ जाण।
अनड़ पहाड़ा ऊपरो, जबरो गढ़ जोधाण॥

कला-सम्पदा व सांस्कृतिक धरोहर की दृष्टि से मेहरानगढ़ का मोटे तौर पर निम्नलिखित पांच बिन्दुओं के अधीन विवरण प्रस्तुत किया जा सकता है—

1. गढ़ का सामरिक महत्व

मध्ययुग में राजस्थान के राव, राजा-महाराजाओं के लिए सुदृढ़ व दुर्गम गढ़ों की प्राथमिक आवश्यकता हो गई थी। कारण कि दिल्ली की केन्द्रीय सत्ता पर विदेशी आक्रान्ताओं का आधिपत्य हो चुका था। उनके लगातार आक्रमणों के सामने एकाकी प्रादेशिक शक्तियों ने सुरक्षात्मक नीति अपनाकर सुदृढ़ किलों का निर्माण कर आक्रान्ताओं से लोहा लेना सर्वोपरि हित समझा। इसलिए मेहरानगढ़ निर्माण के लिए प्रथम तो ऊंची तथा एकाकी पहाड़ी पर स्थल का चयन किया। फिर प्राचीरों के नीचे का भाग काटकर ऐसा तराशा गया कि इस पर सीधा चढ़ना असम्भव-सा है। गढ़ की प्राचीरें 20 फिट से 180 फिट ऊंची बनाई हैं। इन कारणों से गढ़ आक्रमणकारियों के लिये सदैव दुर्गम सिद्ध हुआ।

गढ़ की काफी ऊंचाई होने से वहाँ खड़ा द्वार-रक्षक पूर्व, दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम की ओर से आने वाली दुश्मन सेना को कई मीलों से देख सकता था। गढ़ के उत्तर व उत्तर-पश्चिम दिशाओं में पहाड़ी भाग स्थित होने से दुश्मन का उस दिशा से पहुंचना कठिन था। गढ़ की ऊंचाई का दूसरा बड़ा सामरिक महत्व यह रहा कि

---

1 कु. आयुवानसिंह, राजपूत और भविष्य, पृ. 3

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

साधारण मार करने वाले तीर, बन्दूक या तोपों के गोले की मार से यह सदैव बाहर रह जाता था। गढ़ के पश्चिम की तलहटी में नये नगर का निर्माण व उसकी सन्निकट गढ़ से आसानी से सुरक्षा कर पाना राव जोधा के लिए इस स्थल के चयन में सहायक कारक रहे होंगे। सभी दृष्टियों से मेहरानगढ़ की एक आदर्श सामरिक स्थिति सिद्ध होती है।

प्रारम्भ से इस किले का प्रवेश द्वार पश्चिम की ओर पुराने नगराभिमुख, पश्चिम दिशा की ओर फतहपोल की ओर था जो सामरिक दृष्टि से बहुत सुदृढ़ बनी हुई है। वर्तमान मुख्य प्रवेश द्वार, जो जयपोल कहलाता है, महाराजा मानसिंहजी ने जयपुर के महाराजा जगतसिंहजी पर विजय के उपलक्ष में सन् 1809 ई. में बनवाया था। इसके दरवाजे महाराजा अभयसिंहजी द्वारा अहमदाबाद से जीत कर लाए गये थे। ये कुछ वर्षों तक निमाज ठाकुर के वहाँ रहे जिन्हें महाराजा मानसिंहजी ने उनसे पुनः मंगवाकर इस द्वार पर लगाये। इस द्वार में प्रवेश करते ही बायें हाथ की ओर सोढ़ा कीरतसिंह की छतरी है जो जसोल रावल का प्रधान था। वह वीर जयपुर की फौजों के समक्ष बड़ी बहादुरी से लड़कर काम आया। उसकी वीरता पर प्रसन्न होकर महाराजा मानसिंह ने यह दोहा श्रद्धा सुमन स्वरूप अर्पित कर दिया—

तन झड़ तेगा तीख, पाड़ घणा भड़ पोढ़ियो।
किरतो नग क्रोड़ीक, जड़ियो गढ़ जोधाणरे।।

फतेहपोल से लेकर गढ़ के महलों तक के टेढ़े-मेढ़े मार्ग में कुल छः द्वार हैं—गोपाल पोल, भैरूं पोल, इमरती पोल, लोहा पोल और सूरज पोल के नाम से पुकारी जाती हैं। इन प्रवेश द्वारों (पोळों) का क्रम इस तरह संकड़ा व घुमावदार निश्चित किया गया कि दुश्मन आसानी से किले के भीतर घुस न सके तथा उन पर कपट से तीर, गोलियां, शिलायें व गर्म तेल आदि का प्रहार न किया जा सके।

मेहरानगढ़ के लम्बे इतिहास काल में यह तीन बार आक्रान्ताओं के अधीन रहा। प्रथम मालदेव के समय शेरशाह द्वारा; दूसरी बार मोटा राजा उदयसिंह के समय अकबर द्वारा और तीसरी बार महाराजा अजीतसिंहजी के बाल्यकाल में औरंगजेब के द्वारा। औरंगजेब के कब्जे की अवधि काफी लम्बी रही। इसकी स्वतन्त्रता के लिए वीर-शिरोमणि दुर्गादास को दिल्ली सल्तनत से करीब 30 वर्षों तक अथक संघर्ष करना पड़ा। उसकी स्वामिभक्ति, त्याग और सूझ-बूझ से यह गढ़ और जोधपुर का राज्य महाराजा अजीतसिंहजी को पुनः प्राप्त हो सका। कहते हैं कि इस लम्बी अवधि की काल रात्रि के पश्चात् वीरवर दुर्गादास, महाराजा अजीतसिंहजी और उनके अनुचरों ने गढ में प्रवेश किया तो इसे गंगा जल से शुद्ध किया व साथ ही उन्होंने अपने साफों (पागों) से गढ के कंगुरों को पोंछा। इस घटना से सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि उन लोगों का गढ़ के कण-कण से कितना आत्मिक लगाव था। गढ़ को इतने लम्बे वर्षों तक स्वतंत्र रखने का श्रेय यहां पीढ़ी-दर-पीढ़ी हुए रण-बांकुरों को ही जाता है। क्योंकि—

पतली भींत किलैह, मांयज सांवत सूरमा ।
भेळी नांह भिळैह, रावत ऊभां राजिया ।।

अन्यथा आप जानते हैं कि इस सुदृढ़ किले का क्या हाल होता—

जाड़ी किले सफील, मांयज नर निबळा हुवे ।
ढूंढो ढहतां ढील, रती न लागै राजिया ।।

2. बेजोड़ वास्तुकला केन्द्र

वास्तुकला की दृष्टि से मेहरानगढ़ विश्व में एक अनूठा व बेजोड़ गढ़ है । प्रत्येक दर्शक के लिये विस्मयजनक इसकी वास्तुकला ही तो है । मध्ययुगीन वास्तुकला के सीमित साधनों व वैज्ञानिक उपकरणों के अभाव में बहुमंजिले महलों, ऊँची बुर्जों, प्राचीरों तथा जाली-झरोखों का काम तो इतना बारीक है कि कई बार दर्शक गाइड से पूछ बैठते हैं कि, "यह कार्य लकड़ी पर है या पत्थर पर ।" दूसरी खासियत यह है कि जाली की एक डिजाइन गढ़ में दूसरी जगह नहीं मिलेगी और इस प्रकार जालियों की करीब 400 सौ डिजाइनें पहिचानी गई हैं । महलों में रोशनी व हवा का पूरा ध्यान रखा गया है । गर्मी में इतने ठण्डे कि वहाँ पंखे की आवश्यकता महसूस नहीं होती । महलों के प्लास्टर में कोडी का काम किया हुआ है, जो संगमरमर की तरह वर्षों उपरान्त भी नवीन प्रतीत होता है । गढ़ में समय-समय पर राजाओं द्वारा बेमिसाल महलों का निर्माण करवाया गया, जिनमें खबका महल, मोती महल, फूल महल, तख़्त विलास, चोकेलाव रंग महल आदि महल उत्तर मध्यकालीन हिन्दु स्थापत्य कला के उत्कृष्ट नमूने हैं ।

गढ़ की दर्शक पुस्तिका के अवलोकन करने से स्पष्ट हो जाता है कि गढ़ की वास्तुकला को देखकर हर दर्शक मंत्रमुग्ध हो जाता है । वह इसके अमर शिल्पियों तथा इसके संरक्षकों की भूरि-भूरि प्रशंसा किये बिना जा नहीं सकता । उनमें से कुछ एक सम्मतियां ही यहां देना पर्याप्त होगा—

"....इस दुर्ग में आने का सुअवसर प्राप्त हुआ । दुर्ग में प्रदर्शित अमूल्य तथा दुर्लभ वस्तुओं तथा दुर्ग की शिल्प कला से राजस्थान के महान् अतीत गौरवशाली इतिहास की झलक मिलती है । हम चाहेंगे कि इस धरोहर की रक्षा की जाए ।"

चिन्तामणि जेना
संसद सदस्य
30-10-'87

एन. तोम्बीसिंह
संसद सदस्य

"With great interest we have seen the wonder of Indian culture. Tremendous telants and capability of Indian people. This visit to Jodhpur Fort is unforgetable to us. It has impressed us very much. We wish our Indian friends peace and happiness keeping and increasing great culture, wealth which is created by the talented peoples."

Soviet Specialists
George, Mikel, Jackof

23-1-'87

Digitization by Hindu Heritage Foundation of America. HHFA(USA)

"The castle is a monument which testifies how much can achieve man how great he is."

Minister for Water Resources, Latian
SSR, USSR

"You have preserved and restored an important part of India's rich cultural history and should be congratulated by all who are priviledged to experience this magnificent place."

Walter Thomas
1986, Fort Foundation
New York

"Exhibits are exquisite and the display par excellence. One of the best museum I have come across. My congratulations to the young Maharaja and his dedicated team."

Vijaya Raje Scindia
31-7-84 of Gwalior

सन् 1928 में लार्ड इरविन का जोधपुर आगमन हुआ। उसने गढ़ को देखने के बाद अपने भाषण में जो विचार व्यक्त किये, वे भी उद्धृत करने योग्य हैं — "....Here in Jodhpur the rose-red Fort stands, a romantic and picturesque sentinel over plains of Marwar. Its massive architecture reflects the stubborn spirit of its builder and every stone speaks of the brave deeds of your Highness' ancestors in the wars which fill so many pages in the history of this country side...."[1]

3. चित्रकला

चित्रकला की दृष्टि से मेहरानगढ़ एक अतिमहत्वपूर्ण दर्शनीय स्थल है। यहाँ सतरहवीं सदी और उसके बाद में बने महलों में जोधपुर शैली के भित्ति चित्रण का कार्य बड़ा ही मनोहारी है। इनमें फूल महल, तखत निवास व चोकेलाव महलों के भित्ति चित्र प्रमुख हैं। महलों की भीतरी दीवारों पर विविध विषयों के चित्र हैं, जिनमें धार्मिक, लोककथाओं, दरबार, शिकार, संगीत, बारहमासा आदि विषयक चित्र उल्लेखनीय हैं। करीब 250-300 वर्ष पूर्व बने ये भित्ति चित्र आज भी रंग में इतने गहरे हैं मानो इनको अभी-अभी बनाया गया है। जोधपुर भित्ति-चित्र शैली के ये उत्कृष्ट नमूने सभी दर्शकों के लिए एक आकर्षण का विषय हैं। इनके अतिरिक्त 'उम्मेद विलास हिन्दुस्तानी चित्र कक्ष' में जोधपुर, जैसलमेर, बून्दी, मेवाड़ी, बीकानेरी व मुगल शैलियों के चित्र भी प्रदर्शित किये हुए हैं। इनमें अधिकांश जोधपुर शैली के चित्र हैं, जो चित्रकला के अनुपम उदाहरण हैं।

---

1 चांद (पत्रिका), वर्ष 8, खण्ड 1, नवम्बर 1929, पृ. 18-19

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America: HHFA(USA)

4 मेहरानगढ़ संग्रहालय

जोधपुर राजघराने द्वारा पीढ़ियों से संचित व सुरक्षित रखी हुई विविध कलाकृतियों की वस्तुओं को सुव्यवस्थित ढंग से रखकर एक संग्रहालय का रूप दिया गया है ताकि वर्तमान व भावी पीढ़ियां इस अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर को देखकर कुछ शिक्षा ग्रहण कर सके। यह वर्तमान महाराजा श्री गजसिंहजी की प्रखर बुद्धि एवं दूरदृष्टि का परिचायक है। इस संग्रहालय में विविध अस्त्र-शस्त्र, शाही पोशाकें, हाथियों के होदे, पालकियां, जोधपुर शैली के चित्र, लोकवाद्य, पालने, पगड़ियां-साफे आदि प्रदर्शित किये गये हैं।

गढ़ में कलात्मक सुन्दर तम्बुओं का जो संग्रह है, विश्व में अन्यत्र दुर्लभ है। अमेरिका में आयोजित 'भारत महोत्सव' के अवसर पर सतरहवीं सदी में निर्मित यहाँ का 'लालडेरा' तम्बू प्रदर्शित किया था जिसकी विश्व भर के पर्यटकों व कला-पारखियों ने खूब सराहना की।

5 साहित्य सम्पदा का केन्द्र

मेहरानगढ़ में प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों और बहियों का एक अनमोल खजाना है जो 'महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश' के नाम से सुविख्यात है। इसमें लगभग पाँच हजार अमोलक हस्तलिखित ग्रंथ हैं जिनमें से तीन हजार संस्कृत भाषा के और शेष दो हजार डिंगल भाषा के हैं। प्रमुख रूप से ये ग्रंथ काव्य, इतिहास, ज्योतिष, नाटक, बात-ख्यात, वंशावली, नीति, पुराण, योग, आयुर्वेद, जैनमत, बल्लभ सम्प्रदाय, नाथमत, वेदान्त, शकुन शास्त्र आदि विषयों के हैं। देश-विदेश के कई शोधकर्त्ता इस संग्रह से शैक्षणिक लाभ पा रहे हैं।

मेहरानगढ़ के सम्बन्ध में मैं सार रूपेण यह कहना चाहूँगा कि करीब सवा पाँच शताब्दियों के विगत गौरवपूर्ण सुनहरे इतिहास, उसकी बेजोड़ वास्तुकला, संग्रहालय, दुर्लभ 'पुस्तक प्रकाश' आदि को देखकर भाव-विभोर होने वाली श्रीमती जैकलिन कैनेडी (परित्यक्ता) ने मेहरानगढ़ को विश्व का आठवां आश्चर्य कहा है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं है। गढ़ की दर्शन पुस्तिका में उसने 17 जनवरी '84 को लिखा था—I have just seen the eighth wonder of the world. मेरी धारणा है कि जोधपुर की विश्वमानचित्र पर दिनों-दिन बढ़ती हुई लोकप्रियता श्रीमती कैनेडी की उक्त सम्मति को और परिपक्व करेगी। मारवाड़ की कला-संस्कृति व इतिहास के इस हृदय स्थल—मेहरानगढ़—पर प्रत्येक भारतवासी को गौरव की अनुभूति होना स्वाभाविक है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मारवाड़ के लोकवाद्य

नारायणसिंह सांदू

मानव जीवन संगीत से सर्वतोभावेन सम्पृक्त है। यदि संगीत का सहारा न होता तो बहुत सम्भव है कि मनुष्य आज की इस विकसित वैज्ञानिकता के युग तक नहीं पहुँच सकता क्योंकि पग-पग पर उपस्थित होने वाले विषादों एवं विपदाओं के कारण उसका उन्नत एवं प्रशस्त मार्ग अवरुद्ध हो गया होता। विषण्ण हृदय को आह्लादित एवं निराश मन को प्रतिपल प्रफुल्लित रखने वाले संगीत का अविभाज्य अंग है विविध वाद्य यंत्र। इन वाद्यों ने संगीत की प्रभावोत्पादकता को परिवर्धित किया और उसकी सांगीतिकता में चार चाँद लगाये हैं। भाँति-भाँति के वाद्य यंत्रों के सहयोगी स्वर से संगीत की आकर्षण शक्ति भी विवर्द्धित हो जाती है।

भारतीय संगीत में मारवाड़ के विविध पारम्परिक लोकवाद्य अपना अनूठा स्थान रखते हैं। मधुरता, सरसता एवं विविधता के कारण आज इन वाद्यों ने राष्ट्रीय ही नहीं अपितु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान कायम की है। कोई भी संगीत का राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय समारोह या महोत्सव ऐसा नहीं हुआ, जिसमें मरु प्रदेश के इन लोकवाद्यों को प्रतिनिधित्व न मिला हो। इतना ही नहीं, राजस्थान भारतवर्ष का एक मात्र ऐसा प्रदेश है, जहाँ के लोकवादकों को विदेशों में कला प्रदर्शन का सर्वाधिक सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इससे इस बात का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि सांगीतिक दृष्टि से ये लोकवाद्य कितने प्रभावी हैं। आज अमेरिका, फ्रांस, जापान, रूस जैसे पाश्चात्य देशों में भी वहाँ के लोग इन वाद्यों को सुनने के लिए लालायित रहते हैं। राजस्थान को ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारतवर्ष को इन लोकवाद्यों एवं वादकों पर गर्व है।

मारवाड़ी लोकवाद्यों को संगीत की दृष्टि से पाँच भागों में विभाजित किया जा सकता है, यथा—तत, वितत, सुषिर, अनुबध्व व घन। ताल वाद्यों में दो प्रकार के वाद्य आते हैं—अनुबध्व व घन। अनुबध्व में चमड़े से मढे वे वाद्य आते हैं जो डण्डे के आघात से बजते हैं। इनमें नगाड़ा, धूंसा, ढोल, बंब, चंग आदि मुख्य हैं। लोहा, पीतल व कांसे के बने वाद्यों को घन वाद्य कहा जाता है, जिनमें झांझ, मंजीरा, करताल, मोरचंग, श्रीमंडळ आदि प्रमुख हैं। तार के वाद्यों के भी दो भेद हैं—तत एवं वितत। तत वाद्यों में तार वाले वे साज आते हैं जो अंगुलियों या मिजराब से बजते हैं। इनमें जंतर, रवाज, सुरमंडल, चौतारा व इकतारा है। वितत में गज से बजने वाले वाद्य सारंगी, सुरिंदा, रावणहत्था, चिकारा आदि प्रमुख हैं। सुषिर वाद्यों में फूंक से बजने वाले वाद्य, यथा—सतारा, मुरली, अलगोजा, बांकिया, नागफणी आदि।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

उपरोक्त वाद्यों का संक्षिप्त परिचयात्मक विवरण इस प्रकार है—

(क) ताल वाद्य

राजस्थान के ताल वाद्यों में अनुबध्व वाद्यों की बनावट तीन प्रकार की है यथा— (i) वे वाद्य जिनके एक तरफ खाल मढी जाती है तथा दूसरी ओर का भाग खुला रहता है। इन वाद्यों में खंजरी, चंग, डफ आदि प्रमुख हैं। (ii) वे वाद्य जिनका घेरा लकड़ी या लोहे की चादर का बना होता है एवं इनके दायें-बायें भाग खाल से मढे जाते हैं। जैसे मादळ, ढोल, डेरू, डमरू आदि। (iii) वे वाद्य जिनका ऊपरी भाग खाल से मढा जाता है तथा कटोरीनुमा नीचे का भाग बंद रहता है। इनमें नगाड़ा, धूंसौ, दमामा, माटा आदि वाद्य आते हैं। इन वाद्यों की बनावट व वादन पद्धति इस प्रकार है—

(1) **कमट, टामक बंब**—इसका आकार लोहे की बड़ी कड़ाही जैसा होता है, जो लोहे की पट्टियों को जोड़कर बनाया जाता है। इसका ऊपरी भाग भैंस के चमड़े से मढा जाता है। खाल को चमड़े की तांतों से खींचकर पेंदे में लगी गोल गिड़गिड़ी (लोहे का गोल घेरा) से कसा जाता है। अनुबध्व व घन वाद्यों में यह सबसे बड़ा व भारी होता है। प्राचीनकाल में रणक्षेत्र एवं दुर्ग की प्राचीर पर बजाया जाता था। इसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिए लकड़ी के छोटे गाडुलिये का प्रयोग किया जाता है। बजाने के लिए वादक लकड़ी के दो डंडों का प्रयोग करते हैं। वर्तमान में इसका प्रचलन अब लगभग उठ गया है, पर यह वाद्य भरतपुर, अलवर व सवाई माधोपुर क्षेत्र में होलिकोत्सव पर बजाया जाता है। इसके वादन के साथ गायन व नृत्य दोनों होते हैं।

(2) **कुंडी**—यह आदिवासी जनजाति का प्रिय वाद्य है, जो पाली, सिरोही एवं मेवाड़ के आदिवासी क्षेत्र में बजाया जाता है। मिट्टी के छोटे पात्र के ऊपरी भाग पर बकरे की खाल मढी रहती है। इसका ऊपरी भाग चार-छः इंच तक का होता है। कुंडी के ऊपरी भाग पर एक रस्सी या चमड़े की पट्टी लगी रहती है, जिसे वादक गले में डाल कर खड़ा होकर बजाता है। वादन के लिए लकड़ी के दो छोटे गुटकों का उपयोग किया जाता है। आदिवासी नृत्यों के साथ इसका वादन होता है।

(3) **खंजरी**—लकड़ी का छोटा-सा घेरा जिसके एक ओर खाल मढी रहती है। एक हाथ में घेरा तथा दूसरे हाथ से वादन किया जाता है। केवल अंगुलियों और हथेली का भाग काम में लिया जाता है। घेरे पर मढी खाल गोह या बकरी की होती है। कालबेलिया जोगी गायन व नृत्य में इसका प्रयोग करते हैं। वाद्य के घेरे बड़े-छोटे भी होते हैं। घेरे पर झांझों को भी लगा लिया जाता है।

(4) **चंग**—एक लकड़ी का गोल घेरा, जो भेड़ या बकरी की खाल से मढा जाता है। एक हाथ में घेरे को थामा जाता है और दूसरे खुले हाथ से बजाया जाता है। थामने वाले हाथ का प्रयोग भी वादन में होता है। एक हाथ से घेरे के किनारे पर तथा दूसरे से मध्य भाग में आघात किया जाता है। यह वाद्य होलिकोत्सव पर बजाया जाता है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

(5) **डफ**—लोहे के गोल घेरे पर बकरे की खाल चढ़ी रहती है। यह खाल घेरे पर मढी नहीं जाती बल्कि चमड़े की बद्धियों से नीचे की तरफ कसी रहती है। इसका वादन चंग की तरह ही होता है। अंतर केवल इतना होता है कि चमड़े की बद्धियों को ढील व तनाव देकर स्वर ऊंचा नीचा किया जा सकता है।

(6) **डमरू**—यह मुख्य रूप से मदारियों व जादूगरों द्वारा बजाया जाता है। डमरू के मध्य भाग में डोरी बंधी रहती है, जिसके दोनों किनारों पर पत्थर के टुकड़े बंधे रहते हैं। कलाई के संचालन से ये टुकडे डमरू के दोनों ओर मढी खाल पर आघात करते हैं। अच्छे वादक अनेक लय रूपों का सृजन भी कर सकते हैं।

(7) **डेरू**--यह बड़ा डमरू जैसा वाद्य है। इसके दोनों ओर चमड़ा मढा रहता है जो खोल से काफी ऊपर मेंडल से जुड़ा होता है। यह एक पतली और मुड़ी हुई लकड़ी से बजाया जाता है। इस पर एक ही हाथ से आघात किया जाता है तथा दूसरे हाथ से डोरी को दबा कर खाल को कसा या ढीला किया जाता है। इस वाद्य का चूरू, बीकानेर व नागौर में अधिक प्रचलन है। मुख्य रूप से माताजी, भैरूजी व गोगाजो की स्तुति इस पर गायी जाती है।

(8) **ढाक**—यह भी डमरू व डेरू मे मिलता-जुलता वाद्य है लेकिन गोलाई व लम्बाई डेरू से अधिक होती है। मुख्य रूप से यह वाद्य गूजर जाति द्वारा गोठां (बगड़ावतों की लोककथा) गाते समय बजाया जाता है। झालावाड़, कोटा व बूंदी क्षेत्र में इसका प्रचलन अधिक है। वादक बैठकर दोनों पैरों के पंजों पर रख कर एक भाग पतली डंडी द्वारा तथा दूसरा भाग हाथ की थाप से बजाते हैं।

(9) **ढोल**—इसका घेरा लोहे की सीधी व पतली परतों को आपस में जोड़ कर बनाया जाता है। परतों (पट्टियों) को आपस में जोड़ने के लिए लोहे व तांबे की कीलें एक के बाद एक लगायी जाती हैं। घेरे के दोनों मुंह बकरे की खाल से मढे जाते हैं। मढे हुए चमड़े को कसने के लिए डोरी का प्रयोग किया जाता है। ढोल को चढाने व उतारने के लिए डोरी में लोहे या पीतल के छल्ले लगे रहते हैं। ढोल का नर भाग डंडे से तथा मादा भाग हाथ से बजाया जाता है। यह वाद्य सम्पूर्ण राजस्थान में त्यौहार व मांगलिक अवसर पर बजाया जाता है। राजस्थान में ढोली, मिरासी, मेघवाल, सरगरा आदि जातियों के लोग ढोल बजाने का कार्य करते हैं। ढोल विभिन्न अवसरों पर अलग अलग ढंग से बजता है यथा—कटक या बाहरू ढोल, घोड़चिड़ी रौ ढोल, खुड़का रौ ढोल आदि।

(10) **ढोलक**—यह आम, बीजा, शीशम, सागौन और नीम की लकड़ी से बनती है। लकड़ी को पोला करके दोनों मुखों पर बकरे की खाल डोरियों से कसी रहती है। डोरी में छल्ले रहते हैं जो ढोलक का स्वर मिलाने में काम आते हैं। यह गायन व नृत्य के साथ बजायी जाती है। एक प्रमुख लय वाद्य है।

(11) **तासा**—तासा लोहे या मिट्टी की परात के आकार का होता है। इस पर बकरे की खाल मढी जाती है जो चमड़े की पट्टियों से कसी रहती है। गले में लटका कर दो पतली लकड़ी की चपटियों से बजाया जाता है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

(12) **धूंसो**—इसका घेरा आम व फरास की लकड़ी से बनता है। प्राचीन समय में रणक्षेत्र के वाद्य समूह में इसका वादन किया जाता था। कहीं कहीं बड़े मन्दिरों में भी इसका वादन होता है। इसका ऊपरी भाग भैंस की खाल से मढा जाता है। इसको लकड़ी के दो बड़े डंडों से बजाया जाता है।

(13) **नगाड़ा**— समान आकार के दो लोहे के बड़े कटोरे जिनका ऊपरी भाग भैंस की खाल से मढा जाता है। प्राचीन काल में घोड़े, हाथी या ऊंट पर रख कर राजा की सवारी के आगे बजाया जाता था। मुख्य रूप से मन्दिरों में बजने वाला वाद्य। इन पर लकड़ी के दो डंडों से आघात करके ध्वनि उत्पन्न करते हैं। कुछ नागाड़ों के कटोरे तांबा धातु के बने होते हैं।

(14) **नटों की ढोलक**—बेलनाकृत काष्ठ की खोल पर मढा हुआ वाद्य। नर व मादा की पुडियों को दो मोटे डंडों से आघातित किया जाता है। कभी-कभी मादा के लिये हाथ तथा नर हेतु डंडे का प्रयोग किया जाता है जो वक्रता लिये होता है। इसके साथ मुख्यतया बांकिया का वादन भी होता है।

(15) **पाबूजी के माटे**—मिट्टी के दो बड़े मटकों के मुँह पर चमड़ा चढाया जाता है। चमड़े को मटकों के मुख की किनारी से चिपका कर ऊपर डोरी बांध दी जाती है। दोनों माटों को दो अलग-अलग व्यक्ति बजाते हैं। दोनों माटों में एक नर व एक मादा होता है तदनुसार दोनों के स्वर अलग होते हैं। माटों पर पाबूजी व माताजी के पवाड़े गाये जाते हैं। इनका वाद हथेली व अंगुलियों से किया जाता है। मुख्य रूप से यह वाद्य जोधपुर, बीकानेर व नागौर क्षेत्र में बजाया जाता है।

(16) **भीलों की मादळ**—मिट्टी का बेलनाकार घेरा जो कुम्हारों द्वारा बनाया जाता है। घेरे के दोनों मुखों पर हिरण या बकरे की खाल चढी रहती है। खाल को घेरे पर चिपका कर डोरी से कस दी जाती है, इसमें छल्ले नहीं लगते। इसका एक भाग हाथ से व दूसरा भाग डंडे से बजाया जाता है। यह वाद्य भील व गरासिया आदिवासी जातियों द्वारा गायन, नृत्य व गवरी लोक नाट्य के साथ बजाया जाता है। पाली व उदयपुर क्षेत्र में सर्वाधिक प्रचलित वाद्य।

(17) **रावळों की मादल**—काष्ठ की खोल पर मढा हुआ वाद्य। राजस्थानी लोकवाद्यों में यही एक ऐसा वाद्य है, जिस पर पखावज की भाँति गट्टों का प्रयोग होता है। दोनों ओर की चमड़े की पुड़ियों पर आटा लगाकर, स्वर मिलाया जाता है। नर व मादा भाग हाथ से बजाये जाते हैं। यह वाद्य केवल चारणों के रावळ (याचक) के पास उपलब्ध है।

घन वाद्य

यह वाद्य प्राय: ताल के लिए प्रयोग किये जाते हैं। प्रमुख वाद्यों की बनावट व आकार-प्रकार इस प्रकार है—

(1) **करताल**—आयताकार लकड़ी के बीच में झांझों को लगाया जाता है। हाथ के अंगूठे में एक तथा अन्य अंगुलियों के साथ पकड़ लिया जाता है और इन्हें परस्पर आघातित करके लय रूपों में बजाया जाता है। मुख्य रूप से भक्ति एवं

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

धार्मिक संगीत में प्रयुक्त होती है।

(2) **खड़ताल**—शीशम, रोहिड़ा या खैर की लकड़ी के चार अंगुल चौड़े, दस अंगुल लम्बे चिकने व पतले चार टुकड़े। यह दोनों हाथों से बजायी जाती है तथा एक हाथ में दो टुकड़े रहते हैं। इसके वादन से कट-कट की ध्वनि निकलती है। लयात्मक घन वाद्य जो मुख्य रूप से जोधपुर, बाड़मेर व जैसलमेर क्षेत्र में मांगणयार व लंगा जाति के लोग बजाते हैं। श्री सिद्दीक खां मांगणयार खड़ताल का अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कलाकार है।

(3) **घुराळियो**--बांस की आठ-दस अंगुल लंबी व पतली खपच्ची का बना वाद्य। बनाते समय बांस की खपच्ची को सावधानीपूर्वक छील कर बीच के पतले भाग से जीभी निकाली जाती है। जीभी के पिछले भाग पर धागा बंधा रहता है। जीभी को दांतों के बीच रखकर मुखरंध्र से वायु देते हुए दूसरे हाथ से धागे को तनाव व ढील (धीरे-धीरे झटकों) द्वारा ध्वनि उत्पन्न की जाती है। कालबेलिया व गरासिया जाति द्वारा बजाया जाने वाला वाद्य।

(4) **झांझ**-- कांसे, तांबे व जस्ते के मिश्रण से बने दो चक्राकार चपटे टुकड़ों के मध्य भाग में छेद होता है। मध्य भाग के गड्डे के छेद में डोरी लगी रहती है। डोरी में लगे कपड़े के गुटकों को हाथ में पकड़कर परस्पर आघातित करके वादन किया जाता है। गायन एवं नृत्य के साथ बजायी जाती है।

(5) **झालर**—यह मोटी घंटा धातु की गोल थाली-सी होती है। इसे डंडे से आघातित किया जाता है। यह आरती के समय मन्दिरों में बजायी जाती है।

(6) **मंजीरा**—दो छोटी गहरी गोल मिश्रित धातु की बनी पट्टियां। इनका मध्य भाग प्याली के आकार का होता है। मध्य भाग के गड्डे के छेद में डोरी लगी रहती है। यह दोनों हाथों से बजाये जाते हैं, एक हाथ में एक मंजीरा रहता है। परस्पर आघात करने पर ध्वनि निकलती है। मुख्य रूप से भक्ति एवं धार्मिक संगीत में प्रयुक्त किये जाते हैं। कामड़ जाति की महिलाएँ मंजीरों की ताल व लय के साथ तेरहताल जोड़ती है।

(7) **श्रीमंडळ**—कांसे के आठ या दस गोलाकार चपटे टुकड़े। रस्सी द्वारा यह टुकड़े अलग-अलग समानान्तर लकड़ी के स्टेण्ड पर बधे रहते हैं। श्रीमंडळ के सभी टुकड़े के स्वर अलग-अलग होते हैं। पतली लकड़ी की दो डंडी से आघात करके वादन किया जाता है। राजस्थानी लोकवाद्यों में इसे जलतरंग कहा जा सकता है।

(8) **मोरचंग**—लोहे के फ्रेम में पक्के लोहे की जीभी होती है। दांतों के बीच दबाकर, मुखरंध्र से वायु देते हुए जीभी को अंगुली से आघातित किया जाता है। वादन से लयात्मक स्वर निकलते हैं। चरवाहों, घुमक्कड़ों एव आदिवासियों में विशेष रूप से प्रचलित वाद्य।

(9) **भपंग**—तूंबे के पैंदे पर पतली खाल मढी रहती है। खाल के मध्य में छेद करके तांत का तार निकाला जाता है। तांत के ऊपरी सिरे पर लकड़ी का गुटका लगता है। तूंबे को बायीं बगल में दबा कर, तार को बायें हाथ से तनाव देते हुए

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

दाहिने हाथ की नखवी से प्रहार करने से लयात्मक ध्वनि निकलती है।

(10) **भैंरूजी के घुंघरू**--बड़े गोलाकार घुंघरू, जो चमड़े की पट्टी पर बंधे रहते हैं। यह पट्टी कमर पर बांधी जाती है। राजस्थान में इनका प्रयोग भैंरूजी के भोपों द्वारा होता है, जो कमर को हिलाकर इन घुंघरुओं से अनुरंजित ध्वनि निकालते हैं। साथ में गाते भी हैं।

(ख) सुषिर वाद्य

राजस्थान के सुषिर वाद्य काष्ठ व पीतल के बने होते हैं। जिनमें प्रमुख वाद्यों का परिचयात्मक विवरण इस प्रकार है—

(1) **अलगोजा**—बांस के दस-बारह अंगुल लंबे दो टुकड़े, जिनके निचले सिरे पर चार छेद होते हैं। दोनों बांसुरियों को मुँह में लेकर दोनों हाथों से बजाई जाती है, एक हाथ में एक-एक बांसुरी रहती है। दोनों बांसुरियों के तीन छेदों पर अंगुलियां रहती हैं। यह वाद्य चरवाहों द्वारा कोटा, बूंदी, भरतपुर व अलवर क्षेत्र में बजाया जाता है।

(2) **करणा**—पीतल का बना दस-बारह फुट लंबा वाद्य, जो प्राचीनकाल में विजय घोष में प्रयुक्त होता था। कुछ मन्दिरों में भी इसका वादन होता है। पिछले भाग से होंठ भिड़ाकर फूंक देने पर ध्वनि निकलती है। जोधपुर के मेहरानगढ़ संग्रहालय में रखा करणा वाद्य सर्वाधिक लंबा है।

(3) **तुरही**—पीतल का बना आठ-दस फुट लंबा वाद्य, जिसका मुख छोटा व आकृति नोंकदार होती है। होठ भिड़ाकर फूंक देने पर तीखी ध्वनि निकलती है। प्राचीनकाल में दुर्ग एवं युद्ध स्थलों में इसका वादन होता था।

(4) **नड़**—कगोर की लगभग एक मीटर लंबी पोली लकड़ी, जिसके निचले सिरे पर चार छेद होते हैं। इसका वादन काफी कठिन है। वादक लंबी सांस खींच कर फेंफड़ों में भरता है, बाद में नड़ में फूंक देने पर इसका वादन होता है। फूंक ठीक उसी प्रकार दी जाती है, जिस प्रकार कांच की शीशी बजायी जाती है। वादन के साथ गाना भी गाया जाता है। स्व. करणा भील नड़ का ख्याति प्राप्त वादक था। यह वाद्य जैसलमेर क्षेत्र में बजाया जाता है।

(5) **नागफणी**—सर्पाकार पीतल का सुषिर वाद्य। वाद्य के मुंह पर होठों द्वारा ताकत से फूंक देने पर वादन। इसमें से घोरात्मक ध्वनि निकलती है। साधुओं का एक धार्मिक वाद्य।

(6) **पूंगी/बीण**—तूंबे के निचले भाग में बांस या लकड़ी की दो जुड़ी हुई नलियां लगी रहती हैं। दोनों नलियों में सरकंडे की पत्ती की रीढ लगाई जाती है। तूंबे के ऊपरी सिरे को होठों के बीच रखकर फूंक द्वारा अनुध्वनित किया जाता है। कालबेलिया जोगियों द्वारा वादित यह वाद्य भी नकशासी (निरन्तर स्वांस) की प्रक्रिया से बजाया जाता है।

(8) **बांकिया**—पीतल का बना तुरही जैसा ही वाद्य, लेकिन इसका अग्र भाग गोल फाबेदार होता है। होठों के बीच रखकर फूंक देने पर तुड़-तुड़ की ध्वनि

Digitization by Hindu Heritage Foundation of America. HHFA(USA)

निकलती है। यह वाद्य मांगलिक पर्वों पर विशेष रूप से बजाया जाता है। इसमें स्वरों की संख्या सीमित होती है।

(9) **मशक**—एक बकरी की सम्पूर्ण खाल से बना वाद्य, जिसके दो तरफ छेद रहते हैं। एक छेद पर नली लगी होती है, वादक इसे मुँह में लेकर आवश्यकता अनुसार हवा भरता है। दूसरे भाग पर दस-बारह अगुल लंबी लकड़ी की चपटी नली होती है। नली के ऊपरी भाग पर छः तथा नीचे एक छेद होता है। बगल में लेकर धीरे-धीरे दबाने से इसका वादन होता है। अलवर, सवाई माधोपुर क्षेत्र में इस वाद्य का प्रचलन अधिक है। जोगी जाति के लोग इस पर भजन व कथा गाते हैं।

(10) **मुरला/मुरली**—दो नालियों को एक लंबित तूंबे में लगाकर नकसासी (लगातार स्वांस) द्वारा वादित। इसके तीन भेद—आगौर, मानसुरी और टांकी। छोटी व पतली तूंबी पर निर्मित टांकी मुरला या मुरली कहलाती है। सामान्य वादक जोगी परिवार तथा विशिष्ट वादक लंगा, मांगणयार एवं अन्य कुछ पेशेवर कलाकार। श्री करीम व अल्लादीन लंगा इस वाद्य के ख्याति प्राप्त कलाकार हैं। बाड़मेर व जैसलमेर क्षेत्र में इस वाद्य का अधिक प्रचलन है। इस पर देशी राग-रागनियों की विभिन्न धुनें बजायी जाती हैं।

(11) **सतारा**—दो बांसुरियों को एक साथ नकसासी (निरन्तर स्वांस प्रक्रिया) द्वारा बजाया जाता है। एक बांसुरी केवल श्रुति के लिए तथा दूसरी को स्वरात्मक रचना के लिए काम में लिया जाता है। केर की 'ऊब सूख' लकड़ी मे छेद करके तैयार किया जाता है। दोनों बांसुरियां एक-सी लम्बाई होने पर 'पावा जोड़ी' एक लंबी एक छोटी होने पर 'डोढ़ा जोड़ा' एवं अलगोजा नाम से भी जाना जाता है। चरवाहों का मुख्य वाद्य किन्तु पेशेवर वादकों ने भी अपना लिया है। यह पूर्ण संगीत वाद्य है, जो जोधपुर, बाड़मेर क्षेत्र में बजाया जाता है।

(12) **सिंगा**—सींग के आकार का बना पीतल की चद्दर का बना वाद्य। पिछले भाग से होंठ भिड़ा कर फूंक देने पर बजता है। वस्तुतः यह सींग की अनुक्रम पर बना वाद्य है, जिसका वादन जोगी व साधुओं द्वारा किया जाता है।

(13) **सुरणाई-सुरनाई**—दो रीड का यह वाद्य ऊपर से पतला व आगे से फाबेदार होता है। इसके अनेक रूप राजस्थान में मिलते हैं। आदिवासी क्षेत्र में लक्का व अन्य क्षेत्रों में नफीरी व टोटो भी होते हैं। इस पर खजूर या सरकंडे की पत्ती की रीढ लगाई जाती है जिसे होठों के बीच रख कर फूंक द्वारा अनुध्वनित किया जाता है। मांगलिक अवसरों पर वादित यह वाद्य भी नकसासी (निरन्तर स्वांस) की प्रक्रिया से बजाया जाता है। इसकी संगत नगारे के साथ भी होती है।

(ग) तार वाद्य—(तत्)

(1) **इकतारा**—यह वाद्य प्रायः साधु-संतों के हाथ में देखा जा सकता है। इसका प्रयोग ये लोग भजन गाते समय करते हैं। चपटे एवं गोलाकार तूंबे के मध्य भाग में छेद करके उसमें लगभग तीन फुट लम्बा बांस का डंडा लगा रहता है। बांस के डंडे के ऊपरी सिरे से दो इंच छोड़ कर नीचे की ओर एक खूंटी लगी होती है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America (HHFA(USA)

तूंबे का ऊपरी भाग पतली खाल से मंढा होता है। खाल के मध्य भाग में लगी घोड़ी के ऊपर से एक तार निकलता है जो डंडे के ऊपरी सिरे पर लगी खूंटी में कसा जाता है। अंगुलियों द्वारा आघात करने पर वादन।

(2) **चौतारा, तंदूरा, बीणा**—सम्पूर्ण राजस्थान में निर्गुणी भक्ति संगीत का श्रुति वलय वाद्य। इसमें पांच तार होते हैं। बडे आकार की तबली (कुंडी) जिसे पतली लकड़ी से ही आवृत किया जाता है। नाली लम्बी होती है। इसे मिजराफ पहन कर बांये से दांये झंकृत करके बजाया जाता है, झंकृत करने की क्रिया से लय व स्वर दोनों मिलते हैं। तबली पर हाथ से आघात करके भी लय रूप प्राप्त किया जाता है। मण्डली व संगत में बजने वाला वाद्य है। जो स्वर स्थान के निर्धारण का काम भी करता है।

(3) **जंतर**—नखवी से आघातित तत् वाद्य। बीणा के आकार के अनुसार दो तूंबों पर एक डांड होती है। डांड के अन्तिम भाग को लकड़ी के अंकुड़े के रूप में घोड़ी (ब्रिज) का आकार दिया जाता है। डांड के नीचे से मुट्ठी रूप में पकड़ कर तारों को नीचे से आघातित किया जाता है। इसमें चौदह पर्दे होते हैं, जिन्हें मोम द्वारा लगाया जाता है। इसका ऊपर का ब्रिज मेरू कहलाता है जो खड़ा रहता है। चार तारों में से तीन तार पर्दों के ऊपर से निकलते हैं, चौथा तार पपैये का काम करता है जो अंगूठे से आघात ग्रहण करता है। इस वाद्य का प्रयोग बगड़ावत गाथा गाने वाले गायक करते हैं। नागौर, अजमेर व भीलवाड़ा क्षेत्र में इसका सर्वाधिक प्रचलन है।

(4) **रवाज**—यह वाद्य केवल चारणों के रावळों (याचक) के पास उपलब्ध है किन्तु अब इसे बजाने वाला एक भी रावळ नहीं है। रावळ जाति के लोग रम्मत (लोकनाट्य) करते समय गायन के साथ इसका प्रयोग करते थे। रवाज का ऊपरी आकार प्रकार कमायचे से काफी मिलता जुलता है। इसकी गोलाकार तबली का ऊपरी भाग खाल से मढा रहता है। इसमें चार तांत के रोदे लगे होते हैं। इन्हें अंगुलियों के नखों से आघातित करके बजाया जाता है।

(5) **सुरमण्डल**—इस समय सुरमण्डल के केवल दो वादक हैं। इसके तारों की छेड़ अंगुलियों द्वारा की जाती है। गायक अपनी संगत के लिए काम में लेता है तथा स्वतंत्र वादन भी करता है। यह मांगणयार गायकों में ही प्रचलित लोक वाद्य है।

वितत् वाद्य

(1) **कमायचा**—गज से बजने वाला वितत वाद्य। आम शीशम की लकड़ी से गोलाकार तबली का ऊपरी भाग खाल से मढा होता है। जिसमें बकरे की खाल काम में ली जाती है। बाज के तीन मुख्य तार तांत के दो रोदा लगते हैं। तरबों की संख्या 11 से 15 तक होती है। सांगीतिक महत्त्व यह है कि तरबों पर भी गज का कार्य सम्भव है। मांगणयार जाति के लोग इसका स्वतंत्र एवं गायन के साथ वादन करते हैं। बाड़मेर एवं जैसलमेर क्षेत्र में प्रचलित वाद्य।

(2) **गुजरातण सारंगी**—छोटी सारंगी का रूप है। बाज के चार तार (दो

Digitization by Hindu Heritage Foundation of America. HHFA(USA)

लोहे व दो तांत) होते हैं। इसमें पांच झारे व सात या नौ जीले (तरबे) होती हैं। गज छोटा होता है तथा उसका संचालन लय प्रधान है। यह वाद्य लंगा जाति के गायकों में प्रचलित है जो गायन के साथ बजाया जाता है।

(3) **जोगिया सारंगी**—जोगी गायकों का प्रमुख वाद्य। गज द्वारा वादित वितत् वाद्य। इसके मुख्य बाज के तार तांत के होते हैं। तबली हल्की तुन की लकड़ी की बनी होती है। गज छोटा होता है। नागौर से लेकर राजस्थान के पूर्वी भाग तक प्रचलित है। जोगी जाति के गायक इस पर धार्मिक संगीत एवं लोकगाथाएँ गाते हैं।

(4) **डेढ पसली की सारंगी**--गुजरातण सारंगी के समान छोटी सारंगी, जिसकी तबली का एक भाग सपाट व अन्य भाग में वक्र अर्थ गोलाकार। इसके मोरणे खड़े होते हैं, जो डांड के पार्श्व में है। मुख्य चार तार--दो तांत व दो स्टील के तारों का स्वर लेते हैं। जीले (तरबें) आठ होती हैं। कभी-कभी सतरह भी। यह वाद्य भीनमाल, सिवाणा क्षेत्र में हिन्दू टोलियों के पास उपलब्ध है।

(5) **धानी सारंगी**--जोगिया सारंगी का ही रूप। वस्तुत: तीन तांतों का गज वाद्य है। गज अपेक्षाकृत छोटा होता है। इसमें जील (तरब) के कुल आठ या छ: तार होते हैं। लोकगाथाओं के साथ बजने वाला वाद्य।

(6) **सिंधी सारंगी** —लोक सारंगियों में सबसे विकसित सारंगी है। इसका ढांचा टाली (शीशम) की लकड़ी से बनता है तथा तबली खाल से मढी रहती है। मुख्य बाज के चार तार होते हैं—दो लोहे के दो तांत के। आठ झारे और चौदह जीलें होती हैं। लंगा जाति के गायकों में प्रचलित है। बाड़मेर व जैसलमेर क्षेत्र में इसका विशेष प्रचार है।

(7) **सुरिन्दा**—सुरिन्दा गज द्वारा वादित वितत् वाद्य है। राजस्थान में इसका प्रयोग सुषिर वाद्यों की संगत में किया जाता है, विशेषकर मुरली के साथ। सुरिन्दा की संगत पर गाने का कार्य बलूचिस्तान व अफगानिस्तान में होता है। मुख्य बाज के तार दो लोहे व एक तांत का होता है। ऊँचे स्वर पर ही मिलाया जाता है। गज पर घुंघरू लगे होते हैं। गज का संचालन लयात्मक मुहावर पर होता है। यह वाद्य मुख्यतया सुरणइया लंगों के हाथ में है। अभी इसके केवल तीन वादक ही हैं। इसका ढांचा शीशम की लकड़ी का होता है व तबली खाल से मढी होती है।

(8) **रावणहत्था**—यह पाबूजी की कथावाचक नायक जाति द्वारा बजाया जाता है। नारियल के खोल से तबली तथा बांस की लकड़ी से डांड बनती है। छोटी-सी तबली खाल से मढी जाती है। रावणहत्थे के दो मोरणों पर घोड़े की पूंछ के बाल व दस मोरणियों में लोहे व पीतल के तार (तरबें) लगे होते हैं। घुंघरुदार गज से बजाया जाता है। मुख्य रूप से पाबूजी की लोकगाथा गाने वाले नायक/भीलों का वाद्य है।

इन वाद्यों के अतिरिक्त गरासिया व मेवों का चिकारा, मटकी, रबाब, दुकाको, अपंग सिंगी, भूंगळ, बर्गू, पेली कानी आदि अनेक लोकवाद्य राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में देखने को मिलते हैं। जिनका मारवाड़ी संगीत में विशिष्ट स्थान है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

ज़नाना ड्योढी का सुर-सिंगार

डॉ. डी.बी. क्षीरसागर

वह चाहे मुग़ल हरम हो या किसी रियासत की ज़नाना ड्योढी या रनिवास— सूरज की किरणें भी वहां स्पर्श करने में हिचकती थीं— हाँ, किन्तु कवि या उपन्यासकार की वह भ्रमण-स्थली है—भले ही सूरज न पहुँचे— कवि पहुँचता ही है और उसे पहुँचना भी चाहिये —वरना आचार्य चतुरसेन-उमेश मिश्र-विमल मित्र की जैसी कलम से हम उन क्षणों को समेट नहीं पाते जब या तो जनाना ड्योढी आनन्द के सागर में हिलोरें लेती है या फिर आहें………। शायद इसीलिये बंगला के प्रसिद्ध उपन्यासकार विमल मित्र ने लिखा—जनाना ड्योढी के दरवाजे तक पहुँच कर इतिहासकार उसे बंद ही पाता है—उसके आगे इतिहासज्ञ की गति नहीं है ।[1] किन्तु रियासतें जोधपुर की जनाना ड्योढी का दरवाजा एकदम बंद नहीं है—सांकल तो लगी है आप कुछ झांक सकते हैं—थोऽऽड़ासा देखने भर की इजाज़त है ।

थोड़ासा झांकिये-- ताक-झांक नहीं—कहीं से सारंगी की मधुर आवाज पखावज की घन गम्भीर ध्वनि में उतरती-सी सुनाई दे रही है— कहीं सीधी सपाट तान ....कहीं 'तत्त थेई' की तिहाई— थिरकते घुंघुरु....रमणीय मुद्राएँ....हाँ, यहां लगता है कोई गा रही है—कोई पद संचालन का रियाज करती नाच रही है....सारा वातावरण स्वर-सिक्त....जा कहाँ रहे....यों तो प्रवेश है नहीं....देखें शायद पुरानी बहियों पोथियों के सड़े-गले, चिपके या दीमक लगे फटे पन्नों में से कोई गली, कोई रास्ता मिले—सुरंग की तरह शायद सीधे ही पहुँच जाएँ ?

1. तालीमखाना

ज़नाना ड्योढ़ी के कभी सरस बनने वाले वातावरण को हमेशा रसीले बनाये रखने के उद्देश्य से ही सम्भवत: 'रसीलेराज' म. मानसिंह ने 'तालीमखाना' शुरू किया था । इसमे और कोई विषय नहीं— केवल गायन, वादन, नृत्य की शिक्षा की व्यवस्था की थी । मानसिंह के समय में एक अल्लाबख्श सारंगिये थे । इनके पुत्र मीर रमजू अली भी अच्छे सारंगीवादक थे । इनकी नियुक्ति इसी तालीमखाने में हुई थी । तालीम के समय सारंगी बजाने के लिये इन्हें महीना 10/- वेतन दिया जाता था ।[2] गाने की तालीम देने का काम उस्ताद नबी बख्श का था, ये तालीमखाने के उस्ताद थे ।[3] इसमें सीखने वाली प्राय: कम उम्र की लड़कियाँ ही होती थीं ।

म. तखतसिंह ने तालीमखाने के संगठन में रुचि दिखायी, उन्होंने इसे ज़नाना ड्योढी के प्रशासन में रखा[4] और उस पर महारानी राणावतजी को नियंत्रण रखने के सारे अधिकार दिये[5] —इस अधिकार का उपयोग करते हुए महारानी साहिबा ने 8 नयी लड़कियों को संगीत की शिक्षा के लिये चुन लिया ।[6]

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

तालीम में सीखनेवाली लड़की को तालीमवाली या कभी तालीवाली या खास-खेतीवाली कहा जाता था।[7] यों तो म. मानसिंह के समय में भी नगारखाने की अलग तालीमवालियाँ थीं—जैसे सायबी, चुनकी, उमली, पेमली– आदि।[8] वे राज-दरबार में भी नाचती गाती थीं और जुलूस में भी साथ चलती थीं। लेकिन ताली-मखाने की तालीमवालियों का क्षेत्र ज़नाना-ड्योढी के दरवाजे तक था उनकी तालीम का उद्देश्य शासक और उसके परिवार जनों के कर्णरंध्रों को स्वरों से आप्ला-वित करने और नृत्य की भंगिमाओं से मंत्र-मुग्ध कर देने मात्र-का था।

प्रश्न था इस तालीमखाने का संगीत शिक्षा की सरिता को निरन्तर चलाने का—आभिजात्य परम्परा वाले ब्राह्मण, लक्ष्मीपति सेठ या चन्द्र-सूर्यवशी राजपूतों के परिवारों का और उसमें महिलाओं का नाम भी इस कला से जोड़ना बड़ा पाप था–शायद उसका प्रायश्चित्त भी नहीं हो। फिर भी सत्ता और धन दोनों हों तो समस्या उतनी नहीं रहती— इसलिये तालीम में गाना-बजाना सीखने के लिए लड़कियों को खरीद कर रखा जाने लगा। उदाहरण देना ही है तो म. तखतसिंह का लीजिये—

वि.1905 के श्रावण में उमेद खीची निवासी पीलवा से 10 साल की एक लड़की, पीलवा के ही रामा खीची से 9 वर्ष की कुनगी तथा मलाणा के जेती फत्ता से 13 वर्ष की मगनी को मात्र 50)-50) रु. देकर खरीदा गया – हाँ, यह ध्यान रखें सौदा राजी खुशी का था—जबर्दस्ती या दबाव का नहीं।[9]

अब एक नज़र में देख लें—म. तखतसिंह की तालीमवालियाँ— वे हैं— 1. सुघरा 2. सीता 3. लक्ष्मी 4. रूपजोत 5 नानकोड़ी 6. फुला 7. भुरी 8. तारा 9 फुन-वेज 10. इमरती 11. सीघ्रकरण 12. रूमी 13 चुनी।[10]

इनके समय में नगारखाने की भी तालीमवालियाँ थीं— किन्तु तालीमवालियों का एक और संवर्ग भी था। उन्हें कहते थे—'छोटोड़ी तालिमवालियां'। म. तखतसिंह के समय में नहीं-नहीं करते ऐसी 22 तालिमवालियों के नाम मिले हैं—

1. कुसु बी, 2. चंपा, 3. रामरखी, 4. हसतु, 5. कैसर, 6. हसतु बड़ी, 7. राम-जोत, 8. आसी, 9. तीजा छोटी, 10. पार्वती, 11. रतनजोत, 12. कीसनजोत, 13. मूला, 14. कुरजी, 15. वीरदी, 16 लीछमी, 17. बखतावरी, 18. भुरी, 19. चुनी, 20. किसतुरी, 21. सरजुडी, 22. हरजोत।[11]

तालीमखाने में प्रवेश होने और संगीत की शिक्षा शुरू हो तब प्रत्येक तालीमवाली को वेतन तो नहीं उसे खर्ची कहा जाता था—मासिक 30) रु. दिये जाते, इतना ही नहीं उन्हें "ज़नाना ओहदेदार" बना दिया जाता था-वे पैर में भी सोना पहन सकती थीं।[12] ओहदेदार अधिकारी माना जाता था– इसलिये इन तालीमवालियों के व्यक्ति-गत कार्य करने के लिये दसों 'डावड़ी' या दासियें नियुक्त की जाती थीं।[13]

ज़नाना ड्योढी में ही निवास और वहीं पर नबीबगस, अहमदबख्श जैसे कला-वतों से तालीम, राज-परिवार का ऐसा साहचर्य उन्हें पारिवारिक सदस्य-सा बना देता। यदि किसी राजवधू के पीहर से वस्त्र आये हैं तो तालीमवालियों के लिये उसमें वस्त्र आते ही थे,[14] महाराजा की बरस गाँठ पर या अन्य धार्मिक पर्वों पर उन्हें दान-

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

धर्म करने के लिये धन दिया जाता[15]—उनके रिश्ते में कोई शादी-ब्याह हो तो महाराजा की ओर से वस्त्रादि इनायत किये जाते ।[16] दीपावली आदि त्यौहारों पर उन पर बड़ी कृपा हो जाती थी—उनके चार-पाँच मास का वेतन यों ही इनाम में दिया जाता था ।[17]

अब देख लें तालीमखाने की गतिविधियाँ । राज्य के व्यय के मद में 'तालीमखाना ताल के' स्वतंत्र[18] मद था– हालाँकि जनाना ड्योढी का एक भाग होने से उस पर महारानी का नियंत्रण था—तालिमवालियों के लिये मोती-जवाहरात भी खरीदे गये हैं तो वे इसी मद में ।[19] सितार, तानपुरे, तबले, पखावज आदि की मरम्मत या नये वाद्यों की खरीद—तालीमखाने का काम था– वि. 1914 के जेठ मास का एक उदाहरण दूँ—

६ तबलों की पुड़ियाँ नयी करायीं— जिसके ७) खर्च हुए, सितार के खरज का पीतल का तार ३।।।), लोहे के तार ४।।। ≡) और पखावज की पुड़ी ३) में नयी बनवायीं गयीं— + ३) गारियों के लगे– कुल खर्च २३।। –) याने रु. २३ व पैसे बासठ मात्र ।[20]

वाद्यों की मरम्मत होती रही—अर्थात् वे बजते रहे और निरन्तर बजाये जाते थे—यह काम था तालीमखाने के संगतकारों का— इस सन्दर्भ में एक बात स्पष्ट है कि सारंगीवादकों और तबला-वादकों के ही प्राय: तालीमखाने के सगतकार के रूप में नाम मिले हैं—किसी विशिष्ट पखावज-वादक का नहीं । इनके उल्लेख के बिना तो तालीमखाने में स्वर ही नहीं निकलेगा—

म. तखतसिंह के तालीमखाने में 5 सारंगी वादक थे—1. भगत मोतीलाल, 2. हीरो, 3. ईश्वरीप्रसाद, 4. छोगा, 5. मिरासी रमजू अली—तबलची 4 थे—1. भगत वीरामा, 2. चूवांग गीलीयो, 3. हनुमानदास, 4. वीसो जोरो ।[21] वि. 1925-29 की अवधि में प्रताप और पेमराज नामक तबलचियों का भी उल्लेख मिलता है ।[22]

इस प्रकार उस्तादों के निर्देशन में—सारंगी की सुरीली संगत में—स्वर, राग, मूर्छना, बंदिरा – टप्पा ठुमरी –ख्याल ध्रुपद – सब तो ज़नाना-ड्यौढी में प्रवेश पा गये हैं—इस नाद-जन्म की उपासना में कभी खळल भी पड़ती रही—मनुष्य का मन है– उस पर किसने काबू पाया—किसी तालीमवाली के गान या नृत्य या फिर उसके अपूर्व सौन्दर्य ने यदि राजा को मोहित कर लिया –तो महाराजा उसके पैर में सोने के कड़े पहना देते –वह अब तालीमवाली नहीं–मरुधराधीश की पर्दायत-पासवान–उपपत्नी हो जाती ।[23]

सोने के कड़ों से वंचित रहे पैर या तो फिर घुँघरु बाँधकर लास्य-ताण्डव में शिव-शक्तिमय हो जाने या फिर पालथी मार कर तानपुरे या सितार के स्वरों में तन्मय हो जाते –कहीं फिर सुवर्ण कड़ों की कभी पूरी न होनेवाली प्रतीक्षा में तो नहीं ?

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

2. अखाड़ा : बड़ा और छोटा

तालीमखाने का ही परिवर्धित संस्करण—अखाड़ा है—यहाँ संगीत की तालीम देने-लेने का काम नहीं है - जिनकी तालीम पूरी हो गयी और जो गायिका या नर्तकी या वादिका के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त कर लें – ऐसी महिलाओं का जोधपुर रियासत में एक अलग संवर्ग होता था— उसका नाम है अखाड़ा अर्थात् धुरन्धर महिला संगीतज्ञों का विभाग। म. विजयसिंह के समय में दो अखाड़े थे—1. उनका स्वयं का जिसे श्री हुजूर साहब का अखाड़ा कहते थे और दूसरा बड़ा अखाड़ा।[24] म. मानसिंह ने इसमें थोड़ा बदल किया—नाम रखा छोटा और बड़ा अखाड़ा।[25] शायद वे तालीमखाने से उसे सम्बद्ध करना चाहते हों।

अखाड़े की महिला संगीतज्ञ को 'गायण', 'गोईण' या 'गायणी' कहते थे जैसे गायण रंगरूपराय, गायण मगराय आदि। डॉ. कथूरिया ने इनके नाम के सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है कि गायिका-नर्तकी के नाम के बाद 'राय' या 'राई' अवश्य लगाया जाता था।[26] जो भी हो, इनके नामों से भी यही बात सिद्ध होती है। मेरा अपना एक मत और है कि तालीमखाने से ही अच्छी गायिकाओं को 'गायण' बना दिया जाता रहा है। तालीमवालियों की तरह इनकी भी खरीद किये जाने के उदाहरण मिले हैं अमरसिंह ने पेशावर में निरतकला नाम की गायण को खरीदा था।[27] वैसे तालीमखाने से सम्बद्ध न हो तो भी महिला संगीतज्ञों की सीधे 'गायण' पद पर नियुक्ति भी होती थी - म. विजयसिंह ने अपनी किसी खवास की सेवा में 5 गायणें नियुक्त की थीं--उन्हें मेवा खाने के लिये रोज 3-3 रुपये दिये जाते थे।[28] म. भीमसिंह की शहर की औरतों को जबर्दस्ती रंगशाला में लाने के लिये निंदा भी की गयी थी।[29]

ये सभी गायणें—ज़नाना ड्योढी—के नियंत्रण में वहीं रहती थीं।[30] इनकी नियुक्ति प्रायः महाराजा के खास चाकरों के रूप में थी—प्रत्येक महाराजा की अलग-अलग गायणें थीं—हालांकि सूची कुछ लम्बी है परन्तु ई. 1638 से 1891-92 तक के जो नाम मुझे मिले हैं, उन्हें दिये बिना मेरी बात अधूरी रहेगी। महाराजा के अलावा उनके भाई और रानियों की सेवा में नियुक्त गायणें अलग ही हुआ करतीं थीं। शासकों की गायिकाएँ इस प्रकार हैं—

1. म. जसवन्तसिंह (प्रथम)

1. सुरविलास, 2 अलापरेखा, 3. प्राणसंतोष, 4. चुत्ररेखा, 5. अनुपरंग, 6. रंगओपा, 7. प्राणसमान, 8. वीदासरुप, 9. वीदा (णा) परवीण, 10. हुलासराय 11. धना[31]

12. कुसुंभकली, 13. तानतरंग, 14. नैणकमल, 15. सामरंगी, 16. प्यारी, 17. चम्पकली, 18. लिखमी, 19. मधुवनी, 20. मनचैन, 21. रायवेल, 22. करसवाह, 23. दलिया, 24. कररीया, 25. रंगसोभा, 26. कमोदकली, 27. सुघडराय 28. सुकली, 29. चुतरराय।[32]

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America, HHFA(USA)

2. अमरसिंह

1. रंगमोहन, 2. चंद्रकला, 3. कनकमंजरी, 4. निरतकला, 5. गोरधनी, 6. संगीतकला, 7. रंगमूरत, 8. मदनमोहन, 9. जीवणी।[33]

3. म. अजीतसिंह

इनकी 12 गायणें थीं—रानियों की अलग थी।[34]

4. म. अभयसिंह

1. जीवसुख, 2. अनसुख, 3. सैंजशुख, 4. रतनजोत।[35]

5. म. विजयसिंह

1. रतनजोत, 2. नैणसरस, 3. मदनजोत, 4. चंदु, 5. सरसरूप।[36]

6. म. भीमसिंह

1. फुलवेल, 2. चंचलराय, 3. नीरतराय, 4. सुन्दरराय, 5. मेहताबराय, 6. रतनजोत, 7. तानमंजरी।[37]

8. चंपकराय, 9. गुमानराय, 10. मीरदंगराय, 11. मानराय[38]

12. अणंदराय, 13. श्यामा, 14. रामजोत, 15. गुणराय, 16. मनसुखराय।[39]

7. मा. मानसिंह

छोटा अखाड़ा

1. रामराय, 2. बड़ा फुतराय, 3. उदैराय, 4. बड़ा सुन्दरराय, 5. फुलवेल, 6. परमसुत्र, 7. मेहताबराय, 8. चुतरेखा, 9. छोटा चनणराय, 10. बिचला सुन्दरराय, 11 किसनराय, 12. पनराय[40] 13. कानराय[41]

बड़ा अखाड़ा

1. चनणराय, 2. रंगरूपराय, 3. चरुजी, 4. सुखवेल, 5. बडा चम्पराय, 6. बड़ा रूपजोत, 7. रिधराय, 8. हसतुराय, 9. तुलछराय, 10. इमरत राय, 11. छोटा चम्पराय, 12. छोटा रूपजोत।[42]

8. मा. तखतसिंह

1. बड़ा लछराय, 2. तारराय, 3. कुरजराय, 4. हरजोत, 5. गंगराय, 6. रामजोत, 7. सीतराय, 8. फुलराय, 9. चम्पराय, 10. आसराय, 11. वीरदराय, 12. नानराय, 13. भुरराय, 14. चुनराय, 15. जसराय, 16. मगराय, 17. रूपजोत 18. मुथरराय[43]

19. सुघरराय, 20. छोटा लछराय।[44]

9. मा. जसवन्तसिंह

1 मेहताबराय, 2. रामराम, 4. जडावराय, 4. चम्पराय, 5. मैंनराय, 6. तीजराय, 7. छोटा जडावराय, 8. नन्हीबाई।[45]

जैसा मैंने ऊपर संकेत किया है, मुख्य शासक के परिवार के अन्य जन अथवा शहर के मठाधिपति भी अपनी सेना में गायणों को नियुक्त किया करते थे—उनका व्यय वे स्वयं करते थे। ऐसी गायणों ने भी जोधपुर में ही एक तरह से शासनाधीन रहकर—अपनी साधना की—अतः उनका नामोल्लेख भी आवश्यक है:—

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

1. मा. अजीतसिंह के शासन में[46]

(वि. 1775)

1. राणी राणावत

1. चन्द्रजोत, 2. श्यामजोन, 3 चमेली, 4. जीउ, 5. सुरतशोभा।

2. राणी भटियाणी बडा

1. रूपकली, 2. किसनकली।

3. राणी चौहान

1. रास, 2. रामप्यारी।

4. राणी छोटा भटियाणी

1. रामदासी, 2. कुसुंबी, 3. देउ, 4. रानू।

5. राणी तुंवर

1. गंगा, 2. केसर।

3. म. जसवन्तसिंह[47]

1. जोरावरसिंह—फुलराय।
2. रणजीतसिंह—अनारराय, पारबतराय, कुरजराय।
3. किशोरसिंह—फुलराय, केसरराय, चुनराय, लालराय, मृगजोत, जडावराय।
4. बादरसिंह—चंदरराय।
5. माधोसिंह—ग्रासराय।
6. मोबतसिंह—रिघराय, केसरराय।

2. म. भीमसिंह शासन

1. मोति गिरी—रतु रतना, श्यामा, दलु।[48]

इस प्रकार करीब 150 से अधिक ये नाम उन महिला संगीतज्ञों के हैं—जिन्होंने इस रियासत में—इस भूमि में नाद-धारा को जीवित रखा। इनमें से सभी गाने-वाली नहीं थीं—उदाहरणार्थ अमरसिंह की गायणों में संगीत कला और रंगमूरत नृत्यांगना थीं तो मदनमोहन और जीवणी पखावज बजातीं थीं—परन्तु इस तरह से हर गायण के बारे में प्रमाण पूर्वक यह कहना कठिन है—कौन नृत्यांगना थी या कौन गायिका। हाँ कुछ प्रारम्भिक नामों के बारे में अनुमान किया जा सकता है—उनका नाम देखकर—स्वरविलास या अलापरेखा या तानमंजरी अवश्य ही गायिकाएं रही होंगी—निरत कला नाम स्पष्ट ही है। परन्तु बाद में शासकों की—गायिका की विशिष्टता देखकर नामकरण की अभिरुचि शायद नहीं रही है म. अभयसिंह के पश्चात् किसी भी नाम पर शायद ही इस प्रकार की कोई सम्भावना व्यक्त की जा सके।

एक बात और है—गायणों की खरीद या नई नियुक्तियों के अलावा म. तखत-सिंह के समय में एक बात उभरकर सामने आती है—उनकी कुछ तालीमवालियों को भी गायण बनाया गया था—जैसी भूरी—भुरराय, सीता—सीतराय, कुरज—कुरज-राय, नानकोड़ी—नानराय, तारा—तारराय, मुथरा—मुथरराय आदि।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America, HHFA(USA)

ये सब गायिकाएँ या नृत्यांगनाएँ—जैसा मैंने प्रारम्भ में कहा—ज़नाना ड्योढी के बन्द दरवाजे के अन्दर की हैं—राजदरबार से इनका सम्बन्ध होने का कोई उल्लेख मेरे देखने में नहीं आया है—इसलिये कैसे गाती थीं या कब इनकी महफिलें हुईं या महाराजा ने कब प्रशंसा कर इनाम दिये ये सब नई शिक्षा प्रणाली के लक्ष्यनिष्ठ प्रश्न हैं—उत्तर की जगह खाली है—शायद कभी उत्तर मिल जाए ?

इन प्रश्नों के उत्तर न मिलें सही, गायणों के व्यय, उनका जीवनस्तर और उनकी प्रतिष्ठा के बारे में तो ज़नाना ड्योढी बहियाँ -चिपके-फटे पन्नों की ही हो—कुछ कहना चाहती हैं—उस प्रपार वैभव और मान-सम्मान की कुछ बातें मैं भी कह दूँ ?

गायण की नियुक्ति होते ही उसे सबसे पहले समस्त आवश्यक बर्तन[19] तथा नये वस्त्रादि इनायत किये जाते थे तथा उनका मासिक वेतन भी निश्चित किया जाता था—म. तखतसिंह के समय में गायणों को प्रतिमास 125/- वेतन दिया जाता था[50] जो कि अच्छे-से-अच्छे कलावन्त के वेतन से तिगुना होता था।

रानियों अथवा पर्दायतों की तरह इन्हें भी हीरे-जवाहरात और सोने-चाँदी के हजारों रुपये के गहने इनायत किये जाते थे। म. मानसिंह की प्रिय गायिका गायण चंपकराय का उदाहरण दूँ—उन्हें इनायत किये गहने इस प्रकार थे[51]—

1 हास—जड़ाउ हीरारा नग 79 ने पनड़ीया 39 माणकपनारी मोती 15 ने पनड़ी 23.

3 तीमणिया—1 हीरारो हीरा 25 जड़ीया पनड़ीया 9 मोती 27 नाकामें मोती नग 9 छोटा मोती 155.

1 सोनारो—चार माणक, पन्ना दो

1 सोनारो बेरीयादार तेवड़ी पनड़ीयारी नीळा नग 9 पनड़ी 4

2 नथ 1 हीरा री नग 10 नै मोती 25 लालनग 7 नीला मणि 1.

1 जड़ाउ पन्नारी पन्ना 12.

2 मांगटीकौ—जड़ाउ हीरारो

2 सुंठणा—1 में जढ़ाउ माणक 30, पनड़ी रै माणक 21, पनड़ी 55, मोती 55.

1 सोनारो

2 दावणी सोनारी

2 टोटियां री जोड़ी

2 कातरीया री जोड़ी

1 जुवलारी जोड़ी

1 गुजरीया री जोड़ी

2 बाजूबंदारी जोड़ी

रूपारो गेहणो—

1 कडीयारी जोड़ी

1 रीमजोलारी जोड़ी

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

1 तोड़ारी जोड़ी
1 चौकडीया नग

इसी प्रकार सभी गायणों को गहने इनायत होते थे और कभी-कभी उनकी जाँच-पड़ताल का कार्य भी किया जाता था।[52] और तो और, गायण रंगरूपराय को तो रोजमर्रा के उपयोग के लिये थाळी आदि चाँदी के बर्तन इनायत किये गये थे[53]—रंगरूपराय को 'हाथी' का सम्मान भी दिया गया था।[54]

गायणों के रोज के घरेलू कामकाज के लिये उनकी सेवा में नौकर चाकर रहते थे—जैसे गायण रूपजोत की सेवा में 7 चाकर, 4 दासियें तथा रसोई के लिये 1 ब्राह्मण नियुक्त था—इनके अलावा धोबी आदि 7 थे—[55] करीब 20 नौकर हुये। प्रत्येक गायण की सेवा में इतने ही नौकर रहते थे।

इनमें से अधिकांश संगीतज्ञ जागीरदार थीं—म मानसिंह और तखतसिंह की गायणों को गांव जागीर में थे—कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—[56]

1. पनराय	जाजीवाल	वार्षिक आय 500/-
2. रूपजोत	सोनई	....
3. परमसुखराय	नादिया जावडा	1500/-
4. जड़ावराय	सालवों	1000/-
5. जसराय	बेनैया	2000/-
6. मगराय	रीयां	4000/-

इन गायणों के सम्मान में आखिरी बात कहूँगा—राजपरिवार में आने वाली प्रत्येक वधू को चूड़ा पहनाये जाने पर—वे "पगे लागणा" या चरणस्पर्श की पद्धति से गायणों के प्रति अपना सम्मान प्रकट करतीं थीं[57] यह परम्परा आज भी ख़ानदानी राजपूतों में है—प्रह्लादसिंह जी (सचिव, मेहरानगढ़ ट्रस्ट, जोधपुर) ने भी इसे स्वीकार किया है।

महाराजा के जीवित रहते यदि किसी गायण की मृत्यु हो तो उसके अन्तिम संस्कार में मुसाहिबों और मुत्सदियों की उपस्थिति रहती थी—[58] चंचलराय के देहावसान पर ऐसा ही हुआ था। गायण सुन्दरराय की उत्तर क्रिया के मृत्युभोज में 20-20 मण शक्कर गलायी गयी।[59]

परन्तु यह सब सम्मान-प्रतिष्ठा महाराजा के रहने पर थी—महाराजा का स्वर्गवास होने पर इनका सारा वैभव छिन जाता—उन्हें ज़नाना ड्योढी खाली करनी पड़ती थी—नये महाराजा की नयी गायणों के लिये—उनका निवास था "तलेटी के महल।"[60] जीवन का बोझ उठाती—बीते अतीत की सुखद स्मृतियाँ उनका संबल था—सामने कंटीली पगडंडी !

गायणों के इतने वैभव की बात सुनकर आपको लगेगा कि कहीं ये सारी की सारी महाराजा की उपपत्नियें तो नहीं थी ? किन्तु यह विचार भी उन कला-साधिकाओं का घोर अपमान होगा—हर गायण महाराजा की अंकशायिनी नहीं थी—यदि महाराजा चाहें तो उसे पर्दायत बना सकते थे—बनाते भी रहे। किन्तु उससे

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

पहले एक बड़ा उत्सव मनाया जाता—गायरण से पर्दायत बनाने का—म. मानसिंह ने अपनी गायरण रूपजोत को पर्दायत बनाया था—उसका वर्णन देखिये—[61]

117) सोनो पगांमें इनायत हुवौ नै चुडीदाँतरो सोनारी पटीयांरो इनायत हुग्रो नै पड़दायत पदवी इनायत ग्रासाढ़ वद 10 हुई तरै निजर-निछरावळ रा ग्रोरणा कांचळी रा ग्राया सु जमा।

इसके ग्रागे राजपरिवार की समस्त महिलाग्रों ने उसकी 'खोळ भराई' की रस्म पूरी की—'चूड़ा री सांजी रा गीत' ग्राया— सभी उपस्थित लोगों ने निछरावळ की।

हम यदि उसे भूल जाएँ तो भले ही सभी गायणों को पर्दायत कह सकते हैं—लेकिन सत्य को कभी ग्राच्छादित या भ्रमित नहीं करना— क्योंकि सत्य से परे कुछ है भी नहीं।

हाँ, इन गायणों के बारे में ग्राखिरी एक बात— एक सत्य—जो कटु ही होता है, रह गया। म. मानसिंह से पूर्व मैंने ऊपर जिन-जिन गायणियों का उल्लेख किया है, वे सब ग्रपने महाराजा के साथ सती हो गयीं —सती महिमा का मण्डन नहीं करना चाहता हूँ—किन्तु इतिहास साक्षी है—स्वामी-धर्म की—ग्रटूट निष्ठा का ऐसा उदाहरण नहीं मिल सकेगा।

[यह ग्रालेख भारतीय इतिहास ग्रनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली के तत्त्वावधान में 'A History of the Musicians at the Royal Court of Jodhpur' नामक शोध प्रयोजन के ग्रन्तर्गत प्राप्त जानकारी के ग्राधार पर तैयार किया गया है।]

सन्दर्भ

1. डॉ. विमल मित्र, बेगम मेरी विश्वास, लोकभारती प्रकाशन, प्रयाग, 1980 ई., भूमिका भाग
2. रोकड चिट्ठी बही, रा. रा. ग्रभि., जोधपुर सं. 2067, वि. 1891
3. कपड़ों का कोठार, म. मानसिंह पुस्तक प्रकाश, जोधपुर बही 142, वि. 1904
4. जनाना ड्यौढी बही सं. 210, म मा. पु. प्र.
5. वही 822, वि 1901
6. कपडोंका कोठार बही 195, वि. 1901
7. वही।
8. जनाना ड्यौढी बही 163, वि. 1887
9. वही 220, वि. 1905
10. वही 844, वि. 1915, 407; वि 1913
11. वही 836, वि. 1923
12. ग्रावश्यक बही 23, पुस्तक प्रकाश, वि 1914
13. जनाना ड्यौढी बही 2040, पु प्र. वि. 1925
14. वही 1352, पु. प्र. वि. 1908
15. वही 210, पु. प्र. वि. 1909

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

16. कपड़ों का कोठार बही 314, पु. प्र वि. 1937
17. ज़नाना ड्योढी बही 210, पु. प्र. वि. 1909
18. वही 36, पु. प्र. वि. 1911
19. कपडों का कोठार बही 246, पु. प्र. वि. 1866
20. आवश्यक बही 24, पु. प्र., वि. 1914
21. वही—कार्तिक मास का व्यय।
22. हकीकत बही 27, रा. रा. अभि., बीकानेर, पत्र 262-63 आषाढ़।
23. वही 22, रा. रा. अभि., बीकानेर, पत्र 611
24. ज़नाना ड्योढी बही 835, पु. प्र., वि. 1813
25. डॉ. नारायणसिंह भाटी, महाराजा मानसिंह की ख्यात (सं) राज. प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, पृ. 236-38
26. डॉ. आर्. पी. कथुरिया, Amusements and cultural pastimes of the Courts of Rajasthan, JRIHR, Jan.-March, 1972, Vol. IX, No. 1, pp 13
27. म. गजसिंह की ख्यात, रा. प्रा. वि. प्र., ग्रंथांक 15666; पत्र 196-201
28. म. विजयसिंह की ख्यात, रा. प्रा. वि. प्र., ग्रंथांक 15639, पत्र 34ब.
29. स्व. दत्तात्रय बलवन्त पारसनीस, इतिहास-संग्रह, जनवरी 1915 ई., लेखांक 26, दि. 10 फरवरी 1794 वि., पृ. 84
30. कपड़ों का कोठार बही 59, पु. प्र., वि. 1859
31. Marwar under Jaswantsingh, Meenakshi Prakashan, New Delhi, 1976, p. 77
32. मुरारदान की ख्यात, रा. प्रा. वि. प्र., ग्रंथांक 15658. पत्र 170-71
33. म. गजसिंह की ख्यात, रा. प्रा. वि प्र., ग्रंथांक 15666, पत्र 198
34. राठौड़ वंश री विगत एवं राठौड़ां री वंशावली, पृ. 21
35. राठौड़ां री वंशावली, रा. प्रा वि. प्र., ग्रंथांक 20130, पत्र 271
36. जनाना ड्योढी बही 841, पु. प्र., वि. 1850
37. म. भीमसिंह की ख्यात, रा. प्रा. वि. प्र., ग्रंथांक 15645, पत्र 11
38. कपड़ों का कोठार बही 59, पु. प्र., वि. 1859, आसोज
39. ज़नाना ड्योढी बही 841, पु. प्र., वि. 1850
40. म मानसिंह की ख्यात (सं) पृ. 237-38
41. ज़नाना ड्योढी बही 830, पु. प्र., वि. 1929
42. म. मानसिंह की ख्यात (स.) पृ. 236-37
43. ज़नाना ड्योढी बही 830, पु प्र, वि. 1929
44. वही 842, पु. प्र., वि. 1921
45. वही 830, पु. प्र., वि. 1929
46. वही 833, पु. प्र., वि. 1775

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

47. वही 852, पु. प्र., वि. 1941
48. कपड़ों का कोठार बही 59, पु. प्र., वि. 1859, मार्गशीर्ष सु 3.
49. वही, आषाढ सु. 5
50 ज़नाना ड्योढी बही 200, पु. प्र., वि. 1943, श्रावण
51. वही 841, पु. प्र., वि. 1879
52. दे. वही कार्तिक वद अमावस
53. दे. वही कार्तिक सुद 7
54. बही 18/92, रा. रा. अभि. बीकानेर, वि. 1904
55. ज़नाना ड्योढी बही सं. 153, पु प्र. 1881, वैशाख
56. रिपोर्ट मर्दुमशुमारी राज मारवाड़, पृ. 15, 20, 40, 75, 255-56
57. ज़नाना ड्योढी बही 841, पु. प्र., वि. 1870
58. बही 1/43, रा. रा. अभि., बीकानेर, पत्र 212, वि. 1920
59. बही, 23/92, रा. रा. अभि., बीकानेर, पत्र 65, वि. 1911
60. ज़नाना ड्योढी बही 835, पु. प्र., वि. 1839
61. वही, 1621, पु. प्र.।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मरुधरा का डिंगल गीत साहित्य

डॉ. नारायणसिंह भाटी

डिंगल गीत राजस्थानी साहित्य की एक विशिष्ट विधा है। गीत शब्द का सामान्य अर्थ गायन या गाने योग्य कविता होता है, परन्तु यहां गीत का आशय यश या कीर्ति के उद्घाटन से है। ये गीत गेय न होकर विशेष लहजे में पढ़े जाते रहे हैं और उत्साह-वर्द्धन करना तथा वीरों की कीर्ति को अमर करना उनके सर्जन का मुख्य उद्देश्य रहा है। ये गीत प्रायः राजस्थान के ऐतिहासिक वीरों और ऐतिहासिक घटनाओं पर लिखे हुए हैं। यह विशाल गीत साहित्य अपने में एक हजार वर्षों के इतिहास व साहित्यिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों को संजोए हुए है।

प्राचीन राजस्थानी काव्य में दोहा, सोरठा, झूलणा, कुण्डलिया, नीसांणी, छप्पय आदि छन्दों की प्रमुखता है और इनमें विपुल परिणाम में साहित्यिक व ऐतिहासिक सामग्री हमें मिलती है, परन्तु डिंगल गीत का अलग ही महत्व है। वैसे राजस्थानी काव्य का बहुत बड़ा भाग यहां के प्रसिद्ध छंद दोहे में मिलता है और दोहों के माध्यम से ढोला-मारू जैसे श्रेष्ठ काव्यों का सृजन भी हुआ है, परन्तु दोहा जहां मूलतः अपभ्रंश की देन है, वहां डिंगल गीत राजस्थान के कवियों की निजी देन है। अतः राजस्थान की दृप्त आत्मा की असली पहिचान तो डिंगल गीतों से ही होती है, इसलिये प्रो. नरोत्तमदास स्वामी ने डिंगल गीतों को ही असली डिंगल साहित्य कहा है।

गीत विधा का अपना अलग महत्व इसलिये भी है कि उसके 92 भेदोपभेद छंद-शास्त्रियों ने किये हैं तथा उनका प्रयोग भी अनेक कवियों ने साधिकार ढंग से किया है। अतः छन्द-शास्त्र व रचना प्रक्रिया दोनों ही दृष्टियों से गीत विधा का विस्तृत अध्ययन किये बिना प्राचीन राजस्थानी काव्य और राजस्थान की संस्कृति के मर्म को भली-भांति नहीं पहचाना जा सकता।

डिंगल की यह अत्यन्त महत्वपूर्ण विधा अद्यावधि उपेक्षित-सी रही है, क्योंकि गीतों की भाषा-शैली कुछ क्लिष्ट होती है और वैसे भी प्राचीन राजस्थानी का क्लासिक साहित्य जितना प्रकाश में आना चाहिए, उतना नहीं आ पाया है, न इनके पठन-पाठन की समुचित व्यवस्था ही है।

यह डिंगल गीत साहित्य प्राचीन राजस्थानी की जहां अत्यन्त मूल्यवान धरोहर है, वहीं इतिहास के मूल साधन-स्रोत के रूप में भी इनका असाधारण महत्व है, क्योंकि ये गीत केवल कल्पना-जन्य अथवा मनोरंजन के लिये लिखी गई काव्य-रचना नहीं हैं, इनमें विदेशी ताकतों से जूंझते हुए राजस्थान के एक हजार वर्षों के संघर्ष-पूर्ण इतिहास को जीवन्त रूप में अभिव्यक्ति मिली है। ये गीत उन जूंझारों, दातारों

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation-of America. HHFA(USA)

ग्रौर धर्मवीरों की स्मृति को सुरक्षित रखने वाले हैं, जिन्होंने ग्रपने प्राण हथेली पर रखकर जीवन के सिद्धांतों ग्रौर संस्कृति तथा स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये निरन्तर संघर्ष किया था। राजस्थान का वास्तविक इतिहास लिखने के लिए इस प्रकार की सामग्री का उपयोग ग्रत्यन्त ग्रावश्यक है, क्योंकि ऐतिहासिक घटनाएं ही नहीं परन्तु उन घटनाग्रों को मोड़ देने वाली प्रेरणाग्रों की सशक्त ग्रभिव्यक्ति इन गीतों में हमें परिलक्षित होती है।

ग्राज समय बहुत बदल गया है ग्रौर नवीनता के ऊहापोह में हम हमारी सांस्कृतिक थाती का ग्रवमूल्यन स्वयं ही कर बैठे हैं, ऐसी स्थिति में इस प्रकार के साहित्य का सही मूल्य वे ही लोग ग्रांक सकते हैं, जो हमारी सांस्कृतिक थाती के प्रति ग्रास्थावान हैं ग्रौर इतिहास को परिस्थितिवश खण्डशः न देखकर वैदिक काल से लेकर ग्राज दिन तक एक ही धारा प्रवाह के रूप में देखते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में यदि राजस्थान के इतिहास पर विचार किया जाय तो पता लगेगा कि मध्यकाल में राजस्थान का भारतवर्ष के इतिहास में ग्रद्वितीय योगदान रहा है ग्रौर यहां की सांस्कृतिक मान्यताग्रों ग्रौर हमारी प्राचीन धरोहर को बचाए रखने में उसने जो भूमिका ग्रदा की है, वह ग्रत्यन्त उच्चकोटि की है। इस भूमिका को समझने के लिए इस डिंगल गीत साहित्य का विस्तृत ग्रध्ययन ग्रावश्यक ही नहीं, ग्रपरिहार्य है। महाकवि रवीन्द्रनाथ ने जब कुछ डिंगल गीत एक चारण कवि के मुंह से सुने तो वे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने इन्हें भक्ति साहित्य से भी श्रेष्ठ बताया ग्रौर महामना मदनमोहन मालवीय के तो ये उद्‌गार थे कि इस वीरभावा के पठन-पाठन की व्यवस्था के लिए हिन्दू विश्वविद्यालय में ग्रलग से विभाग की स्थापना हो।

डिंगल गीतों के सर्जन में मारवाड़ के कवियों का विशेष योगदान रहा है। यहां ग्रन्य स्फुट-छन्दों की तरह ही डिंगल गीतों की रचना करने वाले सैकड़ों कवि हुए। उन्होंने ग्रपनी प्रतिभा के बल पर न केवल गीत नायक वीरों को ग्रमर बनाया है ग्रपितु वे स्वयं भी यशस्वी हो गये हैं। इन सब कवियों का परिचय देना तो यहां सम्भव नहीं है परन्तु कुछ चुने हुए श्रेष्ठ गीतकारों ग्रौर उनके कृतित्व का परिचय यहां दिया जा रहा है।

1. दूदो विसराळ

यह कवि मारवाड़ के प्रतापी राजा राव मालदेव का समकालीन था, क्योंकि इसने ग्रपने जिस काव्य-नायक पर गीत रचना की है, वह मालदेव का ही सामंत था।

इस कवि की एक मात्र रचना 'राठौड़ रतनसिंघ री वेलि'[1] उपलब्ध होती है। यह वेलियो गीत में रचित 72 छन्दों की रचना है, जिसका रचनाकाल 1615 वि. के ग्रासपास माना जा सकता है, क्योंकि वेलि में वर्णित युद्ध तथा उसमें रतनसिंह का वीरगति प्राप्त करना ग्रादि घटनाएं इतिहासकारों द्वारा वि. सं. 1614 की मानी गई

1 राठौड़ रतनसिंह री वेलि (परम्परा, भाग 14)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

हैं ।[1] इस वेलि का वर्ण्य विषय बादशाह अकबर का अजमेर के सूबेदार हाजी खां पर फौज भेजना, हाजी खां का भयभीत होकर गुजरात की ओर भाग जाना और शाह कुली खां की अध्यक्षता में फौज का जैतारण पर चढ़ आना व जैतारण के स्वामी राठौड़ रतनसिंह का बड़ी बहादुरी के साथ फौज से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त होना आदि हैं । इस वेलि में कथा-सूत्र तो बड़ा ही सूक्ष्म है, परन्तु युद्ध का वर्णन खूब विस्तार के किया गया है ।

यह रचना छोटी-सी होते हुए भी अनेक दृष्टियों से बड़ी महत्वपूर्ण है । डा. तैस्सितोरी ने भी इसके महत्व को स्वीकार किया है । मुख्यतया यह कृति वीर-रसात्मक है किन्तु इसमें स्थान-स्थान पर रौद्र, भयानक तथा वीभत्स रस का भी परिपाक हुआ है । रतनसिंह के उत्साह, शौर्य तथा वीरोचित हाव-भाव का कवि ने बड़ा ही अनूठा वर्णन किया है । उदाहरणार्थ कुछ चित्र यहां प्रस्तुत किए जाते हैं ।

युद्ध में प्रविष्ट होते समय वीरत्व की भावना से दीप्त रतनसिंह की ओजपूर्ण कान्ति निम्नलिखित पंक्तियों में दर्शनीय है—

तप उल्हास तरसि मुणि सातन, चढ़ि वर सोह चढ़ै धू चीत ।
वीरत रयण तपै तिण वेळा, ऊगा मुहि बारह आदीत ।।

असाधारण वीरता के साथ लड़ते हुए रतनसिंह ने शत्रुओं की फौज को छिन्न-विच्छिन्न कर दिया—

फेरि अफरि फिरणी सी फेरी, वींद रतनसी बांध वड़ ।
धक धूपी फुरळी धौ फुरळी, घेर मिळी सुरतांण घड़ ।।

उसने युद्ध में दुश्मनों का संहार कर लाशों का ढेर-सा लगा दिया—

खड़खट थट लाखावट खळ खट, गजगति वर कीधो गजगाह ।
रातल सावज ध्रविया रतने, पूजवियो पल प्रबळ प्रवाह ।।

इस रचना का अभिव्यक्ति-पक्ष अत्यन्त ही सबल है । भाषा में सर्वत्र प्रवाह और ओज है । कवि शब्द-चयन में बड़ा ही निपुण है । कविता को पढ़ते समय ऐसा लगता है मानो कवि के भाव ने शब्दों को अपने-आप चुन लिया हो । आदि से अन्त तक भाषा की परिनिष्ठता का निर्वाह भी बड़े ही सहज ढंग से किया गया है ।

इस कविता की बहुत बड़ी विशेषता रूपक का आदि से अन्त तक सफल निर्वाह है । अकबर की फौज को विष-कामिनी बताकर और रतनसिंह को दूल्हा बताकर विवाह की रस्मों को चमत्कारिक रीति से युद्ध पर घटित किया है । कहीं-कहीं कवि ने बड़ी भव्य कल्पना भी की है । उसने आकाश को थाल तथा नक्षत्रों को एक स्थान पर अक्षत बताया है ।

उडियण थाळ आवधे आखे,

* *

वधाविजे रतनसी बींद ।

---

1 नींबाज का इतिहास : रामकर्ण आसोपा, पृ. 48

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मृत्यु के महलों में रण रूपी चंवरी में बैठ कर वह विवाह करता है ।

रहियो विचे खड़गहथ रतनो, म्रत्य-मंदिर रिप चंवरी मांह ।

इस प्रकार भाव, भाषा, शैली, अलंकार आदि सभी दृष्टियों से यह रचना डिंगल की एक प्रौढ़ रचना कही जा सकती है । वीर-रस सम्बन्धी अनेक गीतों में कितने ही प्रकार के रूपक देखने को मिलते हैं, परन्तु ऐसे साँगोपांग और विस्तृत रूपक के दर्शन हमें इस कृति में ही होते हैं । वीर और शृंगार का अद्भुत सम्मिश्रण इसमें दूध और पानी की तरह मिला हुआ प्रतीत होता है, फिर भी इस कृति के पाठ से पाठक के हृदय में न केवल रतनसिंह के प्रति श्रद्धा ही उत्पन्न होती है अपितु उसका मानस वीर भावनाओं से उद्वेलित हो उठता है ।

2. अखो भाणोत

यह जोधपुर के राजा उदयसिंह का समकालीन था । उसके पिता भाणराव मालदेव का कृपापात्र था । बचपन में ही पिता की मृत्यु हो जाने के कारण जोधपुर के राजघराने द्वारा ही इसका पालन-पोषण किया गया था ।[1] यह अपने समय के प्रसिद्ध एवं प्रभावशाली कवियों में से था ।[2] राजा उदयसिंह ने जब क्रुद्ध होकर मारवाड़ के कुछ चारणों की जागीर जब्त कर ली थी तब चारणों ने आउवा ठिकाने में उनके विरुद्ध धरना दिया था । धरना देने वालों से सुलह करने के लिए उदयसिंह ने अपनी ओर से अखा को भेजा था, परन्तु सुलह कराने की बजाय वह स्वयं धरने में शामिल हो गया । तब उदयसिंह ने कहलवाया कि इस प्रकार का स्वामिद्रोह करने से तो कटार खाकर मर जाना ही अच्छा था । इसने ऐसा ही किया । यह घटना सम्वत् 1643 की है ।[3] अतः इसका रचनाकाल संवत् 1643 तक माना जा सकता है ।

'देवीदास जेतावत री वेलि' इस कवि की महत्वपूर्ण प्रबन्धात्मक रचना है, जिसमें कवि ने देवीदास जेतावत के वीरतापूर्ण कृत्यों का वर्णन किया है । देवीदास ने अपने भाई पृथ्वीराज का बदला लेने के लिए मेड़ता के शासक राव जयमल पर हमला किया था । वि. सं. 1613 के आसपास महाराणा उदयसिंह, राव कल्याणमल आदि की अध्यक्षता में आने वाली अकबर की सेना को भी देवीसिंह ने पराजित किया था ।[4] 23 छन्दों[5] की इस रचना में इस प्रकार के अनेक वीरतापूर्ण कृत्यों का वर्णन कवि ने किया है । डा. हीरालाल माहेश्वरी ने इसका रचनाकाल सं. 1620 के लगभग माना है ।[6]

---

1 राठौड़ रतनसिंघ री वेलि, परिशिष्ट, पृ. 106

2 दृष्टव्य --द्वारकादास दधवाड़िया री दवावैत ।

3 आउवा रा धरना रा कवित्त ।

4 मिळो जैमिल रांण कल्याण मेड़ते, घणूंज वेहतां विरुद घण ।
बळ छंडियो तुहारे बोले, तिहं ठाकरे जैत तण । (वेलि, छंद संख्या 11)

5 अ. सं. ला. बीकानेर, ग्रंथांक 136

6 राजस्थानी भाषा और साहित्य : डा. हीरालाल माहेश्वरी, पृ. 120

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

गीतों के विशिष्ट शब्द-विन्यास, चित्रोपमता तथा ओजप्रधान भाषा-शैली की दृष्टि से इस काल की कुछ अन्य काव्य-कृतियों की तरह ही इस कृति का भी अपना महत्व है। काव्य-शैली के उदाहरण के लिये छन्द प्रस्तुत हैं--

मांडाया जुतैं प्रथीमल मागिण, वसुधा ताह सांचा वाखाण।
माल कळोधर हियो मेड़ते, तें मालदे तणा मेल्हांण ।।
दळनाइक अगड़ तुहारी देदा, कोइ न हाले अड़स करि।
पाखर रोद्र लगे पतिसाही, प्रघट पंचाहण तपि परि ।।
उदियागिर पवे कुल आंणे, महि वांभण विण कमण भिणे।
कमध प्रवाड़ा गान करे कुण, गयण तणा कुण नखित गिणै ।।

इस वेलि के अतिरिक्त कवि ने स्फुट रचनाएँ भी की हैं, परन्तु अभी तक इनके बहुत कम गीत प्राचीन संग्रहों में उपलब्ध होते हैं। उनकी जो भी स्फुट रचना उपलब्ध होती हैं, उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि कवि प्रौढ़ कल्पना और सशक्त अभिव्यक्ति का धनी है। उदाहरणार्थ राठौड़ ईसरदास पर लिखे गए गीत के दो द्वाले प्रस्तुत हैं—

ताकंती फिरे हिंदुवां तुरकां, जुड़ै न भरता भांत जुई।
मरण तुहारे चंद मछर गुर, अकबर फौज सचीत हुई ।। 1 ।।
कसै न जूसण राग कलासै, विळखी फिरै न पूछै वात।
एकण कमंध मरण उतरिया, असपत फौज तणै अहेवात ।। 2 ।।

3. ईसरदास बारहठ

वीर-रस और भक्ति-रस पर समान रूप से अधिकार रखने वाले महाकवि ईसरदास का जन्म मारवाड़ के भाद्रेस गांव में संवत् 1595 में हुआ था। इनके जन्म-संवत् की पुष्टि करने वाला निम्नलिखित दोहा बड़ा प्रसिद्ध है—

पनरासौ पच्याणवै, जन्मो ईसरदास।
चारण वरण चकोर में, इण दिन हुवौ उजास ।।

चारण जाति में इस कवि का नाम बड़ा ही श्रद्धा के साथ लिया जाता है। इनके भक्ति-सम्बन्धी प्रसिद्ध ग्रन्थ 'हरिरस' का प्रचार सभी शाखाओं के चारणों में रहता आया है। राज्य-वर्ग और साधारण समाज में कवि की बड़ी मान्यता थी, यह बात उनके सम्बन्ध में प्रचलित अनेक प्रकार की किंवदंतियों से प्रकट हो जाती है।[1] कवि की प्रमुख रचनाएं निम्न प्रकार हैं—

(1) हरिरस
(2) छोटा हरिरस
(3) गुण भागवत हंस
(4) गरुड़पुराण
(5) बाळलीला

1 द्रष्टव्य—हालां-झालां रा कुण्डळिया : भूमिका, सं. मोतीलाल मेनारिया।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

(6) निंदा-स्तुति
(7) देवियांण
(8) गुण आगम
(9) गुण वैराट
(10) सभापर्व
(11) रास कैळास
(12) हालां-झालां रा कुण्डळिया तथा
(13) दांण लीला।

साहित्यिक दृष्टि से हालां-झालां रा कुण्डळिया छोटी-सी रचना होते हुए भी डिंगल की वीर-रसात्मक काव्य-कृतियों में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। काव्य-कला की दृष्टि से इनके द्वारा रचे गये स्फुट गीत भी साधारण महत्व के नहीं हैं। उनके कुछ उपलब्ध गीतों के नाम इस प्रकार हैं—

(1) गीन सरवहिया बीजा दूदावत रा (3 गीत)
(2) गीत करण बीजावत रा (2 गीत)
(3) गीत जाम रावळ लाखावत रा (3 गीत)
(4) गीत जाड़ेचा जसा हरधमलोत रा
(5) गीत झाला रायसिंघ मानसिंघोत (3 गीत)
(6) गीत गंगाजी रो
(7) गीत रावत सांवतसिंघोत रो
(8) गीत लाखा धमळोत रौ
(9) गीत राव लाखण रा (6 गीत)
(10) गीत रड़मल बणहळ रौ
(11) गीत साहिब जाड़ेचा रौ

ईसरदास उन गीत रचयिताओं में से हैं, जो अपने भावों को विद्वत्तापूर्ण ढंग से प्रकट करते हुए भी व्यर्थ के शब्द-जंजाल तथा पांडित्य-प्रदर्शन से दूर रहे हैं। ईसरदास का रचनाकाल 16 वीं शताब्दी का प्रथम चरण है। इस समय में पुरानी पश्चिमी राजस्थानी से आधुनिक राजस्थानी ने अपना स्वतंत्र रूप निर्माण कर लिया था। अतः भाषा के अध्ययन की दृष्टि से उनकी स्फुट गीत-रचनाएँ बड़ा महत्व रखती हैं। ईसरदास मुख्यतया भक्तकवि हैं इसलिए उन्होंने अपनी वीर-रसात्मक रचनाओं में किसी प्रकार के अर्थ-लाभ का व्यावहारिक लगाव न रखते हुए सर्वथा स्वतंत्र और सच्ची अभिव्यक्ति प्रदान की है। उदाहरण के लिए एक गीत की कुछ पंक्तियां दृष्टव्य है—

नक्र तीह निवाण निबळ दाय नावै, सदा वसे तटि जिके समंद।
मन वीजै ठाकुरै न मानै, रावळ ओळगिये राजिंद।।
भेट्यौ जैह धणी माद्रेसर, चक्रवत अवर चढ़ै नह चीत।
वास विळास मळैतर वासी, परिमळ बीजै करै न प्रीत।।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

सेवग ताहरा लखा समोभ्रम, अधिपति बीजा थया अनूप ।
रइ कि करै अवर नदि रावळ, रेखा नदी तणा गज रूप ।।
कवि तो राता धमळ कळोधर, भवठि भंजण लीळ भुवाळ ।
लुहवै सरै वसंता लाजै, माण्सरोवर तणा मुणाल ।।

4. दुरसा आढ़ा

दुरसा आढ़ा गोत्र के चारण मेहाजी के पुत्र थे। मेहाजी ने निर्धनता के कारण सन्यास ले लिया था, इसलिये बगड़ी के ठाकुर प्रतापसिंह ने इन्हें पालपोस कर बड़ा किया तथा शिक्षा-दीक्षा दी।[1] इनके जन्म-संवत् व जन्म-स्थान के बारे में विद्वानों में मतभेद हैं। डा. मोतीलाल मेनारिया[2] व श्री सीताराम लाळस[3] के अनुसार उनका जन्म सं. 1595 तथा स्वर्गवास सं. 1708 मानते हैं।[4] जन्म-स्थान के बारे में श्री सीताराम लाळस[5] का मत है कि वे जोधपुर राज्य के अन्तर्गत धूंधला गांव में जन्मे थे। शंकरदान[6] उनका जन्म-स्थान जैतारण मानते हैं, क्योंकि उनके कुछ वंशजों का भी यही मत है, परन्तु उनके जन्म संवत् व स्थान के बारे में निश्चित मत का निर्णय करना पुष्ट प्रमाणों के अभाव में बड़ा कठिन है।

दुरसा आढ़ा ने अपनी काव्य-चातुरी और व्यवहार-कुशलता के कारण अनेक राजाओं से सम्मान प्राप्त किया था। दयालदास की ख्यात[7] में लिखा है कि बीकानेर के राजा रायसिंह ने इन्हें चार गांव, करोड़-पसाव व एक हाथी प्रदान किया था। बादशाह अकबर तथा सिरोही के राव सुरतान देवड़ा से भी इन्हें करोड़-पसाव मिला था।[8] उदयपुर के राणा अमरसिंह से भी जागीर प्राप्त होने का जिक्र प्राचीन ग्रंथों में मिलता है।[9] ये अपने समय के प्रसिद्ध कवि थे और इनकी पहुंच अकबर के दरबार तक थी, जिसके सम्बन्ध में राजस्थान में कुछ प्रवाद आज भी प्रचलित हैं।

दुरसा आढ़ा ने कोई महत्वपूर्ण प्रबन्ध-रचना नहीं की, परन्तु स्फुट रचनाओं के बल पर ही उन्होंने इतना सम्मान और साहित्य-जगत में बहुत बड़ी ख्याति अर्जित की थी। अपने समसामयिक कवियों में राठौड़ पृथ्वीराज के बाद उन्हीं का स्थान है। उनकी रचनाएं निम्न प्रकार हैं—

(1) किरतार बावनी।

---

1 राजस्थांनी सबद कोस, भूमिका, पृ. 136
2 राजस्थांनी भाषा और साहित्य, पृ. 178
3 राजस्थांनी सबद कोस, भूमिका, पृ 136
4 राजस्थांनी भाषा और साहित्य : डा. हीरालाल माहेश्वरी, पृ. 139
5 राजस्थांनी सबद कोस, भूमिका, पृ. 136
6 राजस्थांनी भाषा और साहित्य : डा. हीरालाल माहेश्वरी, पृ. 139
7 दयालदास की ख्यात, भाग 2, पृ. 137
8 राजस्थांनी सबद कोस, भूमिका, पृ. 137
9 साहित्य संस्थान, उदयपुर में डा. ओझा का स्फुट संग्रह।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

(2) राव श्री सुरतांण रा झूलणा ।
(3) झूलणा राव मेघा रा ।
(4) दूहा सोलंकी वीरमदेजी रा ।
(5) छन्द चालकनेस माताजी रै ।
(6) झूलणा राजा मानसिंघजी रा ।
(7) स्फुट गीत व दोहे ।
(8) श्री अज्जाजी भूचर मोरी नी गजगत ।
(9) विरुद छिहत्तरी ।

दुरसा आढ़ा की दीर्घ आयु को देखते हुए उनकी गीत-रचना पुष्कल परिमाण में होनी चाहिए । कुछ प्रमुख गीतों की सूची निम्न प्रकार है—

(1) गीत राजा रायसिंघ कल्याणमलोत रा (4 गीत)
(2) गीत राव सुरतांण देवड़ा रा (5 गीत)
(3) गीत राणा अमरसिंघ प्रतापसिंघोत रा (3 गीत)
(4) गीत राजा सूरसिंघ उदेसिंघोत रा (3 गीत)
(5) गीत गोपाळदास चांपावत मांढणोत रा (2 गीत)
(6) गीत पातसाह अकबर साहजी रो ।
(7) गीत राणा उदेसिंघ रौ ।
(8) गीत बल्लू चांपावत रौ ।
(9) गीत पृथ्वीराज राठौड़ रौ ।
(10) गीत कल्ला रायमलोत रा (4 गीत) ।
(11) गीत हरीरांम मारू रौ ।
(12) गीत पत्ता उरजनोत रौ ।
(13) गीत हाथीसिंघ गोपाळदासोत रौ ।
(14) गीत ईसरदास राठौड़ नींबावत रौ ।
(15) गीत नाराइण मूतै रौ ।
(16) गीत मांनसिंघ अखैराजोत रौ ।
(17) गीत अचळदास जैतमालोत रौ ।
(18) गीत गोपाळदास रौ ।
(19) गीत राव सगतसिंघ रौ ।
(20) गीत राव रतन रौ ।
(21) गीत राव भोज रौ ।
(22) गीत जगरूप जगतसिंघोत रौ ।
(23) गीत वैरसल रौ ।
(24) गीत बींजै देवड़ै रौ ।
(25) गीत वीरमदे सोलंकी रौ ।
(26) गीत सांगा सोलंकी रौ ।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

(27) गीत देवीदास सोलंकी रौ।

(28) गीत मांडण कूंपावत रौ।

दुरसा आढ़ा के गीतों का मुख्य विषय दातारों, वीरों और जूझारों की कीर्ति-गाथा है। उनके गीतों में ओज के साथ-साथ विद्वत्ता भी प्रकट होती है। इस दृष्टि से एक गीत की कुछ पंक्तियां दर्शनीय हैं—

सबदी लग क्रोड़ अजाद रायसिंघ, गहवंत रैणायर वड-गात।
ऊपर लहर सवाई अपतै, छिळतै छातरिया अन छात।।
कीध जिकौ तें दीव कलावत, ओही मौज लहर अनमंध।
जस उर धकै आवतां जातां, बूड अनेरा मुकट-बंध।।
सव लाखां ऊपर नव संहस, लाख पचीसूं दीध हिलोळ।
खित पुड़ घणा गडोथळ खावै, बूडै छात विया जस बोळ।।[1]

इनके वीर-रसात्मक गीतों में पात्रों के उदात्त चरित्र को चित्रित करने वाली भव्य और सशक्त शैली देखने को मिलती है। उनका शब्द-चयन भी बड़ा ही उपयुक्त और भाषा पर पूर्ण अधिकार को प्रकट करने वाला है। वैण सगाई के निर्वाह में भी वे बड़े निपुण हैं। कल्ला रायमलोत पर उनका एक गीत प्रस्तुत है—

हैवे सार न सार हिंदुओं, किरमर साख संसार कहै।
पिंड पांच मुख अने पाखरियो, राव कलौ ने गिरंद रहै।।
साहै साह नकूं समजतियां, जोवै वाट करेवा जंग।
जूह विडार अनेवय जूसण, गोरंभ अने अभनिमो गंग।।
विचित्रां हरवा हुवो विकोहर, धाय मिळै तो मानै घात।
परठे वळे सार में पाखर, अभनिमौ रायमल दुरंग भरात।।

स्फुट गीत-रचना करने वालों में दुरसा आढ़ा ऐसे कवि हैं जिन्होंने परम्परागत विषयों को अपनाते हुए भी भव्य शैली के द्वारा डिंगल गीत साहित्य को महिमामय बनाया है।

5. कविराजा करणीदान कविया

कविया करणीदान डिंगल के उन ख्याति प्राप्त कवियों में हैं जिन्होंने अपनी काव्य-प्रतिभा के बल पर राजस्थान के राजाओं से बहुत बड़ा सम्मान पाया था। कवि के जन्म के सम्बन्ध में अद्यावधि कोई पुष्ट प्रमाण प्राप्त नहीं हुआ है, परन्तु वह उदयपुर के महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय और जोधपुर के महाराजा अजयसिंह का समकालीन था।[2] इन्होंने अभयसिंह के राज्याश्रय में रहकर ही अपनी काव्य-रचना की थी। यह कवि होने के साथ-साथ कुशल राजनीतिज्ञ, ज्योतिष, संगीत आदि विधाओं का ज्ञाता तथा संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और डिंगल भाषा का अच्छा जानकार था। कर्नल जेम्स टाड ने अपने इतिहास में उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ सूरजप्रकास का

---

1 दयालदास री ख्यात, भाग 2, पृ. 127

2 वीर विनोद, भाग 2, पृ. 966

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation-of-America, HHFA(USA)

उल्लेख करते हुए उसकी बड़ी प्रशंसा की है।[1] महाराजा अभयसिंह ने जब अहमदाबाद के युद्ध में सरबुलंदखां को परास्त किया था, तब उस युद्ध में वीरभांण रतनू तथा बखता खिड़िया आदि कवियों के साथ करणीदान भी था,[2] अन्य कवियों की तरह करणीदान ने भी सूरजप्रकास नामक ग्रंथ में उक्त युद्ध का आँखों देखा वर्णन किया है। इस ग्रन्थ का सारांश 'विडद सिणगार' के रूप में कवि ने महाराजा को सुनाया था, जिससे प्रसन्न होकर उन्होंने उसे बड़ी इज्जत देकर पुरस्कृत किया था तथा कवि को हाथी पर चढ़ाकर स्वयं अश्वारूढ़ हो, उसे सम्मान देने के लिए कुछ दूर तक जलेब में चले थे। इस घटना पर कहा हुआ एक दूहा बड़ा प्रसिद्ध है—

अस चढ़ियो राजा अभो, करि चाढ़ै कविराज।
पोहर हेक जलेब में, मोहर हलै महाराज॥

कवि की मुख्य रचनाएँ निम्न प्रकार हैं—

(1) सूरजप्रकास
(2) विड़द सिणगार
(3) अभय भूषण
(4) जती रासौ
(5) महाराणा संग्रामसिंघ रा कवित्त
(6) स्फुट गीत आदि

विभिन्न घटनाओं और प्रसिद्ध पात्रों को लेकर कवि ने अनेक गीत रचे हैं। कुछ गीत निम्न प्रकार हैं -

(1) गीत महाराजा अभयसिंघ रा (3 गीत)
(2) गीत राजाधिराज बखतसिंघ नागौर (2 गीत)
(3) गीत अहमदाबाद रै झगड़ै रौ
(4) गीत महाराजा बहादरसिंघजी रौ
(5) गीत महाराणां संग्रामसिंघजी रा (3 गीत)
(6) गीत रामचंद्रजी रौ, त्रकुट बंध
(7) गीत ठाकुर सेरसिंघ मेड़तिया रो
(8) गीत ठाकुर प्रतापसिंघ खैरवा रौ
(9) गीत लखधीर इंदा री तारीफ रौ
(10) गीत कुसळसिंघ आउवा ठाकुर रौ

कवि के गीत सामान्यतया परिपाटीबद्ध वीर गीत हैं। अलंकार, शैली व अभिव्यक्ति आदि में डिंगळ की काव्य-परम्परा का प्रौढ़ ज्ञान परिलक्षित होता है। उसके गीतों से इतिहास की अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं पर भी प्रकाश पड़ता है, उदाहरणार्थ एक गीत यहां प्रस्तुत करना ही पर्याप्त होगा—

---

1 राजस्थान-इतिहास, बलदेव प्रसाद मिश्र, भाग 2, पृ. 170

2 द्रष्टव्य —सूरजप्रकास (भूमिका), सं. सीताराम लाळस।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

जांणै जगायौ साबूत सोर खिजाये भजंग जांणै,
सूर धाये वातळायौ गजां सेर सींघ ।
रत्रां बोळ चढ़ायौ परा रां देतौ खगां रोळ,
सत्रां गोळ ऊपरां ऊ आयौ सेर सींघ ।।
मारे अणी हरौळां वेहारै गो इळा तमासां,
हकारे वकारै अप धारै जंत्रहास ।
वाधियौ त्राटकै तुरी बगतेस खासावाड़े,
बगतेस खासावाड़े झाटकै बांणांस ।।
खाळ श्रोण छूटै मतवाळां ज्यूं तमाळा खावै
कदमां अंत्राळा झलै वरमाळा कंध ।
आजकां डांणाक वाळा चाल देख भांण आखै,
वरदाळां झोका झोक काळा खांगी-बंध ।।
वीर खेत मेड़तै मछरां फूल धारां बढ़ै,
चढ़ै रथां अछरां अमीरां नेह चाह ।
जमी आभ ध्रु सुमेर पांणी तै पवन जेते,
सदांणी रहाणी कीत जेते सेर साह ।।[1]

6. कविराजा बांकीदास आसिया

बांकीदास का जन्म संवत् 1836 में मारवाड़ के भांडियावास ग्राम में हुआ था ।[2] इनको शिक्षा-दीक्षा देकर विद्वान् बनाने का श्रेय रायपुर ठाकुर अर्जुनसिंह को है, जो स्वयं बड़े विद्या-प्रेमी थे । उनके इस ऋण का आभार कवि ने स्वयं स्वीकार किया है—

माळी ग्रीखम मांह, पोख सजळ द्रम पाळियौ ।
तिण रौ जय किम जाह, अत घण वूठां ही अजा ।।

महाराजा मानसिंह के गुरु आयसजी देवनाथजी की कृपा से ये महाराजा के राज्य-कवि के पद पर पहुंचे और अपनी काव्य-प्रतिभा के बल पर बहुत बड़ा सम्मान व धन आदि अर्जित किया । महाराजा मानसिंह के ये काव्य-गुरु भी थे । मानसिंहजी इनका बड़ा सम्मान करते थे । परन्तु क्रोध के आवेग में कुछ राजनैतिक कारणों से इन्हें दो बार देश-निकाला भी दे दिया था । इस सम्बन्ध में एक कहावत आज भी प्रचलित है—

लाख पसाव तो एक दियौ ने देस निकाळा दोय ।

कहते हैं कि जब महाराजा मानसिंह को गद्दी से च्युत कर उनके लड़के छत्रसिंह को गद्दी पर बैठाया गया था तो उसमें बांकीदास का भी हाथ था । छत्रसिंह की मृत्यु के उपरान्त जब महाराजा मानसिंह पुनः गद्दी पर आसीन हुए तो षड्यंत्र में भाग

---

1 डिंगल गीत, रावत सारस्वत, चण्डीदान सांदू, पृ 127
2 राजस्थांनी सबद कोस, भूमिका, पृ. 166

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America, HHFA(USA)

लेने वाले सभी विरोधियों की उन्होंने खबर ली। ऐसी स्थिति में बांकीदास की हालत बड़ी नाजुक हो गयी थी। जब भाद्राजून ठाकुर बखतावरसिंह ने बांकीदास को उपस्थित करना चाहा तो पहले तो महाराजा ने उन्हें अवसरवादी कह कर नाराजगी व्यक्त की, परन्तु चारण कवि होने के नाते बाद में उनका अपराध क्षमा कर दिया था।[1] कुछ समय बाद उन्हें राजदरबार में प्रवेश की स्वीकृति भी मिल गई, पर जागीर दिलवा देने की याचना की, पर उन विकट परिस्थितियों में यह कार्य करवा देने का साहस किसी का न हुआ। आखिर खारिया नामक छोटे से ठिकाने के ठाकुर नवलसिंह भाटी ने स्वामी भक्ति से प्रभावित कर कविराजा को जागीर लौटा देने को महाराजा को राजी कर लिया। इस सम्बन्ध में बांकीदास का कहा एक गीत बड़ा प्रभावशाली है—

गीत ठाकर नवलसिंघ भाटी खारिया रौ

सगत मेल उत्तर दियौ हाथ भाटक सिवै,
ढग विषम दीठी मन बात ढबती।
मांड रा आभरण नवळ तोसूं मिटै,
जग प्रकट सांसणां तणी जबती ॥ 1 ॥

काज कीरत तणै न कौ बोधै कमर,
निरंतर तजै चुगलां तणा नांम।
बाहुड़ै आज तौ हूंत उरजण बिया,
गयौड़ा तांबपतरां तणा गोंम ॥ 2 ॥

बुरां कांमां षड़ा आज रा बषत में,
राज रा कुमंत्री सरब रूठा।
तुळै थांरी उरड़ देखतां देद तण,
पलदिया अगाहट वळै पूठा ॥ 3 ॥

बैर नांखै चुगल जोधपुर बजांनै,
दुझल हव जिका नै बरज दीजै।
क्रीत रा मंडप री नींव गाढी करण,
किसन रा पौतरा मदत कीजै ॥ 4 ॥[2]

जब मानसिंह ने जब्त जागीर कवि को लौटा दी तो उस उपकार को प्रकट करने हेतु कवि ने यह दोहा कहा—

तर-पत्रां ज्यूं जावता, तांबापतर तमाम।
किसन हरै अवचल किया, नवल उबारण नांम ॥

महाराजा कवि की कितनी कद्र करते थे, उसकी साक्षी में बांकीदास की मृत्यु पर महाराजा मानसिंह का कहा हुआ यह दोहा चारण-समाज में बहुत प्रचलित है।

---

1 महाराजा मानसिंह री ख्यात (सं. डा. नारायणसिंह भाटी)।
2 महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश का संग्रह।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

विद्या कुळ विख्यात, राज-काज हर रहस री।
बांका तो बिन बात, किण आगळ मन री कहां ।।

श्री सीताराम लाळस[1] ने उनका रचना-काल सम्वत् 1860 से सं. 1890 माना है। उन्होंने उनके 41 ग्रन्थ बताए हैं। इन रचनाओं के अतिरिक्त कवि ने बड़ी संख्या में स्फुट गीत, दोहे आदि रचे हैं, जिनमें गीतों का अपना महत्व है। उपलब्ध गीतों में से कुछ की सूची निम्न प्रकार है—

(1) गीत करनीजी रा (2 गीत)
(2) गीत माताजी रा (2 गीत)
(3) गीत देवनाथजी रौ
(4) गीत महाराजा मानसिंघजी रा (6 गीत)
(5) गीत खेजड़ले ठाकरां रा (3 गीत)
(6) गीत भरतपुर रे राजा रौ
(7) गीत चेतावणी रौ
(8) गीत भरतपुर रौ
(9) गीत नींबावतां रै महंत रौ
(10) गीत पाबूजी धांधळोत रौ
(11) गीत राव अमरसिंघ नागौर रो
(12) गीत बलूजी चांपावत रौ
(13) गीत मंजी रौ
(14) गीत किसनगढ रै राजा रौ
(15) गीत रावराजा लिछमणसिंघ सीकर रौ
(16) गीत खुमांणसिंघ चांपावत रौ
(17) गीत रायांनेर री चढ़ाई रौ
(18) गीत दुरगादास राठौड़ रौ
(19) गीत गोपालजी मेड़तिया रौ
(20) गीत नखसिख झमाल
(21) गीत राधा-क्रिसणजी रा (5 गीत)
(22) गीत कजिया री बुराई रौ
(23) गीत वाणी रै संयम रौ
(24) गीत लाधा सोलंकी रौ
(25) गीत रस अलंकार दोसां रौ
(26) गीत ठा. सिवनाथसिंघजी कुचामन रा (2 गीत) आदि

कवि अनेक भाषाओं का ज्ञाता और काव्य-शास्त्र का विद्वान् था, जिससे गीतों में अनेक स्थलों पर पाण्डित्य-पूर्ण अभिव्यक्ति होने पर भी उसे सर्वथा दुरूह और

---

1 राजस्थानी सबद कोस, भूमिका, पृ. 167

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America, HHFA(USA)

प्रयत्न-साध्य नहीं कहा जा सकता । इनकी भाषा में सर्वत्र प्रवाह और विषयानुकूल शब्द-चयन पाया जाता है । वीर-रसात्मक गीतों में जहां ओजपूर्ण शैली अपनाई गई है, वहां भक्ति और शृंगारिक गीतों में सर्वथा माधुर्य दृष्टिगोचर होता है । उपदेश-विषयक गीतों में व्यावहारिक शब्दों और मुहावरों का सफल प्रयोग तथा सरल शब्दावली कवि की बहुत बड़ी विशेषता है । संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि बांकीदास न केवल डिंगल के श्रेष्ठ कवि और विद्वान् ही थे अपितु अपने समय के गीतकारों में उनके गीतों का स्वर, सर्वाधिक महत्वपूर्ण है ।

7. महाराजा मानसिंह जोधपुर

मानसिंह का जन्म वि. सं. 1839 में हुआ था ।[1] बचपन से ही उन्हें राजनैतिक षड्यंत्रों का सामना करना पड़ा था, क्योंकि उनके भाई भीमसिंह ने जोधपुर की गद्दी को प्राप्त करने के लिये अपने कुटुम्बियों को मरवा डाला था । कुछ जागीरदारों की सहायता से मानसिंहजी जालोर के दुर्ग में सुरक्षित रह सके । करीब ग्यारह वर्ष तक जालोर के घेरे में रहकर मानसिंह ने अपने अनिश्चित भविष्य का समय बड़े साहस के साथ निकाला था । उनके साथ अनेक चारण कवि भी थे,[2] जिससे डिंगल में उच्चकोटि की काव्य-रचना करने का अभ्यास इन्हें हो गया था । सं. 1860 में जोधपुर के महाराजा भीमसिंह की अकस्मात मृत्यु हो जाने से इन्हें राजगद्दी मिली ।[3]

राजसिंहासन प्राप्त करने के पश्चात् भी उनका जीवन संत्रर्षमय ही रहा । क्योंकि तात्कालिक राजनैतिक परिस्थितियां राजस्थान के शासकों के अनुकूल नहीं थीं । एक ओर मरहठों के आतंक से राजस्थान के शासक भय-त्रस्त और आतंकित थे तो दूसरी ओर आपसी मनो-मालिन्य के कारण उद्विग्नता छाई हुई थी । अंग्रेजों की बढ़ती हुई शक्ति ने इन्हें और भी आशंकित कर दिया । महाराजा मानसिंह इन सभी परिस्थितियों में एक सफल राजनीतिज्ञ का अभिनय करते हुए चालीस वर्ष तक जोधपुर का राज्य करते रहे । उनके जीवन की अनेक घटनाएँ उनके व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों का विरोधी रंगों से चित्रित कर हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं । विस्तार-भय से उनकी जीवनी पर अधिक प्रकाश डालना यहां सम्भव नहीं है, अतः यह कहना ही पर्याप्त होगा कि मानसिंह असाधारण प्रतिभा के धनी थे । उनमें कवि का हृदय, साधक की साधना, राजनीतिज्ञ की चतुराई और शासक की सतर्कता तथा विद्वान् की दूरदर्शिता हमें दृष्टिगोचर होती है ।

मानसिंह कवि और काव्य-मर्मज्ञ होने के साथ-साथ संगीत, चित्रकला, कामशास्त्र आदि अनेक कलाओं के जानकार थे । नाथ सम्प्रदाय में अनन्य श्रद्धा होने के कारण उनकी काव्य-कृतियों में उच्चकोटि की दार्शनिकता भी पूरी लक्षित होती है । इन्होंने डिंगल व पिंगल दोनों भाषाओं में साहित्यिक रचनाएँ की हैं । अधुनातन खोज के

---

1 मारवाड़ का इतिहास, विश्वेश्वर नाथ रेउं, पृ. 401
2 "वाल्ही लाज तजे के बहियां सतरह तद रहिया सुकव"
3 वीर विनोद, श्यामलदास, दूसरा भाग, पृ. 860

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

अनुसार उनकी 50 कृतियां मिलती हैं।

गीत रचना करने में महाराजा मानसिंह बड़े निपुण थे। उन्हें चौरासी प्रकार के गीतों का पूर्ण ज्ञान था, जैसा कि उनके समसामयिक कवि के एक गीत के पद्यांश से प्रकट होता है—

चंदन ललत-मुगट चौरासी, सह कमंध झड़ गीत सराह।
धरम नेम विपाळ बिया घन, समझाण गुण दूजा गजसाह।[1]

उन्होंने अनेक विषयों को लेकर सुन्दर गीत-रचना की है। कुछ गीतों के नाम नीचे दिए जा रहे हैं—

(1) गीत खेजड़ले ठाकुर सगतसिंघजी रौ
(2) गीत सादूलसिंघजी साथीण रौ
(3) गीत मोहकमसिंघ चांपावत रौ
(4) गीत सबळसिंघ जैतावत रौ
(5) गीत चारणां री तारीफ रौ
(6) गीत भैरजी वणसूर रौ
(7) गीत माधोसिंह चांपावत रौ
(8) गीत देवनाथ जी रौ
(9) गीत लाडूनाथजी रौ
(10) गीत जलंधरनाथजी रौ
(11) गीत महाराणा भीमसिंघजी रौ
(12) गीत सिणगार रस रौ
(13) गीत सूरवीर रौ
(14) गीत कायर रौ
(15) गीत भाटियां री तारीफ रौ

महाराजा मानसिंह के गीतों का कलात्मक पक्ष तो सबल है ही, उनके गीतों में जीवन के प्रति दृष्टिकोण और व्यक्तिगत विशेषताएँ आदि भी सुन्दर रूप से व्यक्त हुई हैं। जीवन की विकट परिस्थितियों में से गुजरने पर भी परम्परागत मान्यताओं और राजस्थान की कुछ सांस्कृतिक विशेषताओं से उनका गहरा लगाव रहा है। आउवा ठाकुर माधोसिंह ने जालोर के घेरे के समय इनकी बड़ी मदद की थी, उनका आभार कवि ने बड़े ही मुक्त भाव से व्यक्त किया है। गीत की कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं—

ग्रही निज हाथ मो वांह आणी जगत, प्रकट कीरत चली समंद पाजा।
कहै आगोलगां येह आलम कथन, रिड़मलां थापिया जिकै राजा।।
ज्यां करां लखण रा अंटवै जोस रा, प्रगट के बार ज्यां बिरद पायौ।
जांणियो मूझ विल जगत हव जांणसी, आवियां पत्र जोधांण आयौ।।

---

1 सीताराम लाळस, जोधपुर का संग्रह।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America, HHFA(USA)

उदयपुर के महाराणा भीमसिंह की पुत्री कृष्णाकुमारी के विवाह को लेकर जो बहुत बड़ा राजनैनिक बखेडा हुम्रा, वह इतिहास में प्रसिद्ध है। महाराजा मानसिंह उस षड्यंत्र के शिकार बने थे, अतः महाराणा भीमसिंह के साथ उनके सम्बन्ध अच्छे न होते हुए भी भीमसिंह की मृत्यु पर उनके वास्तविक गुणों की प्रशंसा करते हुए उन्होंने बड़ी भाव-विह्वल शैली में महाराणा को गीत के माध्यम से श्रद्धांजलि अर्पित की थी। इससे मानसिंह की गुणग्राहकता, स्पष्टवादिता और शत्रु की सच्ची प्रशंसा करने की सांस्कृतिक परम्परा में अनन्य निष्ठा का हमें पता लगता है। गीत की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं—

गुण में जण जण कंठ गवीजै, निमळ ज्यूं निझर में नीर।
जग मांझळ विसतार घणौ जस, हुवौ अमावड़ दुवा हमीर॥
अरसी-सुत कीरत दिन ऊगै, परसण घण जोजन पारंभ।
अेक खण्ड की हुवै अमावड़, अन खंडां भावणा असंभ॥

महाराजा मानसिंघ नाथजी के अनन्य भक्त थे। अतः पद्य और गद्य में अनेक रचनाएँ नाथजी की स्तुति और दार्शनिक विचारों को व्यक्त करने के लिए इन्होंने लिखी थीं। गीत के माध्यम से भी उनकी अनन्य भक्ति और श्रद्धा व्यक्त हुई है—

मांन कहै न्रप प्रभु म्हारां, नाथ जलंधर नांमी।
जीवन भगत मुगत पद जांचू, जोग कळपतर जांमी॥

कवि के अधिकांश गीतों का सम्बन्ध निजी जीवन की घटनाओं और विशिष्ट प्रकार की परिस्थितियों से है, जिससे उनके गीतों में स्वाभाविकता, तल-स्पर्शिता और एक प्रकार की अभिव्यक्तिगत उन्मुक्तता दृष्टिगोचर होती है, जो उनकी कृतियों के साहित्यिक गौरव को और भी बढ़ा देती है।

कवियों के आश्रयदाता के रूप में महाराजा मानसिंह का महत्व सर्वविदित है, परन्तु डिंगल-काव्य को उनकी निजी देन भी अपने समसामयिक किसी भी कवि से कम नहीं कही जा सकती।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि राजस्थानी साहित्य के विशाल उपवन में गीतों की अपनी अलग ही छटा है। खेद की बात है कि आधुनिक समय में डिंगल गीतों की रचना तो क्या इनके पठन-पाठन की भी कोई व्यवस्था नहीं है। आधुनिक युग में भी यदि कोई राजस्थानी कवि उच्चकोटि की काव्य रचना करना चाहता है तो उसके लिये यह अनिवार्य है कि वह राजस्थानी की इन प्राचीन विधाओं से सुपरिचित ही नहीं हो अपितु उनके मर्म को भी भली-भांति समझे।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मारवाड़ की चित्रकला

डॉ. जयसिंह नीरज

भारतीय चित्रकला में राजस्थानी चित्रकला का महत्वपूर्ण स्थान है। अजन्ता की परम्परा को वहन करने वाली इस कला का अपना निजी सांस्कृतिक परिवेश और स्थान है। विशुद्ध राजस्थानी चित्रकला का प्रारम्भ 15 वीं शती के उत्तरार्ध और 16 वीं शती के पूर्वार्ध के बीच 1500 ई. के आसपास माना जाता है। राजस्थानी चित्रकला अन्य भारतीय शैलियों से प्रभावित होती हुई राजस्थान के वीर प्रदेश में पल्लवित हुई। इसका विकास एवं निर्माण राजस्थान के जितने भी प्रमुख प्राचीन नगर, राजधानियां तथा धार्मिक और सांस्कृतिक प्रतिष्ठान हैं, वहाँ चित्रकला पनपी और प्रतिष्ठित हुई। इसके अतिरिक्त कवियों, चित्रकारों, संगीतज्ञों, शिल्पाचार्यों आदि का जमघट दरबारों में होने के कारण राजस्थानी चित्रकला की अटूट धारा अनेक रियासती शैलियों, ठिकाणा पेन्टिंग में परिप्लावित हुई।

इस दृष्टि से राजस्थानी की वृहद कला को हम चार स्कूलों में विभाजित कर सकते हैं—

1 मेवाड़ स्कूल
2 मारवाड़ स्कूल
3 हाड़ौती स्कूल
4 ढूंढाड़ स्कूल

मारवाड़ स्कूल की चित्रकला का वैभव राजस्थान में जोधपुर शैली, बीकानेर शैली और जगतप्रसिद्ध किशनगढ़ शैली तथा जैसलमेर, नागौर, घाणेराव, सावर, अजमेर उपशैलियों के रूप में रेखांकित किया जा सकता है। किशनगढ़ शैली का अलग ही अस्तित्व है, पर राठौड़ों की रियासत होने के कारण यहां की चित्रकला की परम्परा जोधपुर से जोड़ी जानी चाहिए।

मेवाड़ की भांति मरु-प्रदेश ने भी अजन्ता शैली की परम्परा का निर्वाह किया। इसका पूर्व रूप मण्डोर के द्वार की कला से आंका जा सकता है। गूर्जर प्रतिहारों के समय में यह प्रदेश कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थल था। मण्डोर तथा ओसियां के प्राचीन मन्दिरों की उत्कृष्ट मूर्तिकला के साथ चित्रकला का विकास न हुआ हो यह माना नहीं जा सकता, पर बिना तथ्यों के कुछ भी कह पाना कठिन है।

तिब्बती यात्री तारानाथ ने 7 वीं शती में मरु प्रदेश में श्रीरंगधर नामक चित्रकार का उल्लेख किया है, जिससे ज्ञात होता है कि मारवाड़ में चित्रकला की पूर्व परम्परा रही है। प्राचीन समय में यह भाग गुजरात प्रांत का ही भाग था, अतः पश्चिमी राजस्थान की कला को गुजरात शैली, जैन शैली, अपभ्रंश शैली के विकास-

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

शील स्वरूप को मरु प्रदेश से अलग नहीं किया जा सकता। बहुत से जैन ग्रन्थ और अपभ्रंश ग्रन्थों के चित्रण का उल्लेख मरु प्रदेश में भी पाया गया है। वास्तव में तो राजस्थानी चित्रकला का उद्भव जैन शैली और अपभ्रंश शैली से ही हुआ है। जिसका केन्द्र स्थल राजस्थान का यह पश्चिमी क्षेत्र ही रहा है।

प्राचीन मरुप्रदेश में राष्ट्रकूट राजपूतों ने अपना राज्य स्थापित किया। राठौड़ वंशी जोधा द्वारा स्थापित जोधपुर, बीका द्वारा बीकानेर, किशनसिंह द्वारा किशनगढ़, राज्यों एवं विभिन्न सामंतों, ठिकानों और पड़ौस के राज्यों में विकसित होने वाली कला मारवाड़ी चित्रकला के नाम से जानी जाती है, जो अनेक शैलियों और उप-शैलियों में समय-समय पर अपना विकास पाती रही है।

जोधपुर शैली

जोधाजी द्वारा राज्य स्थापना के बाद इस क्षेत्र ने भारतीय संस्कृति की समृद्धि में अपना अपूर्व योगदान दिया। जैन शैली, गुजरात शैली और अपभ्रंश शैली का नवीनीकरण हुआ। मारवाड़ की सांस्कृतिक परम्परा एवं कलात्मक परिवेश को नया रूप देने का श्रेय मालवदेव को है। राजा मालवदेव (1532-68) से पूर्व जोधपुर शैली पर मेवाड़ शैली का पूर्ण प्रभाव था, किन्तु मालवदेव ने अपनी वीरता, विद्वत्ता एवं दूरदर्शिता से मारवाड़ का फिर स्वतंत्र स्वरूप स्थापित कर कला को विकसित किया। प्रारम्भिक कला की दृष्टि से उनके समय का प्रसिद्ध 'उत्तराध्ययन सूत्र' जो बड़ौदा संग्रहालय में सुरक्षित है, बहुत महत्व रखता है। चौखेलाव महल के भित्ति चित्रों में भी तत्कालीन चित्रण का स्वरूप देखने को मिलता है।

17वी शती के प्रारम्भ में जोधपुर शैली के अनेक चित्र बने, जिनमें मुगल प्रभाव होते हुए भी मौलिकता उल्लेखनीय है। राजा सूरसिंह के समय (1595-1620) के अनेक चित्र आर्ट एण्ड पिक्चर गैलेरी बड़ौदा तथा कु. संग्रामसिंह के निजी संग्रहालय में उपलब्ध हैं। सूरसिंह कलाप्रेमी राजा थे। उनके समय के कलापूर्ण ऐतिहासिक सचित्र ग्रंथों में 'ढोला मारू' तथा पुस्तक प्रकाश, जोधपुर के 'भागवत' का प्रमुख स्थान है। सन् 1610 में चित्रित यह ग्रंथ मारवाड़ की अनेक स्थानीय विशेषताओं से युक्त है।

कु. संग्रामसिंह के संग्रह में सन् 1623 में निर्मित एक 'रागमाला' चित्रावली ऐतिहासिक महत्व की है, जो पाली के प्रसिद्ध वीर विट्ठलदास चम्पावत के लिए चित्रित की गयी थी। इन रागमाला चित्रों में मारवाड़ की ग्रामीण कला का विशेष प्रभाव है।

17वीं शती के मध्य में अंकित जोधपुर शैली के सूरसागर के पदों पर आधारित कुछ चित्र बड़ौदा म्यूजियम तथा कु. संग्रामसिंह के निजी संग्रह में उपलब्ध हैं, जिनमें काव्यों के भावों को कलाकारों ने चतुराई से अंकित किया है। बड़ौदा संग्रहालय में ही प्राप्त रसिक प्रिया का चित्रण भी इसी समय में हुआ जिसमें रंगों की चटकता और वस्त्राभूषणों का अभिजात्य विशेष उल्लेखनीय है।

जोधपुर शैली का दूसरा दौर महाराजा जसवंतसिंह के शासनकाल से प्रारम्भ

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

हुआ। राजा जसवन्तसिंह विद्वान् एवं कला प्रेमी थे। उनके समय में मारवाड़ क्षेत्र कृष्ण भक्ति परम्परा का गढ़ रहा। इसलिए कृष्ण चरित्र को आधार बना कर बहुत से चित्र बने। महाराजा जसवंतसिंह औरंगजेब के प्रमुख सेनापति थे, अतः मुगल कला का आदान-प्रदान स्वाभाविक था। इस समय के चित्रों में मुगल-शैली का प्रभाव अपने समृद्ध रूप में जोधपुर शैली में आया। इस समय के चित्र अधिक सरस तथा प्रखर हैं। इन चित्रों की रेखायें, भाव-भंगिमाएँ तथा रंगयोग देखते ही बनता है। कृष्ण-भक्ति के प्रसार के फलस्वरूप लोककलात्मक प्रभाव भी जोधपुर शैली में विशेष दर्शनीय है। लोकजीवन से सम्बन्धित लोकगाथाओं के चित्रण की परम्परा भी जोधपुर शैली की विशेषता रही, जिसमें ढोला मारू, ऊजळी जेठवा, मूमलदे, निहालदे, रूपमति-बाजबहादुर जैसे प्रसंग विशेष चित्रित हुए हैं।

वीर दुर्गादास के अपूर्व साहस के फलस्वरूप अजीतसिंह का शासनकाल, कला के विकास की दृष्टि से भी विशेष उल्लेखनीय रहा। इस समय के चित्रों के विषय रसिकप्रिय गीत-गोविन्द जैसे काव्य संग्रह तथा राज दरबार, आखेट, उत्सव, जुलूस एवं राजाओं और सामन्तों के व्यक्ति चित्र आदि रहे। राजकीय संरक्षण के कारण अभयसिंह तथा रामसिंह के शासनकाल में भी जोधपुर शैली को विशेष प्रोत्साहन मिला। रागरागिनी, बारहमासा, लोककथाएं आदि के साथ ही व्यक्तिगत शबीहों का चित्रण भी विशेष वेशभूषा में हुआ।

19वीं शती में मारवाड़ पर नाथ सम्प्रदाय का विशेष प्रभाव रहा। सन् 1803 से महाराजा मानसिंह के शासनकाल में जोधपुर शैली का अन्तिम चरण प्रारम्भ हुआ। राजा मानसिंह के गुरु नाथ सम्प्रदायी अयास जी देवनाथ थे, जिनके अनेक मठों में चित्रकला परिपोषित और सुरक्षित हुई। इसी समय के मतिराम के 'रसराज' पर आधारित 63 चित्र नाथ सम्प्रदाय के किसी मठ से प्राप्त हुए, जो रामगोपाल विजयवर्गीय, कु. संग्रामसिंह तथा राजकीय संग्रहालय जयपुर में उपलब्ध हैं। यद्यपि इस समय जोधपुर शैली में सर्वाधिक चित्र बने, पर कला की दृष्टि से उतने उत्कृष्ट नहीं हैं। कुचामन, घाणेराव, नागौर, पाली, जालोर आदि प्रमुख नगरों में सामन्तों ने चित्र शालाएं बनाकर कला को प्रोत्साहित किया।

19 वीं शती के मध्योपरान्त से अन्य राजस्थानी शैलियों की भांति जोधपुर शैली भी फोटोग्राफी के प्रभाव के कारण धीरे-धीरे पतनोन्मुख हो गयी।

जोधपुर शैली की विशेषताएँ

जोधपुर शैली मारवाड़ स्कूल की प्रमुखतम शैली है, पर आज भी इस शैली के प्राचीन चित्र बहुत कम मात्रा में उपलब्ध हैं। अधिकतर चित्र 19 वीं शती प्रारम्भ के ही उपलब्ध होते हैं।

मेवाड़ स्कूल का विशेष प्रभाव होने के उपरान्त भी जोधपुर शैली की अपनी निजी विशेषताएं हैं, जिसके कारण उसका अलग संविधान प्रकाश में आता है।

इस शैली के पुरुष लम्बे-चौड़े, गठीले बदन के होते हैं। उनके गलमुच्छ, ऊंची पगड़ी, राजसी वैभव के वस्त्राभूषण विशेष प्रभावशाली होते हैं। स्त्रियों के अंग-

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

प्रत्यंगों का अंकन भी गठीला है। उनकी वेशभूषा में ठेठ राजस्थानी लहंगा, ओढ़नी और लाल फूंदने का प्रयोग प्रमुख रूप से हुआ है।

स्थानीय प्रभाव के अतिरिक्त मुगल प्रभाव भी शैली में उल्लेखनीय है। लाल और पीले रंगों का कलात्मक प्रयोग, सामंती वैभव का राजसी ठाठ-बाट से युक्त चित्रण तथा जनजीवन का सरल चित्रण भी शैली की विशेषता है। महल माळियों का अंकन जहां विस्तार से हुआ है, वहीं प्रकृति के चित्रण में भी मारवाड़ के सैरों के अनुकूल ही चित्रण हुआ है।

इस शैली के प्रमुख चित्रकार जिन के नाम उपलब्ध हो सके, वे वीरजी (1623), नारायणदास (1700), भाटी अमरदास (1750), छज्जू भाटी, किशनदास (1800), दाना (1810), भाटी शिवदास, देवदास, जीतमल (1825), कालूराम (1831) आदि हैं। जोधपुर मारवाड़ स्कूल की एक प्रमुख शैली है, इस पर विस्तार से शोध होना अभी बाकी है।

बीकानेर शैली

सुदूर मरु प्रदेश में राठौड़ वंशी राव बीकाजी द्वारा सन् 1488 में बीकानेर राज्य की स्थापना हुई। मारवाड़ का ही एक अंग होने के कारण तथा जोधपुर के वंशज होने के कारण बीकानेर की कलात्मक धरोहर मारवाड़ स्कूल की ही परम्परा में एक महत्वपूर्ण कड़ी गिनी जाती है। बीकानेर राज्य अनेक बाह्य प्रभावों के उपरांत भी कलात्मक दाय की दृष्टि से अपना मौलिक स्थान रखता है। अन्य राजस्थानी शैलियों की भांति बीकानेर की चित्रकला का भी 16 वीं शती के अन्त से प्रादुर्भाव माना जाता है।

बीकानेर शैली के प्रारम्भिक चित्र महाराजा रायसिंहजी के समय (1571-1591) के चित्रित भागवत पुराण के माने जाते हैं। रायसिंह स्वयं संस्कृत के विद्वान थे। रायसिंह महोत्सव तथा ज्योतिष रत्नाकर ग्रंथ उनके द्वारा लिखे गये। बीकानेर के प्रारम्भिक चित्रों में जैन स्कूल का पूर्ण प्रभाव दर्शनीय है। मथेरण जैन यति थे, जिन्होंने कालान्तर में जैन धर्म स्वीकार लिया और चित्रकर्म करने लगे। उन्होंने जैन धर्म के ग्रंथों के चित्रण के साथ ही बीकानेर शैली की मौलिकता में जैन स्कूल का प्रभाव प्रदर्शित किया।

राजस्थान एक वृहद प्रदेश है। आपसी सम्बन्धों तथा मुगलों के प्रभाव के कारण यहां की चित्रकला में पारस्परिक प्रभाव विशेष दर्शनीय है। महाराजा रायसिंह का विवाह मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह (1537-1572) की पुत्री जसमादे के साथ हुआ। तथा दूसरा विवाह सन् 1592 में जैसलमेर में हुआ, अतः बीकानेर शैली का भागवत पुराण (1590 लगभग), जैसलमेर के कुंहरराज के लिए लिखित एवं चित्रित माधवानल कामकंदला (1603) तथा मेवाड़ शैली का विल्हण कृत चोर पंचाशिका (1540) और नसीर दी द्वारा चित्रित चावड की रागमाला (1605) के चित्रण में शैली, तकनीक और रंगों की दृष्टि से विशेष समता देखने को मिलती है।

बीकानेर के राजाओं का मुगल दरबार में महत्वपूर्ण स्थान था। महाराजा रायसिंह

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

ने सन् 1604 से 1611 तक दक्षिण में बुरहानपुर का गवर्नर रह कर कलाकृतियों का संग्रह किया। रासमाला चित्रावली इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

इस प्रकार बीकानेर शैली का प्रारम्भ 16 वीं शती उत्तरार्ध से मानना चाहिए। धीरे धीरे यह शैली अनेक सम्पर्कों के कारण विकसित होती हुई अपनी मौलिक दाय की ओर अग्रसर हुई।

बीकानेर शैली का दूसरा मोड़ महाराजा अनूपसिंह के समय से प्रारम्भ होता है। पर बीकानेर शैली के बीच की कड़ी भी कम महत्वपूर्ण नहीं रही होगी। चित्रों की अनुपलब्धता के कारण इस समय के बारे में कुछ कह पाना कठिन है। जहांगीर और शाहजहां के समय बीकानेर राजघराने का गहन सम्बन्ध रहा, जिससे कला और कलाकारों का आदान-प्रदान स्वाभाविक था। सन् 1606 में नूरमोहम्मद पुत्र शाह मोहम्मद का बनाया बीकानेर शैली का सर्वाधिक पुराना व्यक्ति चित्र है। संग्रहालयों एवं निजी संग्रह में बहुत से ऐसे चित्र हैं जिनके माध्यम से इस समय के चित्रों का अध्ययन सम्भव है।

शाहजहां के समय में मुसव्विरों की भरमार हो गयी थी, अतः कलाकार आश्रय पाने के लिए अन्यत्र जाने लगे। औरंगजेब की अनुदार रीति के कारण मुगल दरबार से कला निष्कासित होकर राजस्थान की रियासतों में प्रश्रय पाने लगी। बीकानेर का प्रसिद्ध उस्ता परिवार जो मुगल काल में लाहौर में केन्द्रित था वह औरंगजेब के समय में महाराजा कर्णसिंह और अनूपसिंह के दरबार में बीकानेर आ गया। बीकानेर शैली के चित्रों में कलाकार का नाम उसके पिता और संवत सहित उपलब्ध होता है। उस्ता आसीरखां कर्णसिंह के समय (1650) में दिल्ली से बीकानेर आया और उत्तम चित्र बनाने लगा।

महाराजा अनूपसिंह स्वयं साहित्यिक एवं कलात्मक रुचि के व्यक्ति थे, अतः उन्होंने दिल्ली और लाहौर के कलाकारों का सम्मान किया। वे चित्रकार मुगल शैली में पारंगत थे, पर बीकानेर आकर उन्होंने अनूपसिंह के रुचि के अनुकूल हिन्दू कथाओं के संस्कृत, हिन्दी, राजस्थानी काव्यों को आधार बनाकर सैकड़ों चित्र बनाए, जो राजपूती सभ्यता और संस्कृति से मिश्रित होकर बीकानेर शैली के उत्कृष्ट चित्र कहलाए। डा. रघुबीरसिंह का कथन है कि महान मुगलों के शासन काल में जिस नूतन सम्मिश्रित भारतीय संस्कृति का उद्भव हुआ था, अब इन राजदरबारों में उसी का पुनः समन्वय और विकास होने लगा। महाराजा अनूपसिंह के समय में यह विकास विशेष दर्शनीय है। उनके दरबारी मुसव्विर रुकनुद्दीन का इस दृष्टि से योगदान महत्व का है। उसने सैकड़ों चित्र बनाये। केशव की रसिकप्रिया तथा बारहमासा के चित्र इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। उसका पूरा परिवार बीकानेर की कला के लिये समर्पित हो गया। उसके बेटे साहबदीन ने भागवत पुराण के चित्र बनाये तथा उसके पोते कायम ने 18वीं शती प्रारम्भ में बीकानेर शैली का चित्रण किया।

महाराजा अनूपसिंह के समय मे मथेरण परिवार के मुन्नालाल, मुकुन्द, चन्दूलाल आदि ने भी बीकानेर शैली के विकास में विशेष योग दिया। मथेरण परिवार तथा

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

उस्ता परिवार के कलाकारों ने कला प्रेमी राजा अनूपसिंह के युग में बीकानेर शैली को चर्मोत्कर्ष पर पहुंचा दिया, जिसके सचित्र ग्रंथ तथा लघुचित्र राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली, बड़ौदा संग्रहालय तथा महाराजा बीकानेर कर्णीसिंह के निजी संग्रह में आज भी उपलब्ध हैं।

18वीं शती में बीकानेर शैली में तृतीय मोड़ आया। मुगलों के पतन के कारण बीकानेर शैली मुगल शैली से मुक्त हो गयी तथा आपसी विवाह सम्बन्धों के कारण जयपुर, बून्दी, मेवाड़, पहाड़ी आदि शैलियों का प्रभाव बीकानेर शैली पर आया। मारवाड़ स्कूल के अन्तर्गत होने के कारण किशनगढ़ शैली का प्रभाव इस के चित्रों में विशेष दर्शनीय है। इस समय राजस्थानी शैली में चित्र बने जो कला की दृष्टि से उत्तम हैं।

मथेरण परिवार के चितारों ने अपनी परम्परा को कायम रखा। उन्होंने जैन ग्रंथों की अनुकृति, धर्मग्रंथों का लेखन एवं तीज त्यौहारों पर राजाओं के व्यक्ति चित्र बनाकर उन्हें भेंट किये। मुन्नालाल मुकुन्द (1668), रामकिशन (1770), जय किशन मथेरण, चन्दूलाल (1678) आदि चित्रकारों के नाम एवं संवत् अंकित चित्र आज भी देखने को मिलते हैं।

इस समय के चित्रकारों में उस्ता परिवार के उस्ता कायम, कासिम, अबुहमीद, शाह मुहम्मद, अहमदअली, शाहबदीन, जीवण आदि प्रमुख हैं, जिन्होंने रसिकप्रिया, बारहमासा, रागरागिनी, कृष्ण लीला, शिकार, महफिल तथा सामंती वैभव का चित्रण किया।

भित्ति चित्रों की राजस्थानी परम्परा को बीकानेर शैली ने आगे बढ़ाया। बीकानेर किले के महल, लालगढ़ पैलेस, अनेक छतरियों आदि का भित्ति चित्रण इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। बीकानेर में काष्ट पट्टिकाओं पर उत्कृष्ट चित्रण हुआ। राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली की कंवाड़ जोड़ी पर राधाकृष्ण की जोडी का छवि अंकन इस कथन का साक्षी है। ऊंट की खाल पर चित्रण भी बीकानेर की निजी विशेषता रही है।

शैली की विशेषताएं बीकानेर राज्य का मुगल दरबार से गहन सम्बन्ध होने के कारण मुगल शैली की सभी विशेषताएं बीकानेर की प्रारम्भिक चित्रकला में दृष्टव्य हैं। कई समीक्षक तो इसे प्रांतीय मुगल शैली (प्रोविन्शियल मुगल स्टाइल) का उपरूप ही मानते हैं। किन्तु इकहरी तन्वंगी मृगनैनी कोमल ललनाओं का अंकन, नीले-हरे और लाल रंगों का प्रयोग, शाहजहां और औरगजेब शैली की पगड़ियों के साथ ही ऊंची मारवाड़ी पगड़ियां, ऊंट, हरिन तथा बीकानेरी रहन सहन और राजपूती संस्कृति की छाप हमें उसे अलग शैली मानने को प्रेरित करती है।

बीकानेर के राजा अधिकतर दक्षिणी मोर्चों पर मुगलों के गवर्नर रहे, अतः दक्षिणी शैली का प्रभाव बीकानेर शैली पर सर्वाधिक है। लम्बी इकहरी नायिकाएँ साइप्रस और नारियल के वृक्षों का दक्षिणी अंकन, उछलते फव्वारे, हरे रंग का प्रयोग विशेष दर्शनीय हैं। दक्षिणी मोर्चों से राजपूत सैनिक और कलाकार विजयनगर, गोलकुण्डा, अहमदनगर, मालवा होकर लौटते रहे, अतः वहां की कला का

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

प्रभाव होना स्वाभाविक था।

बीकानेर शैली में रेखाओं की गत्यात्मकता, कोमलांकन तथा बारीक रेखांकन विशेष हुआ है। रेखाओं का संयोजन प्रभावशाली बन पड़ा है। चटक रंगों के स्थान पर कोमल रंगों का प्रयोग हुआ है। लाल, बैंगनी, जामुनी, सलेटी, बादामी रंगों का प्रयोग शैली की विशेषता रही है। मोतियों के आभूषण बीकानेर शैली में अत्यधिक अंकित किये गये हैं। पहनावे में मुगल एवं राजपूती समिश्रण है। किशनगढ़ शैली के समान लम्बी तन्वंगी नायिकाएँ, खजन पक्षी-से तीखे नेत्र, तंग कचुकी, घेरदार घाघरे, तथा भेड़, बकरी, ऊंट, कुत्ते, कुंज, सारस और मरुस्थल का चित्रण 18 वीं शती की बीकानेर शैली में अधिक मिलता है। इसके बाद की शैली में झालरदार बादलों का अंकन चन्द्र महल, लालनिवास, सरदार महल आदि के भित्तिचित्रों में विशेष दर्शनीय है। बालू के टीलों का अंकन और चीनी और ईरानी कला से प्रभावित मेघ मण्डल, पहाड़ों और फूल पत्तियों का आलेखन उल्लेखनीय है।

बीकानेर शैली को मथेरण एवं उस्ता परिवार ने पल्लवित एवं पुष्पित किया। मथेरणों की गवाड़ में आज भी उनके वंशज शादी विवाह पर घरों में चित्रांकन करते हैं तथा उस्ता परिवार के स्वर्गीय हिस्सामुद्दीन उस्ता ऊंट की खाल पर चित्रकारी कर अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुके हैं।

किशनगढ़ शैली

राजस्थानी शैली में किशनगढ़ शैली का विशिष्ट स्थान है। अजमेर के पास अवस्थित भूतपूर्व छोटी-सी स्टेट किशनगढ़ के राज्य दरबार में पोषित चित्रशैली किशनगढ़ शैली के नाम से प्रख्यात है, जिसको प्रकाश में लाने का श्रेय विद्वान एरिक डिकिन्सन और डॉ. फैयाजअली को है।

विकास—किशनगढ़ राज्य की नींव जोधपुर से राठौड़ वंशी राजा उदयसिंह के आठवें पुत्र किशनसिंह ने सन् 1609 में डाली। राजा किशनसिंह को बादशाह जहांगीर द्वारा एक हजार पैदल और पांच सौ घुड़सवारों का मनसब प्रदान किया गया। जोधपुर राज्य तथा मुगल दरबार से सम्बन्धित होने के कारण यहां के राजा राजसी वैभव और कलात्मक जीवन से पूर्व परिचित थे। मारवाड़ स्कूल की उन्नत शाखा किशनगढ़ शैली ने एक शतक उपरान्त राजा सावन्तसिंह के समय अपने उत्कर्ष पर पहुँचकर राजस्थानी चित्रकला में अपना मौलिक एवं उत्कृष्ट स्थान बना लिया।

पीढ़ी के पांचवें राजा रूपसिंह (1643-1658) ने सामरिक कठिनाइयों के कारण रूपनगर को अपनी राजधानी बनाया, जो राजा सावंतसिंह के समय तक रही। राजा रूपसिंह विद्याप्रेमी और भक्त हृदय थे। उन्होंने अपने पूर्वजों की भांति वल्लभकुल सम्प्रदाय की दीक्षा ली तथा राधाकृष्ण की भक्ति को अपने जीवन और मोक्ष का साध्य समझा। सामयिक चित्रकारों ने अपने स्वामी की प्रसन्नता के लिए राधा माधव की लिलाओं को चित्रण द्वारा साकार करना प्रारम्भ किया।

रूपसिंह के उपरान्त राजा मानसिंह (1658-1706) गद्दी पर बैठे। वे स्वयं कवि और कलामर्मज्ञ थे। प्रसिद्ध कवि-वृन्द से इन्होंने कविता का अभ्यास किया।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

वैष्णव भक्त होने के कारण भक्ति संबंधी विषयों में भी इनकी विशेष रुचि थी। वे चित्रकला में भी विशेष रुचि रखते थे। किशनगढ़ के कपड़ भण्डार में कुछ चित्र इनके समय के उपलब्ध थे। यहां की चित्रकला के विकास में इनके पुत्र राजसिंह (1706-48) का प्रमुख योगदान रहा। राजसिंह परमवीर, धर्मपरायण, कलारसिक एवं स्वयं चित्रकार थे। इनके द्वारा रचित 33 ग्रंथ हैं, जिनका प्रभाव तत्कालीन अन्य कलाकारों पर भी पड़ा। इसी समय से कुंवर पदी पर आरूढ़ राजा सावन्त सिंह (भक्तवर-नागरीदास, जन्म 1699) पर उनके पिता की कलाप्रियता का पूर्ण प्रभाव पड़ा। उनकी शिक्षा-दीक्षा पिता की रुचि के अनुसार कलात्मक वातावरण में हुई। संस्कृत और संगीत का भी उन्हें पूर्ण अभ्यास था। वे चित्रकला में भी विशेष रुचि रखते थे। किशनगढ़ दरबार के निजी संग्रह में उपलब्ध चार रेखाचित्र इस कथ्य के साक्षी हैं।

काव्य के प्रति राजा सावंतसिंह की रुचि प्रारम्भ से ही थी। सन् 1723 से 1731 तक उन्होंने मनोरथ मंजरी, रसिक रत्नावली और बिहारी चन्द्रिका की रचना कर कृष्ण भक्ति काव्य वैभव में विशेष योगदान दिया। अपने पूर्वजों की भाँति वे भी वल्लभ सम्प्रदाय में अपने गुरु श्री रणछोड़ जी द्वारा दीक्षित थे। राज्य वैभव के प्रति उदासीन होकर उन्होंने काव्य चित्रण और संगीत द्वारा अपने कलात्मक वैभव से किशनगढ़ शैली को एक नवीन मोड़ दिया।

18 वीं शती के मध्य में बने चित्रों में शैली की नवीनता और उत्फुल्लता प्राप्त होती है, जिसमें राधाकृष्ण के माधुर्य मात्र को नवीन रूप में चित्रित किया गया है। उपर्युक्त शैली को उत्कृष्ट रूप प्रदान करने का श्रेय तत्कालीन दरबारी चित्रकार मोरध्वज निहालचन्द को है, जिनके बनाए सैकड़ों चित्र इस शैली की अमूल्य निधि हैं। निहालचन्द के पितामह सूरध्वज मूलराज दिल्ली से आकर राजा मानसिंह के दीवान हुए तथा आगे भी उनकी पीढ़ी के चितारों ने किशनगढ़ शैली के विकास में योगदान दिया। निहालचन्द ने अपनी रंजक और सूक्ष्म तूलिका से नागरीदास के काव्य का चित्रण सन् 1735 से लेकर 1757 तक किया। नागरीदास के वृन्दावन-वास के उपरान्त भी मुसव्विर निहालचंद का चित्रांकन राज्य में चलता रहा किन्तु परवर्ती चित्रण में वह काव्यात्मक जादू प्रायः पतनोन्मुख हो गया।

इस समय की चित्रकला से वणीठणी और नागरीदास के प्रेम को जोड़ा जाता है परन्तु यह ऐतिहासिक तथ्य नहीं है। भूतपूर्व किशनगढ़ दरबार ने इस बात को नकारते हुए कहा है कि 'वणीठणी' राज्य की गायण थी जिसका राज्य परिवार में मां या बहिन के समान सम्मान था, यह बात दूसरी थी कि वणीठणी स्वयं संगीतज्ञ और कवयित्री थी, जिसका प्रभाव उस समय के चित्रण पर रहा होगा।

दीवान सूरध्वज मूलराज के वंशजों ने किशनगढ़ की कला को महत्वपूर्ण योगदान दिया है जिसमें सीताराम और बदनसिंह का नाम उल्लेखनीय है। अमरु और सूरजमल का चित्रण भी नागरीदास जी के समय का ही है। नागरीदास जी के भाई बहादुरसिंह के राज्य काल में भी नानकराम चितेरे ने अनेक चित्र बनाए। राजा

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

बिड़दसिंह (1782-1788) के समय नानकराम के वंशज रामनाथ तथा जोशी सवाई-राम का कार्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है। राजा कल्याणसिंह के काल (1798-1838) में लाड़लीदास नामक चित्रकार ने किशनगढ़ शैली के विकास में विशेष योग दिया। शैली के प्रसिद्ध गीतगोविन्द का चित्रण भी इसी समय (1820) में हुआ।

किशनगढ़ शैली की वह अलौकिकता धीरे-धीरे विलीन होने लगी और उसका विकृत स्वरूप सामने आने लगा, जो 19 वीं शती में पृथ्वीसिंह के समय (1840-1880) के चित्रों में दिखाई पड़ता है। इसके उपरान्त अपना अमर इतिहास पीछे छोड़ कर किशनगढ़ शैली धीरे-धीरे पतनोन्मुख हो गयी।

विशेषताएँ—किशनगढ़ शैली की कुछेक ऐसी विशेषताएँ हैं, जो इसे विभिन्न शैलियों से अलग ही नहीं करतीं वरन् उन्नत आसन पर आरूढ़ करती हैं। नर-नारियों के अंग-प्रत्यंगों का अलौकिक अंकन प्रकृति के विराट रंगमंच का रंगीला चित्रण, रंगों का मिश्रित वैभव, राधाकृष्ण संबंधी विषय का अनूठा और काव्यात्मक अंकन आदि विशेषताएँ उपर्युक्त शैली में अपना महत्व रखती हैं।

पुरुषाकृति में लम्बा, छरहरा, नीला छवि युक्त शरीर, जटाजूट की भांति ऊपर उठी हुई मोती की लड़ियों से युक्त श्वेत या मूंगिया पगड़ी, समुन्नत ललाट, लम्बी नासिका, मधुर स्मित से युक्त हिंगुली पतले अधर और खंजनाकृत कर्णान्त तक खिंचे हुए विशाल अरुणाभ नयन किशनगढ़ शैली की अपनी निजी विशेषताएँ हैं (सारे मुख-मण्डल में नेत्र इतने प्रमुख रहते हैं कि दर्शक की प्रथम दृष्टि इन्हीं पर मंडराने लगती है), नुकीली चिबुक. लम्बी सुराहीदार गर्दन, आजानुभुजाएँ, गोल और सुकुमार लम्बी अंगुलियाँ, पतली कमर, पैरों तक झूलता पारदर्शक जामा तथा अलंकारों और फूलों से आवेष्टित सारा शरीर किशनगढ़ शैली में अनोखा है।

नारी आकृति में भी प्रायः उपर्युक्त ही नारी सुलभ लावण्य दर्शनीय है। गौर-वर्ण बांके कज्जल से युक्त वही विशाल नयन, कपोलों को आच्छादित करती हुई लम्बी अलकें, अर्धविकसित किन्तु उन्मत्त और खिंचा हुआ वक्षस्थल, लहंगा, कंचुकी और ओढ़नी से लिपटा तथा अलंकारों और फूलों से सुसज्जित शरीर। सुकोमल हाथ में एक दो अर्ध मुकुलित कमल की कलियां, राधा के बहाने नायिका के रूप-यौवन को उजागर करते हैं। किशनगढ शैली के काव्य में कल्पित रूप तथा मांसल सौन्दर्य का चित्रांकन जादू भरा है।

किशनगढ़ शहर तथा रूपनगढ़ का प्राकृतिक परिवेश जिस प्रकार झीलों, पहाड़ों, उपवनों और विभिन्न पशु-पक्षियों से युक्त रहा है, उसके अनुकूल ही उद्दीपन रूप में प्रकृति का चित्रण भी शैली में अनोखा हुआ है। दूर-दूर तक फैली हुई झील, झील में केलि करते हंस, बतख, जलमुर्गाबी, सारस, बगुला और तैरती हुई नौकाएँ तथा नौकाओं में प्रेमालाप करते राधा और कृष्ण का अंकन अनोखा है।

उच्च अट्टालिकाएँ, कुंजों से झांकती श्वेत मुड़ेरें. फव्वारे, केले के वृक्षों से घिरे दृश्य तथा कमल दलों से ढके जलाशय आदि सब कुल मिलाकर किशनगढ़ शैली को मोहक बना देते हैं। प्रकृति के विस्तृत प्रांगण को चित्रित करने का श्रेय किशनगढ़

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America, HHFA(USA)

शैली को है। यही चित्रण बूंदी शैली में सीमित क्षेत्र में हुआ है। चान्दनी रात में राधाकृष्ण की केलि-क्रीड़ा प्रातःकालीन और संध्याकालीन बादलों का सिन्दूरी चित्रण शैली में हुआ है।

किशनगढ़ शैली में रंगों का अपना खेल है। राधाकृष्ण के सुकोमल भावों को चित्रित करने के लिए यहां के कलाकारों ने अधिकतर हल्के रंगों का प्रयोग किया है। यहां के प्रमुख रंग सफेद, गुलाबी, सलेटी और सिन्दूरी हैं। हाशिए में गुलाबी और हरे रंगों का बाहुल्य है।

विषय—बल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित होने के कारण अधिकतर राजाओं के समय में राधाकृष्ण की प्रेम-लीलाओं का चित्रण ही अधिक हुआ है। भागवत पुराण, गीत गोविन्द, नागरीदास के विभिन्न पद तथा वैभव विलास और अन्य स्वच्छन्द शृंगारी भाव शैली के चित्रण के आधार रहे हैं। अन्य शैलियों की भांति शिकार, उत्सव, होली, दीपावली, दरबार, महफिल आदि पर भी अनेक चित्र निर्मित हुए हैं। बणी-ठणी अर्थात् राधा के रूप सौन्दर्य का चित्रांकन शैली का विशेष आकर्षण रहा है। आश्चर्य की बात है कि राग-रागिनियों का चित्रण किशनगढ़ शैली में अनुपलब्ध है।

किशनगढ़ के समीपस्थ, अजमेर, सावर तथा भिणाय जैसे ठिकानों में भी चित्र-कला का अंकन हुआ है। कुंवर संग्रामसिंह के निजी संग्रह में उपलब्ध अनेक लघुचित्र इस बात की साक्षी हैं। अजमेर उपशैली में मारवाड़ शैली की ही लटक दर्शनीय है, पर बूंदी शैली की भांति हाथियों का चित्रण भी इस उपशैली की अपनी विशेषता है। मेवाड़ शैली के अनुरूप, लोककला की कुछ विशेषताएँ लिए सावर ठिकाने में भी गोपाल-कृष्ण के समूह चित्रों का अंकन हुआ है। राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली तथा कु. संग्रामसिंह के निजी संग्रहालय में 'इन्द्र प्रकोप' नामक चित्र इस उपशैली का अनुपम उदाहरण है।

वास्तव में तो मारवाड़ स्कूल वृहद मरु प्रदेश में विस्तार पाया हुआ चित्रकला का ऐसा अगाध सागर है, जिसकी अनेक शैलियां और उपशैलियां शोध के आधार पर खोजी जा सकती हैं। जैसलमेर, सिरोही, पाली, नागोर, घाणेराव आदि की चित्र पद्धति पर विस्तार से कार्य होने की गुंजाइश है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

जोधपुर (मारवाड़) चित्रकला

डॉ. मधु प्रसाद

जोधपुर के शासक मारवाड़ के राठौड़ों[1] ने अन्य राजपूत राजवंशों की भाँति कला एवं साहित्य को पूर्ण प्रश्रय दिया, यद्यपि यहां के राठौड़ अनवरत युद्ध की विभीषिका में जूझते रहे। मारवाड़ के शासकों के मुगल दरबार के साथ कई पीढ़ियों तक प्रगाढ़ सम्बन्ध रहे और ये दकन में भी उनके सेनाध्यक्षों की भाँति रहे। अतः यहाँ की चित्रकला पर मुगल और दकनी प्रभाव परिलक्षित होना आश्चर्य की बात नहीं। जैन धर्म का महत्वपूर्ण केन्द्र होने के कारण सोलहवीं शताब्दी से पूर्व मारवाड़ जैन चित्रों का केन्द्र भी रहा। मारवाड़ की चित्रकला स्थानीय साहित्य, संस्कृति और धर्म से अत्यधिक प्रभावित रही, साथ ही साथ इसने वाह्य तत्वों को भी भली-भांति समयानुसार आत्मसात किया।[2]

यद्यपि मारवाड़ (प्रस्तुत लेख में जोधपुर शैली के संदर्भ में प्रयुक्त) चित्रकला शैली[3] के वास्तविक उदाहरण महाराजा गजसिंह (1619-38) काल के पूर्व के अभी तक प्रकाश में नहीं आये हैं, परन्तु ऐसी सम्भावना है कि कला-प्रेमी राव मालदेव (1595-1620) के समय से यहां चित्रकला परम्परा शैली के समानान्तर प्रारम्भ हो चुकी थी।[4] इस परम्परा को परवर्ती काल के चित्रों के विकास का आधार माना जा सकता है।

मारवाड़ शैली का सर्वप्रथम पत्रों पर चित्रित उदाहरण 'पाली ठिकाने' से विट्ठलदास चम्पावत के हेतु सचित्र रागमाला ('पाली रागमाल')[5] 1623 ई. के लगभग की है। शैलीगत विशेषताओं में यह गुजराती अपभ्रंश चित्रों के गहरे प्रभाव एवं चौरपंचाशिका वर्ग के चित्रों के साथ-साथ जहाँगीरी मुगल चित्र शैली का प्रभाव दर्शाती हैं। इस रागमाला के बाद हमें महाराजा गजसिंह के मृत्योपरान्त उनकी वयस्क आयु की शबीहें प्राप्त होती हैं।[6] इन चित्रों पर गहरा मुगल प्रभाव है; परन्तु चित्रों की आत्मा मारवाड़ शैली की है जो उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में बहुतायत में मिले स्थानीय चित्रों में प्राप्य हैं।

महाराजा जसवन्तसिंह काल (1638-78) के जोधपुर दरबार के चित्र अल्पसंख्यक हैं फिर भी वे उत्कृष्ट कला का प्रतिनिधित्व करते हैं।[7] स्थिरता ली हुयीं महीन रेखाओं, बढ़िया तैयारी, उत्कृष्ट संयोजन, सूफियाने रंगों के सहयोग से चित्रित ये दरबार-चित्र तात्कालिक एक सुव्यवस्थित एवं स्थापित चित्र शाला (तस्वीरखाना) की उपस्थिति का संकेत देते हैं। उपरोक्त मुगल प्रभाव अवश्य ही मारवाड़ और मुगल राजनीतिक सम्बन्धों के कारण आया। यह प्रभाव और भी प्रगाढ़ हुआ होगा जब महाराजा जसवन्तसिंह के मृत्योपरान्त मारवाड़ पर मुगलों का प्रत्यक्ष शासन

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

रहा। किन्तु पाली जैसे ठिकानों में मारवाड़ी सामन्तों और जैन व्यापारियों ने स्थानीय कला परम्परा कायम रखी जो उपदेशमाला प्रकरण, भागवत आदि चित्रित प्रतियों के साथ-साथ तत्कालीन भित्ति चित्रों में दृष्टिगोचर होते हैं।

महाराजा अजीतसिंह (1707-24) के संरक्षण से मारवाड़ की चित्रकला का क्रमबद्ध इतिहास वर्त्तमान कला इतिहासकारों को ज्ञात होता है। शबीहों, दरबार के दृश्यों, घुड़सवारी एवं जुलूसों के दृश्यों के साथ-साथ महाराजा के जनानखाने और सम्बन्धित विनोद दर्शाते चित्र मिलने लगते हैं।[8] इस प्रकार के चित्रों का प्रचलन इस काल में सभी अन्य राजस्थानी चित्रकला केन्द्रों में होने लगता है। महाराजा अजीतसिंह के काल में मारवाड़ शैली की स्वतंत्र विशिष्टतायें यथा पृष्ठभूमि में तीखे चटकीले रंग, ईंटों की बनी दीवारों का चित्रण, औसत आकार की पर भंगिमा में जकड़ी हुयी स्त्रियों की आकृतियां आदि, और दूसरी तरफ मुगल प्रभाव से ओत-प्रोत पुरुष अपनी अपेक्षाकृत छोटी आँखें, हल्की मूँछ और संयोजना के विभिन्न तत्त्वों पर शेडिंग आदि अपना निजस्व दर्शाते हैं।[9] इसी काल से हमें सर्वप्रथम बार एक निश्चित प्रणाली के चित्रों पर लेख (inscriptions) मिलने लगते हैं। इन लेखों के आधार पर चित्रों की और निश्चित तिथि, संरक्षक महाराजा के नाम और परवर्ती काल से इन पर कलाकारों, चितेरों के भी नाम मारवाड़ चित्रशाला की विकसित स्थिति का बोध कराते हैं।[10]

महाराजा अभयसिंह (1744-49) की चित्र शैली महाराजा अजीतसिंह की परम्परा में बद्ध रही। किन्तु इस काल में अन्य ठिकानों यथा घानेराव में चित्रकार छज्जू के बने चित्र तथा नागौर में महाराजा बख्तसिंह काल के उत्कृष्ट भित्ति चित्र मारवाड़ के विभिन्न केन्द्रों के जीवन्त क्रियाकलाप को बनाए रखते हैं।[11]

जोधपुर चित्रकला में महाराजा रामसिंह (1749-51) का काल अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा। चित्रों में राजशाही वैभव और महाराजाओं के गौरव को विभिन्न प्रतीकों के माध्यम से अतिरंजित रूप में दिखाया जाने लगा। यथा अत्यधिक ऊंची लम्बी तुर्रेदार पगड़ियां।[12] इसी परम्परा में परवर्ती शासक महाराजा विजयसिंह के काल में अनन्त प्रकार की ऊची भारी भरकम पगड़ियों का अंकन क्रमशः रहा।[13]

महाराजा विजयसिंह के 40 वर्ष के सुख-शान्तिमय 40 वर्षके लम्बे राज्य काल में बने चित्र उस काल के वैभव-विलास का प्रतिबिम्बन करते हैं। इस संगीतमय वातावरण में सुरापान, सुन्दरियों के साथ आनन्दोत्सव,[14] शिकार आखेट[15] एवं विभिन्न काल्पनिक-वास्तविक हरम चित्रों का चित्रण संरक्षकों एवं कलाकारों को भाने लगा। अधिकांशतः संयोजनाओं का आधार मुगल संयोजना या उनसे परिवर्द्धित अन्य राजपूत केन्द्रों में बने चित्र रहे। आश्चर्य यह है कि मारवाड़ में इस काल तक अन्य राजस्थानी केन्द्रों की भाँति राधाकृष्ण एवं वैष्णव संप्रदाय से सम्बन्धित चित्र बहुतायत से नहीं मिले। वैष्णव महाराजा विजयसिंह ने इस वर्ग केचित्र का श्रीगणेश किया।

इस काल से मारवाड़ चित्र शैली में विषय-वस्तु अत्यन्त व्यापक हो जाता है। पूर्ववर्ती मुगल संयोजनों पर आधृत होते हुए भी चित्रकार उनमें स्थानीय नवीनता

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

डालते जाते हैं। विभिन्न चित्रकारों की अपनी-अपनी शैलियों के चित्र मिलने लगते हैं जिनका आपस में एक दूसरे पर प्रभाव दृष्टव्य है।

चित्र संयोजन में पृष्ठभूमि के प्रमुख तत्त्व वृक्ष एवं वास्तु के स्वरूप में परिवर्तन आया। मानव पात्रों में मुखाकृति एवं उनकी वेशभूषा में विभिन्न चित्रकारों का निजत्व दिखता है।[16] अतिरंजित पगड़ियां विभिन्न वर्गों में यथा लम्बी-पतली-ऊँची, लम्बी-चौड़ी-ऊँची, ढोलनुमा छोटी एवं ढोलकनुमा चौड़ी दिखलायी पड़तीं हैं।[17] प्राय: सभी अभिप्राय निश्चित हो गए थे। इस स्थिति से प्रभावित थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ कई अन्य चित्र भी मिलते हैं किन्तु मूल रूप से पुरुष-स्त्री आकृतियां और पृष्ठभूमि का यही चित्रण मिलता है।

स्त्रियों के अंकन में विविधता मिलती है। चौड़े ढलुवां माथे वाले चेहरे अण्डाकार हैं जिनमें नुकीली नाक और लम्बी आँखें स्त्री सौन्दर्य को अतिशयोक्ति पूर्ण करने में सफल हैं।[18] मुगल तकनीक से चेहरे पर शेडिंग है और कसावदार डौल है। वेशभूषा राजस्थानी एवं मुगल दोनों विभिन्न पात्रों के अनुसार है। समय के बीतने पर क्रमशः आकृतियों के चित्रण लम्बोतरे होते जाते हैं। इसी प्रकार लहंगों का घेर भारी एवं वेशभूषा अधिक अलंकृत एवं चटकीले रंगों वाली चित्रित होने लगती है।[19] इस काल में कमनीय चेहरों वाली पुरुष आकृतियों का अंकन लोकप्रिय होता है। ये ही चित्र बीकानेर एवं मारवाड़ की मिश्रित शैली दिखाते हैं ("मारवाड़-बीकानेर" वर्ग)।[20] अठारहवीं सदी के मध्याह्न में मारवाड़ के महाराजा विजयसिंह एवं बीकानेर के महाराजा गजसिंह की मित्रता से उपरोक्त कला संगम होता है।

मारवाड़-बीकानेर वर्ग के चित्रों में स्त्री आकृतियाँ ठेठ मारवाड़ी चित्रों की अपेक्षा अधिक माँसल हैं और इनमें कोमलता अपेक्षाकृत कम है। इस वर्ग में कृष्ण-राधा एवं नायिकाओं के चित्र सर्वाधिक तथा बारहमासा के भी चित्र मिले हैं। इनमें पेड़-पौधों के घने चित्रण बारीकी से किए गए हैं।

चित्रकारों का 'मथेन' घराना भी मारवाड़ एवं बीकानेर दोनों केन्द्रों में चित्रण कर रहा था।[21] ये जैन यति लोक शैली में चित्रण कर रहे चित्रकार ढोला मारू, पवार-जगदेव री बात, मधुमालती, भागवत दशमस्कन्ध एवं रतनगिरी वार्ता[22] आदि चित्रित ग्रंथों में अपनी सहज, असरदार मोटी रेखाओं से लयात्मक दृश्य प्रस्तुत कर रहे थे। इनके कार्यों में शेडिंग और पर्सपेक्टिव कम है।

महाराजा विजयसिंह काल के चित्रों में आरम्भ से अन्त तक विकास दिखता है। धीरे-धीरे रेखाएँ अधिक परिष्कृत होती जाती हैं और तैयारी बढती जाती है। पृष्ठभूमि में वृक्षों का चित्रण और घना होता जाता है और वे विभिन्न पशु-पक्षियों से भरे होते हैं। आकाश में घुंघराले बादल अलंकृत रूप से दिखाए गए हैं।[23] सम्मुख भूमि में पोपी से पुष्प कतार में रूढिबद्ध फौव्वारे चारों ओर कतार में क्यारियों में बूटों की भाँति टाँके गए हैं। शनै शनै तेज रंगों का प्रयोग बढ़ता है।

बीकानेर से ही चित्रकार मारवाड़ में स्थानान्तरित नहीं हुए वरन् जोधपुर से भी हासिम आदि चित्रकार बीकानेर आये।[24] महाराजा विजयसिंह के सामन्तो ने भी

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

चित्रकारों को प्रश्रय दिया, जिनके प्रश्रय में बने मधुमालती एवं भागवत दशमस्कंध आदि के सचित्र ग्रंथ मिलते हैं।[25] लोकशैली में रागमाला की कई प्रतियों का चित्रण हुआ।

महाराजा भीमसिंह (1793-1803) के काल में मुख्यतः शबीहें, दरबार एवं जुलूस के अंकन हुए। महाराजा की छवि के अनुसार चित्रों में मुखाकृति में परिवर्तन आया यथा भारी-भरकम आकृति, गोल मांसल चेहरा, दोहरी ठुड्डी, बाहर की ओर उभरी बड़ी आँखें एवं सामान्य लम्बी नाक। लम्बी ऊची पगड़ियों का अंकन प्रायः विलुप्त-सा हो जाता है। उभरी आँखें और घने गलमुच्छे दर्शनीय हैं।

महाराजा मानसिंह (1803-43) ने मारवाड़ की चित्रकला को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया। उन्होंने स्वयं साहित्य का सृजन किया। नाथ सम्प्रदाय के अनुयायी महाराजा ने नाथों से सम्बन्धित असंख्य चित्रों के साथ मुख्य रूप से नायक-नायिका से सम्बन्धित चित्रों का अंकन करवाया। बारहमासा तथा प्रेमिका एवं सेविकाओं के कुछ चित्र पाये जाते हैं। जलूस एवं शिकार के दृश्यों आदि सभी चित्रों में संयोजना की दृष्टि से रूढ़िबद्ध अंकन हुआ है, फिर भी चित्रों में कृतित्व है।

कृतित्व की दृष्टि से मारवाड़ चित्र-शैली के दो महत्वपूर्ण काल हैं: अठारहवीं सदी में महाराजा विजयसिंह का 40 वर्षीय प्रश्रय और उन्नीसवीं शती में महाराजा मानसिंह का। महाराजा विजयसिंह काल में शैली मे भिन्न-भिन्न नये प्रयोग हो रहे थे तथा वह रूढ़िबद्ध नहीं हुयी थी, जब कि महाराजा मानसिंह काल में पूर्ण परिपक्व स्थापित शैली मिलती है। सर्वाधिक लेखयुक्त चित्र मिलने से इस काल का निश्चित स्वरूप एवं चित्रकारों की शैलियों की जानकारी होती है।

मानसिंह के प्रमुख चित्रकार अमरदास, दाना, शंकरदास, बभूत, उदेराम, शिवदास, माधोदास, रायसिंह एवं मोतीराम आदि भाटी घराने के थे। इन सभी चित्रकारों की शैली की विवेचना करने से प्रतीत होता है कि ये सभी अपनी मौलिक शैली लिये थे पर सामान्य तत्त्व सभी की कृतियों में विद्यमान रहे। चित्रकार अमरदास (1800-30) की रेखायें प्रवाहमय एवं वेगवान हैं और चित्रों में गाते हैं। उसके पुत्र दाना भाटी के संयोजनों एवं विषयवस्तु में विविधता है। वह परम्परा से हट कर नए-नए प्रयोग कर रहा था। उसके चित्रों में लगातार विकास दिखता है। चित्रकार शंकरदास महाराजा मानसिंह के अग्रिम चरण का था जिसने मुख्य रूप से महाराजा तख्तसिंह के प्रश्रय में कार्य किया।

महाराजा तख्तसिंह ने महाराजा मानसिंह के चित्रकारों को सेवा में रखा। इस काल में चित्रों में तैयारी बढ़ जाती है। सुनहरे रंगों की प्रचुरता से प्रयोग किया गया! वनस्पति का चित्रण कम होता गया और अलंकारिता बढ़ती गयी और आकृतियां बेजान होती गयीं। दाना भाटी के दोनों पुत्र शंकरदास भाटी एवं बभूत भाटी इस काल के प्रमुख चित्रकार थे। और परवर्ती महाराजा जसवन्तसिंह (1873-93 ई.) के काल तक चित्र बनाते रहे। अब धीरे-धीरे मारवाड़ चित्र कला की पुरानी परम्परायें बदलती गयीं और दरबार में अंग्रेजी प्रदत्त कम्पनी शैली का बोल-

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

वाला हो गया। एच.के. म्यूलर द्वारा चित्रित योरोपियन शैली के चित्र विशेष आकर्षण के केन्द्र हो गए। मात्र महाराजा मानसिंह एवं तख्तसिंह के काल में निर्मित तख्त विलास, फूल महल एवं बघेली मन्दिर आदि के भित्ति चित्र (समय समय पर परिवर्धित) समकालीन लघु चित्रों के कुछ समकक्ष रहे और यही परम्परा मारवाड़ के भित्ति चित्रों में कायम रही।

State Museum Library Lucknow 7134

संदर्भ

1. व्यास, जे.एन., जोधपुर का इतिहास, जोधपुर, पृ. 212
2. अग्रवाल, मधु प्रसाद, मारवाड़ स्कूल ऑफ पेण्टिग, वाराणसी 1988, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध।
3. प्रस्तुत लेख मात्र कागज पर चित्रित लघु चित्रों का संक्षिप्त विश्लेषण करता है।
   अग्रवाल, मधु प्र. उपरोक्त 1988
4 गोयट्ज, हरमन, 'मारवाड़ स्कूल ऑफ पेण्टिग', बड़ौदा म्यूजियम बुलेटिन, वा. 5,1947-48, पृ. 43-54
5. सिंह, कुंवर संग्राम, 'एन अर्ली रागमाला मैनुस्क्रिप्ट फ्राम पाली (मारवाड़ स्कूल), डेटेड 1623 ई." ललित कला नं 7,1960, पृ. 76-81
6. कृष्ण, नवल, बीकानेर (कोर्ट मिनियेचर) पेण्टिंग्स, वाराणसी 1985 अप्रकाशित शोध प्रबंध।
   देसाई, वी. एन. लाइफ ऐट कोर्ट आर्ट फार इण्डियंस रूलर सिक्सटींथ टू नाइटींथ सेंचुरीस, बोस्टन, 1985, पृ 29, प्लेट 27
7. टाप्सफील्ड, एंड्रयू, पेण्टिंग फ्राम राजस्थान, मेलबर्न, 1980, प्लेट व केटेलाग नं. 12
   लीच, लिंडा इन द इमेज आफ मैन (फेस्टिवल ऑफ इण्डिया) ब्रिटेन, 1982, प्लेट 95-97, पृ. 150
   कृष्ण, नवल, बीकानेर पेण्टिंग, (शीघ्र ही प्रकाशित)।
8. "घोड़े पर सवार अजीतसिंह", बड़ोदा म्यूजियम एण्ड पिक्चर गैलेरी संग्रह, बड़ौदा।
   "स्त्रियों के साथ अजीतसिंह" उम्मेद भवन, जोधपुर।
9. "राजा अजीतसिंह की शबीह" तिथि युक्त 1710 सदबी नीलाम कैटेलाग, 9 अक्तूबर 1978, लाट 274
10. अग्रवाल, मधु प्रसाद, उपरोक्त 1988, (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध)।
11. अग्रवाल, आर.ए. मारवाड़ म्यूरल दिल्ली, 1977
12. आर्चर, डब्ल्यू जी., इण्डियन पेण्टिग, स्विट्जरलैण्ड, 1956, प्लेट × एवं मुखपृष्ठ।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

13. "विजयसिंह के पगड़ी के उत्सव पर ठाकुर वीरमदेव" कृष्ण, नवल 1985, (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध)।
14. "नृत्य संगीत का आनन्द लेते राजा" मेहरानगढ़ म्यूजियम, जोधपुर। बगदावत, प्रेम कहानी, मेहरानगढ़ संग्रह (L 173)
15. महाराजा स्त्रियों के साथ होली खेलते, मेहरानगढ़ (L 65)
श्रावण मास, मेहरानगढ़ संग्रह (L 69)
महाराजा स्त्रियों के साथ शिकार खेलते, मेहरानगढ़ संग्रह (L 76)
16. राजा चार स्त्रियों के साथ, मेहरानगढ़ संग्रह (L 67)
महाराजा मानसिंह संगीत का आनन्द लेते, मेहरानगढ़ संग्रह. (L 64)
17. महाराजा रामसिंह जी नृत्य का आनन्द उठाते, मेहरानगढ़ संग्रह (L 184)
ठाकुर दुर्जनसिंह, घाणेराव, मेहरानगढ़ सग्रह, (L 116)
18. तीन स्त्रियाँ महाराजा के साथ पोलो खेलतीं, मेहरानगढ़ संग्रह, (L 196)
महाराजा स्त्रियों के साथ उद्यान में, मेहरानगढ़ संग्रह।
19. स्त्रियाँ महाराजा के साथ होली खेलतीं, मेहरानगढ़ संग्रह (3 (2))
20. महाराजा रामसिंह नृत्य का आनन्द लेते, मेहरानगढ़ संग्रह (L 184)
21. कृष्ण, नवल, बीकानेर (कोर्ट मिनिएचर) पेण्टिग वाराणसी 1985, (अप्रकाशित थीसिस)।
22. आस्थन, एल. आर्ट ऑफ इण्डिया एण्ड पाकिस्तान, लन्दन, 1947-48, पृ. 117 प्लेट 91 (बी), 94 (बी)।
23. महाराजा स्त्रियों के साथ (सम्भवतः बारहमासा चित्र), मेहरानगढ़ संग्रह 1(10)
24. कृष्ण, नवल, 1. बीकानेर पेण्टिग (शीघ्र प्रकाशित)।
2. बीकानेर (कोर्ट मिनिएचर) पेण्टिग वाराणसी 1985
25. अंधारे, एस.के., क्रोनोलाजी आफ मेवाड़ पेण्टिग्स, दिल्ली, 1987

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

दुर्लभ नागौर चित्रकला

डा. मधु प्रसाद

राज्य सीमा के दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्वपूर्ण नागौर न केवल जोधपुर और बीकानेर वरन् मुगलों और राजपूतों के मध्य विवादास्पद क्षेत्र रहा। चौहान राजपूत इसके स्थापक थे। गजनवी मुहम्मद बाहलीम ने इसे स्वतंत्र मुस्लिम प्रदेश घोषित किया और तब से यह अधिकांशत: मुसलमानों के अधीन 1568 तक रहा, जब मुगल शहंशाह अकबर ने इसे अपने अधिकार में किया। साठ वर्षों तक बीकानेर की जागीर रहने के बाद जोधपुर के निर्वासित राजकुमार को शाहजहाँ द्वारा यह प्रदत्त हुआ। जोधपुर शासक अजीतसिंह (1707-24) ने नागौर को अपने अधीन रखा और अपने छोटे पुत्र बख्तसिंह को इसका नेतृत्व सौंपा और नागौर एक नए राज्य की राजधानी बन गयी। 1724 में अजीतसिंह की हत्या होने पर नागौर, बीकानेर और जोधपुर दोनों रियासतों का प्रतिद्वन्द्वी हो गया। इस प्रकार अठारहवीं सदी के पूर्वार्द्ध तक नागौर कभी जोधपुर तो कभी बीकानेर की रियासत रहा और अन्ततोगत्वा जोधपुर का हुआ।

ऐसी पूरी सम्भावना है कि सत्रहवीं सदी में नागौर में चित्र परम्परा वर्तमान थी। जोधपुर और बीकानेर दोनों ही में इस काल में चित्र परम्परा का आभास होता है और नागौर उनके मध्य का एक महत्वपूर्ण परगना था।

नागौर से प्राप्त चित्र प्राय: 1700-1750 ई के मध्य से मिलना आरम्भ होते हैं, जिस पर बीकानेर शैली का आभास है। प्राय: 1750 ई. के बाद नागौर मारवाड़ की एक रियासत रहा। अत: इस काल में बनने वाले चित्र मारवाड़ शैली से ओत-प्रोत हैं। नागौर शैली के लेखयुक्त चित्र बहुत कम मिले हैं, किन्तु नागौर किले के महलों के भित्ति चित्रों पर पाये गए विभिन्न चित्र नागौरी शैली की परम्परा को सार्थक करते हैं।

18 वीं सदी के उत्तरार्द्ध में बीकानेर समीपता के कारण नागौर चित्र तत्कालीन मारवाड़ शैली से थोड़ा हट कर हैं। इन चित्रों पर बीकानेरी शैली की भांति मुगल प्रभाव अधिक है। बीकानेर दरबार के माध्यम से इस पर दकनी प्रभाव भी पड़ा है। भारी भरकम आकृतियाँ, मांसल चेहरे, बड़ी आँखें, गलमुच्छे आदि मारवाड़ के प्रचलित तत्त्वों के स्थान पर नागौर में समानुपातिक आकृतियों, छोटी आँखें चित्रित हुयीं, जो कुछ रूप में ठेठ बीकानेर शैली से भी भिन्नता दर्शाती हैं। मुख्यत: आकृतियों के मुख पर बोझिल थका-सा भाव, लम्बी नीचे की ओर गिरती मूँछें तथा मुगल प्रभावित हर स्थान पर शेडिंग चित्रों में बहुलता से हैं। चित्रों में आकृतियों में तेजी व हलचल न होकर वे स्थिर हैं। मारवाड़ के चटकीले तेज रंगों से भिन्न मुगल-बीकानेरी

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

प्रभावित सूफियाने रंग प्रयुक्त हुए हैं।

इन चित्रों में अधिकांशत: शबीहें हैं जो विविधता रहित हैं। ये व्यक्ति अंकन सादी पृष्ठभूमि पर घोड़ों पर सवार के रूप में हैं। दरबार के भी दृश्य प्राप्य हैं।

नेशनल म्यूज़ियम संगृहीत 'भाटी उदयराम की शबीह' की मारवाड़ की 1709 ई. की अजीतसिंह के घोड़े पर सवार शबीह, बड़ौदा म्यूजियम संग्रह, से निकट है पर आँखें और मूंछें नागौरी वैशिष्टय लिए हैं। भाटी उदयराम के कंधे की नीचे की शेडिंग, लम्बा पतला पटका तथा चित्र ऊपर हल्के रंग की पट्टी में उमड़ते बादल इस काल की विशेषता हैं। इन्हीं विशेषताओं को लिए परन्तु अत्यन्त उत्कृष्ट चित्र 'विजयसिंह हिरन के साथ' (प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम, बम्बई) पर मुगल प्रभाव अधिक है। हिरन का स्वाभाविक चित्रण जहाँगीरकालीन चित्रों पर आधृत है।

1725-50 ई. के मध्य के नागौर के चित्रों के संयोजन में विविधता मिलती है और पृष्ठभूमि सादी न रहकर वास्तु और वक्षयुक्त चित्रित हुयी है।

18वीं शती के राजस्थानी स्कूल दरबार चित्रण असंख्य रूप में करने लगे थे। इसी लहर में नागौर शैली में बने 'अज्ञात राजा का दरबार' (नेशनल म्यूजियम, नई दिल्ली) में, आकृतियाँ तात्कालिक मारवाड़ी चित्रों की आकृतियों की भाँति भारी-भरकम हैं तथा पगड़ियाँ अपेक्षाकृत भारी चित्रित हैं। यह अठारहवीं सदी के मध्य में प्रचलित भारी-भरकम पगड़ियों का प्रारम्भिक रूप है। मुख्य आकृति नागौरी परम्परा में लम्बी, पतली, चपटा ढलुवां माथा, नोंकीली नाक, ठुड्डी से नीचे लटकती सफेद मूँछें आदि लिए है। सामने क्यारी में लम्बी पत्तियों वाले पोपी के फूलों का चित्रण मुगल प्रभावित सभी राजस्थानी केन्द्रों के अनुरूप है।

घोड़े की सवारी नागौरी चित्रकारों का लोकप्रिय विषय लगता है। "घोड़े का निरीक्षण करते राजा प्रतापसिंह" (लीच-लिंडा आदि, इन द इमेज आॅफ मैन, ब्रिटेन 1982 प्लेट 138) में प्रतापसिंह भाटी भरकम दिखाए गए हैं। पट्टीनुमा दाढ़ी का चित्रण सेवकों की आकृतियों में पहले भी दिखाई पड़ता है, पर मुख्य आकृति में अभी तक नहीं। अन्य चित्र श्री अभयकरनजी कलोली एवं श्री काशीरामजी (मैग्स आक्सन कैटलाग) की संयोजना एवं वेशभूषा 1730-35 के आसपास लोकप्रिय तत्वों को दर्शाती है। गोल ढलुवें माथे एवं अपेक्षाकृत लम्बी नाक का अंकन समकालीन मारवाड़ के चित्रों की परम्परा में है।

वृद्धावस्था के व्यक्ति चित्रों को नागौर के चित्रकारों ने अत्यन्त कुशलतापूर्वक चित्रित किया है। सर कावसजी जहाँगीर संग्रह के दो वृद्ध व्यक्तियों के मिलन के दृश्य को चित्रकार गंगाराम ने बनाया है। सम्भव है कि नागौर के चित्रकार गंगाराम की शैली से प्रभावित रहे हों। वृद्धावस्था से झुकी कमर शिथिलता एवं चेहरे की झुरियों का अत्यन्त मार्मिक अंकन है। और झुकी लम्बी नाक का अंकन हमारा ध्यान तत्कालीन बीकानेरी चित्रांकनों के समीप है।

"वृक्ष की छाया में संगीत का आनन्द लेते नायक नायिका" बादल महल के द्वितीय कक्ष में अंकित नागौर शैली का स्पष्ट विकास दिखता है। आकृतियां अपेक्षाकृत

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

अधिक समानुपातिक हैं एवं अधिक भावपूर्ण अंकित हुई हैं। स्त्रियों का अंकन अन्य उक्त चित्रों की अपेक्षा अभयसिंह काल के लघु चित्रों के अत्यन्त निकट हैं। नायक का अंकन सत्रहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में चित्रित राजसिंह की शबीह से बहुत दूर नहीं है। साथ ही साथ नागौर शैली का निर्विवाद रूप नागौर किले के शीश महल एवं बादल महल के चित्रों में प्राप्त होता है।

लम्बी स्त्री आकृतियों का अंकन समकालीन लघु चित्रों के निकट है यथा धड़ के ऊपर का हिस्सा लम्बा है, लम्बी गर्दन है तथा अण्डाकार चेहरे, चपटी ठुड्डी एवं नुकीली लंबी नाक, चपटे चौड़े चेहरे का अंकन तथा सम्पूर्ण रूप से जकड़ी आकृतियां। किन्तु यहाँ चेहरे अधिक भारी एवं मांसल हैं। स्त्रियों की आपस में बात करती मुद्रा स्वाभाविक है। और ये 1725-50 ई. के आसपास चित्रित प्रतीत होती हैं।

'अलस कन्या' (भारतीय मूर्तिकला की परम्परा में) अधिक अलंकृत है। पतली कटि और कमर के ऊपर की उल्टे सुराही आकार की संरचना अभयसिंह के काल के लघु चित्रों के निकट है। मुखाकृति पर घुंघराली लट एवं बड़े गोल कर्णफूल का अंकन पाली रागमाला की परम्परा में है। छोटी आंख एवं माथे की सीध में नीचे की ओर झुकी लम्बी नाक का अंकन हमारा ध्यान तत्कालीन बीकानेरी चित्रांकनों के समीप है।

इसी तल पर बने "उद्यान महल में मनोरंजन करती स्त्रियां", मुगल चित्र विषय वस्तु पर आधृत है जो अठारहवीं उन्नीसवीं सदी में ये चित्र खूब बने। इस चित्र में ऊपर की पंक्ति में स्त्री आकृतियां बादल महल के पूर्व विवेचित चित्र परम्परा में हैं। सामने वाली दोनों स्त्रियाँ उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ के अभादास भाटी के चित्र के निकट हैं। अतः ये अठारहवीं सदी के अन्त के हैं। इनमें अधिक बारीकी है, वृक्षों का घना अंकन है।

हवा महल में परियों का चित्रण कक्ष की छत की सजावटी सुन्दर बेलबूटों के मध्य है। यद्यपि परियों में उड़ने की गति का आभास होता है, फिर भी आकृतियां भावपूर्ण नहीं प्रतीत होती हैं। औसत आकार की मांसल परियों का अण्डाकार मांसल चेहरों, छोटी गर्दन, चपटे माथे वाली ये स्त्रियां अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध की परम्परा की हैं। इन उड़ती हुई परियों का सम्पूर्ण रूप में संयोजन सुन्दर है।

शीश महल के एक दो चित्र स्पष्ट हैं जो अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध के चित्रों या बीकानेर के जूनागढ़ के अनूप महल के भित्ति चित्रों के निकट है। मुगल ताज टोपियां और लटके खुले बालों का अंकन गालों पर कसा डौल, प्रवाहमान महीन रेखाएँ हैं। चित्र में हलचल है। मोटी रेखाओं से घुंघराले बादलों का चित्रण, स्प्रिंग-नुमा रेखा से बिजली की चमक का अंकन उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ के भाटी चित्रकारों में लोकप्रिय था। इधर-उधर घूमती, आलिंगन बद्ध, फूल सूंघती, सितार बजाती परियों के साथ क्रीड़ारत भिन्न-भिन्न मुद्राओं में स्त्रियों का अत्यंत सुन्दर चित्रण हुआ है।

जनाना महल के मुख्य कक्ष के कुछ भित्ति चित्र बिलकुल अलग ढंग के हैं। हरम

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

का जीवन, विभिन्न वस्तुएं, राजमहल का उद्यान, स्त्रियों का जलाशय में स्नान करते हुए, हुक्का पीते हुए तथा संगीतज्ञों के साथ दर्शायी गयी हैं। हाल के स्तम्भों पर महिलाओं के फूल तथा सुरा प्रदान करते हुए, नृत्य करते हुए भगिमा का अंकन है। रेखाओं में गति, लोच और भावप्रवणता है।

नागौर के चित्रकारों के बारे में हम अंधकार में हैं। किन्तु सभी चित्रों की बढ़िया तैयारी, सशक्त, प्रवाहमय महीन रेखाएँ, कुशल संयोजन, सफल भावाभिव्यक्ति यहाँ की परिपक्व शैली का समर्थन करते हैं। मुगल प्रभाव के अन्तर्गत चित्रों के रग हल्के सूफियाने हैं। प्राय: सभी चित्रों की एकरंगी बूझे रंग वाली पृष्ठभूमि है। चित्रों पर बीकानेर और मारवाड़ दोनों स्कूलों का प्रभाव है। समानुपातिक आकृतियां सामान्य रूप से लम्बी आंख और नोंकीली नाक लिये हैं। प्राय: सभी चित्रों में मुखाकृति का गहरा रंग एवं ठुड्डी के नीचे लम्बी लटकती मूछें, नागौरी चित्रों की विशिष्टता है। वेशभूषा मारवाड़ प्रभाव लिए है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

बीकानेर चित्रकला

डा. नवल कृष्ण

बीकानेर, एक मरुस्थल प्रदेश. राठौड़ों की एक शाखा, अपनी परम्परागत संस्कृति तथा मध्यकालीन परम्परा को आज भी संजोए है। वीर राजपूत यद्यपि मरुस्थलवासी थे तथापि स्थानीय काव्य, कविता, संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला, स्थापत्य कला एवं अन्य हस्त कलाओं की समृद्ध धरोहर बनाए रखे। स्थानीय जैन संरक्षकों ने बीकानेर में विशालकाय मन्दिर बनवाये और गरिष्ठ पुस्तकालयों में अपने धार्मिक चित्रित ग्रंथों से अपनी परम्परा की जड़ें मजबूत रखीं। फलत: बीकानेर में मध्यकालीन विचार और ललित कलाएँ राज्य सभा और जन-समुदाय दोनों द्वारा प्रश्रय में रहे।

बीकानेर राज्य उत्तरी-पश्चिमी भारत के थार मरुस्थल का एक प्रदेश है, जो दक्षिण में जोधपुर, दक्षिण-पूर्व में जयपुर और दक्षिण-पश्चिम में जैसलमेर जैसे सशक्त प्रदेशों से घिरा है। पन्द्रहवीं शती (1487 ई.), जब राठौड़ों का यहाँ आधिपत्य छाया, के पूर्व यह जांगल देश के नाम से विख्यात था, जहां विभिन्न जातियाँ यथा जाट, जोहिया, भाटी एवं सांखलों द्वारा शासित था।

राव बीका, जोधपुर के राव जोधा के पुत्र, ने जांगल देश की तरफ अतिक्रमण (1465 लगभग) प्रारम्भ किया और बीकानेर की स्थापना की (1478 या 1480)। लगातार अशांति एवं हमलों ने उसके पौत्र राव कल्याणमल (1542-47) और प्रपौत्र राजा रायसिंह (1571-1612) को बाध्य किया कि वे मुगल सम्राट अकबर से संधि कर प्रगाढ़ मैत्री स्थापित करें। इसी दौरान बीकानेरी राजे एवं राजकुमार मुगल दरबार की कला एवं संस्कृति के सीधे सम्पर्क में आये। इसी काल से बीकानेर के चित्र कारखाने के उत्पादन की हमें सामग्री उपलब्ध होती है।

बीकानेर राज्य का स्थापित चित्र कारखाना बहुत ही उत्पादक था और हजारों चित्रित उदाहरण इसमें सुरक्षित थे। अधिकांश परवर्त्ती चित्र अभिलेख युक्त हैं तथा बहियों के भी उपलब्ध आंकड़ों से बीकानेर चित्रकारों और चित्रकला के क्रमिक विकास का हमने अभूतपूर्व अध्ययन किया है। ये आंकड़े चित्रकारों को राज्य द्वारा प्रदत्त भू-सम्पत्ति, सिरोपाव एवं नजर आदि के विवरणों में उनकी सामाजिक स्थिति का भी प्रतिबिम्बन करते हैं।

बीकानेर चित्र शैली के सर्वप्रथम उदाहरण, जैन और भित्ति चित्रों के अतिरिक्त, यथा भागवतपुराण, रासपाचाध्यायी,[1] दशावतार, रामायण एवं वृन्दावन दृश्य[2] आदि (लगभग 1590-1603) राजा रायसिंह (1571-1612) और महाराजा सूरसिंह (1614-31) के प्रश्रय में चित्रित हुए। परवर्ती अभिलेख युक्त राव भोज की शबीह (प्राय: 1605)[3] अपने दकनी प्रभाव को छोड़ती है। इसके तथा अन्य मुगल

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

या मुगल प्रभावित चित्रों के बीकानेर में उपलब्ध होने का कारण राव कल्याणमल एवं राजा रायसिंह का अपने भ्रमण और सामरिक लूट के मध्य इनका संग्रह कर इनके प्रति रुचि रखना भी था।

इस काल के बीकानेरी चित्रों को हम तात्कालिक 'पापुलर मुगल' शैली (आगरा, लाहौर, इलाहाबाद आदि स्थान में पल्लवित) से कुछ ही विशेषताओं के कारण अलग कर पाए हैं—यथा इनकी राठौड़ आत्मा जो परवर्ती स्थापित बीकानेरी शैली में प्राप्य है, उदाहरणार्थ तेज रंग, लम्बी आंखें तथा दृश्य से विशिष्ट पात्रों के पीछे लाल चौकोर फ्रेम। यह 'पापुलर मुगल' प्रभाव अन्य राजपूती केन्द्रों की भांति बीकानेर में भी आरोपित होना ही था। काफी संभावना है कि या तो मुगल सम्राट अकबर ने अपने मित्र राजा रायसिंह को कुछ चित्रकार आमेर के राजा की भांति भेंट किये या राजा स्वयं ही मुगल पापुलर केन्द्रों से उन्हें बीकानेर कारखाने में लाये, जिन्होंने स्वयं के कार्य को स्थानीय जामा पहनाया और अन्य बीकानेरी चित्रकारों को शिक्षा दी।

भागवतपुराण सेट के कई स्तर प्रकाश[4] में आये यथा 1610 से 1630-45 तक कई घराना चित्रकारों द्वारा ये बनाये गये। इसमें चौरपंचाशिका जिसने ईरानी शैली को भारतीय मुगल शैली के रूप में सार्थक बनाया, प्रकार के दांतेदार जलयुक्त बादल, नाटक पात्रों के पीछे लाल फ्रेम, मुगल प्रभावित गोरी, चौकोर मानव चेहरे जिनकी आंखें कम लम्बी आदि विशेषताएँ अवसर मुगल अकबरी तुतीनामा या फिर आगरा के उस्ता शालिवाहन के आगरे आदि की चित्रशाला के चित्रों के समीप लगते हैं। ये चित्र महाराज कर्णसिंह काल अथवा सत्रहवीं शती के मध्य तक एक स्थापित कारखानें के चित्रकारों के पूर्वज व गुरु रहे होंगे, द्वारा बनायी बीकानेरी चित्रकला का प्रतिनिधित्व करते हैं। कुछ बिखरे उदाहरणों में राव राजा भोज[5] प्राय: (1605 ई.) की शबीह में दकनी प्रभाव या बर्लिन रागमाला (1605 ई.)[6] बीकानेर से सम्बद्ध अन्य चित्रकारों की सम्भावना दर्शाते हैं।

राजा रायसिंह के पश्चात् पुन: बीकानेर में खतरे के बादल मंडराए और क्रमश: काठियावाड़, सूरत, फलोदी और नागोर की जागीरें निकल गयीं। महाराजा कर्णसिंह (1661-69) मुगलों के लिए दकन में बहादुरी से लड़े किन्तु मनोवांछित फल न मिलने पर मुगल सम्राट औरंगजेब के विरुद्ध विद्रोह कर 1647 में बीकानेर लौट गए। राजपूतों ने उन्हें 'जय अंगलधर बादशाह' की उपाधि से विभूषित किया। औरंगजेब ने करणसिंह के पुत्रों की बहादुरी के कारण महाराजा को माफ कर दौलताबाद भेजा (1666) जहाँ वे गोलोक पधारे (1669 या 74)।

उनकी कला संरक्षता एवं साहित्य प्रेम बीकानेरी कला के स्वर्ण युग से ज्ञात होता है। यद्यपि सत्रहवीं शती के मध्य में हमें शुद्ध राठौड़ बीकानेरी शैली की क्षणिक आभा मिलती है, परन्तु पुन: महाराजा कर्णसिंहजी के प्रश्रय में बीकानेरी चित्रकला परवर्ती जहाँगीर तथा शाहजहाँ कालीन मुगल चित्र शैली के प्रभाव के निकट आ जाती है। असंख्य मुगल प्रारूपों की बीकानेरी नकलें भी तैयार की गयीं। सम्भवत: बीकानेर के चित्रकार इस काल में बीकानेर शैली की सर्वोत्तम कला

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

का प्रदर्शन कर रहे थे। मुगल सम्राट औरंगजेब की अनुदार कट्टर नीति भी संभवतः इन स्थानीय राज्यकला के विकास का एक कारण रही। दिल्ली के उस्ताद अली रजाकृत 'बैकुण्ठ दर्शन' संयोजना (प्रायः 1650, भारत कला भवन, वाराणसी)[7] ने तो समकालीन मुगल कला को भी अपने लावण्य तथा गरिमा में पछाड़ दिया। यह चित्र न केवल अपने मुगल प्रभाव एवं राठौड़ आत्मा के क्लिष्ट मिश्रण के लिए प्रसिद्ध है वरन् अपने विशिष्ट अभिलेख के लिए भी जो प्रश्रयदाता और कलाकार के मध्य के मधुर सम्बन्ध को दर्शाता है। इसी संयोजना की मानवाकृतियाँ महाराजा अनूपसिंह काल के प्रमुख चित्रकारों विशेषतः रुकनुद्दीन, नत्थू और नूरे के लिए माडल बनीं।

महाराजा कर्णसिंह काल में अत्यधिक जहाँगीरी-शाहजहाँनी प्रभाव की शबीहें बनीं जो शक्ति और ब्रश की तैयारी को दर्शाती हैं।[8] सम्भवतः सर्वप्रथम बीकानेरी रागमाला, लेखक अनुसार, 'कादिर रागमाला' (नेशनल म्यूजियम नई दिल्ली के एक पेज पर लेख में परवर्ती चित्रकार के नाम के आधार पर)[9] अपने विषय का ही रंग, ईंटों के रंग में मुगल प्रकार के चेहरे आदि के लिए उल्लेखनीय है। इन सब उदाहरणों के अध्ययन से जहाँगीर-शाहजहाँ कालीन मुगल शैली एवं बीकानेर शैली के सम्बन्धों पर प्रकाश पड़ता है। वास्तव में मुगल शैली के बदलते स्वरूपों से समकालीन बीकानेरी शैली अछूती नहीं रही।

प्रायः 1675 में बीकानेर स्कूल ने एक स्थापित प्रारूप ग्रहण किया जब कि बीकानेरी स्वनामधन्य चित्रकारों ने बीकानेर राजशाही कारखाने से सर्वप्रथम 'रसिकप्रिया' सेट का कार्य आरम्भ किया। इस तक बीकानेरी चित्रकारों के मानवाकृतियों और पृष्ठभूमि के सरस चित्रण की एक मनोहर शैली का विकास कर लिया था। इस प्रकार बीकानेरी शैली तात्कालिक मुगल शैली से आगे बढ़ गयी, यद्यपि मुगल प्रभाव में रंग योजना अन्य केन्द्रों की भांति चटकीली न हो, बुझे और दबे रंगों की थी।

उस्ता रुकनुद्दीन 'अमराणी' (प्रायः 1650-1710) एवं उसका घराना बीकानेर चित्र शैली के विकास का उत्तरदायी था। इसके समकालीन चित्रकार नत्थू,[10] लुफा,[11] रशीद,[12] महमद, हसनरजा, मुराद[13] आदि इससे कहीं कम न थे। समसुद्दीन ने अलीरजा की आकृतियों को स्थानीय जामा पहनाया। उस्ता में बनाये सर्वप्रमुख चित्रों में लेडिज पार्टी',[14] 'बैकुण्ठ दर्शन'[15] और रसिक प्रिया का एक पत्र 'वीभत्स रस'[16] है। लम्बोतरे चेहरे, फूली मेवाड़ी सदृश्य नाक और नशीली आंखों सहित बने और धड़ डमरू सदृश्य। चौड़े पंजों और आपेक्षाकृत बडे सिर वाली मानवाकृतियाँ अपने संक्षिप्त हाव भाव में और जमीन से ऊपर हवा में तैरती-सी प्रतीत होती हैं। बगीचे में सीमित गहराई, एक उभरे पठार पर छोटा मंदिर या वास्तु और मुगल प्रभावित वृक्षों की दो-तीन पंक्तियाँ और छिछले बर्फ के गोले से बादलों भरा आकाश आदि पृष्ठभूमि का निर्वाह करता था। रंग योजना संक्षिप्त रूप में लाल, हरे, नीले, भूरे के विभिन्न शेडस् के इर्द-गिर्द घूमती रही। रंग बुझे रहे। सफेद मिले विशेष हरा बीका-

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

नेरी शैली का निजस्व है ।

उस्ता रुकनुद्दीन और उसका पुत्र इब्राहिम महाराजा अनपोसिंह के कारखाने के सुपरवाइजर (गजधर, उस्ताद) रहे । इनके अधीन उपरोक्त कलाकारों के अतिरिक्त पचासों चित्रकार रहे होंगे जैसा कि चित्रों की बहुसंख्या से प्रतीत होता है । इनके कार्यकाल में लगभग चार 'रागमाला सेट'[17] 'रसिकप्रिया'[18] (प्रथम) सेट का आधे से अधिक कार्य, बारहमासे, रेखाचित्र और अन्यान्य प्रचलित धार्मिक चित्र एवं शबीहें आदि बनीं, जो तत्कालीन बीकानेर चित्र शैली अभिलेखों (बहीखाता) में सर्वमहत्व-पूर्ण 'संभाला बही' (1795-96 ई.) (देखें कृष्ण, नं. खण्डालावाला वाल्यूम, सं. डॉ. बी. एन. गोस्वामी, शीघ्र प्रकाशित) में उल्लिखित विभिन्न चित्रों एवं चित्रकारों के विषद उल्लेख भी तत्कालीन बीकानेरी कारखाने के उन्नत कार्य-कलाप का वर्णन करते नहीं अघाते ।

चित्रकारों की अभिव्यक्तिपूर्ण कार्यशैली ने मुगल प्रारूपों में नवीन अंग भी प्रदान किए । यद्यपि वे अपनी सीमा में बँधे रहे । महाराजाओं का बलिष्ठ तथा स्त्रियों के स्त्रियोचित सौन्दर्य को कलाकारों ने अपने अनन्त जनाना दृश्यों यथा विलास करते राजा और स्त्रियों में दर्शाया । तथापि 'रसिकप्रिया' और 'रागमाला' जैसे शास्त्रीय व परम्परागत विषयों में कलाकार परम्परा में बंधे रहे, फिर भी इनमें सभी तात्का-लिक प्रमुख कलाकारों ने अपनी सफाई और तैयारी दिखा इनको 'डिलक्स' संस्करण का रूप दिया । यदि अठारहवीं शती के प्रारम्भ में बने विशेष भागवत (सेट चतुर्थ) तथा रसिकप्रिया (सेट दूसरा) को इनके साथ कर दें तो प्रतीत होता है कि इनमें प्राप्त चित्र-तत्त्व सम्पूर्ण बीकानेरी शैली का प्रतिनिधित्व करते हैं ।

सत्रहवीं शती के अन्त तक स्थापित हो गए तो परवर्ती चित्रकार कुछ लघु परि-वर्तन के अतिरिक्त, स्थापित शैली की नकल करने के अलावा एकदम असहाय रहे । बीकानेरी शैली पर स्पष्ट मेवाड़ी प्रभाव क्षणभंगुर रहा । इब्राहिम के नेतृत्व में बीकानेर कारखाने ने संभवत: मेवाड़ से आयी रानी के लिए रागमाला (सेट चार) बनाया ।

महाराजा सुजानसिंह (1700-36), जो अधिकांशत: बीकानेर में रहे, के प्रश्रय में शायद नूरे (नूरुद्दीन, प्राय: 1647-1720-25)[19] ने अपने अधीन रसिकप्रिया (प्रथम) का समापन किया । नूरे की अत्यधिक तैयारी वाली मानवाकृतियाँ और मन-मोहक रंगों का संतुलन अन्य बीकानेरी चित्रकारों से अधिक प्रभावकारी रहीं । इसके अन्तर्गत संभवत: ईसा, महमद और उसका पुत्र हसन तथा मुराद (द्वितीय) आदि कलाकार कार्य कर रहे थे । बूँदी शैली के प्रभाव की लहर[20] ने मानवाकृतियों के छोटे चेहरे और परवर्ती औरंगजेब मुगल प्रभाव ने लम्बे धड़ों के अंकन का प्रचलन किया ।

इस प्रश्रय में दो अन्य विशिष्ट संस्करण—रसिकप्रिया (द्वितीय) तथा भागवत (चतुर्थ) प्रारम्भ हुए, जो पुन: रसिकप्रिया (प्रथम) सेट के चित्रगत तत्त्वों पर पूर्णतया आधृत थे । शैलीगत आधार पर कहा जा सकता है कि भागवत सेट के अन्तिम स्तर

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

के चित्र और रसिकप्रिया (द्वितीय) सेट के प्रथम स्तर के पन्ने कालक्रम में निकट रहे। फलतः रसिकप्रिया प्रथम सेट से लेकर रसिकप्रिया (द्वितीय) के समापन (1750-60 या 80) तक चित्रकारों के मुख्य घराने अपने खाकों से व परम्परा से काम लेते रहे। अधिकांशतः या तो कठोर या ढीले-ढाले संयोजन बनते रहे। मात्र भागवत चित्रों में समकालीन चित्रकारों की स्वतंत्रता दिखती है, क्योंकि एक तो भागवत चित्रों का आकार बड़ा था, जहाँ स्थान भरने के लिए कलाकारों को कल्पना का सहारा लेना पड़ा, दूसरे कथा में साहस भरे युद्ध और क्रियाकलापों से भरी थी, जबकि रसिकप्रिया ज्यादातर भाव प्रमुख। प्रतीत होता है कि बीकानेर कारखाना कारीगरों से भर गया था। अच्छे चित्रकारों के अतिरिक्त उत्साही युवक चित्रकार जो बूंदी, मेवाड़, किशनगढ़, जयपुर और जोधपुर चित्र शैली के प्रभाव लेने में हिचकिचाए नहीं, सफल रहे। वरना, अधिकांशतया राधा-कृष्ण हो या महाराजा (नायक) और सुन्दरियाँ (नायिका) वे एक पूर्व निश्चित राजशाही मुद्रा में कार्यरत एक ढाँचे रूपी भवन और पृष्ठभूमि के ऊपर सीमित हावभाव में दर्शाए गए हैं।

इनमें न तो अली रजा. रुकनुद्दीन और नत्थू आदि की कृतियों का लावण्य है, न ही नूरे सी तैयारी और सफाई। तथापि पृष्ठभूमि में अब के चित्रकार अपने उक्त पूर्वजों से आगे बढ़ गए। वृक्षों पर माडेलिंग, आकाश में बादलों का शंखाकार और हस्ति-सूढ़ाकार ज्यामितीय अंकन नयनोन्मीलन रहा। सर्वोपरि कलाकार तत्कालीन चित्रों में रोशनी के स्रोत को संतोषप्रद रूप में रख पाए। रंग अब पहले से ज्यादा चटकीले हो गए।

महाराजा जोरावरसिंह (1636-45) के परवर्त्ती काल और महाराजा गजसिंह के प्रारम्भिक काल में बीकानेरी शैली में एक नया मोड़ आया। मुगल प्रभावित बुझी रंग योजना में राठौड़ रंग विधान का चटकीलापन बढ़ा। परस्पेक्टिव और वातावरण अंकन में पुनः फर्रुखसियर और मोहमदशाह काल के मुगल प्रभाव और कुछ दूरस्थ दकनी प्रभाव भी दृष्टिगोचर है। चित्रों पर वे विस्तृत अभिलेख तत्कालीन विभिन्न चित्रकार घरानों की शैली तथा कृतियों पर यथोचित प्रकाश डालते हैं। महाराजा जोरावरसिंह और गजसिंह काल में प्रतीत होता है कि अधिकांशतः चित्र महाराजा सुजानसिंह के प्रश्रय में बने चित्रों पर आधृत रहे और प्रतिकृत होते रहे।

महाराजाधिराज शिरोमणि श्री राजराजेश्वर गजसिंह (1745-87) ने दिल्ली की सहायता करने के उपलक्ष्य में अभूनपूर्व 7000 का मनसब और 'माही मारतीब' प्राप्त किया। इनके दीर्घकालीन राज्यकाल में कला साहित्य पर जोधपुर का सर्वप्रथम, फिर जयपुर का स्पष्ट प्रभाव बीकानेरी शैली पर दिखा। इन प्रभावों से स्थानीय शैली में नवीन उत्साह का संचार हुआ। स्थूल भारी गोल चेहरों पर चौड़ी नशीली आँखें वाली मानवाकृतियाँ, ऊँची ढोलककार पगड़ियाँ और अत्यधिक घेरदार जामा जोधपुर से बीकानेरी फैशन में आयीं। जबकि चित्र में परस्पेक्टिव, शेडिंग एवं विशेष तौर से वस्त्रों के छोरों पर लयात्मक घुमाव परवर्ती मुगलकालीन थे। अब घनी पृष्ठभूमि दृश्य में गहरायी दिखाती है। अलंकृत वृक्षों की शाखाएँ मनभावक हैं।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

परम्परागत इमारत भवन अब अधिक सफेद एवं विशालकाय होने लगे, यहाँ तक कि दृश्य एक या दो कक्ष अथवा छत पर दिखाये जाने लगे। अहमद और हसन के घराने (1765-85) जो सम्भवतः तत्कालीन उस्ताद थे, ने आलिंगनबद्ध स्त्री-पुरुष तथा दरबार दृश्य खूब बनाए, जो सम्भवतः महाराजा गजसिंह के संरक्षण के आरम्भिक काल में रसिकप्रिया (द्वितीय) तथा भागवत (चतुर्थ) सेट का समापन होता दिखता है। संरक्षक राजा अब दरबार दृश्य और काल्पनिक हरम दृश्यों (सुरा सुन्दरी) में अधिक चाव लेने लगे, जैसे कि राज्य की सुख-समृद्धि उन पर हावी हो गयी हो। जोरावरसिंह काल तक के आखेट दृश्य तो लगभग समाप्त प्राय हो जाते हैं। फलतः उक्त दृश्यों के चित्रकार विभिन्न मुद्राओं और सेटिंग में उक्त संयोजनाओं की अनगिनत प्रतियाँ बनाने में व्यस्त हो जाते हैं। अतः इनके दूसरे और तीसरे पीढ़ी के कलाकार भी अपने कौशल और कल्पना का जौहर न दिखाकर, इन्हीं संयोजनाओं की प्रतिलिपि कर सन्तुष्ट हो जाते हैं। इन कलाकारों का मुख्य उद्देश्य शबीहों की सफाई और तैयारी पर ध्यान केन्द्रित करना हो जाता है। फलतः शैली कठोर और कुण्ठित हो जाती है। कलाकार अपने गुरुओं और पूर्वजों द्वारा संरचित दृश्यों के तत्वों के ठीक अर्थ समझने में विफल दिखते हैं और मुगल प्रभावित वनस्पति जिनका स्थानीयकरण हो चुका, प्रभावरहित होती जाती हैं।

अठारहवीं शती के अन्त में महाराजा सूरतसिंह (1787-1828) ने अपने लम्बे राज्य काल में विद्रोहादि दमन किए और अन्य राज्यों यथा जोधपुर के झगड़ों को भी निपटाया। इस काल में जयपुर शैली के जयपुरिया चित्रकार सभी राजस्थानी केन्द्रों तथा भारत के अन्यान्य केन्द्रों में टिड्डी दल की तरह छा जाते हैं। बीकानेर भी अपने राजनैतिक संधि के कारण इनसे अत्यधिक प्रभावित होता है। बीकानेरी संरक्षक और चित्रकार दोनों तात्कालिक जयपुर शैली के चक्षु-कटु तीखे हरे और चित्र के हर स्थान पर की गयी विकृत शेडिंग को अपनी चित्र शैली में अपनाने को बाध्य हो जाते हैं। तथापि पूर्व कालीन जोधपुर प्रभावित शैली समानान्तर रूप में उन्नीसवीं शती के मध्य तक चित्रकारों के उस्ता वर्ग द्वारा अपनायी जाती रही है।

अन्तिम धक्का बीकानेर शैली को "कम्पनी शैली" के आगमन से लगता है। 1818 की अंग्रेजों के साथ की संधि होने के पश्चात् राज्य की बागडोर ब्रिटिश संस्कृति के हाथ चली जाती है। शनैः शनैः अन्य राजपूत भी इस जाल में फँस जाते हैं। यदि बीकानेर चित्र शैली में कुछ जीवन्तता शेष है तो वह वहां के भित्ति चित्रों में विद्यमान है जहां राज्याश्रय से विमुख उस्ता, मथेरण कलाकार अपनी धरोहर संजोए हुए हैं।

संदर्भ

1. "राधा गोपियों के साथ", लगभग 1610,
श्री जे.पी. गोयनका संग्रह।
माइकेल, जी.; लीच, लिं. एवं वात्स्यायन, क., इन दी इमेज आफ मैन, लन्दन, 1982

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

2. प्लेट VII,
गोएट्स, हरमन, आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर आफ बीकानेर स्टेट, आक्सफोर्ड, 1950
3. गोयेट्स, हरमन, आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर आफ बीकानेर स्टेट, आक्सफोर्ड, 1950, पृ. 97-98
4. 1. 16 चित्र भागवत पुराण।
2. एक बृहद भागवत पुराण सेट, (प्लेट 91-'दानलीला)।
3. 16 चित्र उषा चरित्र।
गोयट्स ह. उपरोक्त, पृ. 77-103
5. गोयेट्स, ह. उपरोक्त, प्लेट ×, पृ. 101
6. वाल्डस्मिथ, इ. एवं आर.एल., मिनियेचर्स आफ म्यूजिकल ट्रंस्पिरेशन, बर्लिन 1968, 1975, पृ. 119, चित्र 1, 63,109 एवं 133
7. खण्डालावाला, का. जे. एवं मोतीचन्द्र आदि, मिनिएचर पेंटिंग्स फ्राम द श्री मोतीचन्द्र खजांची कलेक्शन, दिल्ली, 1965, प्लेट E
8. गोएट्स, ह. उपरोक्त, पृ. 105
वेल्च, स्टु. कै., इण्डियन ड्राइंग्स एण्ड पेण्टेड स्केच्स, 1976, कैटलाग नं. 62, पृ. 112
9. भैरोराग, खण्डालावाला का.जे. आदि, उपरोक्त, कैटेलाग नं. 84, चित्र 65
10. 'लेडिस पार्टी' DR 83, नाथूराम, पृ. 106
गोएट्स, ह. उपरोक्त।
'शीशा देखती स्त्री शृंगार', नत्थू, चित्र 61, कैट. 30
वेल्च, स्टु., कै., ए फ्लावर फ्राम एवरी मिडो, न्यूयार्क, 1964
11. 'राजा शिकार पर', रशीद, चित्र 77
गोएट्स, ह., उपरोक्त।
12. 'राधा-कृष्ण वर्षा में', लुफा, चित्र 75
खण्डालावाला, आदि, उपरोक्त।
13. 'बारामासा पत्र', मुराद, चित्र 30, पृ. 76
वेल्व, स्टु. कै., उपरोक्त, 1964
14. "लेडीज़ पार्टी" तिथि युक्त 1660, चित्र 83
गोयेट्स इ., उपरोक्त।
15. फाक, टो. स्मार्ट., ई. एवं स्केल्टन, रा., इण्डियन पेण्टिग (कोलनाधी कैटेलाग), लन्दन, 1978
"बैकुण्ठ दर्शन", प्लेट 6 D.
16. कृष्ण, नवल, बीकानेरी मिनिएचर पेंटिग वर्कशाप्स आफ रुकनुद्दीन, इब्राहीम एण्ड नत्थू, पृ. 23-27, प्लेट ×I, चित्र 1, 3 एवं प्लेट ×II चित्र 8

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

17. 'रागिनी खम्भावती', रागमाला सेट ललित कला नं. 2, प्रथम, पृ. 35
सोथबी ग्राक्शन कैटेलाग, बुधवार, जुलाई 11, 1973, पृ. 106
गोएट्स, ह., उपरोक्त ।
'पटमंजिरी रागिनी', रागमाला सेट द्वितीय, कैटेलाग नं. 112
सोथबी ग्राक्शन कैटेलाग, मंगलवार, 10 दिसम्बर, 1974
'राग ललित' प्लेट × II, चित्र 5
कृष्ण, नं उपरोक्त, ललित कला ।
18. रसिकप्रिया पत्र, कैटेलाग 92, पृ. 51
खण्डालावाला ग्रादि, उपरोक्त, चित्र 78
गोएट्स, ह., उपरोक्त ।
रसिकप्रिया पत्र, इब्राहीम, प्लेट × I, चित्र 2 एवं 4
कृष्ण, नं., उपरोक्त, ललित कला ।
19. स्त्री शबीह, नूरे, कैटेलाग 93
खण्डालावाला ग्रादि, उपरोक्त ।
रसिकप्रिया पत्र, नूरे, चित्र 93
गोएट्स, ह., उपरोक्त ।
20. बूंदी प्रभाव, चित्र 81
गोएट्स, ह., उपरोक्त ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गोयेट्स, हरमन, ग्रार्ट एण्ड ग्रार्किटेक्चर ग्राफ बीकानेर, ग्राक्सफोर्ड, 1950
2. कृष्ण, नवल, बीकानेर (कोर्ट मिनियेचर) पेण्टिग, वाराणसी, 1985 (ग्रप्रकाशित शोध प्रबन्ध) ।
3. कृष्ण, नवल, "बीकानेर मिनियेचर पेण्टिग वर्कशाप्स ग्राफ रुकनुद्दीन इब्राहीम एण्ड नत्थू" ललित कला नं. 21, पृ. 23-27
4. कृष्ण, नवल, "बीकानेर मिनियेचर पेण्टिग" The Dictionary of Art, London (शीघ्र ही प्रकाशित) ।
5. कृष्ण, नवल, "संभाला बही……" खण्डालावाला फेलिसिटेशन वाल्यूम, सं. डा. बी.एन. गोस्वामी (शीघ्र ही प्रकाशित) ।
6. कृष्ण, नवल,
   a. बीकानेर पेण्टिग ।
   b. सोशल इकोनोमिक सिचुएशन ग्रॉफ बीकानेरी ग्रार्टिस्ट्स थ्रू ग्रार्काइवल मैटेरियल । दोनों शीघ्र ही प्रकाशित पुस्तकें ।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मारवाड़ का स्थापत्य

सुखवीरसिंह गहलोत

मारवाड़ की मरु भूमि केवल वीरों की भूमि ही नहीं रही है, वह साहित्य व कला में भी अग्रणीय है। यहां के शासकों, सेठ, साहूकारों के संरक्षण व सहयोग से यहां कई निर्माण कार्य हुए व उनकी देखभाल हुई। यहां की सामाजिक व आर्थिक परम्पराओं का यहां के स्थापत्य पर भी काफी प्रभाव पड़ा। इसी कारण यहाँ की चित्र कला, सगीत कला, नृत्य कला. स्थापत्य कला, आदि किसी प्रदेश की कला से कम नहीं रही। यहां के दुर्ग, राजमहल, हवेलियां, व सामान्य लोगों के मकान काफी दृढ़ व कलात्मक हैं। यहां की छतरियें, स्मारक-स्तम्भ, यूप-स्तम्भ, गोवर्धन-स्तम्भ, कीर्ति-स्तम्भ, बावड़ियें, कुण्ड, कुएं, जलाशय, आदि भी देखने योग्य हैं। स्थापत्य की इन कृतियों से यहां के लोगों की भावनाओं का अच्छा परिचय मिलता है। उनसे यहां की सभ्यता और संस्कृति के दर्शन भली प्रकार होते हैं। इनके साथ ही निर्माण कला की स्मृति सदा बनी रहती है। कहावत भी है 'नाम गीतरां अर भीतड़ां सू रेवे।' स्थापत्य इतिहास जानने के लिये सर्वाधिक प्रामाणिक स्रोत होता है। कोई भी अभिलेख, सिक्का आदि इस विषय में उसकी बराबरी नहीं करता है।

मारवाड़ के स्थापत्य को चार भागों में बांटा जा सकता है—1 आवास स्थापत्य (नगर, दुर्ग, महल, हवेलियां आदि), 2 मन्दिर स्थापत्य (मन्दिर, मूर्तियां आदि), 3 जल स्थापत्य (कुए, बावड़ी, कुण्ड, सरोवर, आदि), जो जल से सम्बन्धित है। 4 स्मारक स्थापत्य (छत्रियां, यूप-स्तम्भ, गोवर्धन-स्तम्भ, कीर्ति-स्तम्भ आदि)।

1. आवास स्थापत्य

नगर—मारवाड़ के प्रमुख नगर जोधपुर, नागौर, पाली, जालोर, भीनमाल, सोजत, फलोदी, मेड़ता आदि हैं। जोधपुर मारवाड़ की राजधानी रहा है अतः यह सबसे बड़ा व प्रसिद्ध नगर है। राजस्थान का यह अत्यन्त सुन्दर नगर एवं रेगिस्तान का प्रवेश द्वार है। पक्की सड़कों से यह राजस्थान के बड़े बड़े नगरों से जुड़ा हुआ है। इसकी स्थापना 1459 में राव जोधा द्वारा की गई थी। प्रारम्भ में यह नगर एक मील के घेरे में ही बसा था जो धीरे धीरे बढ़ता ही गया। प्रारम्भ में ही राव जोधा ने उत्तर, पश्चिम की पहाड़ी पर दुर्ग का निर्माण कराया। इसकी तलहटी में पूर्व व दक्षिण में आबादी बराबर-बराबर बढ़ती गई। अब यहां की आबादी लगभग 7 लाख हो गयी है।

मालदेव ने सन् 1540 के लगभग जोधपुर नगर के परकोटे को बढ़ाया और पक्का बनवाया था। फुलेराव की ऊपरी पोल, चांदपोल, मेड़तिया व नागोरी दरवाजे की पोलें मालदेव ने ही बनवायी थीं व परकोटा लाल पत्थर के चौकोर टुकड़ों से

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

वने हुए हैं परकोटे के साथ अन्दर की ओर पगडंडियां बनी हुई हैं। ताकि आक्रमण के समय वहां सैनिक चल-फिर सकें। शहर में प्रवेश हेतु सात दरवाजे बनवाये गये। जिनके आस पास की दीवारें काफी चौड़ी व सुदृढ़ बुर्जें बनवाई गईं ताकि शत्रु सेना आसानी से इन्हें तोड़ नही सके। यहां सैनिक बराबर चौकसी करते रहते थे।

नगर की सड़कें ज्यादा चौड़ी नहीं हैं लेकिन ये हवादार व छायावाली हैं। शत्रु की बड़ी सेना आसानी से नगर में घुस नहीं सकती थी। नगर में पानी के लिए कई झालरे, तालाब, कुएं आदि हैं। तालाबों में रानीसर, पदमसर, फतहसागर, गुलाब सागर, बाईजी का तालाब आदि मुख्य हैं। कई बावड़ियें भी हैं तथा कवरजी का झालरा, गोरांधाय की बावड़ी, चाँद बावड़ी, झालप बावड़ी, तापी बावड़ी आदि जिनका उपयोग ज्यादातर नहाने के लिये होता रहा है।

धार्मिक लोगों के लिये यहां कई मन्दिर बनवाये गये—घनश्यामजी का मन्दिर, बालकिशनजी का मन्दिर, तीजामाजी का मन्दिर, रामानुज कोट, राजरणछोड़जी का मन्दिर, कुँजबिहारीजी का मन्दिर, केशरियानाथजी का मन्दिर, पार्श्वनाथजी का मन्दिर आदि। किले पर बना चामुण्डा का मन्दिर, सर्वाधिक प्रसिद्ध है। नाथों के मन्दिर, महामन्दिर व उदयमन्दिर हैं। मस्जिदों में खाण्डा फलसा की एक मीनार की मस्जिद सबको आकर्षित करती है। मुसलमानों की जातियों के अनुसार भी कई मस्जिदें नगर के सभी क्षेत्रों में बनी हुई हैं। ईदगाह, जालोरी दरवाजे के दक्षिण में स्थित है।

इस सदी के आरम्भ में बने सरदार मार्केट व बीच में बना घण्टाघर, पूर्व में जुबली कोर्ट की इमारतें व राजमहल दुर्ग के निकट पूर्व में जसवन्त थड़ा आदि स्थापत्य कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। नगर के दक्षिण पूर्व में छीतर पहाड़ी पर बना उम्मेद भवन (राजमहल) दूसरा ताजमहल कहा जाता है। जो सभी को दूर से आकर्षित करता है।

जोधपुर नगर के उत्तर में मण्डोर कस्बा है। जो अब नगर का एक ही भाग बन गया है। यह पन्द्रहवीं शताब्दी तक मारवाड़ की राजधानी था। यह नगर गुप्त काल में अपने पूर्ण वैभव में था। इसकी साक्षी यहां के भग्न दुर्ग के खण्डहर देते हैं। मण्डोर राजधानी हट जाने पर भी राठौड़ राजाओं की शमशान भूमि 19 वीं शताब्दी तक रहा। यहां कई राजाओं के देवल हैं। मण्डोर में ही वीरों की साल है। यहां नौ देवी-देवताओं व सात महापुरुषों की 16 फुट ऊंची मूर्तियों का दालान है जो पहाड़ के पत्थर को काटकर बनाई गई हैं। उन पर सफेद चमकीला पलस्तर किया जाकर विभिन्न रंगों में रंगा गया है। ये मूर्तियां 18 वीं शताब्दी में महाराजा अभयसिंहजी के राज्य काल में बनी थीं। मण्डोर का उद्यान जोधपुर नगर वासियों के लिए अत्यन्त आकर्षक पर्यटक स्थल रहा है। यहां श्रावण व भादों में मेले भरते हैं।

मण्डोर मूलतः माण्डव्य ऋषि का आश्रम था और उन्हीं के कारण इसका नाम माण्डयपुर या मण्डोर पड़ा। इसी आश्रम में बाऊक के पूर्वज तात ने भी तपस्या की की थी। प्रारम्भ में यहां नागौर का राज्य था और उन्हीं के कारण यहां के नाग-

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

कुण्ड, नागादड़ी, नागपर्वत प्रसिद्ध हैं। प्रतिहारों ने दुर्ग की दीवारें पक्की बनवाई थीं। यहां के दो तोरण द्वार बड़े कलात्मक हैं। इसमें कुछ कृष्ण-लीलायें बतलाई गयी हैं। यहां से आठवीं शताब्दी का एक वैष्णव मन्दिर भी खण्डित अवस्था में मिला है। इसका मण्डप 6 खम्भों का है, जिस पर नर्तकों, संगीतियों के अलावा कीर्ति मुख, पुष्प आदि अंकित हैं। विष्णु का वामन अवतार भी दिखाया गया है। मण्डोर के रेलवे स्टेशन के निकट अष्ट मातृकाओं व गणेश की मूर्तियां भी मिलीं हैं, जिसको कुछ लोग रावण का विवाह यहां होना बतलाते हैं और इस स्थान को रावण की चंवरी कहते हैं। नाहड़ राव प्रतिहार की गुफा के पास एक जैन मन्दिर भी है, जो दो मंजिला है। इसका सभा मण्डप दसवीं शताब्दी में बना था।

मण्डोर से दक्षिण मे बालसमन्द झील है, जिसे बालकराव पडिहार ने बनवाई थी, इसके बांध पर महल बने हुए हैं। यहां का उद्यान बड़ा रमणीय है।

भीनमाल जोधपुर से 169 कि.मी. दक्षिण व पश्चिम में बसा है तथा प्राचीनकाल में श्रीमाल कहलाता था। यहाँ की अधिकतर आबादी भीलों की होने से इसका नाम भीनमाल पड़ा, जैसा कि आठवीं व नवीं शताब्दी की रचनाओं से पता चलता है। यहां के प्रसिद्ध मन्दिर गणपति, क्षेत्रपाल, चण्डिका, देवी, शिवलिंग आदि के थे। प्राचीनकाल में यह नगर काफी बड़ा व समृद्ध था तथा यहां काफी शिल्पकार, स्वर्णकार आदि रहते थे। यहां का जगत स्वामी (सूर्य) का मन्दिर राजस्थान भर में प्रसिद्ध था। यह मन्दिर पडिहार नरेशों द्वारा बनवाया गया था। यहां का महावीर स्वामी का जैन मन्दिर भी विशाल था। शांतिनाथ व पार्श्वनाथ के भी जैन मन्दिर बड़े कलात्मक थे। श्रीमाली ब्राह्मण जाति, श्रीमाल वैश्य व श्रीमाल स्वर्णकार अपनी उत्पत्ति यहीं से बतलाते हैं।

जोधपुर से 35 कि. मी. उत्तर-पश्चिम में घटियाला है, जो प्राचीनकाल में रोहिसकूप कहलाता था। यह नवीं शताब्दी में समृद्ध नगर था।

जोधपुर से 117 कि.मी. उत्तर पूर्व में मेड़ता है जो प्राचीन काल में मेड़तंक कहलाता था। प्रतिहार नागभट्ट ने इसको अपनी राजधानी बनाया था। यहां बहुत कम प्राचीन वस्तुएँ मिली हैं। यहां का लक्ष्मी मन्दिर भी प्राचीन दिखाई देता है। मेड़ता यहां की राजस्थानी कवियत्री एवं वैष्णव भक्त मीरां बाई के कारण भारत भर में विख्यात है। राव दूदा जी का बनवाया वैष्णव चतुर्भुज मन्दिर प्रसिद्ध है। अब यहां मीरां का भी मन्दिर बन गया है।

जोधपुर से उत्तर पश्चिम में 52 कि.मी. पर ओसियां स्थित है जो प्राचीन काल में उपकेश कहलाता था। यह मन्दिरों के लिए प्रसिद्ध है। इसे ई. सन्. 1195 में मुस्लिम सेना ने काफी क्षति पहुँचाई, फिर भी स्थापत्य कला में यह अद्वितीय है। ज्यादातर मन्दिर खण्डित हो गये हैं। इनके मन्दिरों व मूर्तियों का वर्णन अलग से आगे किया जायेगा।

जालोर जोधपुर से 121 कि.मी. दक्षिण में सूकड़ी नदी के किनारे बसा है। इसका प्राचीन नाम जवालीपुर था। यों यह यहाँ की पहाड़ी के नाम से स्वर्णगिरि

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

तथा कंचनगिरि भी कहलाता था। प्रतिहारों के समय यहां कई मन्दिर व भवन बने थे। प्राचीन काल में यह एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक केन्द्र था। यहाँ का सिन्धु राजेश्वर मन्दिर बारहवीं शताब्दी में विख्यात था। उसके अलावा आदिनाथ, महावीर, पार्श्वनाथ, शांतिनाथ, आदि के जैन मन्दिर भी थे। सिद्धसेन सूरि ने अपनी रचना तीर्थमाला में जालोर को काफी महत्ता दी थी। जालोर के स्वर्ण गिरि से लेकर प्राचीन गुर्जर प्रांत की राजधानी श्रीमाल (भीनमाल) तक इतिहास की अनन्त गाथायें आज भी विभिन्न रूपों और माध्यमों में अंकित हैं।

डीडवाना जोधपुर से 209 कि.मी. उत्तर पूर्व में है। प्राचीन काल में इसका नाम डेडवानक था। यहां कई जैन व वैष्णव मन्दिर थे लेकिन मध्यकाल में मुस्लिम आक्रमणों के कारण नष्ट हो गये। यहां की खुदाई से कई मूर्तियां यत्र तत्र बिखरी मिली हैं। यहां की सर्वाधिक कलात्मक मूर्ति योग नारायण की है। जिसका वर्णन आगे किया जायेगा।

सांचोर जोधपुर नगर से 212 कि.मी. दक्षिण पश्चिम में लूनी नदी के किनारे बसा है। इसका प्राचीन नाम सत्यपुर, सच्चोरा आदि था। मुसलमानों ने इसका नाम महमूदाबाद भी रख दिया था। यहां का महावीर जैन मन्दिर जैनों द्वारा बड़ा पवित्र माना जाता था। यहां की महावीर की ताम्र मूर्ति बहुत सुन्दर बनी हुई थी। जिनप्रभ सूरि ने इसे मण्डोर के नाहड़ प्रतिहार द्वारा बनवाना बतलाया है। इस मूर्ति को अलाउद्दीन खिलजी 1310 में ले गया था तथा मन्दिर को नष्ट कर गया था। बाद में यहां नया मन्दिर बनवाया गया तथा यहां पार्श्वनाथ की मूर्ति स्थापित की गई। सांचोर का शैव मन्दिर वायरेश्वर भी प्रसिद्ध है। इसको भी अलाउद्दीन खिलजी ने नष्ट कर दिया था, लेकिन बाद में इसका पुनर्निर्माण किया गया। सांचोर से ही सांचोरा ब्राह्मण व सांचोरा चौहानों की उत्पत्ति हुई थी।

नागौर जोधपुर से उत्तर पूर्व में 128 कि.मी. दूर है। यहां प्राचीन काल में नागपुर, नागपट्टन, अहिपुर, भुजगनगर, आदि नामों से प्रसिद्ध था। यह प्राचीन काल में जांगल देश की राजधानी था। नागों द्वारा बसाया जाने के कारण यह नागौर कहलाया। यहां पर कई हिन्दू व जैन मन्दिर थे, लेकिन वे मुसलमानों के राज्य काल में तोड़ दिये गये। यहां कई मस्जिदें मुस्लिम काल में बनीं जिनमें से कई बड़ी कलात्मक हैं। यहां का सर्वाधिक प्रसिद्ध नरेश अमरसिंह राठौड़ था जो मारवाड़ के महाराजा जसवन्तसिंह प्रथम का भाई था।

पाली—पाली जोधपुर से 72 कि.मी. दक्षिण पूर्व में है। उसका प्राचीन नाम पालिका था। यहां एक व्यापारिक केन्द्र आरम्भ से ही रहा है। यहां के व्यापारी भारत के विभिन्न नगरों में व्यापार करते रहते थे और इसी कारण यहां के व्यापारी भारत भर में मारवाड़ी नाम से प्रसिद्ध हो गये। और यही कारण है कि राजस्थान के विभिन्न नगरों व गांवों के व्यापारी भी मारवाड़ी ही कहलाने लगे हैं। यह पाली नगर की राजस्थान संस्कृति को सर्वोत्तम देन है। यहां के मूल निवासी ब्राह्मण व जैनी पालीवाल ही कहलाते हैं। यहां पहले एक जैन मन्दिर महावीर का था जो

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

बारहवीं शताब्दी में पार्श्वनाथ मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध हो गया। उसके गूढमण्डप के स्तम्भ दसवीं शताब्दी के हैं। यहां का सोमनाथ का कलात्मक मन्दिर दसवीं शताब्दी में बना। एक अन्य मन्दिर पातालेश्वर महादेव का है जो लगभग आठवीं शताब्दी में बना प्रतीत होता है। पाली नगर प्राचीन काल में सूरत, बगदाद, आदि की सबसे बड़ी व्यापारिक मण्डी था। आज भी अपने औद्योगिक कलेवर में प्राचीन संस्कृति की दिव्य छवि को संजोये हुये है।

पोकरण फलौदी जोधपुर से 113 कि.मी. उत्तर पश्चिम में है। इसका प्राचीन नाम विजयपुर था। यहां का कलात्मक मन्दिर, जो पहले लोकेश्वर मन्दिर कहलाता था, 42वीं शताब्दी का है। यहां पहले परमारों का राज्य था। बाद में अकालों के कारण यहां की आबादी उजड़ गयी। बाद में 15वीं शताब्दी में यह पुनः राठौड़ राव नरा द्वारा बसाया गया है और तब से इसका नाम फलौदी हो गया। यहां पर एक सुदृढ़ किला भी बना हुआ है।

पाली जिले में जावलिया रेल्वे स्टेशन से पूर्व में 13 कि. मी. दूर नाडोल स्थित है। यह पहले मारवाड़ के चौहानों की राजधानी था। चौहानों के समय के यहां कई जैन व शैव मन्दिर बने हुए हैं। देसूरी के पास नाडलाई नामक स्थान है, जो प्राचीन काल में नाडूलागिक या नारकपुरी कहलाता था। यहां के 16 मन्दिर तथा एक गढ़ बतलाते हैं कि प्राचीन काल में यह एक महत्वपूर्ण नगर था। यहां का महादेव मन्दिर व आदिनाथ जैन मन्दिर प्रसिद्ध है।

बाड़मेर जोधपुर से 201 कि. मी. दक्षिण पश्चिम में है। यह बामनेर भी कहलाता था। प्राचीन अभिलेखों में इसका उल्लेख बागभटमेरु के नाम से किया गया है। सम्भवतया इस नगर की स्थापना बाग भट् ने 13 वीं शताब्दी में की थी यहां एक सूर्य मन्दिर है जो बालरिख का मन्दिर भी कहलाता है। लेकिन पूर्व में यह महावीर स्वामी का मन्दिर कहलाता था। यहां कई जैन मन्दिर भी हैं। इनमें ऋषभदेव का मन्दिर सर्वाधिक प्रसिद्ध है। यह युगाभिदेव का मन्दिर भी कहलाता है।

फलौदी मेड़ता रोड से आधा कि. मी. दूर गांव है जो प्राचीन काल में फलवर्धिका कहलाता था क्योंकि 11 वीं शताब्दी में बना यहां फलवर्धिका का मन्दिर था जो अब ब्राह्मणी का मन्दिर कहलाता है। मन्दिर का शिखर काफी कलात्मक है। इसके स्तंभों पर भी अच्छा तक्षण कार्य किया गया है। यहां पार्श्वनाथ का मन्दिर 12 वीं शताब्दी का है। मध्य काल में यह स्थान जैनों का अत्यन्त लोकप्रिय तीर्थ था।

किराडू बाड़मेर से उत्तर पश्चिम में 26 कि. मी. दूर है। प्राचीन काल में यह किराट कूप कहलाता था। यहां के मन्दिर, दुर्ग व अन्य इमारतों के भग्नावशेष बतलाते हैं कि यह कभी बड़ा सम्पन्न नगर था तथा यहां के लोग बड़े कलाप्रिय थे। यहां तब परमारों का शासन था। बाद में मुसलमानों ने इस नगर को नष्ट कर दिया। किराडू के ज्यादातर मन्दिर नष्ट हो गये हैं लेकिन जो बच गये हैं उनसे तत्कालीन कला का अच्छा प्रदर्शन होता है। सबसे बड़ा व प्रमुख मन्दिर 13 वीं शताब्दी का

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

सोमेश्वर महादेव का है। इसके गर्भगृह, गूढ़मण्डप व पोर्च है। स्तम्भों पर गढ़ पलव, बने हुये हैं, उन पर कीर्तिभूख व गराभूख अलंकृत हैं। मन्दिर के बाहरी भाग के अधिष्ठान पर सींगवाली कई मुखाकृतियां बनी हुई हैं। इससे नीचे से ऊपर की ओर हाथियों, घोड़ों व पुरुषों को मूर्तियां हैं। जो गजधर, अश्वधर, तथा नगर भर के रूप में है। कृष्णलीला के कई दृश्य भी यहां उत्कीर्ण हैं। रामकथा के भी कई दृश्य बड़ी सजीवता लिये हैं। एक दृश्य अमृत मंथन का भी है। यहां तीन ओर शिव मन्दिर व एक विष्णु मन्दिर भी है। किराडू के सभी मन्दिर टूटी फूटी हालत में हैं तथा मूर्तियां भी खंडित हो गई हैं, लेकिन उनकी कला अपनी स्वर्णयुग का प्रदर्शन करने को पर्याप्त है। केकींद मेड़ता से 23 कि. मी दक्षिण में है। इसका प्राचीन नाम किष्किधा था। यहां के दो मन्दिरों—नीलकण्ठेश्वर व विधिचैत्य के कारण यह स्थान प्रसिद्ध था। नीलकण्ठेश्वर मन्दिर में गंगा, यमुना, अष्ठदिक्पालों, अष्ठ मन्त्रि-काओं की मूर्तियां बड़ी कलात्मक बनायी गयी हैं। उत्तर में नरसिंह व पश्चिम में नटेश्वर की मूर्तियां हैं। कृष्णलीलायें भी यहा अंकित हैं। इस मन्दिर से 12 वीं शताब्दी की स्थापत्य कला का अच्छा परिचय मिलता है। विधि चैत्य भी 12 वीं शताब्दी का जैन मन्दिर है। इसमें पहले मूल नायक की मूर्ति थी लेकिन यह मन्दिर मुसलमानों द्वारा तोड़ दिये जाने पर यहां पार्श्वनाथ की मूर्ति स्थापित कर दी गई।

दुर्ग—किसी भी मध्यकालीन राजा के लिए सामरिक सुरक्षा हेतु दुर्ग बनवाना अत्यन्त आवश्यक था। अतः मारवाड़ के शासकों ने काफी दुर्गों का निर्माण कराया। इसमें मुख्य जोधपुर, मण्डोर, पोकरण, जैसलमेर, नागौर, सिवाणा, सोजत, मेड़ता आदि के दुर्ग थे। ज्यादातर दुर्ग, पार्वत दुर्ग, पहाड़ियों पर बने हैं, जिनके चारों ओर पहाड़ियां हैं। दुर्गों के परकोटे मजबूत व चौड़े बने हुये हैं। इनमें सिलहखाने, जलाशय, अन्न भण्डार, राजमहल व सैनिकों के आवास गृह बने हुए हैं। प्राचीन काल के दुर्गों में मण्डोर का दुर्ग अब भग्नावस्था में है। यह गुप्तकाल में बना था जिसका प्रमाण उस काल के दो तोरण द्वार हैं जो अब जोधपुर संग्रहालय में देखे जा सकते हैं। राव जोधा द्वारा जोधपुर में दुर्ग बनाये जाने तक यहां काफी चहल पहल रही। तब यह राठौड़ राज्य की राजधानी था। बाद में यह दुर्ग उजड़ गया और अब इसके खण्डहर ही इसके वैभव के साक्षी हैं।

जोधपुर के संस्थापक राव जोधा ने ईस्वी सन् 1459 में जोधपुर दुर्ग बनवाकर ही इसके तलहटी में नगर बसाया। अपनी आकृति के कारण यह दुर्ग मयूर ध्वज कहलाता है। ज्योतिषियों ने इसका नाम चिन्तामणि दिया था। दुर्ग 125 मीटर ऊंची पहाड़ी पर बना हुआ है। जोधा के समय दुर्ग लोहा पोल तक बना हुआ था। दुर्ग का प्रवेश द्वार राव जोधा का फलसा था, बाद में दुर्ग के प्रवेश द्वार फतेहपोल व जयपोल, क्रमशः महाराजा अजीतसिंह व महाराजा मानसिंह ने बनवाये थे। सबसे पुराना द्वार अमृतपोल है जो राव मालदेव ने बनवाया था। तब पानी की व्यवस्था हेतु पश्चिम की ओर बड़े तालाब, रानीसर व पदमसर थे। दुर्ग में मोतीमहल, फूल महल, तखतविलास, मानविलास, उम्मेद विलास आदि महलों की जालियां, स्तम्भ

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

आदि स्थापत्य कला के अनूठे नमूने हैं।

सोजत का दुर्ग राव जोधा के पुत्र नीमा ने बनवाया था। इसका प्रवेश द्वार गणेशपोल था। दुर्ग के चारों ओर मजबूत चार दीवारी है। किले में पानी रामेलाल तालाब से आता था, जिसको ऊपर पहुंचाने के लिये अरहट का प्रयोग होता था। किले में पानी पहुंचाने के लिये चारों ओर पक्की नालियां बनी हुयी थीं। किले की दीवार के कगूरों में बने छेदों से शत्रु पर तीन ओर से बन्दूकें चलाई जा सकती थीं। तोपें रखने के लिये चबूतरे भी बने हुये हैं। किले में भवन साधारण बने हुए हैं।

मेड़ता में मालकोट किला है। कुण्डल के टीले पर बना है। इसमें बने भवन खण्डित हो गये हैं। मूजा के पुत्र नरा ने सातलमेर दुर्ग का निर्माण कराया था लेकिन मालदेव ने इसे नष्ट करवाकर इसकी सामग्री से पोकरण का दुर्ग बनवाया था।

फलौदी में भी प्राचीन किले की नींवों पर मालदेव ने नया कोट बनवाया। यह काफी बड़ा व दृढ़ बना हुआ है और इसकी दीवार 44 फुट ऊंची है। दुर्ग में पानी का एक बड़ा टांका है।

जालोर व सिवाना के दुर्ग पार्वत दुर्ग है। जालोर दुर्ग में पहुंचने का तीन किलो-मीटर चढ़ाई का एक मात्र मार्ग काफी ऊंचा व दुर्गम है। इसका दुर्ग काफी मजबूत व परकोटा विशाल है। यह दुर्ग परमार नरेशों ने दसवीं शताब्दी में बनवाया था। दुर्ग में कई जैन मन्दिर भी हैं। यहाँ एक मस्जिद भी बनी हुयी है। दुर्ग में कई महल भी बने हुये हैं। सिवाना का दुर्ग 300 मीटर ऊची पहाड़ी पर बना है। इसे परमार वीर नारायण ने ईसवी सन् 954 में बनवाया था। किला बड़ा सुदृढ़ बना हुआ है तथा इसमें कई बुर्ज बने हुये हैं। दुर्ग की चढ़ाई दुर्गम है।

नागौर का किला धान्वन दुर्ग है जिसके चारों ओर मरुस्थल और ऊबड़-खाबड़ भूमि थी। किला काफी सुदृढ़ता से बना हुआ है। इसमें महल आदि बने हुए हैं। महलों में भित्ति चित्र बड़े सुन्दर व आकर्षक हैं। दुर्ग के अन्दर एक बड़ा फव्वारा है, जो बादशाह अकबर ने बनवाया था। इस दुर्ग का निर्माण 12वीं शताब्दी में सोमेश्वर चौहान के एक सामन्त ने बनाया था। किले की चार दीवारी 5000 फुट के घेरे में है तथा इसमें 28 बुर्ज काफी ऊंचे-ऊंचे हैं। किले के चारों ओर खाई बनी हुई थी, जो अब रेत से भर गयी है। किले में प्रवेश के द्वार सीरेपोल, भैरवपोल, कचेरी पोल, धुपीपोल व राजपोल हैं। किले में एक बड़ा कक्ष दिल्ली के दीवाने आम की भांति बना हुआ है। इसके भित्ति क्षेत्र बड़े मनमोहक हैं। इसकी बाईं ओर एक शीशमहल है, जिसमें भी कई भित्ति चित्र हैं। जनाना महलों में भी कई भित्ति चित्र हैं।

मारवाड़ के कई सामन्तों के भी अपने-अपने ठिकानों में गढ़ बने हुये थे। बगड़ी, मिठड़ी, कुचामन, बडू, लाडनू, गुन्दोज, घाणेराव, नीमाज, रायपुर, भाद्राजून, रीयां, लोहियांणा (अब जसवंतपुरा) आदि के गढ़ प्रसिद्ध रहे। गढ़ों में आवास गृह कलात्मक बने हुये हैं। कई में भित्ति चित्र बने हुये हैं, जो देखने योग्य हैं।

राजमहल—मारवाड़ के महाराजा राजधानी में ही रहते थे, अतः उनके राजमहल मुख्यतः जोधपुर में ही बने हुए थे। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यकाल तक दुर्ग ही

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

उनका आवास था, अतः उनके महल दुर्ग में ही बने हुये थे। विभिन्न राजाओं ने दुर्ग में अलग-अलग महल बनवाये थे। विभिन्न समयों में बनने के कारण इनमें विभिन्न शैलियों का समावेश हुआ है। यथा शूरसिंह द्वारा बनवाया मोतीमहल, अजीतसिंह द्वारा बनवाया ख्वाब महल व अजीत विलास (फतहमहल) व तोतेलाल महल, अभयसिंह द्वारा फूल महल, मानसिंह द्वारा बनवाया मान विलास, तख्तसिंह द्वारा बनवाया तखतविलास, उम्मेदसिंह द्वारा बनवाया उम्मेद विलास आदि।

प्रारम्भ में राव जोधा ने जोधपुर दुर्ग में लोहा पोल से आगे जनाना महल व वर्तमान मोतीमहल के नीचे के बरामदे व महल बनवाये थे। राव सातल ने भी कुछ महल बनवाये थे। सूजा के पुत्र बागा ने नक्कारखाने के महल बनवाये थे। राव गांगा ने भी दौलतखाने के नीचे के महलों का निर्माण कराया था। राव मालदेव ने इन पूर्व निर्मित महलों का पुनः निर्माण कराया था। शूरसिंह के मोतीमहल की दीवारों, छतों और खम्भों पर सुनहरा कलात्मक कार्य किया हुआ है। महल की छत में कई दर्पण लगे हुये हैं। झांकी महल के स्तम्भों पर रंग-बिरंगे कांच लगे हैं। तख्त विलास में कई भित्ति चित्र हैं, जो युद्ध, धर्म व प्रेम से सम्बन्धित हैं। लकड़ी में बनी छत में कई सुन्दर चित्र भी बने हुए हैं। फूल महल की छत व दीवारों में सुनहरी कलम से कई बेलबूटे व चित्र बने हुये हैं। राग-रागनियों के चित्र बड़े सुन्दर व आकर्षक हैं। दुर्ग में बारीकी से खुदी लाल पत्थर की जालियां बड़ी कलात्मक हैं। इन जालियों की पचासों आकृतियां हैं।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ (1929-1942) में महाराजा उम्मेदसिंह ने जोधपुर नगर के दक्षिण पूर्व में छीतर पहाड़ी पर एक विशाल राजमहल उम्मेद भवन (195 मीटर लम्बा 103 मीटर चौड़ा बनवाया। इस महल में कुल 203 कमरे हैं। इस भवन का निर्माण पत्थर पर कलात्मक खुदाई करवा कर किया गया है। इसका गुम्बद बहुत ही बड़ा तथा कलात्मक है। महल सें महाराजा उम्मेदसिंह व इनके उत्तराधिकारी रहते आये हैं। इससे पूर्व (1942) राजपरिवार राईकाबाग राजमहल व इसके पूर्व रातानाडा के राजमहलों में रहते थे। ये भी काफी विशाल व कलात्मक बने हुये हैं। जोधपुर नगर के उत्तर पश्चिम में सूर सागर के महल तथा तलहटी के महल हैं। ये सत्रहवीं व अठारहवीं शताब्दी में बने थे।

जोधपुर शहर के नागौरी दरवाजा से पूर्व की ओर लगभग एक कि.मी. दूरी पर महामन्दिर नामक बस्ती है। जहां उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में महाराजा मानसिंह के धर्म गुरु आयशदेवनाथ ने नक्कासीदार दो महलों का निर्माण कराया था। इनमें से एक में वह स्वयं रहते थे तथा दूसरे में उनके पूर्वज की दिव्य आत्मा का वास रहता था।

जोधपुर नगर से बाहर सरदारसमन्द (सोजत तहसील), जालोर व नागौर में भी राजमहल बने हुये हैं, जो काफी सुन्दर व कलात्मक हैं। इनमें कई भित्ति चित्र भी हैं। पोकरण व मेड़ता के दुर्गों में भी कई महल बने हुए हैं।

सेठ साहूकारों की बस्तियां जोधपुर के अलावा फलौदी, खिचन, लाडनू, जसवन्त-

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

गढ़, पाली, जालोर, सोजत आदि में हैं। इनकी कई हवेलियों की स्थापत्य कला दर्शनीय है।

2. मन्दिर स्थापत्य

मन्दिर को देवालय, मंदर, कैलाश, प्रासाद, विमान आदि विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। शिल्प शास्त्र के अनुसार तीन प्रकार के मन्दिर होते हैं—नागर वेसर और द्राविड़। इनकी शैलियों की व्याख्या करना कठिन है। क्योंकि विभिन्न ग्रंथों में भी व्याख्याएँ न केवल अपूर्ण बल्कि परस्पर विरोधी भी हैं। ये नाम प्रादेशिक भेदों के कारण हैं। नागर शैली का प्रयोग उत्तर भारत में होता आया है। ये मन्दिर शिखर वाले होते हैं। तथा इनके शिखर खड़े भागों में विभक्त होते हैं। मारवाड़ के मन्दिर नागर शैली पर बने हुए हैं। उनके शिखर अधिकांशतः लतिन या भूमिज हैं। तत्कालीन प्रचलित धर्मों ने यहां के मन्दिरों के निर्माण में उनकी मूर्तियों के अंकन को काफी प्रभावित किया है। जैन धर्म, शैव धर्म, व वैष्णव धर्म के मन्दिर व मूर्तियां इसी कारण यहां ज्यादा मिलती हैं।

मन्दिरों को सामान्यतः पर्वत के रूप में माना जाता है क्योंकि पर्वत ही देवताओं का वास माना जाता है। प्रत्येक मन्दिर में एक छोटा गर्भ गृह होता है, जिसमें केवल आराध्य देव की मूर्ति होती है। उसके चारों दीवारों पर कोई मूर्तियां अंकित नहीं होती है। गृह के बाहरी भाग मण्डोवर, या जैनजा में अप्सराओं, दिक्पालों, गंधर्वों आदि का अंकन होता है। गर्भ गृह के द्वार पर खम्भों पर मूर्तियां बनी रहती हैं। कई पर नाग नावल्लरी की शाखाएं बनी होती हैं। द्वार के निचले भाग पर गंगा व यमुना का भी अंकन मन्दिरों में मिलता है। मन्दिर ऊंचे चबूतरे पर बने होते हैं। उन पर पहुँचने को सीढ़ियां बनी होती हैं। सीढ़ियों द्वारा प्रवेश द्वार पर कुबेर व गणेश की मूर्तियां होती हैं जो उपासक की समृद्धि व धन की कामना बतलाती हैं। कई मन्दिरों की पीठ अलंकृत होती है। किराडू के विष्णु मन्दिर की पीठ पर सात स्तर हैं जिनमें दो सादे हैं और फिर पांच स्तर—जाडॅयकुम्भ, कुमुद, कीर्तिमुख, गजधर व नरधर बने हैं। किराडू के ही सोमेश्वर मन्दिर में ग्रास पट्टिका के ऊपर ही गजधर, अश्वधर और नरधर अंकित है। विभिन्न मन्दिरों के स्तम्भों पर अलंकरण हेतु घटपल्लव, कीर्तिमुख, और लहरवल्लरी के विविध रूपांकन उत्कीर्ण होते हैं।

मारवाड़ के प्रसिद्ध एवं कलात्मक मन्दिर रणकपुर, बुचकला, किराडू, नाडोल, ओसियां, जालोर, आदि में स्थित हैं। कला विशेषज्ञों ने यहां की मन्दिर निर्माण शैली को महामहरू नाम दिया है। मारवाड़ के प्रत्येक गांव में छोटे बड़े मन्दिर मिलते हैं। यह मन्दिर जैन, शैव या वैष्णव धर्म में किसी का भी हो सकता है। पूजा स्थल के रूप में गांव गांव में स्थानीय लोकदेवताओं के चबूतरे भी बने हुये हैं।

जोधपुर के संस्थापक राव जोधा ने दुर्ग निर्माण के साथ ही वहां चामुण्डा का मन्दिर बनवाया था जो सन् 1857 में नष्ट हो जाने पर महाराजा तख्तसिंह ने पुनः बनवाया। राव जोधा ने दुर्ग में ही मर्दाना महल के दक्षिण में नागणेची का मन्दिर बनवाया था जिसका पुनः निर्माण शूरसिंह ने करवाया था। जोधपुर नगर में कटला

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

बाजार के पास अचलेश्वर महादेव का मन्दिर राव गांगा की रानी नानकदेवी ने बनवाया था। जोधपुर के निकट मण्डोर के भग्न दुर्ग से भी दो तोरण मिले हैं जो किसी वैष्णव मन्दिर के, जो गुप्त काल मे बना था, ज्ञात होते हैं। प्रत्येक स्तम्भ 12 फुट लम्बा है। प्रत्येक स्तम्भ में 5 भाग हैं। एक स्तम्भ में कृष्ण गोर्धन पर्वत उठाये एक अभिलेख, एक में यशोदा दही मंथन करती, एक में संकट भंग लीला व बाल कृष्ण यशोदा के साथ सोते दिखाये गये हैं। दूसरे स्तम्भ में धेनुका वध, कालिया मर्दन व प्रलंबन वध, कृष्ण एक राक्षस को मारते व केशी वध करते दिखाया गया है। दोनों स्तम्भ अब राजकीय संग्रहालय में हैं।

ओसियां मन्दिरों की नगरी है। विभिन्न मत मतान्तरों के यहां मन्दिर हैं। अहिंसक जैनों के साथ साथ शक्ति उपासना का भी केन्द्र रहा है। जैन व वैष्णव प्रभाव से यहां की सच्चिया माता पूर्ण वैष्णव ही नहीं बनी वरन् जैनों की अधिष्ठात्री देवी भी बन गयी। शैव व वैष्णवों ने सम्मिलित होकर पंचायतन पूजा अपना ली।

ओसियां कस्बे के पश्चिम की ओर महावीर स्वामी का मन्दिर है। यह बड़ी जगती पर बना हुआ है। यह मन्दिर दसवीं शताब्दी में बना था। घाणेराव का मूच्छाला महावीर मन्दिर भी दसवीं शताब्दी का है। देवविमान जैसा बना भगवान महावीर का 24 जिनालय वाला यह मन्दिर दर्शनीय है। पाली का नवलखा पार्श्वनाथ मंदिर 11 वीं शताब्दी का है। प्रारम्भ में यह भी महावीर मन्दिर था। सेवाड़ी का महावीर मन्दिर 12 वीं शताब्दी का है। नारलाई का आदिनाथ मन्दिर भी पहले महावीर स्वामी का मन्दिर था। यह दसवीं शताब्दी में बना था। ये 21 मन्दिर हैं जिनमें से 11 जैन मन्दिर तथा 10 वैष्णव मन्दिर हैं। नाडौल में नेमीनाथ के अलावा शांतिनाथ व जिन पद्मप्रभु के मन्दिर हैं। जिन पद्मप्रभु का मन्दिर तीनों में सबसे बड़ा है। यह मंदिर 11 वीं शताब्दी का है तथा इसके मूल प्रासाद व गूढ मण्डप पूर्णतया अलंकृत हैं। मूल प्रासाद के पीठ में अश्वधर के अलावा गजधर व नरघर हैं। इसका शिखर 17 वीं शताब्दी में पुनः निर्मित हुआ था। यहां भण्डारी (ओसवाल) जाति की कुलदेवी आशापुरी का मंदिर है। यहां प्रतिवर्ष मेला भरता है। नाडोल के नीलकण्ठ, सोमेश्वर व चारभुजा के मंदिर दसवीं शताब्दी में बने थे। सोमेश्वर मंदिर की जंघा पर सुन्दर मूर्तियां बनी हुई हैं। नीलकण्ठ सोमेश्वर के मंदिरों में अधिकांश अलंकरण लहर वल्लरी, पद्म, गवांश आदि के रूपांकन द्वारा हुआ है। नाडोल के पास ही नारलाई के 11 वीं शताब्दी के जैन मंदिर के गर्भ गृह के सामने अन्तराल, चतुस्तम्भ, मण्डप और मुख चतुष्टी है। मूल प्रासाद पर शिखर बना हुआ है। मण्डोवर सादा है लेकिन मंडप के खम्भों पर सुन्दर अलंकरण हैं। इनमें घटपल्लव और लहरवल्लरी का रूपांतरण बड़ा कलात्मक है। सादड़ी का पार्श्वनाथ मन्दिर नाडोल के पद्मप्रभा मन्दिर का एक छोटा रूप है। पार्श्वनाथ का एक और मन्दिर बरखाना में है। जिसका निर्माण विक्रम संवत 1121 में हुआ था।

रणकपुर मेवाड़ और मारवाड़ को मिलाने वाले महत्वपूर्ण पर्वतीय मार्ग पर

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

स्थित है। इसे राणपुर भी कहते हैं। यहां का त्रैलोकीय दीपक, चतुर्मुख युगादीश्वर विहार अपनी विशालता व कलात्मकता के लिये अत्यन्त प्रसिद्ध है। इस मंदिर की ई. सन् 1439 में प्रतिष्ठा हुई थी। मदिर में प्रथम जैन तीर्थंकर ऋषभदेव की पांच फुट ऊंची मूर्ति स्थापित है। इस मंदिर के चारों दिशाओं में चार द्वार हैं अतः यह चोमुखा मंदिर भी कहलाता है। लेकिन अब केवल पश्चिम का द्वार ही खुला रहता है। मंदिर एक वर्गाकार 220 × 220 फुट ऊंचे चबूतरे पर बना हुआ है। मंदिर की दूसरी और तीसरी मजिल के गर्भ गृह में भी चार चार जिन प्रतिमाएं प्रतिष्ठित हैं। मंदिर के चारों ओर चबूतरे पर एक ऊंची दीवार बनी हुई है। इसकी चार दीवारी के भीतर मुख्य देवकुलिका के चारों ओर 76 छोटी देवकुलिकायें (देवरिया) हैं जिनमें जैन तीर्थंकरों आदि की मूर्तियां हैं। चार अन्य बड़ी देवकुलिकाएं हैं, इनके सामने विशाल रंग मंडप है। मंदिर में कुल 1444 श्वेत स्तभ हैं जिनका शिल्प और अलंकरण एक दूसरे से भिन्न है। सभी पर अत्यन्त शोभनीय रूपांकन उत्कीर्ण है। सभी स्तम्भ पंक्तिबद्ध और समानान्तर हैं। ये स्तभ इस ढंग से खड़े किये गये हैं कि मंदिर के किसी भी कोने से खड़े होकर मूलनायक की प्रतिमा को देखा जा सकता है। स्तंभों की ऊंचाई 40 फुट है। मुख्य चार मण्डप मेगनाथ मण्डप कहलाते हैं। यह अत्यन्त भव्य एवं कलात्मक हैं। गर्भगृह के निकट के तोरण का अलंकरण अत्यन्त सूक्ष्म और सुन्दर है। रंग मण्डप के गुम्बट के घेरे के चारों ओर नृत्य करती हुई 16 पुतलिकाएं कलापूर्ण ढंग से उत्कीर्ण की गई हैं।

यह मंदिर भूमितल से ऊपर तीन मंजिला है। तीनों मंजिलों तक पत्थर की सीढ़ियों से चढ़ा जा सकता है। मंदिर में कुल 44 शिखर, 24 मण्डप व 84 देहरिया हैं। मंदिर के नीचे 184 तलघर (भूगृह) है। आपत्तिकाल में यहां मूर्तियां रखी जाती थीं। प्रतिमाएँ मकराना के संगमरमर और काले कसौटी के पत्थर की बनी हुई हैं। मंदिर निर्माण में सेवाड़ी व सोनाणा के पत्थर का प्रयोग हुआ है। त्रैलोक्य दीपक, चौमुखा मंदिर की विशालता और ऊंचाई अद्वितीय है। उसकी सजावट बहुत ही प्रभावशाली ढंग से की गई है। एक कहावत भी है 'देलवाड़ा की कोरणी ने राणकुपर की माडणी' अर्थात् उत्कीर्ण सौंदर्य के लिये आबू के देलवाड़ा मंदिर और रचना शिल्प हेतु राणकपुर का मंदिर अनुपम है। वास्तव में ऐसा विशाल और सुन्दर स्थापत्य और कहीं नहीं है। ऋषभ देव के मंदिर के पास ही पार्श्वनाथ का मंदिर है, जो चौदहवीं शताब्दी में बना। इस मंदिर की बाहरी भित्तियों पर कामविलास करते युगलों की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। इन मूर्तियों के कारण इसे 'पातरियों रो देहरो' कहते हैं। यों आदिनाथ के चौमुखे मंदिर में भी कुछ मैथुनरत मूर्तियां भी हैं। ओसियां, किराडू आदि के मंदिरों में भी ऐसा अंकन हुआ है। ऐसी मूर्तियां शिल्प ग्रन्थों बृहत्संहिता, विष्णुधर्मोत्तर पुराण, अग्नि पुराण आदि के अनुसार ही स्थापत्यीय अलंकरण के लिये बनाई गई हैं। सौन्दर्य, अनुभूति और उसकी अभिव्यंजना को अभिव्यक्त किया गया है। इनका और कोई उद्देश्य नहीं था। सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ एवं कलामर्मज्ञ डॉ. रामनाथ के शब्दों के अनुसार मन्दिरों में

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

प्रयुक्त नृत्य और काम मुद्राओं में प्रदर्शित कमनीय देवांगना-मिथुन मूर्तियां पाषाण में उत्कीर्ण शृंगार रस की ही अवतार हैं और उनका प्रदर्शन एक लोकोत्तर और अलौकिक कला के सृजन के उद्देश्यों से रस की निष्पत्ति के लिये हुआ है, जिससे सहृदय और सामाजिक रसिक को सौन्दर्यानन्द की अनुभूति हो। यही इन मूर्तियों के मन्दिरों में प्रदर्शन का शास्त्रीय रहस्य है।"

पार्श्वनाथ मन्दिर से 150 मीटर दक्षिण में सूर्य मन्दिर ऊंचे चबूतरे पर बना हुआ है। इसके गर्भ गृह के द्वार पर गणेश की मूर्ति है। इसके दोनों ओर नवगृहों की मूर्तियां हैं। द्वार के दोनों ओर की ताकों में सूर्य की मूर्तियां हैं। गर्भगृह में दो मूर्तियां—सूर्य व सूर्याणी की हैं। मन्दिर का तल अष्टभद्र रचना वाला है। सूर्य की सभी मूर्तियां सात घोड़ों पर आरोहित हैं। उत्तर-पश्चिमी कोने में केतु के श्रमिक एक षडभुजा देवी की मूर्ति है, जो नरवाहन पर आसीन है तथा उसके हाथों में कमण्डल, गदा, माला, शंख व चक्र है। एक हाथ खाली है। यह मन्दिर पन्द्रहवीं शताब्दी का है, लेकिन इसका शिखर पुन: बाद में बना प्रतीत होता है। इस प्रकार रणकपुर की स्थापत्य कला को देखकर विदेशी पर्यटक चकित होते हैं और मुग्ध हो जाते हैं।

ओसियां प्राचीनकाल में उत्केशपुर या उकेश कहलाता था। यहां के 16 वैष्णव, शैव व जैन मन्दिर आठवीं, नवमीं, ग्यारहवीं व बारहवीं शताब्दी में बने। प्रतिहार कालीन स्थापत्य का ओसियां सर्वोत्कृष्ट स्थान है। बाद में यह जैन धर्म का केन्द्र बन गया। यहां का महिषमर्दिनी मन्दिर बाद में सचियामाता का मन्दिर बन गया और इस कारण हिन्दुओं व जैनियों का तीर्थ बन गया। प्राचीनतम तीन वैष्णव मन्दिरों को भंडारकर ने हरिहर मन्दिर नाम दिया है। इनमें दो पंचायतन मन्दिर—एक बड़े मन्दिर के चारों कोनों पर चार छोटे मन्दिर—हैं। एक मन्दिर एकायतनय है। तीनों हरिहर मन्दिर एक ऊंची जगती (चबूतरा) पर बने हैं। किसी भी मन्दिर के गर्भ गृह में कोई मूर्ति नहीं है। वास्तव में यह मन्दिर विष्णु के थे न कि हरिहर के। प्रत्येक गर्भ गृह के बाहर की ओर वैष्णव मूर्तियां ही हैं। कृष्ण लीला तथा विष्णु के वाहन गरुड़ का अंकन इनका वैष्णव मन्दिर होना सिद्ध करते हैं। किनारे के मन्दिरों में शिव, शक्ति व सूर्य की मूर्तियां भी यही प्रदर्शित करती हैं कि यहां विष्णु का ही मन्दिर होगा। प्रथम हरिहर मन्दिर के तले में बुद्ध की प्रतिमा है जो यह बतलाती है कि आठवीं शताब्दी में बुद्ध को भी हिन्दू अवतार माना जाने लगा था और उन्हें हिन्दू मन्दिरों में पूजा जाने लगा।

वैष्णव मन्दिरों के पास ही एक सूर्य मन्दिर है। यह भी पंचायतन मन्दिर दिखाई देता है। इसके गर्भ गृह में कोई मूर्ति नहीं है। इसके ललाट बिंब पर लक्ष्मी नारायण की मूर्ति है। इसके दोनों ओर गणेश, ब्रह्मा, कुबेर व शिव का अंकन है। गर्भ गृह के बाहर की ओर महिषमर्दिनी, सूर्य व गणेश का अंकन है। इससे यह दिखाई देता है कि इस काल में सौर मत का वैष्णव मत में विलय होने लग गया था।

ओसियां के शक्ति मन्दिर पिपला माता और सतिया माता के मन्दिर कहलाते हैं, सूर्य के मन्दिर के पास ही पिपला माता का मन्दिर है। इसके गर्भ गृह में महिषमर्दिनी

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

की मूर्ति है, जिसके दोनों ओर कुबेर व गणेश की मूर्तियां हैं, बाहर की ओर भी महिष मर्दिनी के अलावा गज लक्ष्मी व क्षेमकरी की मूर्तियां हैं, इसके सभा मण्डप के 30 खम्भे हैं। पास की पहाड़ी पर बारहवीं शताब्दी में बना सतियां माता या महिष मर्दिनी का मन्दिर है। इसके मण्डप में आठ तोरण अत्यन्त आकर्षक वितान और वृक्षिका मदल दिये गये हैं। इसके लेटिन शिखर हैं। इसके चारों ओर छोटे वैष्णव मन्दिर हैं। महिष मर्दिनी बाद में सच्चिका बन गयी और ओसियां हिन्दुओं व जैनों का तीर्थ बन गया। मन्दिर पश्चिम की ओर मुंह किये है। इसका विशाल सभा मण्डप आठ बड़े आकर्षक खम्भों पर टिका है। यहां से वि.सं. 1234 के लेख से ज्ञात होता है कि यहां की जंघा पर चण्डिका, शीतला, सच्चिका, क्षेमकरी व क्षेत्रपाल अंकित कराये गये थे।

सच्चियामाता के मन्दिर के चारों ओर भी छोटे-छोटे मन्दिर हैं। यहां के वैष्णव मन्दिर आठवीं शताब्दी के हैं लेकिन सच्चियामाता का मन्दिर दसवीं शताब्दी में बना होगा, जिसका बारहवीं शताब्दी में नवीनीकरण किया गया होगा। जैन धर्म के प्रचार होने के बाद वैष्णव व शाक्त मन्दिर उपेक्षित हो गये होंगे। अतः अब इनकी हालत खराब हो गयी है। ओसियां के मन्दिर के सुन्दर घटपल्लव, कीर्ति मुख और लहरवल्लरी तथा कलात्मक तोरण अद्वितीय हैं। हरिहर मन्दिर संख्या एक के केन्द्रीय मूल प्रासाद में मकर वाहिनी गंगा की प्रतिमा का अंकन बहुत ही उत्कृष्ट रूप से हुआ है। इसमें गंगा को अपने वाहन मकर पर तृभागीय मुद्रा में, हाथों में पूर्णघट थामे दिखाया गया है व गंगा का परिधान, गले, कान व बाहों के आभूषण गतिमान दिखाये गये हैं।

बुचकला (जोधपुर से 60 किलोमीटर) के दो मन्दिर विष्णु व पार्वती के हैं लेकिन ये अब क्रमशः पार्वती व शिव के कहलाते हैं। विष्णु मन्दिर में वि. सं. 872 का नागभट्टा प्रतिहार द्वितीय का शिलालेख है। इनमें सुन्दर रूपांकनों से अलंकरण हुआ है।

किराडू (बाड़मेर से 36कि.मी.) प्राचीन काल में किराट कूप कहलाता था। यहां के शैव मन्दिर प्रसिद्ध हैं। ग्यारहवीं शताब्दी में बना सोमेश्वर मन्दिर बहुत अच्छी दशा में है। इसका मूल प्रासाद पंचाग है। उसके सामने अन्तराल मण्डल और मुखचतुस्की है। पीठ पर परम्परागत ग्रासपट्टी, अश्वधर आदि दिये गये हैं। मन्दिर पर एक अत्यन्त सुन्दर और भव्य अनेकाणक शिखर बना हुआ है। मण्डप के स्तम्भों पर नृत्य मुद्राओं में कलात्मक मूर्तियां बनी हुई हैं।

जैतारण और जोधपुर के बीच में लाम्बा गांव स्थित है, जहां गुलाबी रंग के बालुकाश्म पत्थर से बना आठवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बना मन्दिर अत्यन्त कलात्मक है। इसके कीर्तिमुख और लहरवल्लरी के रूपांकन अत्यन्त सुन्दर हैं। इन रूपान्तरों की पुनरावृत्ति और विविधता में बड़ा सुन्दर तालमेल रखा गया है, जिसके कारण इनमें कोई नीरसता दिखाई नहीं देती है।

कैकीन्द के नीलकठेश्वर शिव मन्दिर गुलाबी और लाल बालुकाश्म पत्थरों से

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

बना है। मूल प्रासाद पर लतिन शिखर है। मन्दिर की मण्डोवर की जंघा पर देवी देवनाओं और देवांगनाओं की अत्यन्त सुन्दर मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। मन्दिर की अधिकांश मूर्तियां टूट गई हैं लेकिन फिर भी उनकी उत्कृष्ट कला का आभास अब भी है। मन्दिर के कीर्तिमुख, घटपल्लव और लहरवल्लरियां का रूपांकन अत्यन्त सुन्दर है। मण्डप का कमलाकार वितान भी बड़ा कलात्मक है। यह मन्दिर आठवीं शताब्दी की मन्दिर कला का प्रतिनिधित्व करता है।

मारवाड़ जंक्शन के निकट आउवा का कामेश्वर शिव मन्दिर नवीं शताब्दी में लाल पत्थर का बना था। इसमें भी मण्डप और मुखचतुस्की है। यह सुन्दर रूपांतरणों से अलंकृत है। मूर्ति कला के क्षेत्र में यहां की कलाकृतियों का बड़ा महत्व है।

नागौर के निकट खींवसर से प्राप्त जैन जीवन्त स्वामी की लेख युक्त प्रतिमा बड़ी आकर्षक व कलापूर्ण है। यह अभी जोधपुर सग्रहालय में देखी जा सकती है। डीडवाना से प्राप्त विष्णु (योगनारायण) की काले पत्थर की मूर्ति अत्यन्त कलात्मक है। इस मूर्ति में विष्णु कमल पुष्प पर योगासन में बैठे हैं। ऊपरी दोनों हाथों में वैजयन्तियांली व निचले दो हाथ श्रद्धांजलि में हैं। किरीट मुकुट, कर्णकुण्डल, हार व बाजूबद्ध काफी अलंकृत हैं। यह डेढ़ फुट ऊंची मूर्ति अब जोधपुर के राजकीय संग्रहालय में है।

कुबेर को धन का इष्टदेव माना जाता है। इसकी महत्वपूर्ण मूर्ति ओसियां के पिप्लादामाता के मन्दिर में है, जो नवीं शताब्दी की है। कुबेर की पत्नी हारीति उसकी जंघा पर बैठी है। हारीत की पूजा मातृका के रूप में भी होती थी। लाडनू और नाडोल की जैन सरस्वती मूर्तियां मध्यकालीन कला की उत्कृष्ट कृतियां हैं। ये मूर्तियां मकराना के सफेद पत्थर की हैं।

संयुक्त मूर्तियां—ओसियां के सचिया माता मन्दिर के तीसरे लघु मन्दिर की उत्तरी दीवार में शिव तथा पार्वती की संयुक्त मूर्ति पूर्णतया शास्त्रानुसार है। पार्वती के आधे मस्तक पर धमिलजुड़ा है और शिव के आधे मस्तक पर जटामुकुट है। शिव के हाथ में त्रिशूल है और पार्वती के हाथ में दर्पण है। मूर्ति के आधे वक्षस्थल पर स्तन और हार है। ओसियां के ही हरिहर मन्दिर में विष्णु और शिव की संयुक्त रूप की प्रतिमा है। दक्षिण में शिव और वामार्थ में विष्णु है। शिव के हाथों में त्रिशूल है और वरद मुद्रा है। लेकिन विष्णु के हाथों में सुदर्शन चक्र और कमल है। दोनों के वाहन नन्दी और गरुड़ भी साथ में दिखाई देते हैं। सचिया माता के मन्दिर में ही एक प्रतिमा में ब्रह्मा, विष्णु, महादेव व सूर्य को दिखाया गया है। इस प्रतिमा के 8 हाथ हैं। ऊपर के दो में कमल पुष्प हैं। दाहिनी ओर शिव का रूप और हाथों में त्रिशूल व खडवांग है। बांईं ओर का मुंह विष्णु का है। दोनों हाथों में शंख और चक्र हैं। शेष दोनों हाथ ब्रह्मा के हैं, जिनमें माला व कमण्डल है। रणकपुर के सूर्य मन्दिर में सूर्य को विभिन्न देवताओं के साथ संयुक्त रूप से बतलाया गया है। हरिहर-पितामह सूर्य की संयुक्त मूर्ति भी देखी जा सकती है। ऐसी ही मूर्तियां ओसियां व

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

किराडू में भी हैं। इस प्रकार की संयुक्त मूर्तियां हिन्दू धर्म के विभिन्न मतों--शैव व वैष्णवों की धार्मिक एकता प्रदर्शित करती हैं।

लोक प्रतिमायें—ये प्रतिमायें सामान्य लोगों द्वारा प्रतीक के रूप में बनाई जाती हैं। इनका निर्माण मूर्तिकला के सिद्धान्तों के अनुसार अंग-प्रत्यंग के अनुपात से नहीं होता है। ये मूर्तियां स्थानीय वीरों, महापुरुषों, देवियों आदि की होती हैं। कई मूर्तियां एक स्तम्भ अथवा शिला पर उत्कीर्ण होती हैं। जोधपुर जिले के अरणा, डिगाड़ी आदि के ऐसे कई स्मारक स्तम्भ हैं। ऐसे स्तम्भ गोवर्धन स्तम्भ कहलाते हैं। कई प्रतिमाओं के नीचे लेख भी अंकित हैं। ऐसी लोक प्रतिमायें सैकड़ों गांवों में मिलती हैं।

3. जल स्थापत्य

प्राचीन काल में पीने के पानी की समस्या कुओं, बावड़ियों व तालाबों से हल होती थी। मारवाड़ में पानी की समस्या सदैव रही है अतः जलाशयों का बड़ा महत्व रहा है। जोधपुर नगर के विभिन्न भागों में कई बावड़ियां हैं। यथा मालदेव द्वारा बनवाई माल बावड़ी, नागौरी दरवाजा बाहर, मूथा जालप बावड़ी शहर के मध्य में, मूथा रामा द्वारा बनवाई गई राम बावड़ी चांदपोल के बाहर, गोरां धाय द्वारा बनवायी गोरां धाय बावड़ी नगर में त्रिपोलिया के पास है। कई बावड़ियों की प्रतोलियां व उनके स्तम्भ बड़े कलात्मक बने हुये हैं। विभिन्न परगनों में भी बावड़ियां बनी हुई हैं।

जोधपुर के तालाबों में विभिन्न कालों में पदमसर, राणीसर, गुलाबसागर, फतेहसागर, स्वरूपसागर, बखतसागर, आदि बनवाये गये। नागौर, जालोर आदि में भी कई तालाब बने हुये हैं।

यहां के बेरे, कुए काफी गहरे होते हैं। प्राचीन काल से ही पीने के पानी के कुए बनवाये जाते रहे हैं। जोधपुर का जैता बेरा, कागा बेरा, जागु बेरा, खेता बेरा, नागौरी बेरा, अमृतिया बेरा, आदि यहां के प्रसिद्ध बेरे हैं। इनका पानी काफी मीठा व स्वास्थ्य वर्धक है।

4. स्मारक स्थापत्य

स्मारक भवनों में छतरी या देवल होते हैं, जो किसी व्यक्ति की याद में बनाये जाते हैं। ऐसे स्मारक भवनों का निर्माण प्राचीन काल से होता आया है। ऐसी छतरियां मारवाड़ के लगभग प्रत्येक बड़े ग्राम में मिलती हैं। इन छतरियों से सम्बन्धित व्यक्ति की शिलांकित मूर्ति भी रहती है, जो पूतली कहलाती है। इस पर अभिलेख भी अंकित होता है।

जोधपुर के संस्थापक राव जोधा व उसके वंशजों की छतरियां मण्डोर के पंचकुण्ड क्षेत्र में हैं। राजाओं के साथ रानियों की भी कई छतरियां हैं। प्रारम्भ के राजाओं में राव गांगा की छतरी लाल बलुआ पत्थर की है जो बड़ी कलात्मक है। इसका गुम्बद नष्ट हो गया है। छतरी के खम्भों का तक्षण बारीकी से किया गया है। जगतिपीठ के ऊपर धर सिंह, हाथी, घोड़े आदि हैं, जो बड़े अनुपम हैं। देवी-

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America, HHFA(USA)

देवताओं की भी मूर्तियां हैं। देवल के सामने द्वार और तीन ओर फूल-पत्तियों से अंकित छोटी खिड़कियां बनी हुई हैं। खिड़कियों के ऊपर एक पंक्ति में विभिन्न मुद्राओं में बंदर बने हुये हैं। यह देवल बाहर से जैन मन्दिर प्रतीत होता है। मानसिंह की कच्छवाही रानी की 32 खम्भों वाली छतरी बड़ी कलात्मक है। गांगा के पुत्र मालदेव व उसके वंशजों की छतरियां, मण्डोर उद्यान के बीच में हैं। इन छतरियों में से कुछ में अभिलेख भी लगे हैं। मालदेव की छतरी उसके पुत्र मोटा राजा उदयसिंह ने बनवायी थी। जसवन्तसिंह का देवल तथा अजीतसिंह का देवल भी यहीं है, जो अपनी कारीगरी तथा स्थापत्य की विशेषताओं के लिये प्रसिद्ध है। दोनों देवल बहुत विशाल बने हुए हैं। 19वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में जोधपुर नगर के उत्तर में बना जसवन्त थड़ा संगमरमर का बना हुआ है। कला की दृष्टि से यह अतुलनीय है। अब इसी स्थान पर राजवंश की शमशान भूमि है।

नागौर के निकट ताऊसर में अठारहवीं शताब्दी में बनी जयअप्पा सिंधियां की छतरी राजपूत व मुगल स्थापत्य कला के मिश्रण से बनी है। इसका गुम्बद मुगल शैली का है लेकिन नक्काशी स्थानीय प्रभाव लिये है। नागौर में ही अमरसिंह की छतरी बड़ी कलात्मक बनी हुई है।

मारवाड़ के विभिन्न परगनों में कई छतरियां देखने को मिलती हैं। विभिन्न जागीरदारों की उनके गांवों में छतरियां बनी हुई हैं। कई वीर पुरुषों व महिलाओं पर भी छतरियां बनी हुई हैं। इन्द्रराज सिंघवी, गोरांधाय आदि की छतरियां जोधपुर नगर में हैं। इनके स्तम्भों पर अच्छा तक्षण कार्य किया हुआ है।

इस प्रकार मारवाड़ स्थापत्य कला में काफी समृद्ध है। यहां की स्थापत्य कला राजस्थान के विभिन्न भागों की स्थापत्य कला से किसी प्रकार कम नहीं है। अब भी मारवाड़ में कई मन्दिर, मूर्तियां, देवल आदि बनते हैं लेकिन सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ एवं कलामर्मज्ञ के शब्दों में, "उनमें पाश्चात्य सभ्यता का रंग चढ़ता जा रहा है। अब उनमें अपने धर्म और संस्कृति के प्रति स्वाभाविक श्रद्धा नहीं रही है।····औपचारिकतावश ईंट और सिमेंट के कागजी मन्दिर बन रहे हैं, जिनमें शास्त्रीय मान प्रमाणों और अन्य मानदण्डों के पालन करने की कोई आकांक्षा नहीं है। समाज के कर्णधार सम्भ्रान्त वर्ग जो मन्दिर, कुएँ, बावड़ी, सरोवर और धर्मशालाएँ बनवाता था, अब स्वयं के सुख के साधन जुटाने में लग गया है।"

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मारवाड़ की पाग व पगड़ियाँ

कुँ. महेन्द्रसिंह, नगर

राजस्थान में पुरातन काल से 'सवा सेर सूत' सिर पर बांधने का रिवाज एक परम्परा के रूप में आज दिन तक प्रचलित रहा है। पाग व पगड़ी मनुष्य की पहचान कराती है कि वह किस जाति, धर्म, सम्प्रदाय, परगना एवं आर्थिक स्तर का है। उसके घर की कुशलता का सन्देश भी पगड़ी का रंग देती है।

मारवाड़ में तो पाग पगड़ी का सामाजिक रिवाज आदि काल से प्रचलित रहा है। ऐसा कहा जाता है कि राजस्थान में 12 कोस (करीब 36 कि.मी.) पर बोली बदलती है, उसी प्रकार 12 कोस पर साफे के बांधने के पेच में फरक नजर आयेगा। प्रत्येक परगने में विभिन्न जातियों के पाग-पगड़ियों के रंगों में, बांधने के ढंग में एवं पगड़ी के कपड़े में विभिन्नता होगी।

कुछ लोग हस्त रेखा, मस्तक रेखा देखकर व्यक्ति विशेष के सम्बन्ध में बताते हैं, पर राजस्थान में पगड़ी के बांधने के ढंग, पेच एवं पगड़ी की कसावट देख कर बता देते हैं कि वह व्यक्ति कैसा है? अर्थात् पाग-पगड़ी मनुष्य की शिष्टता, चातुर्य व विवेकशीलता की परिचायक होती है।

राजस्थान में पगड़ी सिर्फ खूबसूरत एवं ओपमा बढ़ाने को नहीं बांधते हैं बल्कि पगड़ी के साथ मान, प्रतिष्ठा, मर्यादा और स्वाभिमान जुड़ा हुआ रहता है। पगड़ी का अपमान स्वयं का अपमान माना जाता है। पगड़ी की मान की रक्षा के कारण तो पुराने समय में कई बार तलवारें म्यान के बाहर हुईं और खून के फव्वारों ने इस धरती को अनेकों बार सींचा है। इतिहास और ये पुराने दुर्ग—किले-परकोटे इन बातों के साक्षी हैं कि इन्होंने क्या-क्या नहीं देखा। पगड़ियों के कारण समझौते हुये, झगड़े संधि में बदले, टूटे रिश्ते बने तथा दुश्मन पाग बदल कर भाई बने तथा कई महत्वपूर्ण घटनायें होते-होते रुक गईं।

'पाग' राजस्थानी का शब्द है। इसका नाम बड़ी इज्जत के साथ लिया जाता है, क्योंकि यह सिर पर धारण की जाती है। प्राचीन काल में इसका मोल बहुत ऊंचा लगाया जाता था। पाग-पगड़ी असम्भव को सम्भव बनाती है।

बाजार में व्यापार के लिये दुकान चाहिये तो आप पगड़ी देकर मन-माफिक स्थान पर दुकान ले सकते हो। अब पगड़ी का स्थान धन ने ले लिया है, वरना पुराने जमाने में पगड़ी अमानत के रूप में बहुत ऊंचा स्थान रखती थी।

आप विपत्ति में बलहीन एवं बन्धुविहीन हों तो कोई भी भीम या अर्जुन से पाग-बदल भाई बन जाइये। फिर मजाल है कि कोई आपकी तरफ आंख भी उठा सके।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

अगर आपसे कोई समर्थ नाराज है तो आप तुरन्त उनके चरण कमलों में पाग उतार के रख दीजिये, बस देखते ही देखते उनका मन पसीज जायेगा।

राजस्थान में क्षेत्र, प्रान्त, समय, स्थिति, शिक्षा, धर्म-जाति, परगने एवं परम्परा के अनुसार पाग-पगड़ियों के पृथक-पृथक नाम हैं। लम्बाई में बड़ी है तो 'पाग', छोटी है तो 'पगड़ी' तथा रंगीन हो और अन्तिम छोर जिसे 'छेला' कहते हैं, झरी के बने हों तो 'पेचा' कहलायेगा। पेचा सिर्फ एक रंग का होता है। यदि वह बहुरंगा है या जरी का काम हो तो उसे 'मदील' कहते हैं। मदील किसी भी रंग की हो सकती है, पर बहुरंगी नहीं।

लोहे की है तो 'कनटोप', सोने की है तो उसे 'मुकुट' और हाथभर का कपड़ा बन्धा है तो 'चिन्दी' भी कहा जा सकता है। लोक भाषा में पाग पगडी के अनेक नाम यहां प्रचलित हैं—जैसे पोतीयो, साफो, पगड़ी, पाग, फालियो, घूमालो, फेंटो, सेलो, लपेटो, शिरोत्राण, अमलो, पगडी इत्यादि।

प्राचीन साहित्य में पाग के लिये 'उष्णीस', 'शिरो वेष्टन', 'शिरोधान', 'शिरस्त्राण' इत्यादि नामों का उल्लेख मिलता है।

भगवान् इन्द्र ने 'शिरस्त्राण' पहन कर ही असुरों का संहार किया था जिसका सन्दर्भ भी पुराण में मिलता है। प्राचीन काल में पूजन के समय 'उष्णीस' पहना कर ही पूजन किया जाता था तथा सम्मान किया जाता था। व्रतराज के पृष्ठ 9 पर इस सम्बन्ध में लिखा हुआ है कि—

"वस्त्र युग्म तथाष्णषिम्
कुण्डले कण्ड भूषणम्
अंगुली भूषण चेव
मणि बन्धस्य भूषणम्।"

लिंग पुराण में—संस्कृत में 'उष्णीस' शब्द का अर्थ इस तरह है कि 'उष्ण-दूषते' अर्थात् राजाओं के शासन काल में किसी को सम्मानित करने के लिये 'सिरोपाव' दिया जाता था और वह प्रतिष्ठा का पात्र माना जाता था और यह परम्परा आज भी प्रचलित है।

राजस्थान में 'पागें' सूती, रेशमी, जरतारी, रजन, सुवर्ण, शीफोन, लोह, इत्यादि की बनाई जाती थीं और साधारण-मानव से देवता तक इसको धारण करते थे। इसका सबसे उच्च एवं अन्तिम रूप मुकुट एवं साधारण रूप 'मामूली' 'चिन्दी' है।

बहियों में पागों का उल्लेख

पाग-पगड़ियों का उल्लेख 'कपड़ों के कोठार' की बही में भी बड़े विस्तार से 'महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश' में उपलब्ध है। महाराजा मानसिंहजी के समय की विक्रम सं. 1879 की कपड़ों के कोठार की बही न. 28 एवं 14 में विभिन्न प्रकार के पागों की विगत मिलती है जैसे मुख्य रूप से—पाग चन्देरी, पाग वजवाड़ा, पाग-शाहगढ़, पाग चीररी, पाग सुफेद ढ़ाकारी-ओटे पले की, पाग बूसी की, पाग तासकी, पाग चिटलरी, पोतीयो—गुजराती, पाग पूरभसार की चौकड़ी की, पाग लफादार,

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

पाग नागोरग, मोलीया अमरसाही अनार का, पोतीया शीफोन का, पाग बांधणु, पाग दीरवश की, पेचा तास रूपेरी, पाग जुमीरी, पाग किरमची इत्यादि प्रकार की पागें विभिन्न परगनों से आयात की जाती थीं।

इनमें 'नागोरण' पाग, ढाका की मलमली पाग, दीलीकी सफेद पाग, वीरानपुरी पाग, विशनपुरी पाग महाराजा विजयसिंहजी के शासनकाल वि. सं. 1843 में प्रसिद्ध थी।

उस जमाने में राज्य कर्मचारियों के लिये पागें नागौर से मंगाई जाती थीं। (बही—कपड़ों के कोठार की बही, पत्र सं. 58, वि. सं. 1843)
(क.स. 2—पत्र सं. 137, वि. सं. 1893)

पागों के मुख्य रंग

बहियों में पागों के प्रकार के अलावा पागों के विभिन्न रंगों का भी उल्लेख मिलता है, जैसे—पाग कस्तूरीया, कसूम्बल, अमरसिया, आभावरणी सोसनी, गुलनार, तोरी-फूली, बीदामी, जवाई, फूल गुआड़ी, मलयागिरी, सिन्दूरिया, फागुणियां, सुआ-पंखी, समदर लहर, राजाशाही, मोटड़ा, बीदामी, बूंटीदार, केरी भांत, किरमची रंग की तथा छापल सुनहरी पागों का उल्लेख विभिन्न 'कपड़ों के कोठार' की बहियों में मिलता है।

परगनों के हिसाब से पाग

परगनों के हिसाब से 18 वीं सदी में मुख्य रूप से पाग आगढरी, पाग विशन-पुरी, पाग वीरानपुरी, पाग नागोरण, सेलो साहगढ़ का, सेलो चन्देरी, पाग सिंध की, पाग ढाका की, पाग बजवाड़ा की मुख्य रूप से प्रचलित थी।

राजघराने में प्रयुक्त पाग

उस जमाने में राजघराने में सोने की ओटे वाली पाग, चांदी की चौकी वाली पाग, खीन-खाब की पाग, ढाका की पाग, दखरा की पाग इत्यादि बड़े चाव से बांधी जाती थी, जिसका उल्लेख इन बहियों में उपलब्ध होता है।

कीमत—'कपड़ों के कोठार' की बही में उपरोक्त पागों के कीमत का भी उल्लेख मिलता है। बही सं. 28 वि. सं: 1879 में पाग गुलाबी पोत की कीमत रु. 20, चीटलकी पाग रु. 8), (क. के कोठार की बही नं. 28 वि. सं. 1879, बही नं. 14)

पाग पुरफ सार की चौकडी तथा लफादार के रु. 35), नागोरण सफेद पाग के रु. 8), पाग चीटल गज 8 के रु. 2), पाग देसावरू के रु. 3 व 4) लगते थे। ढाका की सफेद पाग की कीमत रु. 15), जबकि बजवाड़ा की पाग 3) रु. 12 आना थी।

मुख्य व्यापारी—वि. संवत् 1843 के समय में जोधपुर में महाराजा विजयसिंह-जी राज्य करते थे तथा उस समय पागों के मुख्य व्यापारियों का भी उल्लेख बहियों में मिलता है। महाराजा मानसिंहजी के समय में (वि. सं. 1954) व्यापारी राणा चंगालाल, भगवानदासजी, व्यापारी सुराणा, राजरूपजी, किशना, सवाई, शिवदान आदि मुख्य उस समय के व्यापारी थे।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

ऋतुओं के अनुसार रंगों का चयन

हमारे राजस्थान में आदि काल से ऋतुओं के अनुसार पाग-पगड़ियों के रंगों का चयन होता था।

1. बसन्त ऋतु में गुलाबी।

2. ग्रीष्म ऋतु में फूल गुलाबी तथा 'बहरीया'—जिसमें रंगों की धारियां एवं हल्के छींटे लगे हों, बांधा जाता था।

3. वर्षा में—मलयागिरी—जो लाल चन्दन जैसा होता है। मलयागिरी में चन्दन का पुट होता है, और वर्षा काल में श्रावण-भादों के फंवारे जैसे ही पाग को गीला करते हैं, उसमें से चन्दन की सुगन्ध प्रस्फुटित होती है।

4. शरद ऋतु में गुल-ए-अनार रंग की पाग बांधी जाती थी। (आसोज-कार्तिक)।

5. हेमन्त ऋतु (मिगसर-पोष) 'मोलीया' बांधा जाता है, अर्थात् विभिन्न रंगों की पगड़ी।

6. शिशिर ऋतु (माह-फाल्गुन) में केसरिया रंग बांधा जाता है, क्योंकि इन दिनों शीतलता के कारण पसीने से रंग छूटता नहीं है।

महीनों के अनुसार रंगों का चयन

प्राचीन काल में लोग ऋतुओं के अलावा प्रत्येक महीने में पाग के रंग का चयन मौसम, अनुकूलता के अनुसार करते थे। बेढंगे रंगों का चयन फूहड़ता का प्रतीक माना जाता था तथा मौसम के अनुसार रंग बांधने वाला व्यक्ति सुसभ्य एवं शौकीन कहलाता था। चैत्र में—गुलाबी, वैशाख में—जवाई, जेठ में—फूल-गुलाबी, आषाढ़ में—भामाशाही, श्रावण में—लहरिया, भादवा में—मलयागिरी, आसोज में—लाल या कसुम्बल, कार्तिक में—सिन्दूरिया, मिगसर में—मोलिया, पोष में—हल्का केसरिया या तोरीफूला, माघ में—केसरिया तथा फाल्गुन में—फागुणिया रंग बांधे जाते थे।

शोक के रंग—चन्देरी, सोसमी, आसमानी, सफेद, खाकी एवं भूरा रंग, काली छापल धोती इत्यादि शोक के रंग माने जाते हैं। मारवाड़ में त्यौहारों तथा अवसरों के भी पृथक् पृथक् रंग होते हैं।

रिवाज के अनुसार—शादी के समय साफे का रंग—केसरिया, मारवाड़ में राजघराने में पीठी के समय कांभा—साफा, राखी के दिन बहन मोठड़ा साफा लाती है, होली पर—फागुणिया रंग तथा शोक के रंग मैं उपर्युक्त बता ही चुका हूं।

किसी के घर में मौत होने पर करीबी रिश्तेदार सफेद रंग बांधते हैं। मौत के दिन 'उठावणे' पर गुलाबी साफे बांधे जाते हैं।

इसी प्रकार यहां पर जाति विशेष के, पृथक् पृथक् रंग होते हैं—जैसे बिशनोई—हमेशा सफेद बांधते हैं; राईके—रबारी हमेशा 'लाल टूल' का साफा बांधते हैं। तो लंगा—मांगणियार, कालबेलिया—रंगीन छापल डब्बीदार भांतवाले साफे बांधते हैं। कलबी—सफेद, कुम्हार, माली—लाल, व्यापारी वर्ग लाल, फूल गुलाबी, केसरिया, जवाई, इत्यादि रंग की पागें बांधते हैं।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

सम्प्रदाय के अनुसार—सम्प्रदाय के अनुसार भी पगड़ियों के रंग विभिन्न होते हैं, जैसे—रामस्नेहियों का रंग सफेद, कबीर सम्प्रदाय का रंग लाल एवं पगड़ी मन्दिर के शिखर के समान आकार की बांधते हैं। नाई, जोगियों, गुरड़ों-स्वामियों, मठाधीशों एवं सन्यासियों की पगड़ी का रंग 'जोगिया' या भगवा होता है। गुरड़े भगवी पगड़ी पर काली डोरी बांधते हैं।

मुहावरे—इस प्रकार साफों-पगड़ियों के प्रचलन के कारण इसका लोकजीवन पर गहरा प्रभाव देखने को मिलता है। ग्राम बोल-चाल, कहावतों, मुहावरों, गीतों इत्यादि के रूप में पगड़ियों के सन्दर्भ हमें मिलते हैं। उदाहरण के तौर पर पाग—पगड़ी से जुड़े कुछ मुहावरे—"पगड़ी वेच घी नहीं खाईजे, पगड़ी उछळ गई, पगड़ी ठोकरों में, पाग की लाज, पगड़ी उतर गई, पाग के पेच ढीले होना, पाग छिथड़ा-छिथड़ा होना, सवा सेर सूत की लाज"; पगड़ी रा वारणा, पग में लितड़ा ने माथे पर पाग, मांगी हुई पगड़ी एवं उधारा जस खोटा होता है, पगड़ी बदल भाई, पाग रो पेच मरदानो, इत्यादि कई मुहावरे दिन-प्रति-दिन सुनने को मिलते हैं।

इसी प्रकार की कई कहावतें भी मशहूर हैं जैसे—'साफो बांधे जिता सगळा ही आदमी नहीं व्है, अर ओरणा ओढे जितरी सगळी लुगायां नी रहे', अर्थात् साफा बांधना आसान है, परन्तु इसकी लाज रखनी मरदों का काम है, वीरों का खेल है, तथा अलबेलों का प्रण होता है। आज दिन तक इसका प्रचलन पगड़ी की सुन्दरता के कारण नहीं हुआ बल्कि इसकी संस्कृति की गहरी जड़ों के कारण हुआ।

हास्य का पुट देकर किसी ने लिखा है कि 'खेंचियों थे हालो नहीं, चढ़ियों घालो फोड़ा, फाग थारे पाग मेलूं, घरे पधारों घोड़ा', कहने का अर्थ यह है कि इस परम्परा का उल्लेख प्राचीन ग्रथों से लेकर ग्राम बोलचाल तक में इनका खूब प्रचलन था।

रिवाज—पाग पगड़ियों से सम्बन्धित महत्वपूर्ण रिवाजों का उल्लेख किए बिना यह लेख अधूरा रहेगा। जैसे (1) किसी की पगड़ी को ठोकर मारना, उसे लांघना, उसे नीचे रखना, उस पगडी बांधने वाले व्यक्ति को अपमानित करना होता है।

(2) पगड़ी बंधवाना किसी भी व्यक्ति के लिये सम्मान का सूचक है, परन्तु अपने से निम्न स्तर या सामाजिक परम्परा में निम्न व्यक्ति से पगड़ी बंधवाना सम्मान सूचक नहीं है।

(3) जिस प्रकार राखी बांधकर भाई बनाये जाते हैं, उसी प्रकार पगड़ी बदल भाई भी बनाये जा सकते हैं।

(4) राजस्थान में स्त्रियां मृत पति के शव के साथ सती हो जाया करती थीं, परन्तु यदि पति की मृत्यु युद्धस्थल में हुई हो और शव प्राप्त करना आसान न हो तो ऐसी दशा में पति की पगड़ी के साथ ही सती होने का रिवाज़ प्रचलित था।

(5) किसी के पिता की मृत्यु पर 12वें दिन ज्येष्ठ पुत्र को पगड़ी बंधवाकर घर का उत्तराधिकारी घोषित किया जाता है।

(6) किसी भी अतिथि के घर आने पर मेजबान पगड़ी बांधकर ही उसका स्वागत करने घर से बाहर आता है। नंगे सिर सामने आना अपमानजनक एवं अप-

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America - HHFA(USA)

शकुन माना जाता है।

(7) पूर्व राज-घरानों में जनाना ड्योढ़ी में सभी को पगड़ी बांधकर ही प्रवेश करने का रिवाज था, चाहे घर का मालिक हो या नौकर, यह परम्परा सबके लिये समान थी।

(8) प्राचीनकाल में पगड़ी को रेहन भी रखा जा सकता था।

(9) युद्धस्थल से किसी की पगड़ी का घर आना, उसकी मृत्यु का सन्देश माना जाता था।

(10) प्राचीनकाल में पगड़ी छीनकर ले जाना विजय का सूचक था तथा पगड़ी का दुश्मन के हाथ लगना महान् अपमान माना जाता था और उसे वापस प्राप्त करने के लिये मरने को योद्धा तैयार रहते थे।

(11) बारात आने की सूचना देने वाले भाई को वधू पक्ष वाले आज भी पगड़ी बंधवाकर खुश करते हैं।

यह बड़े खेद की बात है कि हम पश्चिमी वेशभूषा, जो हमारी भारतीय संस्कृति से बिल्कुल मेल नहीं खाती, अंधा-धुंध अपना रहे हैं और हमारी वास्तविक वेश-भूषा को गंवारों का पहनावा या फूहड़ की संज्ञा देकर उसका अपमान कर रहे हैं।

अनुपयोगी परम्परायें अपने आप समाप्त हो जाती हैं और ज्यादा समय तक जिन्दा नहीं रह सकतीं, परन्तु पाग-पगड़ियों का प्रयोग सैकड़ों वर्षों से होता आया है तो जरूर उसमें कुछ उपयोगी गुण होंगे, इसलिये समाज ने उसे अपनाये रखा।

इस परम्परा के गौरव को जिन्दा रखने में आज के युवक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। आज हम देख रहे हैं कि युवक फैशन की दौड़ में अन्धे होकर कुछ भी पहन लेते हैं, तो क्यों नहीं फैशन मानकर ही इस परम्परा को पुन: जीवित किया जाये। वरना आने वाले वर्षों में यह किताबों, कहानियों और तस्वीरों में देखा-पढ़ा जायेगा।

इस सम्बन्ध में हमें सिखों से प्रेरणा लेनी चाहिये, क्योंकि सिख लोग चाहे कितने ही शिक्षित हों, उच्च पद पर हों, देश में हों या विदेश में, अनपढ़ ग्रामीण व सभी पेशे के सरदार पगड़ी का बांधना नहीं भूलते हैं। इससे इनमें एकता, अपनी पहचान एवं अपनी आवाज है। हमें भी अपनी इस परम्परा का सम्मान करना चाहिये।

हम लोगों को भेड़चाल में शामिल नहीं होना चाहिए। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम अपनी पहचान अलग से बनाये रखें। हमको वही दिखना चाहिए जो हम थे, वह नहीं दिखाना है जो हम कभी नहीं थे और इस परम्परा को प्रतिष्ठा के साथ जिन्दा रखना चाहिये।

विदेशों में अमेरिका, स्विट्जरलैण्ड, जापान आदि देशों में भारत महोत्सवों में हमारी पाग-पगड़ियों को सराहा गया है तथा इन्होंने हमारे देश की वास्तविक सस्कृति का प्रतिनिधित्व किया है, जिसमें हमारे देश की पौराणिक परम्परा की सौंधी सुगन्ध आती है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मारवाड़ के सांस्कृतिक परिवेश में लोकनाट्य व रंगमंच

प्रो. मदन मोहन माथुर

मारवाड़ के ऐतिहासिक सिंहावलोकन को भी ब्रिटिश साम्राज्यवादी अध्येताओं के पूर्वाग्रह ने विकृत किया। कर्नल टॉड मारवाड़ को एक राजनीतिक इकाई के रूप में प्रस्तुत करते हैं और राजघरानों से अपने सबंधों और वहाँ से प्राप्त दस्तावेजों की व्याख्या करते हैं। एक शताब्दी के लगभग पहले भारतीय जनजीवन को विश्व भर में प्रचारित करने वाले रुड्यार्ड किपलिंग 'मरु देश' को थार के निर्जल रेगिस्तान में प्यासे 'मरने वालों' का प्रदेश बताते हुए एक भौगोलिक इकाई के रूप में परिभाषित करते हैं। दोनों अध्ययन दृष्टि-सीमा और दृष्टिकोण वैशिष्ट्य के कारण मारवाड़ के सक्रिय, जीवंत, रचनात्मक और कलात्मक स्वरूप के प्रति दृष्टिलोप और उपेक्षा से ग्रसित भी लगते हैं। राजनैतिक व्यवस्था केवल प्रशासन और राजतन्त्र के सम्बन्ध में राजवंशों की सफलताओं-असफलताओं का आकलन मात्र रह जाता है। प्रशासित जनसमुदाय की परिवेश के प्रति स्वाभाविक और रचनात्मक प्रतिक्रियायें, सृजनशील रचनाक्रम और पीढ़ी-दर-पीढ़ी पुष्ट परम्परायें जो किसी भी राजनीतिक व्यवस्था से दीर्घजीवी हैं, अछूती रह जाती हैं। इसी प्रकार भौगोलिक इकाई मात्र मान लेने पर उन भौगोलिक स्थितियों के बीच पल रहे समाज का अपना विकास और अपनी पहचान, अपनी अस्मिता और अपनी विशिष्टता की अनदेखी होती है। विडंबना यह भी रही कि टॉड और किपलिंग के अध्ययन को इतनी प्रमुखता मिली कि यहां रह रहे अंग्रेजों के व्यक्तिगत अनुभवों और अभिव्यक्तियों को साहित्य में स्थान तो मिला पर प्रमुखता नहीं। प्रसिद्ध अंग्रेजी उपन्यासकार ई. एम. फोर्स्टर ने जोधपुर नगर के सौन्दर्य का जो वर्णन किया वह किपलिंग के यात्रावृत्त के ठीक विपरीत ठहरता है। वह प्राकृतिक सौन्दर्य और लोकजीवन की उमंग से सीधा जुड़ता है। हेनरी न्यूबोल्ट की एक कविता तो लोकगीत (बैलेड) के छन्द में लिखी गयी और वह सर प्रताप के अति उदार मानवतावाद का यशोगान करती है। एक अंग्रेज सैनिक को कन्धा देने के लिये सभी तिरस्कारों का स्वीकार एक मानवीय मूल्य अनुपालना थी! गवर्नर जनरल के राजपुताना के लिये एजेण्ट कर्नल जी. एच. ट्रेवर की कविताओं का लन्दन में 1894 में प्रकाशित संग्रह 'मारवाड़ और बीकानेर' को लेकर एक विशेष खण्ड में मारवाड़ की सुदृढ़ परम्पराओं को उजागर करता है। इन सभी प्रत्यक्ष अनुभव किये यथार्थ की अभिव्यक्तियों के होते हुए भी आज भी मारवाड़ को कर्नल टॉड और किपलिंग की पूर्वाग्रही दृष्टि से देखने का लोभ अध्येता संवरण नहीं कर पाते।

मारवाड़ एक सांस्कृतिक इकाई रही है। राजनैतिक स्वरूप और भौगोलिक

Digitization by Hindu Heritage Foundation of America, HHFA(USA)

स्थितियाँ उसे पुष्ट अवश्य करती रहीं किन्तु एक पहचान और अस्मिता जो उभरी है, नितान्त सांस्कृतिक है। वह पहचान राजतन्त्र की समाप्ति के बाद भी और भौगोलिक परिवर्तनों के बाद भी बची हुई है। किसी नहर से सिंचित होकर मरुस्थल की यातनायें तो मिट सकती हैं लोकजीवन में रची बसी भावनायें, आशायें, आकांक्षायें, कला-शैलियाँ, अभिव्यक्तियां, मुहावरे और पारम्परिक एकरसता : राजनीति, भूगोल और यहाँ तक कि समय की सीमायें लांघ कर भी कालजयी बनी रहती हैं और उन्हीं का समष्टिगत रूप एक संस्कृति को रूप देता है। आज भी प्रवासी राजस्थानियों को बिना आंचलिक भेद के 'मारवाड़ी' सम्बोधित किया जाता है। अपनी कृति को संस्कारित कर लोकमानस 'संस्कृति' का स्वरूप विकसित करता है। कृति के क्षीण होने पर विकृति भी उस पहचान से ही जुड़ती है क्योंकि अपनी कृति का परिणाम तो उसे प्रभावित करता ही है। ऐसा ही यदि कहीं 'मारवाड़ी' शब्द के साथ हुआ तो उसे संदर्भ विशेष में देखना उचित होगा। सामूहिक परिप्रेक्ष्य में तो यह संस्कृति सूचक ही है। किलों, महलों, हवेलियों में आज जो आकर्षण बचा है वह शुद्ध रूप से लोक की कलात्मक कृति ही है, चाहे स्थापत्य हो या भित्तिचित्र, वस्त्र, शस्त्र, अब अजायबघर के सुपुर्द वाद्ययंत्र, मिट्टी के बर्तन आदि प्रमाणित करते हैं अपने लोक सम्बंधों को। इन उपयोगी और संग्रहणीय कलाकृतियों के अतिरिक्त वे कलात्मक अभिव्यक्तियाँ जो प्रदर्शनकारी होने के कारण जीवत कलाकारों में व्यक्त होती थीं ध्वनि और चित्रांकन के अभाव में सुरक्षित न रह सकी हों, सामाजिक परम्पराओं और लोकशैलियों में उनका स्वरूप अविच्छिन्न रूप से प्रचलित है।

लोककला मर्मज्ञों ने राजस्थान में अब तक प्रचलित सत्ताइस लोकनाट्य शैलियों पर सामग्री जुटायी है और स्थानीय विशिष्टताओं के साथ इनके विविध रूपों की चर्चा भी की है। इनमें से प्रायः सभी के साथ लगा 'ख्याल' शब्द 'मारवाड़ी' बोली का है जो उत्तर प्रदेश से संपृक्त क्षेत्र में वहाँ की लोकनाट्य शैली 'नौटंकी' के साथ भी जुड़ गया है। जिस प्रकार राजस्थानी भाषा की प्रमुख बोलियों में मारवाड़ी है, उसी प्रकार लोकनाट्य शैलियों में 'ख्याल' है और आम बोलचाल में उन सभी के लिये मुहावरा 'मारवाडी ख्याल' या खेल है। खेल के अर्थ में ही अंग्रेजी के 'प्ले' (नाटक) के समकक्ष होना मात्र सयोग नहीं कहा जा सकता। यह उन अनुभूतियों और विश्वजनीन संवेदनशीलता तक, अनायास ही सही, पहुंचकर ही सम्भव है। मारवाड़ी में लोकनाट्य कलाकार आज भी अपने लिये 'खिलाड़ी' (प्लेयर) शब्द का प्रयोग करते हैं। यह शब्द 'अभिनेता' की तुलना में उनकी रचनात्मक भूमिका को बेहतर ढंग से परिभाषित करता है। नाटक में अभिनेता की भूमिका और भागीदारी सीमित होती है पर खेल से खिलाड़ी का जुड़ाव पूरा होता है। वह उपकरण नहीं रह जाता, स्वयं रचनाकार हो जाता है। वैसे भी प्रदर्शनकारी कलायें चित्रकला जैसी कलात्मक अभिव्यक्तियों से रचनाकार की भूमिका में ही भिन्न है। चित्र से चित्रकार अलग रहता है, जबकि अभिनेता स्वयं सशरीर अभिनय में, नर्तक स्वयं नृत्य में और वादक गायन और वादन में होते हैं। उनका व्यक्तित्व कृतित्व में एकाकार होता है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

खेल और खिलाड़ी में भी वही एकात्मकता है। अरस्तु की चार सौ वर्ष ईसा पूर्व उक्ति कि नाट्य 'खेले जाने के लिये है, पढ़े जाने के लिये नहीं' ख्याल में बखूबी चरितार्थ होती है। नाट्य की पूरी प्रक्रिया के लिये ख्याल शब्द का चुनाव ही अपने आप में वह प्रतिमान है जो मारवाड़ी सांस्कृतिक चेतना के विकास और सजगता को प्रमाणित करता है। विश्व चेतना के अनुरूप ही यह चेतना समानान्तर विकसित होती प्रमाणित होती है।

संस्कृति व्यष्टिगत कलात्मक अभिव्यक्तियों का समष्टिगत स्वरूप भी है। कला रूप के एक छोर पर अभिव्यक्ति है तो दूसरे छोर पर सम्प्रेषण। कला यात्रा व्यक्ति से प्रारम्भ होकर समाज में समाहित होने वाली सांस्कृतिक सुरसरी है। संगीत, नृत्य, अभिनय, रूपसज्जा और प्रस्तुति तक की नेपथ्य और प्रेक्षकवर्ग सम्बन्धी व्यवस्थायें नाटक को इसी स्तर पर सम्प्रेषण का सशक्त माध्यम बनाती हैं। सम्प्रेषण तक के क्रम में कई व्यक्तिगत अभिव्यक्तियाँ समष्टिगत स्वरूप पा लेती हैं और अपने सम्पूर्ण प्रभाव में एकाकार हो जाती हैं। इसीलिये नाट्यविधा सभी कलाविधाओं की प्रौढ़ता, परिपक्वता और सांस्कृतिक निकटता का प्रतिनिधित्व करती है। सम्प्रेषण एक छोर पर प्रस्तुति की एकात्मता है तो दूसरे छोर पर प्रबुद्ध दर्शक-श्रोता, जो व्क्तक्तिगत स्तर पर प्रतिक्रिया करता हुआ भी एक सामुदायिक अनुभूति का भी अंग होता है।

नाट्य में विभिन्न कला रूपों का यह समावेश नाट्य को संस्कृति की पहचान बना देता है। यह कह देना भी अतिशयोक्ति नहीं होगी कि संस्कृति एक परिपक्वता और प्रौढ़ता की अवस्था में पहुँच कर ही अपना नाट्य विकसित कर पाती है। लोकनाट्य विधा का विकास तो नैसर्गिक प्रक्रिया होने के कारण संस्कृति का सच्चा मानदण्ड है। एक कला रूप का अनुष्ठान में परिवर्तित हो परम्परा बन जाना राज्याश्रय में व्यावसायिक कलाकारों की शास्त्रीय शिक्षा-दीक्षा और प्रश्रय से बहुत भिन्न प्रक्रिया है और शायद इसीलिये समाज के लिये सदैव प्रासंगिक बनी रहती है।

मारवाड़ी ख्याल प्रदर्शनों का खुलापन और उस खुलेपन के ऐन बीच एक अंतरंग, अनौपचारिक, आत्मीयता यूनान में विकसित प्राचीनतम माने गये मंच रूप के सभी तथ्यों के समकक्ष सम्प्रेषणशील और प्रभावोत्पादक लोकनाट्य 'ख्याल' है। अपनी ही स्थानीय धरती की मिट्टी से रंगभूमि का निर्माण प्रतीकात्मक रूप से अपनी जमीन से जुडे रहने का संकल्प है। प्रेक्षक वर्ग का मंच के तीन ओर बैठकर अपनी कल्पनाशक्ति का पूरा सहयोग करते हुए प्रस्तुति का हिस्सा बन जाना और प्रबन्ध स्तर तक प्रस्तुति को अपनाना आज भी एक महती सांस्कृतिक परम्परा के रूप में जीवित है।

'ख्याल' शब्द को गायन शैली में आगरा घराने की ईजाद 'बड़ा ख्याल' छोटा ख्याल से भी जोड़ा जाता है। जाने माने लोकनाट्य अध्येता रामनारायण अग्रवाल 'ख्याल लावणी' लोक-गायन शैली का उद्भव कोई तीन सौ वर्ष पहले आंकते हैं और इसके राजस्थान और सम्पूर्ण उत्तर भारत में फैलने के प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

उनके अनुसार इस शास्त्रीय गायन शैली का प्रयोग सिद्धहस्त उस्तादों ने लोकनाट्य में किया। मारवाड़ी ख्याल का मुख्य छन्द लावणी है परन्तु 'ख्याल लावणी' का तुर्रा कलगी अखाडों में जो प्रयोग होता है वह शैली ही भिन्न है और वह गायन शैली है, नाट्यशैली नहीं। उत्तर प्रदेश की लोकप्रिय लोक-गायन शैली उत्तर प्रदेश से लगे राजस्थानी क्षेत्रों तक फैली है। मारवाड़ की 'ख्याल' परम्परा लोकनाट्य शैली है जो यहीं के अखाड़ों ने विकसित की। लावणी छन्द के कारण मराठी तमाशों में प्रयोग होने वाली लावणी का प्रभाव होल्कर के साथ इधर आया बताया जाता है पर यह संभावना भी नहीं लगती क्योंकि अव्वल तो मराठे राजस्थान की रियासतों के साथ संघर्षरत रहे और किसी सांस्कृतिक आदान-प्रदान की आदर्श स्थिति तीन सौ वर्षों पहले नहीं रही। लावणी छन्द और गायन शैली का ज्ञान ख्याल के उस्तादों को अवश्य रहा और इसका उल्लेख उन्होंने अपने आलेखों में भी किया। अन्य लोक-कलाओं की अपेक्षा लोकनाट्य का उद्भव प्रामाणिक रूप से तय है क्योंकि ख्यालों का आलेख उपलब्ध है। उन आलेखों से उनके स्वरूप के बारे में प्रामाणिक परिचय मिल जाता है। संगीत संबंधी निर्देशों से लगता है कि रचनाकारों का संगीत विषयक ज्ञान और अनुभव अच्छा खासा रहा होगा। ख्याल के सभी खिलाड़ी भी अच्छे गायक होते हैं। मारवाड़ में भजन और जागरण, कथावाचन और अनुष्ठान लोकनाट्य के पोषक रहे हैं। जागरण और भजन गायन की परम्परा इतनी सुदृढ़ है कि संगीत के विविध आयामों का ज्ञान और रियाज सहज स्वाभाविक प्रक्रिया में हो जाता है। आज भी ख्याल के व्यावसायिक खिलाड़ियों के चयन में प्रमुख बात गायन, सुर और ताल का अनुभव रहती है। जागरण में राग-रागनियों के शास्त्रीय ज्ञान के प्रति अन-भिज्ञ रहते हुए भी गायक सुरीले और गायन-वैविध्य, स्वरों के उतार-चढ़ाव व ताल संगत से उसकी प्रभावोत्पादकता से परिचित होते हैं। ख्याल का मारवाड़ में अनु-ष्ठान से जुड़ा होना इसे इस संस्कृति में गहरा आरोपित सिद्ध करता है। जिन गांवों में ख्याल के अखाड़े रहे हैं, होली से कई दिनों पूर्व चौक के निकटतम मन्दिर पर झण्डा गाड़ा (रोपा) जाता जो इस बात की सूचना थी कि होली से पूर्व त्रयोदशी (तेरस) को उस चौक में मारवाड़ी ख्याल का प्रदर्शन होगा। झण्डा लहराना उस अखाड़े के लिये पूर्वाभ्यास का मुहूर्त करने का भी संकेत होता है। ऐसे अखाड़ों की संख्या साठ से सौ के बीच रही है। जिन गांवों में अव्यावसायिक स्तर पर ख्याल प्रदर्शन अखाड़ों द्वारा किये जाते रहे, समूचा समाज उनकी निर्मिति और प्रस्तुति में सहयोग करता। सभी व्यवस्थायें इतने स्वाभाविक ढंग से होती जातीं कि एक सुदृढ़ परम्परा में ही वैसी सहजता हो सकती है। लोकनाट्य अध्येताओं के विभिन्न प्रभावों के दावे आंशिक रूप से सत्य भी मानें तब भी एक सम्पूर्ण रूपाकार एक संस्कृति का स्वाभाविक हिस्सा होना और कहीं अन्यत्र उसके अनुरूप परम्परा का न होना उसे विशिष्ट बना देता है। वैसे संगीत-नृत्य, छंद और कथ्य के प्रभावों का पूरी भारतीय संस्कृति में बिखरे होना निर्विवाद सत्य है। इस दृष्टि से सभी लोकनाट्य शैलियों में बड़े साम्य हैं--- तमाशा (महाराष्ट्र), भवाई (गुजरात), ख्याल (राजस्थान) और नौटंकी (उत्तर प्रदेश),

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

माच (मध्य प्रदेश) में तो इतने साम्य हैं कि उनके वैविध्य को सिद्ध करने के लिए हमें मोटे तौर पर ही कुछ उल्लेखनीय बिन्दु मिलेंगे। किसी अहिन्दी भाषी या विदेशी के अनुभव में तो इन नाट्यशैलियों के साम्य ही अधिक होंगे। यह किसी भी नाट्यशैली की निर्बलता या अन्तर्निर्भरता सिद्ध नहीं करता बल्कि व्यापक स्तर पर संस्कृति की एकरूप अस्मिता को ही घोषित करता है—विविधता में एकता भी नहीं एकता में विविधता। आधारभूत साम्य के स्तर पर ही आगे चलकर दो संस्कृतियों के बीच आदान-प्रदान और व्यापकतम मानवीय संस्कृति की परिकल्पना उभरती है। इसी सन्दर्भ और परिप्रेक्ष्य में मारवाड़ी संस्कृति और उसके पारम्परिक कलारूपों का अध्ययन समीचीन होगा।

ख्याल की प्रासंगिकता आलेखों के कथ्यों में आरोपित है। लोकप्रिय कथ्यों में मिथक-आधारित सत्यवादी हरिश्चन्द्र जैसे आलेख हैं तो अमरसिंह राठौड़ जैसे ऐतिहासिक भी। इन आलेखों में आदर्श मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठापना रूपायित है। वास्तव में तो मिथकों की रचना और उनकी व्यावहारिकता समाज के समानान्तर एक उदात्त आदर्श स्तर पर चरितार्थ होती है। मारवाड़ी लोकवार्ता के विभिन्न रचनात्मक रूपों में सत्यवादिता, आतिथ्य, बलिदान, स्वाभिमान, लोकहित में व्यक्तिगत स्वार्थ का त्याग आदि मूल्य अपनी चरम तार्किक परिणति में प्रतीकात्मक रूप से रूपायित हैं। वे मूल्य लोककथाओं के माध्यम से घर-घर में पहुँचते हैं तो लोकगीतों में सामुहिक रूप से गुनगुनाये जाते हैं। चित्रकला में उनमें आस्था के रंग भर कर दर्शाया जाता है। लोकनाट्य में उन्हीं मूल्यों का जीवंत प्रतिनिधित्व मचित होता है। मिथकों की विशिष्टता उनके अथक रूप से दोहराये जाने के बाद भी उनकी शाश्वत प्रासंगिकता में निहित है। प्रेक्षक उन्हें बार-बार देखते नहीं अघाते। नाटक का कथानक सभी भली प्रकार जानते होते हैं। लोकनाट्य कलाकारों को उसे प्रस्तुत करते भी कई बार देखा होता है फिर उन्हें बार बार उत्सुकता से भावविभोर हो देखना तो नाट्यानुभव की विरेचन तक की पूर्णता का द्योतक है।

'ख्याल' की खासियत धार्मिक और ऐतिहासिक कथ्यों को एक बंधी-बंधायी निर्मिति में प्रस्तुत करने में नहीं। ऐसा होने से तो पीढ़ी-दर-पीढ़ी इस नाट्य परम्परा का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता। ख्याल की प्रस्तुतियों में रचनात्मक आशु संरचना के प्रयोग हैं। वे नाटकीय विश्रान्ति प्रदान करते हैं, अनुरंजन करते हैं और प्रायोगिक रूप से कथ्य के विश्लेषण का मार्ग खोलते हैं। इसके अतिरिक्त उन आशु संरचनाओं के माध्यम से ही अभिनेता प्रेक्षकों से सीधा जुड़ता हुआ अपनी बुद्धि, मस्तिष्क तथा शरीर कौशल से मंच पर अपनी उपस्थिति को प्रमाणित करता है। अभिनेता की यही साक्षात उपस्थिति ही नाटक को अन्य परोक्ष कलाओं से विशिष्ट बनाती है। अभिनेता स्वय को अभिनय में खोकर रचनाशीलता की उपासना करता है। नाट्य प्रदर्शन को यही विशिष्टता जीवंत बनाये रखती है और अधिकतम सम्प्रेषण की संभावनायें सदैव बनी रहती हैं। एक ही अभिनेता अलग-अलग प्रस्तुतियों में नया चरित्र उपस्थित करता है। उस चरित्र से हर बार प्रेक्षक तादात्म्य अनुभव करता

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

है। इसी तादात्म्य में अभिनेता और प्रेक्षक दोनों के लिए रसनिष्पत्ति होती है, जो इस नाट्यानुभव को सुखकर बनाती है। नाट्य की अभियोजित कृत्रिमता तिरोहित हो जाती है और एक विलक्षण सत्य आलोकित होता है।

किसी भी नाट्यशैली में नाट्यव्यवहार कथ्य के समकक्ष ही महत्त्वपूर्ण होता है। कथ्य से स्वतन्त्र एक शैली विशेष का परिचय उस नाट्यव्यवहार में ही मिलता है। यही शैली पारम्परिक रूपाकार ग्रहण करती हुई विभिन्न कथ्यों को और कथानकों को प्रायोगिक रूप से मचित करने की क्षमता रखती है। 'ख्याल' की नाट्यशैली की अपनी विशिष्ट रोचकता है जो उसकी संजीवनी है। उस नाट्यशैली में संगीत, नृत्य और अभिनय प्रमुख अंग हैं।

'ख्याल' के खिलाड़ी (अभिनेता) अपने अभिनय में गायन, नृत्य और ताल की समझ का अच्छा सामञ्जस्य करते हुए पूर्ण-अभिनेता के रूप में मंच पर उतरते हैं। धार्मिक जागरणों में गायन का रियाज करते ग्रामीण सामाजिक अव्यावसायिक स्तर पर सामाजिक अनुष्ठान के रूप में वर्ष में एक बार, कम से कम, 'ख्याल' में भूमिका निभाते हुए इस प्रकार के अभिनय के श्रेष्ठ मानक स्थापित कर चुके हैं जो व्यावसायिक ख्याल दलों के लिये चुनौती भरे आदर्श रहे हैं। कला में व्यावसायिकता को भी हेय माना जाता रहा क्योंकि वह कला को सामाजिक अनुष्ठान के आदरणीय स्तर से च्युत करती है। इसी कारण अखाड़ों के 'ख्याल' और व्यावसायिक पेशेवर दलों के प्रदर्शनों में सभी स्तरों पर बड़ा अन्तर दिखायी देता है। प्रदर्शनकारी शास्त्रीय कलाओं की भांति गुरु-शिष्य परम्परा 'ख्याल' में निरन्तर रही है। गुरु के प्रति आस्था का खिलाड़ी मंच पर अपने इष्टदेव को नमन के पश्चात् ससम्मान व्यक्त करता है। अपने परिचय में वह अपने उस्ताद का नाम अवश्य सम्मिलित करता है। सभी अभिनेता मंच पर अपने प्रवेश के साथ ही पहले अपना व्यक्तिगत और उसके उपरान्त अपने उस नाटक की भूमिका का परिचय देते हुए सूत्रधार के कार्य को आंशिक रूप में पूरा करते हैं।

'ख्याल' के अधिकांश आलेखों में राजा और रानी नायक और नायिका के रूप में उदात्त चरित्र होते हैं और उन्हें अभिनीत करने वाले अभिनेता गायन और नृत्य में निष्णात तो होते ही हैं, एक स्पर्धा के साथ वे दर्शकों के आकर्षण का केन्द्र बने रहते हैं। सभी नारी पात्र भी पुरुष अभिनेता ही होते हैं। यह विशिष्टता सभी लोक नाट्यशैलियों में सामान्य रूप से मिलती है। फिर रानी की भूमिका निभाने वाले अभिनेता का स्त्रैण व्यवहार तो रोचक होता ही है। अन्य पात्रों में महिला चरित्र अपनी कथानक में निहित गरिमा से हटकर भी मनोरंजन करने में नहीं चूकते। व्यावसायिक दलों ने तो इस छूट को सभी स्तरों तक ले जाने में कोई कोर-कसर बाकी नहीं रखी है।

विदूषक 'ख्याल' का अपना चरित्र है, क्योंकि वह किसी भी आलेख में न होते हुए भी प्रत्येक प्रदर्शन में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस चरित्र का स्पष्ट प्रयोजन मनोरंजन है। नाटकीय विश्रान्ति के महत्वपूर्ण क्षणों के केन्द्र में उसी की

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

भूमिका रहती है। 'ख्याल' के पारम्परिक अनुष्ठानिक स्वरूप में विदूषक कभी नहीं रहा पर अब पेशेवर ख्याल दलों में तो वह इतना अपरिहार्य है कि कई दलों के प्रबन्ध में वह लाभ में राजा, रानी और नगाड़ा बजाने वाले साजिन्दे के बराबर का हकदार होता है। एकाध दल ऐसा भी है जिसका संचालक स्वयं विदूषक की भूमिका निभाता है। विदूषक के अभिनय में प्रत्युत्पन्नमति, आशुसंरचना, शुद्ध हास्य उपजाने वाले हाव-भाव चरम कोटि के होने आवश्यक हैं। शेक्सपियर के समय के एलिजाबेथन रंगमंच पर 'क्लाउन' के स्मरणीय सशक्त चरित्र की भी कई विशेषतायें ख्याल के विदूषक में देखी जा सकती हैं। वह बहुत ही व्यावहारिक दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता है। नायक और नायिका के संवाद और व्यवहार पर भी तीखी टिप्पणी केवल उसी का अधिकार है। वह समकालीन सन्दर्भों को बीच में ला सकता है। इसके अतिरिक्त अंतरालिकाओं (interludes) व प्रहसनिकाओं का तो वह स्वयं नायक होता है। उसकी हास्य संवेदनशीलता के प्रभावोत्पादक आयाम अधिकतम अनुरंजन करने में सफल होते हैं। प्रहसनिकाओं (skits) का प्रस्तुति में समावेश करते हुए लोकगीतों और समाजसुधारक प्रयोजनीयता से तैयार गीतों के आधार पर आज ख्याल नाट्य दल सूचना प्रसारण मंत्रालय के अन्तर्गत नीतियों के प्रचार हेतु भी अनुबन्धित होने लगे हैं।

ख्याल के अन्य पात्र सहज रूप से किसी भी अभिनेता द्वारा अल्पकालिक पूर्व सूचना में ही अभिनीत कर लिये जाते हैं। एक अभिनेता रूप सज्जा में हल्के से परिवर्तन के साथ और कभी कभी तो मंच पर ही पगड़ी बदलकर या वाद्य बजाते उठकर भूमिका निभाने लगते हैं। एक बार अपनी भूमिका में आते ही वे स्वाभाविक रूप से नाट्य व्यवहार के अंग बन जाते हैं। ऐसा करने में अभिनेता की अपनी क्षमता दर्शक की कल्पना का सहयोग और शैली का अपना खुलापन सभी सहयोग करते हैं। अधिकांश आलेखों के कथासूत्र और शैली के कथात्मक वैशिष्ट्य के कारण भी यह खुलापन अनायास उपलब्ध हो जाता है।

ख्याल की अपनी पहचान विशिष्ट वाद्य नगाड़े में है। अपने आप में नगाड़ा एक पुराना और मन्दिरों से जुड़ा वाद्य है। पर जो आकार और रूप ख्याल में उपयोग किये जाते हैं, लय की दृष्टि से सभी शास्त्रीय विविधतायें उत्पन्न करने की क्षमता उनमें है। दो डण्डियों से बजाये जाने पर नर और मादा नगाड़े तबलों से भी अपनी विस्तार क्षमता (Range) में कहीं अधिक सक्षम बन पड़ते हैं। मादा नगाड़े की टङ्कार और नर की धम्मक ख्याल प्रदर्शन की सूचना बहुत दूरस्थ इलाकों तक देते हैं। ख्याल से पूर्व दर्शकों को आकर्षित करने के लिए भी नगाड़े के बाज का प्रयोग किया जाता है। दीपावली के पश्चात् कार्तिक शुक्ल पक्ष में पुष्कर मेले में हर शाम इन नगाड़ों से विदेशी पर्यटक तक ख्याल देखने खिंचे आते हैं। मारवाड़ में नौपत के मांगलिक वादन और ख्याल के नगाड़ों में आकार और बाज का साम्य है पर ख्याल के नगाड़ों में नृत्य के अनुरूप प्रयोगों की क्षमता कहीं अधिक होती है। उत्तर प्रदेश की नौटंकी में भी नगाड़ों का प्रयोग उसी स्तर का होता है। नौटंकी में छन्दों की

Digitization by Hindu Heritage Foundation of America. HHFA(USA)

विविधता उतनी नहीं जितनी ख्यालों में। इस कारण गायन के बीच-बीच नृत्य के तोड़ों में भी विविधता कम होती है। लगता तो है कि गायन, नृत्य और ताल की अपनी-अपनी स्वतंत्र विविधतायें हैं पर कहीं जाकर इनका पारस्परिक रागात्मक संबंध है। उस समन्वय के सम्पूर्ण प्रभाव का ही तो दूसरा नाम संगीत है।

लोककला मनीषी 'ख्याल' को सांगीत (Musicals) की श्रेणी में रखते हैं। यह विधा गाथा-गायन परम्परा, लोकवार्ता तथा लीला नाटकों से एक साथ जुड़ती है। नृत्य नाट्य और ओपेरा के तत्त्व भी इसमें विद्यमान हैं। जापान के काबुकी और नोह शैली के लोकनाट्यों में रूप सज्जा, वस्त्र विन्यास और पद संचालन की भिन्नता होने पर भी अभिनय में कई तत्त्व ख्याल में समान रूप से मिलते हैं। यह अपने आप में एक रोचक अध्ययन है। जर्मन नाट्यकार ब्रेख्त हर लोकनाट्य शैली में महानाट्य की छवि देखते हैं। 'ख्याल' लोकनाट्य शैली में भावाभिनय से लगाकर अति नाटक या संवेगी नाटक (Melodrama) प्रहसन (farce) अतिकल्पना (fantasy) की सभी सम्भावनायें हैं। रिचर्ड शेख़नर के परिवेशीय रंगमंच के तत्त्व इन प्रस्तुतियों में पूर्व प्रतिष्ठित रहे हैं। मारवाड़ी 'ख्याल' लोकनाट्य शैली की प्रासंगिकता और विशिष्टता रंगमंच की दृष्टि से असीमित है और प्रयोगधर्मी रंग निर्देशकों का ध्यान इस ओर गया भी है। इस कला के पारम्परिक अव्यावसायिक स्वरूप के विलुप्त हो जाने और केवल व्यावसायिक अनुकृति या विकृति के रूप में बच रहने से प्रयोगशीलता की ही क्षति हुई है। इससे पहले कि यह विधा इस स्तर पर भी लुप्त हो जाये, इसके संरक्षण, संवर्धन, प्रयोगशील तात्विक उपयोग की परमावश्यकता को रेखांकित किया जाना चाहिये।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मारवाड़ की लोक-संस्कृति में मांडणों की परम्परा

रेंवत कँवर राठौड़

लोककलाओं में मांडणों की लोककला प्राचीन काल से ही समृद्ध रही है। यहाँ के जन जीवन में मांडणों की कला अत्यन्त सजीव और मूर्त्त रूप में विद्यमान है। घर, आंगन, द्वार, देहली, चौपाल आदि पर मांडे गये मांडणों का शृंगार मनुष्य हृदय का सच्चा भावोल्लास है। सफेद, लाल, पीले, नीले, हरे रंगों से बनाये गये मांडणों की छटा कला की अनुपम कृतियाँ हैं। जिन्हें स्त्रियाँ अपने बाल्यकाल से ही बनाना सीख जाती हैं। उनके लिये स्थान विशेष पर प्रशिक्षित होना आवश्यक नहीं, अपितु अपने घर में ही समय समय पर मांडणे मांड कर इस कला में निपुण हो जाती हैं। उनकी कोमल अंगुलियों का स्पर्श पाकर मूक मांडणे मुखर हो उठते हैं।

मांडणों की कला मांडणहार की इच्छा पर छोड़ दी जाती होती तो कभी कभार ही आंगन प्रांगण सज पाते अन्यथा फूहड़ ही बने रहते परन्तु इन मांडणों के साथ जीवन की मांगल्य भावना जुड़ी हुई है इसीलिए विवाह, अनुष्ठान, त्यौहार, देव प्रतिष्ठानों में ये मांडणे असंख्य रूप धारण कर हमें आह्लादित करते हैं। हम उनके प्रति आदर भाव रखते हैं तथा उनके विकृत होने की अवस्था में अनिष्ट की आशंका से भयभीत रहते हैं। मांडणे सुख-सम्पदा, आरोग्य-सुहाग, धन-धान्य प्रदान करने वाले होते हैं। अज्ञान में ज्ञान का प्रकाश फैलाते हैं।

इस प्रबल आस्था एवं आशापरक भावना ने इन मांडणों को बहुमुखी बनाया है। उन्हें नाना प्रकार के प्रतीकों से बांधकर मन को नाना प्रकार से प्रकट होने एवं गुप्त मंतव्य को अभिव्यक्त करने का माध्यम प्रदान किया है।

राजस्थान में घर के आंगन को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। आंगन को जब भी लीपा जाता है उसे खाली नहीं छोड़ते। खाली आंगन अपशकुन का प्रतीक समझा जाता है। ज्यों ही आंगन की लिपाई होती है, अधसूखे आंगन पर ही मांडणों की मंडाई प्रारम्भ कर दी जाती है। त्यौहार अथवा विशिष्ट अवसरों पर तो तरह-तरह के मांडणे मांडे जाते हैं परन्तु बिना किसी उत्सव अनुरंजन के जब आंगन लीपा जाता है तब इतनी तैयारी नहीं होती। ऐसी स्थिति में भी आंगन खाली न छोड़ कर छोटा सातिया मांड दिया जाता है। कहते भी हैं कि लडका चाहे कुंवारा रह जाये परन्तु आंगन कभी कुंवारा नहीं रहना चाहिए। इसी में मांडणों का सर्वव्यापी महत्त्व आंका जा सकता है।

मांडणों की परिभाषा

लीपे हुए आंगन पर पांडू और गेरू से भांति-भांति के जो चित्रांकन किए जाते हैं उन्हें राजस्थान में मांडणां नाम से जाना जाता है। मांडणां संज्ञा का अर्थ जहां

Digitization by Hindu Heritage Foundation of America - HHFA(USA)

चित्रांकन है, वहीं क्रिया रूप में उन ग्राकृतियों को ग्रंकित करने का द्योतक है। इस दृष्टि से मांडणा मांडने का ग्रर्थ ग्राकृतियों से है।

मांडणों के विविध नाम

मांडणों का प्रसार सम्पूर्ण भारत में फैला हुग्रा है। उत्तर में ग्रलमोड़ा, नैनिताल से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक; पूर्व में बंगाल-बिहार से लेकर राजस्थान-गुजरात तक पृथक् पृथक् स्वरूप में पाये जाते हैं। सम्पूर्ण भारतवर्ष में तीज-त्यौहार, पर्व ग्रादि पर इन मांडणों से घर के ग्रांगन, देहली, चबूतरी, पिछवाड़े मंडे हुए मिलेंगे। राजस्थान-मालवा के ये मांडणे गुजरात में 'सातिया' तथा महाराष्ट्र में 'रंगोली' के नाम से जाने-जाते हैं। बंगाल में इन्हें 'ग्रल्पना', ग्रलमोड़ा-नैनिताल में 'ग्रापना' कहा जाता है। उत्तरप्रदेश में इन्हें 'चौकपूरना' या 'सोनरेखना' की संज्ञा दी जाती है। बुन्देलखण्ड व ब्रज के लोगों में इनका 'साझा' नाम प्रचलित है तो बिहार के लोग 'ग्रढ़पन' के रूप में इनका मान बढ़ाते हैं। दक्षिण में इनको 'कोलम' नाम से भी जाना जाता है।

मांडणों का प्रतीकात्मक स्वरूप

ग्रांगन की खूबसूरती के लिए जिस कला का इस्तेमाल किया जाता है, वह ज्यामितीय प्रतीक प्रधान होती है। उसमें तरह-तरह की ग्राकृतियों (डिजाइनों) का भिन्न-भिन्न प्रकार से उपयोग किया जाता है। एक त्यौहार पर बनाया जाने वाला डिजाइन दूसरे त्यौहार पर नहीं बनाया जाता ग्रौर यही बात मांगलिक ग्रवसरों के डिजाइनों के साथ भी है।

इन मांडणों में जो ग्राकृतियां होती हैं वे प्रायः सभी प्रकार की होती हैं जैसे-त्रिकोण, चतुष्कोण, षट्कोण, वृत, स्वस्तिक, सर्वतोभद्र ग्रादि। स्त्रियों के हाथों में पहुंचकर यह कला ग्राज रूढ़िगत बन गई है। एक ग्राकृति को बार-बार उसी तरह बनाते रहने से वह ग्रलग सांचे में ढल गई ग्रौर ग्रपने मूल रूप से बहुत कुछ भिन्न हो गई।

जो ज्यामितीय ग्राकृतियां ग्रारम्भ में मात्र व्यावहारिक कलात्मक उपयोग के लिए थीं वे ही समय के साथ धार्मिक परिधान ग्रोढ़कर एक रहस्यपूर्ण वातावरण से ग्रोत-प्रोत हो गईं ग्रौर इन ज्यामितीय ग्राकृतियों का प्रयोग भारत के मोहनजोदड़ो में ही नहीं वरन् साइप्रस की खुदाई में प्राप्त स्वस्तिकों से भी प्रमाणित है। हमारा वणिक् वर्ग ग्राज भी दीपावली के दिन स्वस्तिक बनाकर उसकी पूजा करता है।

मांडणों में बनाये गये त्रिकोण फूल, त्रिकोण ज्यामिती का विकृत रूप है। त्रिकोण ज्यामिती मनुष्य के तीन गुणों—सत्व, रज, तम, ग्रानन्दानुभूति—सत्, चित्, ग्रानन्द, त्रिशक्ति ग्रर्थात् ज्ञान, इच्छा, क्रिया, त्रिमूर्ति-ब्रह्मा, विष्णु, महेश का प्रतीक है।

चतुष्कोण की चारों भुजायें चारों दिशायें हैं। ये भुजायें शक्ति, प्रगति, प्रेरणा ग्रौर शोभा का प्रतीक मानी गई हैं।

लक्ष्मी का प्रतीक माना जाने वाला षट्कोण मुहम्मद गजनी की कब्र पर

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

उत्कीर्ण मिलता है। श्रीचक्र षट्कोण का पूर्ण विकसित रूप है। श्रीचक्र विश्व रचना का प्रतीक है जिसके अन्दर शिव और शक्ति के रूप में विश्व प्रपंच का उद्भव और विकास दर्शाया जाता है। इस प्रकार श्रीचक्र सृष्टि क्रिया में कार्यरत समस्त शक्तियों का प्रतोक है। इसी कारण होली और दीपावली पर घरों में सभी कमरों, दालानों, आंगनों, ओमारों, सीढ़ियों आदि सभी जगहों पर इन आकृतियों का विविध भावों और विविध रूपों में उपयोग होता है।

सर्वतोभद्र या बावड़ी

कर्मकाण्डी इसे सर्वतोभद्र कहते हैं और लोक में इसे बावड़ी कहा जाता है। बावड़ी जलाशय को कहने हैं। मनुष्य के सन्दर्भ में जलाशय सदैव ही मंगलकारी है, क्योंकि जल में ही जीवन है। कर्मकाण्ड की दृष्टि से सर्वतोभद्र एक अव्यक्त चतुरास्त्र रेखाकृति है। यह सर्वत्र सर्वस्थितियों में शुभ मंगलदायी मानी जाती है। सर्वतोभद्र चतुर्मुखी मन्दिर का भी द्योतक है। मन्दिर इसलिए पवित्र और मंगलकारी माना जाता है चूंकि यहाँ पर देवी-देवता अपने विभिन्न विग्रहों में निवास करते हैं। ये देवी-देवता सभी जीवधारियों की रक्षा करते हैं।

स्वस्तिक का उल्लेख वेदों में भी मिलता है। ऋग्वेद की एक ऋचा में इसे सूर्य का प्रतीक माना गया है। चार युग, चार वर्ण, चार आश्रम स्वस्तिक के ही प्रतीक हैं। स्वस्तिक के महत्त्व को सभी ने स्वीकार किया है। स्वस्तिक को विष्णु का सुदर्शन चक्र भी माना गया है। स्वस्तिक के सम्बन्ध में वेद कहते हैं—

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः।
स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः।
स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

स्वस्तिक की प्राकृतिक स्थिति के आधार पर चतुर्भुज भाव के द्वारा स्वस्तिक रूप मांगलिक चिन्ह बनाया गया है। स्वस्तिक को गणपति का प्रतीकात्मक चिन्ह माना गया है।

सातिये का लाकसंस्कृति में प्रयोग

लोकसंस्कृति में इसके प्रयोग कई रूपों-संदर्भों में देखने को मिलते हैं। नया चूल्हा रखने पर उस पर सातिया कोरा जाता है। महाजन नई बही का शुभारम्भ करने पर सबसे पहले उसमें सातिया मांडेंगे। बहू-बेटी ससुराल पीहर आते-जाते घर की देहली पर कुंकुम का सातिया बना कर प्रस्थान करती है। जळवा पूजनेवाली जब कुए या बावड़ी पर जाती है अथवा घर पर ही पूजती है तो वहां भी सातिया बनाया जाता है और घर में पानी से भरे कळश पर सातिया बनाया जाता है। शादी में कुम्हार के वहाँ से कळश लाने पर भी चाक पर सातिया बनाया जाता है।

इस प्रकार सातियों के ऐसे सैकड़ों-हजारों संस्कार हैं। छोटे से छोटे तथा बड़े से बड़े घरों में सातिये की समान पूजा-प्रतिष्ठा तथा भावना आस्था है। सातिया हमारे जीवन, परिवार, समाज व राष्ट्र का मंगल है। समग्र मानव चेतना की ज्योति।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मांडणों में यह सातिया कई तरह से प्रयुक्त हुआ है। प्रायः हर चौक के साथ कहीं-न-कहीं सातिया आ ही जाता है। साधारण से बनाव के सातियों से मंडे मांडणे इतने कलात्मक रूप धारण कर लेते हैं कि उनके सम्बन्ध में कल्पना करना भी मुश्किल हो जाता है। छोटी-छोटी बालिकाओं के टेढ़े-मेढ़े सातिये अपना अलग ही सौन्दर्य प्रदर्शित करते हैं। दूसरी ओर बुजुर्ग महिलाओं की कुशल अंगुलियों में इन सातियों के जो रेखा-रंग अपना बनाव सिंगार देते हैं, उससे घर-आंगन का रूप कुछ और ही हो जाता है।

मांडणा विधि

आंगन को जब लीपा जाता है तो उस पर लाल व सफेद रंग से मांडणे मांडे जाते हैं। इस सफेद रंग को मारवाड में पांडू कहा जाता है तथा लाल रंग को हिरमच या गेरूं कहा जाता है। ये दोनों मारवाड़ में बहुतायत से उपलब्ध हैं। अतः सस्ते प्राप्त हो जाते हैं। जहाँ पांडू उपलब्ध नहीं होता वहाँ खड़िया मिट्टी अथवा चूना काम में लिया जाता है। लाल रंग मांडणे की मूल आकृति लिए होता है और सफेद रंग से उसे भरा या पूरा जाता है। हिरमच से मांडणा चौड़ी-चौड़ी लाइनों से उकेरा जाता है। तत्पश्चात् पांडू से इसे पूर दिया जाता है।

मांडणों का यह मंडाव कपड़े को अगुलियों में दबाकर रंगों में डुबो-डुबो कर किया जाता है। कुछ महिलाऐं रुई से भी मांडणे मांडती हैं और कुछ सिर के बालों के गुच्छों से। इन विधियों से मांडणों की मंडाई अत्यन्त सरल और सहज ही सम्पन्न हो जाती है। महीन और मुलायम होने से रेखाऐं बारीक खींची जा सकती हैं परन्तु इसके लिए अच्छा अभ्यास और अनुभव होना आवश्यक है।

सर्वप्रथम चौक की बाह्य रेखाऐं आंकी जाती हैं और बाद में मांडणों की मूल आकृतियां लाल रंग से मांडी जाती हैं। यह कार्य घर की बुजुर्ग और सधवा स्त्रियां ही करती हैं। मांगलिक अवसर में ऐसा अनिवार्य है। अन्य अवसरों पर इसे कोई भी चांक देती है। घर की बहू-बेटियों द्वारा इन मांडणों को भरकर पूरा किया जाता है। प्रारम्भ किया हुआ मांडणा अधूरा नहीं छोड़ा जाता।

विशिष्ट अवसरों के विविध मांडणे

मांडणों का मुख्य त्यौहार होली और दीपावली है। इन त्यौहारों पर हर घर का आंगन मांडणों से जगमगाता दिखाई पड़ता है। इनके अतिरिक्त तीज, शीतला सप्तमी, मकर सक्रांति, गणगौर, नवरात्री, दशहरा, रक्षाबन्धन, जन्माष्टमी, रामनवमी आदि सभी त्यौहारों पर मांडणे मांडे जाते हैं। मांडणों का स्वरूप चाहे कैसा भी रहा हो—त्रिकोण, चतुष्कोण, षट्कोण, अष्टकोण, वृत आदि परन्तु उन्हें मनुष्याकृति का रूप नहीं दिया जाता। आंगन में मांडे हुए मांडणों को बिखेरा नहीं जाता। अधिक सुन्दरता लानी होती है तो आंगन को दोबारा लीपकर मांडणे मांडे जाते हैं।

दीपावली के अवसर पर मांडे जाने वाले मांडणों में 'लिछमीजी का पगल्या', 'कलश', 'सातिया', 'सोबह दीया चौक', 'हीड़', 'खुर', 'नोळी', 'वांदरमाल', 'चौक चक्कर फूलियों', 'कंवलों', आदि मुख्य हैं। इस त्यौहार पर न केवल आंगन में वरन्

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

घर के पिछवाड़े में, पशुओं को बांधने के स्थान व चबूतरी तक को मांडणों से सजाया जाता है। घर के प्रवेश द्वार से लेकर तोषाखाने तक पगल्यों के रूप में चांद, सूरज, फूलियों, खुर चिड़ियां मांडी जाती हैं। महाजन अपनी तिजोरी पर 'लिछमी जी का पगल्या' और 'रथ' तथा 'नोळी' विशेष रूप से बनाते हैं। सभी गृह द्वारों पर सुन्दर बेलों के साथ 'शुभ-लाभ' भी लिखते हैं। लिछमीजी के इन मांडणों में जन-समाज की धर्मजीवी आस्था, श्रद्धा और पूजा की कोमल भावनाओं के सुन्दर दर्शन होते हैं।

मारवाड़ में होली का चंग भी एक महत्वपूर्ण वाद्य है। इसके बजने के साथ ही समूचे जनसमुदाय का हर्षोल्लास उमड़ पड़ता है। स्त्रियां 'लुरे' देती हैं और पुरुष होरियां गाते हैं। उल्लास की इस वेला में घर के आंगन भी मांडणों से सज्जित होकर मंद-मंद मुस्कराते हैं। होली के मांडणे दीपावली पर बनाये जाने वाले मांडणों से भिन्न होते हैं। चग, बाजोट, खांडा, चौपड़, चौक, चटाई बिन्दु चौक, बीजणी, पंखी, घेरा, पगल्या-गाडूला, गेंद-दड़ी, चौखूंटा चौक आदि का बहु-प्रचलन है। गाडूला व गेंद-दड़ी बच्चों के खेल के प्रतीक हैं और पगल्ये घरों में मंगलकारी देवी-देवताओं का वास बना रहने के सूचक हैं। संध्या के समय मांडणों व आंगनों से उठती सोंधी-सोंधी सुवास नई ताजगी और स्फूर्ति देने वाली प्रतीत होती है।

विवाह, सूर्यपूजा, जंवाई के आगमन, पुत्री या पुत्रवधू के आगमन पर भी आंगन लीप कर मांडणे मांडने वाली औरत को नेग (मानद राशि) भी दिया जाता है। विवाह के मांडणों में 'रथ', 'दोवड़े', 'पगल्ये', बाजोट, चौक तथा 'कुंवल्ये' एवं 'कळशकूंडे' चतुर महिला द्वारा मंडवाये जाते हैं। ये मांडणे घेवर, सातिये, 'फूलड़ी', 'झाड़', 'वाटका' तथा 'चिड़ियाओं' से पूरे जाते हैं।

रक्षा बन्धन, तीज, गणगौर, सिंजारा आदि त्यौहारों पर 'घेवर', 'सातिये', 'झाड़', 'नारियल', 'फूलड़ियाँ', गौर 'बेसणा' आदि मांडणे अपनी छटा बिखेरते मिलते हैं।

तीर्थयात्रा से लौटने पर 'पुष्कर पेड़ी' 'पथवारी' आदि मांडणे मांडे जाते हैं।

लोकगीतों में मांडणों का अत्यधिक महत्त्व है। पीली मिट्टी, गोबर लाने से लेकर मांडणे मांडने तक के गीत गाये जाते हैं। विवाह शादी में घृतपान के दिन और बारात आगमन पर आंगन लीपा जाता है। इस समय सौभाग्यशाली स्त्रियाँ गीत गाती हुई आंगन लीपती हैं और सूखने पर मांडणों द्वारा आंगन पूर दिया जाता है।

म्हार पीळी जी गोबर रिळ-मिलो
बीच माळ-माळ पांडूड़ा री रेखां
सीग चढ़ोवो बिनायक बिड़दड़ी।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मारवाड़ के मेले, त्योहार, व्रत और उत्सव

समुद्रसिंह जोधा

किसी प्रदेश की जीवन-सरिता के सम्पूर्ण और व्यापक रूप को अनन्त गहराइयों सहित यदि एक शब्द में अभिव्यक्त करना चाहें तो वह शब्द होगा—संस्कृति। संस्कृति जीवन के विकासक्रम का प्रथम सोपान है और अन्तिम लक्ष्य भी है। मानव ने ज्यों ही जीवधारियों के जीवन से ऊपर उठकर अपने आपको संस्कारित करना प्रारम्भ किया; संस्कृति की मंजिल पर चढ़ने का वही पहला प्रयास था। पर असीम अनन्त ऊँचाइयों का लक्ष्य ज्यों-ज्यों वह पार करता है, चढ़ता जाता है और उन्नत बनता जाता है; उसका लक्ष्य और ऊँचा एवं महान् बनता जाता है। विकास के इस क्रम में उन्नति की कोई एक सीमा नहीं है।

मानवीय विकास का इतिहास संस्कृति की प्रगति का स्वरूप है। समय के गतिमान प्रवाह में जो उज्ज्वल, उदात्त और श्रेष्ठ उपलब्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं, उन्हें हम सुरक्षित रखना चाहते हैं। वह हमारी धरोहर बन जाती है। स्वार्थ, क्षुद्रता और भूलों के कारण जीवन का जो घिनौना स्वरूप कभी-कभार यह जीवन-सरिता ग्रहण कर लेती है, उसे हम भूल जाना चाहते हैं, त्यागने का प्रयत्न करते हैं। अनेक संस्कारों, परिष्कारों और उदात्त की साधना के पश्चात् मारवाड़ की संस्कृति का जो स्वरूप यहाँ के मेलों, त्योहारों, व्रतों और उत्सवों में दृष्टिगोचर होता है, वह अनूठा और बेजोड़ है। यों तो भारतीय संस्कृति समग्र रूप में एक ही है, पर मारवाड़ में उसके स्वरूप की जो विशेषताएँ हैं, वही विशेषतः हमारा ध्यान आकर्षित करती हैं।

'संस्कृति' शब्द इतना व्यापक है कि इसमें हमारा सम्पूर्ण जीवन प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से समा जाता है। धर्म, दर्शन, साहित्य, कला आदि हमारे सांस्कृतिक चिन्तन-मनन, सृजन और रचना के आयाम हैं, तथा व्रत, उत्सव, त्योहार, मेले आदि व्यक्तिगत या सामाजिक संयम अथवा उल्लास के आयोजन, संस्कृति की अभिव्यक्ति हैं। मानव की उपलब्धियाँ उसकी सभ्यता के द्योतक हैं, पर इन साधनों के उपयोग में वह जिस अभिरुचि का परिचय देता है, वह उसके सुसंस्कृत मन की कसौटी है; जिससे उसके सांस्कृतिक स्तर की, क्षुद्रता अथवा विशालता की परख होती है। अस्त्रों के निर्माण क्रम में स्वचालित बन्दूक एक उपलब्धि है, इसमें संदेह नहीं; पर उसका प्रयोग निर्दोष बालकों, स्त्रियों पर या अन्य निर्दोष जन-समाज पर होता है अथवा आत्मरक्षा में, या फिर किसी शरणागत की रक्षा में, इसीसे अस्त्र प्रयोग करने वाले के सांस्कृतिक स्तर की पहचान होती है। मरु-प्रदेश के वीरों ने अपनी शक्ति और साधनों का सदुपयोग सदा शरणागत-रक्षार्थ यानि जन-कल्याण हेतु ही किया। आन-मान, सत्य और न्याय की रक्षा तथा वचन-पालन, प्रतिज्ञा-निर्वाह

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

आदि ऐसे ही गुण इस प्रदेश के व्यक्तियों के रहे हैं, जो एक अलग पहचान बन गए हैं। इसका जीता जागता रूप यहाँ के मेलों, उत्सवों आदि में देखा जा सकता है।

भारत की जीवन्त संस्कृति-सरिता का एक स्वरूप जो प्राचीन काल से प्रवहमान है, अनेक उतार-चढ़ाव तथा अन्य संस्कृतियों के टकराव के बाद भी निरन्तर गतिमान है। प्राचीन सुदृढ़ और सनातन आधार के कारण यह जीवनधारा सहज बन गई है जिसे चेतना के धरातल पर हम सामान्यतः अनुभव ही नहीं करते; केवल जीए जा रहे हैं बस, एक उज्ज्वल सांस्कृतिक संस्कारित जीवन। पर जब-जब भिन्न सांस्कृतिक सम्पर्क हुआ तो प्रतिक्रिया, संघर्ष और समन्वय की स्थिति आई और जिस प्रकार विभिन्न नदी-नालों के समा जाने पर भी गंगा पावन-गंगा ही रह कर बहती है; हमारी संस्कृति ने भी अनेक उतार-चढ़ावों, समन्वय-संघर्षों के बावजूद कभी अपने उच्च आदर्शों का त्याग नहीं किया। प्रत्येक संस्कृति का अपना एक विशिष्ट स्वरूप होता है, जो उसे दूसरी संस्कृति से भिन्न अलग नाम रूप धारी बना देता है। हर एक संस्कृति एक स्वतंत्र कार्यात्मक इकाई है। यद्यपि उसकी श्रेष्ठता या हीनता का कोई मानदण्ड, सर्वग्राही प्रतिमान निर्धारित नहीं किए जा सकते, तथापि व्यापक मानवीय मूल्यों के आधार पर एक सीमा तक इसकी पहचान भी की जा सकती है। इसी दृष्टि से यदि हम मरुभूमि की संस्कृति के जीवन्त प्रतीकों का अध्ययन करें तो इनमें कुछ ऐसी विशेषताएँ मिलेंगी, जो अन्यत्र दुर्लभ हैं।

State Museum Library

यहां के मेले उन स्वनामधन्य प्रातःस्मरणीय महापुरुषों की पुनीत स्मृति में आयोजित होते हैं जिन्होंने जन-कल्याण और उच्च मानवीय आदर्शों के पालन हेतु प्राणोत्सर्ग तक कर दिए और जो लोक देवताओं के रूप में आज भी पूजे जाते हैं। वीर तेजाजी की स्मृति में परवतसर का पशु मेला, रामदेवजी की स्मृति में रामदेवरे का मेला, नागौर का पशु मेला, मल्लीनाथजी की स्मृति में तिलवाड़े का पशु मेला, वीर पुरी मण्डोर का मेला आदि इसी भावना के प्रतीक हैं। यही नहीं आधुनिक युग में भी परमवीर मेजर शैतानसिंह की तरह वीरतापूर्वक प्राणोत्सर्ग करने वालों की स्मृति को चिरस्थायी बनाने की परम्परा आज भी है, और आगे भी रहेगी। इन बड़े राष्ट्रस्तरीय मेलों के अलावा विभिन्न जनपदों में भी अनेक छोटे-बड़े मेलों के आयोजन किये जाते हैं जिनका आधार मारवाड़ की संस्कृति में व्याप्त जनकल्याण की भावना तथा त्याग-बलिदान का आदर्श है। विभिन्न जातियों के श्रेष्ठ पुरुषों की स्मृति में, जैसे जांभोजी, पीपाजी, नामदेव, विश्वकर्माजी, महावीर स्वामी, नवलाजी, भूलेलाल, आदि संतों, पीर-पैगम्बरों, ओलिया-फकीरों, सती-साध्वियों, भक्तों के नाम पर मेले भरते हैं। इन मेलों में भक्ति रस की अद्भुत सरिता प्रवाहित होती है, जिसमें सारा जन-समाज आनन्दमग्न हो जाता है। छोटे-बड़े सभी मेलों में वस्तुओं का क्रय-विक्रय, कुछ मेलों में पशुओं का क्रय-विक्रय तो होता ही है, महत्त्वपूर्ण बात है उन वीर पुरुषों, साधु-संतों के गुणगान और श्रद्धा पूर्वक उनकी पूजा करने की। इसी पवित्र भावना से प्रेरित होकर जन-समाज वहाँ हजारों-लाखों की संख्या में एकत्रित होता है, उससे वहाँ की व्यवस्था और चारित्रिक आदर्श को बल मिलता है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America, HHFA(USA)

सामाजिक जीवन को समानता और एकता के सूत्र में जोड़ने वाली यही श्रद्धा, साहस और त्याग की भावभूमि संस्कृति का क्रियात्मक स्वरूप है।

किसी मनुष्य का एक वह रूप है जो उसे चिन्तन की भाव भूमि पर उसे सोचने-विचारने तथा जीवन के सिद्धान्तों को कायम करने की प्रेरणा देता है। दूसरा इन सिद्धान्तों को अभिव्यक्ति प्रदान करता है अर्थात् मानसिकता से उसे आगे बढ़ाकर वचनों में बाँधता है। तथा तीसरा रूप क्रियात्मक है जिसमें मनुष्य मन से वचन पर अग्रसर होने के बाद कर्म पर आता है। अपने रंजो-गम में अथवा हँसी-खुशी की स्थिति में वह जो कुछ करता है उसी से मनुष्य की संस्कृति प्रत्यक्ष रूप से सामने आती है। मेले, त्योहार, व्रत और उत्सव मानव संस्कृति का यही क्रियात्मक रूप है। इसी से वास्तविकता प्रत्यक्ष होती है। कथनी जब करनी बनती है तब असलियत सामने आ जाती है। मेले और त्योहारों में, व्रतों और उत्सवों में वह जो कुछ है प्रकट हो जाता है। मारवाड़ के मेलों, त्योहारों, व्रतों और उत्सवों में ऐसा देखने में आया है कि यहां के जन-समाज में एक मर्यादा है, शालीनता है। ओछापन, अभद्रता और उत्शृंखलता का नामोनिशान नहीं है। नारी का सम्मान, पारस्परिक मेल-जोल और भाईचारा, धार्मिक सहिष्णुता, सच्चाई और ईमानदारी, त्याग या उत्सर्ग का भाव सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। जन-जीवन में व्याप्त धार्मिक श्रद्धा, विश्वास, भक्ति-भाव, दान-पुण्य और परोपकार की भावना का एक साकार रूप इनमें स्पष्ट देखा जा सकता है।

गतिमान जीवन के वार्षिक पड़ावों के रूप में अपनी-अपनी अनोखी छटा, मनोरंजन या आनन्द और क्रीड़ाएँ लेकर आने वाले त्यौहारों की एक लम्बी सूची है जिसकी एक झलक इस प्रकार है—

नव वर्ष—चैत्र शुक्ला 1 को विक्रमाब्द का नवीन वर्ष आरम्भ होता है। इसी शुभ दिन नवरात्रि (चैत्र) स्थापना भी होती है। सिंधी समाज में चन्द्र दर्शन के दिन चेटीचण्ड का उत्सव बड़े ही उत्सव से मानाया जाता है।

गणगोर—चैत्र शुक्ला 2 को सिंझारा करके तीज को गणगौर का त्योहार मनाया जाता है। स्त्रियाँ शिव-पार्वती के अखण्ड प्रेम के प्रतीक इस दिन पर अपने अखण्ड सुहाग की कामना करती हैं। होली के बाद से जो पूजा वे लगातार करती आई हैं उसके समापन का यह दिन होता है। इसी दिन लोटिया का मेला भी लगता है जिसे घुड़ल्या का मेला भी कहते हैं। राव सातल (जोधपुर) ने एक सौ चालीस अपहृत कुमारियों की रक्षा अपहरणकर्त्ता घुड़ल्या खां का वध करके की थी, जिसमें वे स्वयं भी घायल होकर वीर गति को प्राप्त हुए थे। घड़े के छेद उनके घावों के तथा दीप सातल की वीरता का प्रतीक होता है। मारवाड़ की संस्कृति के लोक कल्याण हेतु प्राणोत्सर्ग के आदर्श का यह एक उदाहरण है।

दुर्गाष्टमी—चैत्र शुक्ला अष्टमी को नवरात्रि उत्थापन किया जाता है तथा होम एवं दुर्गासप्तशती का पाठ किया जाता है। देवी के उपासक इस दिन को विशेष उत्साहपूर्वक मनाते हैं।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

रामनवमी—चैत्र शुक्ला नवमी भगवान् रामचन्द्र के जन्मोत्सव के रूप में मनाया जाता है।

धींगा गणगौर वैशाख कृष्ण 3 को यह त्योहार मनाया जाता है। यह त्योहार मुख्यतः स्त्रियों का है जिसमें वे रात भर नाचती, गाती और सांग बनाती हैं। इसका रिवाज कम स्थानों पर ही है।

अक्षय तृतीया—वैशाख शुक्ला 3 को मनाए जाने वाले इस त्योहार के दिन बिना मुहूर्त विवाह होते हैं। नागौर क्षेत्र में इस दिन बड़ी धूम रहती है।

जयन्तियाँ—इसी बीच चैत्र शुक्ला 12 को महावीर जयन्ती, पूनम को हनुमान जयन्ती, वैशाख शुक्ला 14 को नृसिंह जयन्ती और पूनम को बुद्ध जयंती मनाई जाती है।

व्रत भी त्यौहारों के साथ अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। जैसे—नवरात्रि व्रत, गणगौर व्रत, अमावस्या व्रत, वट सावित्री व्रत (जेष्ठ बदी 3), रम्भा तृतीया (जेष्ठ सुदी 3), अक्षय षष्टि (जेष्ठ सुदी 6), निर्जला एकादशी (जेष्ठ शुक्ला 11) रथ यात्रा (आषाढ़ शुक्ला 2), देवशयनी एकादशी (आषाढ़ शुक्ला 11)।

व्यास या गुरु पूर्णिमा—आषाढ़ शुक्ला 15 को अलग-अलग शिष्य मण्डलियाँ बड़े धूमधाम से गुरुओं का पूजन करती हैं। कई स्थानों पर तो मेलों का रूप बन जाता है।

नाग पंचमी—भाद्रपद कृष्णा 5 को नाग-पूजा की जाती है। इसी के दूसरे दिन ऊब छठ रखी जाती है।

हरियाली अमावस—श्रावण की अमावस को यह त्योहार हर्षोल्लास से मनाया जाता है।

रक्षा बन्धन—श्रावण शुक्ला 15 को आने वाला यह त्योहार बहन-भाई के रक्षा बन्धन का त्योहार है।

जन्माष्टमी—भगवान् श्रीकृष्ण के जन्मोत्सव के रूप में यह दिन वैष्णव मन्दिरों एवं घरों में उत्साहपूर्वक मनाया जाता है। इस दिन व्रत भी रखे जाते हैं। वल्लभ सम्प्रदाय के मन्दिरों में विशेष आयोजन होते हैं। इसी के दूसरे दिन गोगा नवमी मनाई जाती है। व्रतों के क्रम में छोटी तीज (श्रावण शुक्ला 3), बड़ी तीज (भाद्र कृष्णा 3) गवरी उत्सव (भाद्र कृष्णा 10) पर्यूषण पर्व प्रारम्भ (भाद्र कृष्णा 11, जैन समाज) वत्स द्वादशी (भाद्र कृष्णा 12) पवित्रा चतुर्दशी (भाद्र कृष्णा 14) कुशोदकी अमावस्या (भाद्र कृष्णा 15) गणेश चतुर्थी (भाद्र शुक्ला 4) संवत्सरी भाद्र शुक्ला 4) ऋषि पंचमी (भाद्र शुक्ला 5) जल झूलनी एकादशी (भाद्र शुक्ला 11) वामन द्वादशी (भाद्र शुक्ला 12) अनन्त चतुर्दशी (भाद्र शुक्ला 14), श्राद्ध पक्ष—आश्विन कृष्णा 1 से 15) आश्विन नवरात्रि (आश्विन शुक्ला 1 से 8 तक) दुर्गाष्टमी (आश्विन शुक्ला 8) विशेष उल्लेखनीय हैं।

दशहरा या विजया दशमी—आश्विन शुक्ला 10 को राम द्वारा रावण के वध की स्मृति रूपा विजया दशमी का त्योहार मारवाड़ की वीर भूमि में बड़े उत्साह से

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मनाया जाता है ।

शरद पूर्णिमा—(आश्विन शुक्ला 15) शरद पूर्णिमा का व्रत रखा जाता है तथा उत्सव के रूप में मनाया जाता है ।

व्रतों के क्रम में करग चतुर्थी (कार्तिक कृष्णा 4) धन तेरस और नरक चतुर्दशी जिसे रूप चवदस भी कहते हैं, इनके बाद आता है ।

दीपावली का त्यौहार— इस दिन दीपक लगाते हैं, लक्ष्मी पूजन करते हैं और बड़े ही हर्षोल्लास के साथ इसे मनाते हैं । (कार्तिक कृष्णा 15) दीपावली के दिन ही ऋषि दयानन्द का निर्वाणोत्सव भी मनाते हैं ।

अन्नकूट—(कार्तिक शुक्ला 1) इसे खेंखरा और गोवर्द्धन पूजा भी कहते हैं । भैया दूज (कार्तिक शुक्ला 2) जिसे यम द्वितीया भी कहते हैं । दवात पूजा (कार्तिक शुक्ला 3) सूर्य षष्ठी व्रत (कार्तिक शुक्ला 6) गोपाष्टमी (कार्तिक शुक्ला 8) देवोत्थान एकादशी (कार्तिक सुदी 11) इस दिन तुलसी विवाह भी किया जाता है ।

कार्तिक पूर्णिमा—नानक जयन्ती तथा पुष्कर का मेला एकादशी से पूर्णिमा तक होता है । काल भैरव जयन्ती (मार्गशीर्ष कृष्णा 8) दत्तात्रेय जन्मोत्सव (मार्गशीर्ष कृष्णा 10) गीता जयन्ती (मार्गशीर्ष शुक्ला 11) पार्श्वनाथ जयन्ती (पौष कृष्णा 7) शिवरात्रि (माघ कृष्णा 13) वसंत पंचमी (माघ शुक्ला 5) मकर संक्रान्ति (14 जनवरी) आंवली एकादशी (फाल्गुन सुदी 11) इत्यादि व्रत उत्सव भी मारवाड़ में महत्वपूर्ण हैं ।

होलिका दहन--फाल्गुन सुदी 15 को होलिकोत्सव मनाया जाता है । इस दिन सभी जातियों और सभी वर्गों के लोग आपसी मेल-जोल और प्रेम से रंगों और नाच गान के साथ मिलकर होली खेलते हैं । लोगों की मस्ती देखते ही बनती है । जिस दिन (होलिका दहन के दूसरे दिन) फाग खेलते हैं उसे धूलेरी या धुलण्डी भी कहते हैं ।

शीतलाष्टमी—(चैत्र कृष्णा 8) को जगह-जगह मेले भरते हैं । इस दिन बासी पकवान खाते हैं, इसे बासेड़ा भी कहते हैं । जोधपुर में यह दिन सप्तमी को मनाते हैं और कागास्थान पर प्रसिद्ध मेला भरता है । मुसलमान लोग अपने पर्व बड़े ही धूमधाम से मनाते हैं जैसे—मुहर्रम, आकरीबुध, बाराबफात, शब-ए-बरात, ईद-उल-फितर, ईद उलजुहा आदि ।

ईसाइयों के त्यौहार हैं -नव वर्ष दिवस, (1 जनवरी) ईस्टर (2 मार्च और 20 अप्रेल के बीच पूर्णिमा के बाद रविवार को) गुड फ्राईडे (ईस्टर के रविवार के ठीक पहले पड़ने वाला शुक्रवार) फूल्स डे (1अप्रेल) क्रिसमस डे (25 दिसम्बर) । मारवाड़ में ईसाई बहुत ही कम संख्या में केवल कुछ शहरों में हैं ।

मरु भूमि का मानव एक साथ कई धाराओं के बीच अपनी जीवन नैया खेता है । वह मानव समाज का सदस्य है, उसके सुख-दुःख भोगने को बाध्य है । वह एक विशेष प्राकृतिक परिवेश में रहता है । अभावों की मार झेलता है तो कभी खुशहाली का आनन्द भी लूटता है । उसका अपना सांस्कृतिक इतिहास है, जीवन आदर्श है,

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

धार्मिक प्रतिमान हैं, साहित्य और कला के श्रेय हैं और महान परम्पराएँ हैं। उन सब का निर्वाह भी उसका कर्त्तव्य है और वह उसे पूरी तरह निभाता है। राजकीय संरक्षण में मनाए जाने वाले पर्वों तथा त्योहारों की छटा तो अधिक आकर्षक होती है पर अपनी सादगी में भी जन-सहयोग से मनाए जाने वाले उत्सवों का उल्लास कुछ और ही होता है। जिस प्रकार दिनकर जी ने राजस्थान की धरती के लिए कहा था कि प्रत्येक कदम को रखते हुए यह शंका होती है कि कहीं किसी वीर की समाधि पर पैर न पड़ जाय, उसी प्रकार यहां का जीवन व्रतों, पर्वों, त्योहारों से इतना घिरा हुआ है कि शायद ही कोई दिन इनके बिना जाता होगा। ऊपर जो एक अवलोकन मात्र किया गया है इसी से इन व्रतों और त्यौहारों के विस्तार का परिचय मिलता है। यदि सभी छोटे-बड़े व्रतों, त्योहारों का वर्णन किया जाय और विस्तार से प्रत्येक आयोजन के स्वरूप, अर्थ और प्रभाव का वर्णन, व्रत की विधि तथा व्रत कथाओं सहित किया जाय तो पूरा ग्रन्थ ही बन जायगा।

मनुष्य संस्कृति निर्माता प्राणी है। आदि काल से आर्यों ने इन व्रतों त्योहारों का क्रम चालू किया। कालान्तर में उनमें कुछ नए जुड़े, कुछ में संशोधन, परिवर्द्धन हुए और इसी तरह आगे भी होंगे। संस्कृति सामाजिक मनुष्य के जीवन की सबसे बड़ी वास्तविकता है। संस्कृतीकरण की प्रक्रिया आजीवन चलती रहती है और पीढी-दर-पीढी चलती रहती है। संस्कृति सार्थक या साभिप्राय होती है। जब उसके किसी अंग की सार्थकता या उसका अभिप्राय नहीं रह जाता तो उसका स्थान नवीन प्रक्रिया ले लेती है।

विभिन्न संस्कृतियों के समिश्रण की प्रक्रिया भी कुछ ऐसी ही है जैसे अलग-अलग गिरि-शृंगों से निकली धाराएँ एक हो जाती हैं। यदि उनमें भिन्न प्रकार की जल-राशि है तो भी मिलकर एक हो जाती हैं। किसी की प्रबलता कभी कभार दूसरी को दबा लेती है और कभी एकाध गुण अथवा रंग ही प्रमाण रूप में अवशेष रह जाता है। राजस्थान के सामाजिक जीवन में भी परम्परागत पुट तो दृष्टिगत होते हैं, स्थायी अपरिवर्तित रूप तो हैं, पर साथ ही मुगल प्रभाव भी व्यापक रूप में देखा जा सकता है। इसी प्रकार अंग्रेजों के आगमन से पश्चिम की जो प्रबल धारा मारवाड़ की सांस्कृतिक धारा से टकराई तो उसने भी काफी हलचल मचा दी। सबसे अधिक प्रभाव तो, आधुनिक विज्ञान और तकनीकी में, राजनीति और अर्थव्यवस्था में जो उफान आया, उसका पड़ा है। इस नये माहौल ने हमारी सांस्कृतिक धरोहर को झकझोर दिया है। यों तो संस्कृतियों का परस्पर प्रभावित होना स्वाभाविक है। अधिक उपयोगी विकल्पों के उपस्थित होने पर प्रचलित व्यवहार विधियों का त्याग कर दिया जाता है। परन्तु इस शताब्दी में और विशेषत: देश की स्वाधीनता के पश्चात् जो भूचाल आया है उसने तो जीवन मूल्यों तक को हिला दिया है। राजनैतिक सत्ता परिवर्तन से उथल-पुथल होना तो स्वाभाविक ही था। विदेशियों ने अपने शासन काल में जो सांस्कृतिक षड़यंत्र किया वह भी समझ में आता है। पर प्रजातंत्र की सत्ता सम्हालने वाले हम स्वयं ही अपनी नासमझी में सांस्कृतिक धरोहर को,

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

उसके मूलाधार तत्वों को इस प्रकार नष्ट करने लगेंगे ऐसा नहीं सोचा जा सकता। इस विषय में विस्तृत विवेचन यदि प्रस्तुत किया जाय तो निश्चय हमें अपनी ही नादानियों पर अथवा अपने अगुआ सत्ता धारियों की स्वार्थपरता पर पछतावा होगा। क्या हम अपने प्रचार माध्यमों द्वारा अपने सांस्कृतिक मूल्यों को उखाड़ने में नहीं लगे हैं? क्या नियोजन या जन-कल्याण के नाम पर भोगवाद का भद्दा प्रचार हमारी संयम प्रधान संस्कृति को नष्ट नहीं कर देगा? हमारे व्रतों का क्या मूल्य रह जायगा? नारी उत्थान के नाम से प्रचारित भाई-बहन के बीच ये भेद-भाव के बीज अंकुरित और पल्लवित होकर जिस दिन सुदृढ़ वृक्ष बन जायेंगे, उस दिन भैया दूज और रक्षा बन्धन का क्या अर्थ रह जायगा? क्या तब भी कोई बहिन अपनी संतान के विवाहोत्सव में आमंत्रित करती हुई अपने भाई को जायल-खियाले के जाट का स्मरण कराएगी? यह एक विचारणीय विषय है। इस सबके होते हुए भी हमें अपनी संस्कृति पर भरोसा है। हमारी संस्कृति ऐसे आधार पर टिकी हुई है कि वह कैसी भी विपरीत स्थिति के आघातों को सहने में सक्षम है। ऐसे अनेक अवसर पुरातन काल में और मध्ययुग में आए हैं कि अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया था, परन्तु कोई बात तो है कि जिससे हमारी हस्ती मिटती नहीं है।

ऐसा सामाजिक कार्यक्रम जिसमें लोग किसी विशिष्ट अवसर पर अथवा किसी विशिष्ट उद्देश्य से उत्साहपूर्वक आनन्द मनाते हों, उत्सव कहलाता है जैसे वसंतोत्सव, विवाहोत्सव आदि। मारवाड़ के उत्सवों का रूप भी अपनी विशिष्टता लिए हुए है। उत्सवों के कई रूप देखे जा सकते हैं —धार्मिक, राष्ट्रीय, राजनीतिक, व्यक्तिगत आदि। धार्मिक कार्यों के सम्पादन में जैसे होम-यज्ञ, दान-दक्षिणा, कथा-पाठ जैसे भागवत कथा, शिव पुराण, रामायण पाठ, रामलीला, झूला उत्सव आदि में मरुधरा निवासी खुलकर खर्च करते हैं। ऐसे अवसरों पर वे अपनी बहिन बेटियों को सपरिवार आमंत्रित करते हैं तथा उन्हें वस्त्राभूषण देते हैं। ऐसे अवसरों पर सामूहिक भोजन होता है तथा समाजोपयोगी स्थायी सम्पत्ति भी दान की जाती है। कुछ जातियों में वैवाहिक कार्य भी इसी के साथ सम्पन्न हो जाते हैं।

राष्ट्रीय पर्वों के साथ सामान्य जन-समाज कम ही जुड़ पाया है। इसके कई कारण हैं जैसे अशिक्षा, राजनेताओं के संकीर्ण दृष्टिकोण, सत्ता परिवर्तन के बाद भी प्रजा-पालक पूर्व शासकों के प्रति निष्ठा और सत्ता लोलुप नेतृत्व से निराश। फिर जहाँ-जहाँ शिक्षण संस्थाएँ योग्य शिक्षकों की देखरेख में प्रगति कर रही हैं, राष्ट्रीय पर्व ग्रामीण समाज के आकर्षण के केन्द्र बनते जा रहे हैं। ऐसे अवसरों पर अब अधिक से अधिक ग्रामीण समाज रुचि लेने लगा है तथा मरु-प्रदेश के त्याग और आपसी प्रेम का एक स्वरूप वहां भी देखने को मिल रहा है। राजनीतिक स्थितियाँ अनिश्चित होती हैं अतः चुनावों की जीत, रैली, जुलूस, राजनेताओं के स्वागत, सिक्कों से तोलना आदि के अवसर कभी कभी ही उत्सव का रूप ग्रहण कर पाते हैं।

व्यक्तिगत उत्सव नाना प्रकार के होते हैं, जैसे—जन्मोत्सव, विवाहोत्सव, माहेरा, अनन्त चतुर्दशी व्रत, उजवना, गृह-प्रवेश, मरणोत्सव, जीवित मृत्युभोज आदि।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

कभी-कभी भरपूर फसल होने पर लावणी भी उत्सव का रूप ग्रहण कर लेता है। ये सभी उत्सव त्योहारों से इस बात में भिन्न हैं कि ये जीवन में कभी कभी ही आते हैं। कई उत्सव तो जीवन में एक ही बार आते हैं जबकि त्योहार और पर्व प्रतिवर्ष आते हैं। इन उत्सवों पर मारवाड़ के लोग जी खोलकर खर्च करते हैं। अपने इष्ट-मित्रों, सम्बन्धियों, बहनों-बेटियों को और सम्पूर्ण ग्राम वासियों को आमंत्रित करते हैं, सामूहिक भोजन तथा लेन-देन, दान पुण्य भी खुले हाथों होता है। गृह निर्माण मारवाड़ की इन परिस्थितियों में जीवन में बार-बार नहीं होते, अतः गृह-प्रवेश को भी जीवन के एक महत्वपूर्ण उत्सव का रूप दिया जाता है जिसमें पुत्रियों के विवाह भी किए जाते हैं। कभी कभी परिवार के अति वृद्ध मुखिया की मृत्यु को उसके बेटे-पोते उत्सव का रूप देते हैं और सभी कार्य उसी भावना और दरियादिली से सम्पन्न करते हैं। जीवित मृत्युभोज भी एक प्रकार का उत्सव ही कहा जायगा।

इन उत्सवों के अतिरिक्त सामूहिक कीर्तन, ताल सप्ताह, रामलीला या कृष्ण-लीला, जमा-जागरण, तुलसी-विवाह, किसी संत द्वारा चतुर्मास करना आदि ऐसे अवसर हैं कि जो उत्सव से भी बढ़कर सामूहिक आनन्द की सरिता प्रवाहित करते हैं। मारवाड़ के जीवन में मेले, त्योहार, व्रत और उत्सव संस्कृति के जिस स्वरूप के दिग्दर्शन कराते हैं वह त्याग और संयम की, वीरता और आन-मान की, श्रद्धा, विश्वास और भक्ति भाव की, आपसी भाईचारे और मेल-मिलाप की संस्कृति है। यह इस मरु प्रदेश की अमर धरोहर है, जो अनेक आघात सहकर भी अमर है और अमर रहेगी।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

स्वर्णिम प्रभा हवेलियों की नगरी—जैसलमेर

प्रदीप सोनी

विश्व प्रसिद्ध हवेलियों की नगरी जैसलमेर राजस्थान के पश्चिमी भू भाग में बसी हुई है। जैसलमेर का अधिकतर इलाका रेतीला है। रेगिस्तानी रेत से मिलते जुलते गहरे पीले रंग के पत्थरों से करीब नौ सौ साल पहले बना जैसलमेर अत्यन्त मनमोहक है। सूर्योदय और सूर्यास्त के समय सूर्य की हल्की लाल किरणों से तपे हुए स्वर्ण के समान चमकता हुआ दिखाई देता है। यहां के दुर्ग के बारे में किसी कवि ने कहा है—

गढ दिल्ली गढ आगरो, गढ-गढ बीकानेर।
भलो चुणायो भाटियाँ, सिरे तो जैसलमेर॥

त्रिभुजाकार पर्वत पर बने इस दुर्ग की 99 बुर्जियां हैं जो भारत के अन्य किसी किले में नहीं हैं। अब तो इस दुर्ग की बुर्जियां समय की मार से अपना अस्तित्व खोती जा रही हैं जिन्हें बचाना बहुत ही जरूरी है।

यहाँ के राजा इतिहास प्रसिद्ध रहे हैं। ये राजा महाराजा उत्तरी हमलों से भारत की रक्षा करने वाले माने जाते थे। इसलिए इनको 'उत्तर भड़ किंवाड़' कहा जाता था। 15वीं से 17वीं शती का काल जैसलमेर का स्वर्ण युग था। उस समय यह क्षेत्र धन धान्य से परिपूर्ण था। समृद्धि की इस छाया ने जैसलमेर की कला और संस्कृति को नया आयाम दिया। यहाँ के चिकने पीले पत्थर व अनुभवी छेनी हथौड़ी से उभरी पच्चीकारी ने विश्व स्थापत्य कला को अविस्मरणीय चित्ताकर्षक सौगात देने में कोई कसर नहीं छोड़ी। जैसलमेर का इतिहास अनोखी घटनाओं से भरा पड़ा है। जैसलमेर ने एक से बढ़कर एक वीर पैदा किये जिन्होंने अपनी मातृ भूमि के लिए प्राणों की बाजी हँसते-हँसते लगा दी। जैसलमेर वीरों की पावन भूमि है। यहाँ अनेक साके जौहर वृत हुए हैं। अलाउद्दीन खिलजी ने यहाँ पर घेरा डाला था जो पूरे आठ वर्ष तक रहा। उस समय 24 हजार स्त्रियों ने अपने सतित्व की रक्षार्थ किले के अन्दर जौहर व्रत किया था।

जैसलमेर का सोनार किला बिना चूने गारे के सिर्फ पत्थर पर पत्थर रखकर बना है। अब तक कैसी मजबूती से खड़ा है आश्चर्य होता है। किले में बनी अट्टालिकाएँ एवं कलात्मक झरोखे अत्यन्त ही आकर्षक हैं। हल्के पीले और लाल पत्थर पर सुन्दर और बारीक नक्काशी बस देखते ही बनती है। राज घराने का रंगमहल और गज विलास यहाँ की शिल्पकला के उत्कृष्ट नमूने हैं। किले के बाहर मेहमानों के लिये बना जवाहर विलास स्थापत्य कला का दर्शनीय नमूना है तो राजशाही बादलविलास किसी भी सूरत में कम नहीं।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

किले के अन्दर बना जैन मन्दिर भी अत्यन्त आकर्षक है। उसका द्वार न केवल पच्चीकारी अपितु सुन्दर मूर्तियों से सुशोभित है। यह मन्दिर सुन्दर मूर्तियों से बने बुर्जों एवं कमरों से सुशोभित है। इस मन्दिर में चावल के आकार की मूर्ति बस देखते ही बनती है। कलाकारों ने इस मन्दिर के निर्माण में मानो अपनी आत्मा को खोल-कर रख दिया है। विभिन्न प्रस्तर कला शैलियों में बनी अनेक प्रतिमाएँ तोरण व स्तम्भों की छटा अनुपम है। जैन मन्दिर ऊँचे चबूतरे पर बना हुआ है। मन्दिर के आगे बना तोरण द्वार कलाकारों की कला प्रियता, कला के सूक्ष्म ज्ञान व उनकी सच्ची भावना का प्रतीक है। तोरण द्वार पर कई कलाकृतियाँ हैं जिनमें पशु-पक्षियों एवं विभिन्न भाव-भंगिमाओं में खड़ी नारियों की मूर्तियाँ चित्ताकर्षक हैं। कलाकारों की बोलती हुई आत्मा, कलाकृतियों के रूप में, प्रत्येक दर्शक को अपनी ओर आकर्षित करती हुई प्रतीत होती है।

इस मन्दिर की एक विशेषता यह भी है कि यहां पर सबसे बड़ा हस्तलिखित ग्रन्थों का भण्डार जैन भद्रसूरि ज्ञान भण्डार है। 1125 पुस्तकें ताड़ पत्रों पर व 1257 ग्रन्थ कागजों पर लिखे हुए हैं जो भारतीय संस्कृति एवं साहित्य को समझने में महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं।

जैसलमेर की हवेलियाँ बहुत ही प्रसिद्ध हैं। सब से प्रसिद्ध पटवों की हवेली है। सुन्दर झरोखे एवं खिड़कियों की कारीगरी को देख पर्यटक चकित रह जाते हैं। एक के बाद एक कई मंजिलें पत्थर पर किया गया जाली का कार्य, विभिन्न पारदर्शक झरोखे, सोने की कलम से छत पर की गई चित्रकारी, सीप तथा काँच का काम दर्शक को मुग्ध कर देता है। पत्थरों का मिलान इतना सुन्दर है कि यह पता ही नहीं चलता कि यह हवेली एक ही पत्थर की है अथवा बहुत से पत्थरों से मिलकर बनी है। कारीगरी की सूक्ष्मता दर्शनीय है।

दीवान सालिमसिंह की हवेली, जो मोती महल के नाम से प्रसिद्ध है, उस काल के श्रमिकों एवं शिल्पकारों में कला-कौशल की परिचायक है। यह हवेली छः मंजिली है। इसके अलावा दीवान नथमल की हवेली की बारीक नक्काशी अपनी शान अलग ही रखती है।

यहाँ के लोक संगीत, साहित्य, कला और संस्कृति ने न जाने कितने संगीतज्ञों, कलाकारों, पत्रकारों व छायाकारों को अपना दीवाना बनाया होगा।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मारवाड़ की पाषाण प्रतिमाएँ

डा. मदनराज डी. मेहता

स्वाधीनता एवं स्वाभिमान के लिये संघर्षरत मारवाड़ के कलाकारों ने परिस्थिति के प्रभाव से निरपेक्ष रहकर अपने शिल्प से पाषाण प्रतिमाओं को कलात्मक, आकर्षक, सजीव एवं स्वाभाविक बनाने की सतत चेष्टा की। तत्कालीन समाज ने मंदिरों, दुर्गों एवं स्मारकों को संस्कृति के केंद्र के रूप में प्रतिष्ठित किया और संस्कृति के इन केंद्रों ने मूर्तिकला को प्रश्रय प्रदान किया। मारवाड़ की अधिकांश मूर्तियों की यह विशेषता है कि वे मात्र रूप की प्रतिकृतियां नहीं हैं अपितु धार्मिक एवं सांस्कृतिक वृत्तियों की प्रामाणिक कृतियां हैं।

मारवाड़ में सूर्योपासना सातवीं-आठवीं शताब्दी ईसवी में व्यापक रूप से प्रचलित थी। भिन्नमाल के जगत स्वामी मंदिर का उल्लेख पौराणिक साहित्य में मिलता है। भिन्नमाल के अतिरिक्त ओसियां भी सूर्योपासना का मुख्य केंद्र था। ओसियां में सूर्य की मूर्ति मंदिर के पिछवाड़े में प्रतिष्ठित है जबकि अन्य तीनों दिशाओं में वैष्णव मूर्तियां हैं। सूर्य एवं विष्णु के पारस्परिक मेल का सुन्दर रूप राणकपुर के भव्य सूर्य मंदिर में प्राप्त है। जगत्-चक्षु सूर्य को विष्णु, शिव एवं ब्रह्मा के साथ दर्शाया गया है। यहां यह भ्रम होता है कि राणकपुर के सूर्य मंदिर में सूर्योपासना प्रमुख रही अथवा सूर्य की अन्य देवों के साथ सम्मिलित कल्पना।

जोधपुर के निकट मण्डोर में पुरातत्त्वविदों ने सातवीं-आठवीं शताब्दी की अनेक पाषाण प्रतिमाओं को प्रकाश में लाने का प्रेरणास्पद कार्य किया है। इन प्रतिमाओं से इनके नियन्ताओं की सुरुचि एवं कला-कौशल का परिचय मिलता है। धार्मिक सहिष्णुता को संपुष्ट करने वाली इन मूर्तियों में विघ्नेश्वर गणेश के साथ अष्ट मातृकाओं को प्रस्तुत किया गया है। जैन साहित्य में इस बात के पुष्ट प्रमाण मिलते हैं कि उत्तर गुप्त काल में मण्डोर में जैन एवं वैष्णव उपासना के अनेक मंदिर थे। मण्डोर से प्राप्त तोरण-स्तंभों पर उत्कीर्ण कृष्ण लीला के दृश्यों में हमें विविध सांस्कृतिक धाराओं एवं विश्वासों के समन्वय का विश्वसनीय परिचय प्राप्त होता है। इन तोरण स्तंभों में गतिशीलता के साथ अलौकिक भावों की मनोहारी अभिव्यक्ति हुई है।

शैव एवं वैष्णव मूर्तियों में हरिहर की मूर्तियों का विशेष महत्त्व है। हरिहर की प्रतिमा में अर्द्ध शिव एवं अर्द्ध विष्णु की आकृति होती है। मत्स्य पुराण में हरिहर के स्वरूप का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। ओसियां के दो वैष्णव मंदिरों में अति

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

प्राचीन एवं सुन्दर हरिहर प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। इन प्रतिमाओं के शिव के स्वरूप में जटामुकुट, त्रिनेत्र, त्रिशूल एवं मुण्डमाला तथा अन्य अर्द्धांश में विष्णु की चक्र, शंख, किरीट एवं वैजयन्ती द्वारा अभिव्यक्ति की गई है। बुचकला से भी इसी प्रकार की प्रतिमा प्राप्त हुई है। इस प्रतिमा में नन्दी का शीश असामान्य रूप से बहुत बड़ा बताया गया है।

शक्ति साधना के प्रमुख केन्द्र राजस्थान में भगवती दुर्गा की अनेक प्राचीन प्रतिमाएँ विद्यमान हैं। नागौर के निकट दधिमती माता की सातवीं शताब्दी (ईस्वी) की प्राचीन प्रतिमा से यह सिद्ध होता है कि उस समय शक्ति उपासना भी लोकप्रिय थी। मण्डोर के अतिरिक्त ओसियां में भी शक्ति की प्रतिमाओं की स्थिति का प्रमाण मिलता है। महिषासुरमर्दिनी की ओसियां से प्राप्त मूर्ति में जो सूर्य मंदिर में अवस्थित थी, मां दुर्गा के दस हाथों को दर्शाया गया है। आभूषणों एवं अन्य दृश्यों से इस मूर्ति को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है। कालान्तर में महिषामर्दिनी को सच्चिका के रूप में पूजा जाने लगा।

मातृकाओं की कुछ मूर्तियां फलोदी से भी प्राप्त हुई हैं। नागणेचा, चामुण्डा, दुर्गा, चक्रेश्वरी एवं महिसासुरमर्दिनी की अनेक सुन्दर मूर्तियां जालोर, मण्डोर, भिन्नमाल, बाड़मेर, आदि स्थानों में विद्यमान हैं। पिण्डवाड़ा के निकट सरस्वती की 12-13वीं शताब्दी को पाषाण मूर्ति आज भी अपने मूल स्वरूप में विद्यमान है। ओसियां के जैन मन्दिर की चक्रेश्वरी की मूर्ति मुखमुद्रा एवं भाव गांभीर्य को दृष्टि से कला जगत में असाधारण मानी जाती है।

योगेश्वर विष्णु अथवा योगनारायण की मूर्ति अपनी विशिष्ट अवधारणा के कारण कला एवं धार्मिक क्षेत्र में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। यह मूर्ति डीडवाना से प्राप्त हुई है और दसवीं शताब्दी की मानी जाती है। तत्त्व चिंतन में निरत विष्णु की 9वीं-10वीं शताब्दी की यह अनूठी मूर्ति है। इसी प्रकार की एक मूर्ति ओसियां से आठवीं शताब्दी की प्राप्त हुई है। कतिपय विद्वानों का यह मत है कि इस प्रकार की प्रतिमाओं पर जैन प्रभाव है। उनके इस मत का आधार 'जिन' अथवा 'वीतराग' भाव है। विष्णु इस मूर्ति में आयुध रहित हैं।

12-13वीं शताब्दी के किराडू के मंदिर मारवाड़ की मूर्तिकला के सर्वोत्कृष्ट संग्रहालय हैं। शिव-पार्वती को समर्पित मंदिरों में कलाकारों के मूर्तिशिल्प के चरमोत्कर्ष के दर्शन होते हैं। सोमेश्वर मंदिर के द्वार पर ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि की आकर्षक मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। ब्रह्मा, विष्णु एवं सूर्य की एक सम्मिलित मूर्ति है। जिसके एक शीश एवं दस कर हैं। सूर्य के हाथ में कमल, गदा तथा चक्र है, जो विष्णु से संबंधित हैं। अन्य हाथ में ब्रह्मा से संबंधित सूत्र है। इसी मंदिर में भैरव, नटेश एवं दुर्गा की मूर्तियां हैं। एक अन्य मदिर में रामायण एवं महाभारत के अतीव कलात्मक दृश्य अंकित हैं। इनमें सुग्रीव-बाली युद्ध, सेतुबंध तथा अशोक वाटिका के दृश्य कलाकारों की कलामर्मज्ञता का परिचय देते हैं। शरशैया पर आसीन भीष्म पितामह की प्रतिमा तो अपने ढंग की एक मात्र मूर्ति है। बाड़मेर जैसलमेर मार्ग पर स्थित,

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America, HHFA(USA)

देवका में सूर्य एवं विष्णु मंदिर के अवशेषों में मारवाड़ की मूर्तिकला के इतिहास के स्रोत विद्यमान हैं। देवका में गणेश, सूर्य, ब्रह्माणी, उमा-महेश्वर, कुबेर तथा पद्म-धारी विष्णु के अतिरिक्त नवग्रहों की सुन्दर मूर्तियां हैं। यहां का कल्पवृक्ष का दृश्य भी कला की दृष्टि में महत्त्वपूर्ण है।

चौहटन के कपलिश्वर मंदिर की चौदहवीं शताब्दी की सप्तफणाच्छादित लकुलीश की अत्यधिक मनोरम मूर्ति कला जगत में अपना प्रमुख स्थान रखती है। इसी सम्प्रदाय की एक और प्राचीन मूर्ति नाणा में विद्यमान है। सांभर से प्राप्त वामन एवं विष्णु की दसवीं शताब्दी की मूर्तियां मारवाड़ी मूर्ति-शिल्प की बेजोड़ कृतियां हैं।

मारवाड़ की पाषाण प्रतिमाओं को कलात्मक स्वरूप देने में जैन मतावलम्बियों का महत्त्वपूर्ण योग रहा है। जैन आचार्यों एवं मुनियों की प्रेरणा से भव्य मंदिरों के साथ असंख्य पाषाण प्रतिमाओं का अपने युग के श्रेष्ठ कलाकारों ने निर्माण किया। कलाकारों ने तीर्थंकरों एवं उनके अधिष्ठायकों के अतिरिक्त साधु-साध्वियों की मूर्तियों के प्रणयन में अत्यधिक मनोयोग का परिचय दिया। नागौर जिले के लाडनूं से प्राप्त सरस्वती की भव्य मूर्ति तेरहवीं शताब्दी की मूर्तिकला की एक उल्लेखनीय कृति है। इसी प्रकार सरदार संग्रहालय जोधपुर में नागौर क ही खींवसर से प्राप्त जीवंतस्वामी की ध्यान मुद्रा में आसनस्थ प्रतिमा में कलाकार की छैनी का कमाल स्पष्ट प्रकट होता है।

जोधपुर के निकट घटियाला स्थान में माताजी की साल में सिंहवाहिनी देवी की प्रतिमा दसवीं शताब्दी में मारवाड़ की मूर्तिकला पर जैन प्रभाव का परिचय प्रस्तुत करती है। वैष्णवी का एक रूप चक्रेश्वरी है। चक्रेश्वरी की अनेक प्राचीन एवं आकर्षक मूर्तियों का अंकन मारवाड़ के अनेक स्थानों में हुआ। ओसियां, घाणेराव तथा सेवाड़ी की चक्रेश्वरी देवी की मूर्तियां तत्कालीन धार्मिक सहिष्णुता का परिदृश्य प्रस्तुत करती हैं।

ओसियां में पश्चिमी भारत का प्राचीनतम जैन मंदिर विद्यमान है। इस मंदिर में चक्रेश्वरी देवी की प्रतिमा के अतिरिक्त प्रतिहार कालीन कला शैली में गणेश की प्रतिमाएँ सहज ही कला प्रेमियों को आकर्षित करती हैं।

नाकोड़ा के आदिनाथ मंदिर में विविध नृत्य मुद्राओं का अंकन कलाकारों की सुरुचि एवं दक्षता को प्रदर्शित करती है। यहीं तीर्थंकर पार्श्वनाथ एवं महावीर की मूर्तियां अलंकरण, भाव बोध एवं शिल्प की दृष्टि से मनमोहक हैं।

मण्डोर की अकबर कालीन तीन विशाल मूर्तियों से मारवाड़ की वैभवशाली मूर्तिकला का विवरण प्रकाश में आता है। काला-गोरा भैरव तथा गणपति की इन विशाल मूर्तियों को उत्कीर्ण करने में कलाकारों ने जिस सूझ-बूझ का परिचय दिया है, वह कला-जगत में सदैव स्पृहणीय रहेगी। इसी प्रकार मारवाड़ के अनेक प्रमुख व्यावसायिक केन्द्रों में आदिपुरुष 'इलोजी' की मूर्तियों के अंकन से मारवाड़ के मूर्तिकारों की हास्य प्रवृत्ति सामने आती है।

स्मारकों और विशेषकर समाधि स्थल अथवा श्मशानों में लगे शिलालेखों में

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

स्त्री-पुरुषों की आकृति एवं शिवलिंग के चित्रण में कलाकारों का कौशल दृष्टिगत होता है। 9वीं 10वीं शताब्दी के अनेक शिलालेख जोधपुर-नागौर मार्ग पर कड़वड़ में विद्यमान हैं।

पुरातत्त्वविदों एवं कलामर्मज्ञों ने मारवाड़ की पाषाण मूर्तियों में पुरुषों के उदात्त भाव, स्त्रियों के मादक सौन्दर्य के साथ गति एवं शक्ति के अंकन को मारवाड़ की मूर्त्तियों की शैलीगत विशेषता बतलाई है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

रेगिस्तानी नूपुर : किराडू

प्रदीप सोनी

चारों ओर रेत के टीले ही टीले, मीलों चलने के बाद भी जहां जन-जीवन दिखाई न दे, प्यास लग जाए तो मीलों तक पानी न मिले, कल्पना करें यदि ऐसे इलाके में कोई प्राचीन कलात्मक कलाकृतियों का गांव मिल जाए तो एक आश्चर्य अवश्य ही होगा।

बाड़मेर से पश्चिम में 35 किलोमीटर दूर हाथमा गांव के समीप निष्प्राण किन्तु सजीव-सी कलाकृतियों से अलंकृत एवं समय की मार से सिसकती, तराशे हुए पाषाणों की नगरी 'किराडू' प्राचीन शिल्प कला की अनुपम भेंट है। यहां का एक भी पाषाण ऐसा नहीं होगा जिसमें शिल्पकार ने प्राण-प्रतिष्ठा की कोशिश नहीं की हो।

बारहवीं शताब्दी में किराडू, किरात कूप के नाम से विख्यात था। मन्दिर के बरामदे की बाहरी दीवार पर तीन शिलालेख अंकित हैं, लेकिन वे स्पष्ट रूप से पढे नहीं जा सकते हैं। पहला लेख वि. सं. 1209, राजा कुमारपाल सोलंकी के समय का, दूसरा लेख 1218 वि. सं., परमार सिन्धराजा से लेकर सामेश्वर तक की वंशावली लिए हुए है। तीसरा लेख वि. सं. 1235 कार्तिक सुदी 13 का है जो गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव द्वितीय और उसके सामन्त महाराजा पुत्र मदन ब्रह्मदेव का है।

वर्तमान में किराडू में विध्वंस खण्डर ही रह गए हैं। चारों तरफ ढेरों की तादाद में तराशे हुए प्रस्तर पिण्ड पड़े हैं। काल ने कुछ रहम कर शायद, इतिहास को साक्षी रखने के लिए पांच देवस्थानों को कुछ हद तक सुरक्षित रखा है। किराडू के इतिहास की गौरव गाथा का वर्णन ये पांच मन्दिर ही नहीं अपितु कई राजप्रासाद, मन्दिर व नगर भवन बताते हैं जो प्रकृति के प्रकोपों व आक्रमणकारियों की चोटों से नष्ट हो चुके हैं।

वर्तमान में स्थित पांच मन्दिरों में सबसे बड़ा सोमेश्वर मन्दिर है। मन्दिर के बाहरी भाग के चारों तरफ अंकित कलाकृतियां, प्रस्तर कला का बेजोड़ नमूना है। मन्दिर के आलम्बन पर नीचे से ऊपर की ओर गजधर, अश्वधर व नरधर की आकृतियां अंकित हैं। मन्दिर के बाहरी भाग के उत्तर की तरफ कृष्ण लीला, बैल के साथ लड़ाई, गाड़ी की सैर करने, गोवर्धन पर्वत उठाने, प्रलवधा सुरवध, पूतना वध इत्यादि प्रस्तर पर अंकित दृश्य सजीव से लगते हैं। मन्दिर के दक्षिण की ओर पौराणिक घटनाओं का सजीव अंकन किया हुआ है जिसमें समुद्र मन्थन का दृश्य अत्यन्त ही मनमोहक है। मन्दिर के दूसरे भाग में रामायण के विभिन्न प्रसंगों को चित्रित

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

किया गया है। अशोक वाटिका में सीता, सुग्रीव बाली युद्ध, हनुमान की स्वामी भक्ति, सेतुबन्ध निर्माण आदि का दृश्य अत्यन्त ही लुभावना है। शायद कलाकार अपनी सम्पूर्ण कला यहीं लुटा बैठे।

इस मन्दिर की छत नहीं है। यह कब अलग हुई इसका कोई प्रमाण नहीं है लेकिन जिन 44 स्तम्भों पर यह छत थी आज भी प्रदर्शित करते हैं कि वह शिल्प कला का बेजोड़ नमूना रही होगी। इन्हीं स्तम्भों के तोरण पर अंकित अद्भुत कलाकृतियां मानव को बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेती हैं। स्तम्भों के ऊपरी भाग में मकर अपना मुंह फैलाए हुए है जिसके मुंह में मानव एवं मयूर कृतियां संघर्ष-रत हैं। स्तम्भों के हर छोर पर योद्धाओं और नृत्यकारों के हाव भाव को अत्यन्त ही आकर्षक ढंग से तराशा गया है। मन्दिर का ऐसा कोई भी हिस्सा नहीं है जहां मानव जीवन से सम्बन्धित हर कार्य को मूर्त्त रूप न दिया गया हो चाहे वह सौन्दर्य को लेकर हो, चाहे रति क्रिया को लेकर।

सोमेश्वर मन्दिर के पास ही एक छोटा सा शिवालय है जिस पर रामायण के दृश्यों में वानर सेना, भगवान राम के घुटनों पर अचेतन अवस्था में सोये लक्ष्मण, पास में शोक ग्रस्त मुद्रा में वानर दिखाए गए हैं तो साथ में राम भक्त हनुमान को संजीवनी बूटी का पहाड़ उठाते हुए दिखाया गया है। इसी के समीप ही महाभारत के भीष्म पितामह को शर शैया पर लेटे हुए दिखाया गया है जो कहीं अन्यत्र देखने को नहीं मिलता।

इसी मन्दिर से कुछ दूरी पर दो अन्य मन्दिर शिव, ब्रह्मा एवं विष्णु को समर्पित हैं। शिव, ब्रह्मा, विष्णु की कलाकृतियां अति सुन्दर हैं तथा इनके गुम्बज भी कलात्मक हैं परन्तु पता नहीं कब गिर जाएँ। इनके बाहरी भाग को देखने से ऐसा मालूम होता है कि इनके भी कभी तोरण एवं सभा मण्डप रहे होंगे। रति क्रियाओं को इन्हीं मन्दिरों में बाहुल्यता से देखा जा सकता है।

पांचवा मन्दिर वैष्णव मन्दिर है जिनके स्तम्भों पर केवल तोरण रहने के कारण इसे 'तोरणया मन्दिर' के नाम से भी पहचाना जाता है। इसके खम्भों पर विषैले जन्तुओं के साथ मकर मुख में पुरुष भी दिखाए गए हैं। यहां खम्भों के नीचे के हर भाग में सौन्दर्य की प्रतिमा नारी को अंकित किया हुआ है। किसी की गोद में बालक है तो कहीं नृत्य की भाव भंगिमा में तो कहीं लज्जा से अपना मस्तक नीचे किए हुए दिखाई देती है जो शिल्पकारों की उत्कृष्ट कला का उदाहरण है। मन्दिर के आंतरिक भाग की भारी चट्टान तोरण के पास बिखरी पड़ी है। इस पर अंकित श्रीगणेश को मोदक खाते हुए दिखाया गया है। यह प्रतिमा अत्यन्त ही लुभावनी है। किराड़ू का कोई भी मन्दिर ऐसा नहीं है जहां श्रीगणेश की प्रतिमा किसी-न-किसी रूप में न हो।

किराड़ू जिसके हर प्रस्तर पिण्ड पर कलाकार ने अपनी कला लुटाई है, आज विनाश की घड़ियां गिन रहा है। इसके विनाश के पीछे दन्त कथा भी है। कहते हैं कि एक साधु जो देशाटन के लिए किराड़ू से अन्यत्र चला गया था अपने पीछे एक

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

शिष्य को छोड़ गया तथा गांव वालों को उसके उपचार की हिदायत देता गया। लेकिन पीछे से एक कुम्हारिन महिला के अलावा उसकी देखभाल किसी ने नहीं की। वापिस लौटने पर जब साधु ने अपने शिष्य की दयनीय स्थिति देखी तो उसे क्रोध आया और उसने श्राप दिया कि किराडू का विनाश हो और जहां ऐसे इन्सान हों, वे पत्थर बन जाय। परन्तु उस कुम्हारिन महिला को श्राप देने से पूर्व गांव छोड कर जाने को कह दिया तथा कहा कि वह पीछे मुड़ कर किराडू की तरफ न देखे। लेकिन उत्सुकता वश जब उस कुम्हारिन महिला ने पीछे मुड़ कर देखा तो वह पत्थर की बन गई ? जो आज भी खडीन स्टेशन और सिहानी गांव के मार्ग के मध्य भाग में प्रस्तर रूप में स्थित है। इन्सान के प्रस्तर बनने का रूप किराडू के तालाब के पास बरात के दृष्य के रूप में बिखरे पाषाण के रूप में दृष्टिगोचर होता है। श्राप की कहानी कहां तक सत्य है यह तो नहीं कहा जा सकता किन्तु उसी साधु की कुटिया आज भी पहाड़ी के ऊपरी भाग पर भग्नावशेष के रूप में है।

मन्दिर के बाईं तरफ एक बावड़ी है जिसमें चारों ओर सीढियां बनी हुई हैं ताकि पानी भरने के लिए पनिहारिनें चारों ओर से पानी ले सकती हैं। 12वीं शताब्दी में इस प्रकार की बावड़ी बना लेना तत्कालीन शासकों एवं शिल्पियों के उच्च कोटि के शिल्पकला ज्ञान तथा उच्च सांस्कृतिक जीवन को दर्शाती है। साथ ही इस बात का प्रमाण है कि उस समय में मरुभूमि में स्थित इस गांव का भू जल स्तर कितना अधिक ऊंचा था।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मारवाड़ की मुद्रायें

डॉ. अमृत पटनी

जब से मानव सभ्यता का उदय हुआ है उसे विनिमय के साधनों की आवश्यकता महसूस हुई। शुरुआत में वस्तु विनिमय हुआ करता था। समय के साथ साथ विभिन्न वस्तुओं का विनिमय के रूप में प्रयुक्त होने लगा। वैदिक काल में गाय भी विनिमय का एक महत्वपूर्ण माध्यम थी। फिर विनिमय के लिए धातुओं की उपयोगिता मनुष्य को अधिक व्यावहारिक एवं श्रेष्ठ लगी। लेकिन जब किसी विनिमय के लिए धातु की मात्रा व शुद्धता का सवाल आया तो सिक्कों के रूप में वे सामने आये। प्राचीन साहित्य में मुद्राओं के उपयोग का वर्णन आता है। लेकिन भारत में मौर्य काल के पहले की कोई मुद्रा अद्यावधि प्राप्त नहीं हुई है। मौर्य काल की जो मुद्रायें प्राप्त हुई हैं उन्हें आहत मुद्रायें कहते हैं। आहत मुद्रायें भारत के विभिन्न भागों से प्राप्त हुई हैं। उस काल में उनके निर्माण का कार्य श्रेणियां किया करती थीं। श्रेणियों के अपने व्यापारिक केन्द्र हुआ करते थे। मारवाड़ के इलाकों से इस प्रकार की आहत मुद्रायें नहीं मिलीं।

मारवाड़ से प्राप्त होने वाली प्राचीनतम मुद्राओं में शक राजा रुद्रदमन के सिक्के हैं, जिन्हें द्रम्भ मुद्रा कहते हैं। शक महाक्षत्रप ने राजस्थान के प्रदेशों को जीता था इसका वर्णन गिरनार के रुद्रदमन के शिलालेख में है। सिक्के के अग्रभाग में राजा का अर्द्ध चित्र है। पृष्ठ भाग में तीन चाप का चैत्य है। नीचे वक्र रेखा, बिन्दु व तारे हैं जिस पर लिखा है—

"राज्ञो क्षत्रपस जयदाम पुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रदामस"

रुद्रदामन का राज्य काल 130-150 ई. है। इसी काल में देश में कुषाणों व ससेशियन राजाओं का प्रभाव था। किदार कुषाणों के सिक्के मारवाड़ में काफी प्राप्त हुए हैं और ससेशियन सिक्के भी प्राप्त होते हैं।

गुप्त काल में यह प्रदेश उनके अधीन न था अतः गुप्त सिक्के मारवाड़ में नहीं पाये गये। केवल एक दो मोहरें मिली हैं। ऐसे ही एक सोने का सिक्का जो सिरोही से प्राप्त हुआ था परवर्ती गुप्त नरेश का है, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने इसका उल्लेख किया है।

राजपूत कालीन सर्वाधिक प्रचलित सिक्के गदेहा सिक्के हैं। ये बहुत से प्रदेशों में पाये जाते हैं। ये सिक्के ससेशियन सिक्कों का विकृत रूप हैं। ये सिक्के भिन्न भिन्न बनावट व आकार के हैं। ये ताम्बे व चांदी के होते थे। गुजरात, मालवा व राजस्थान में सन 700-1200 ई. में प्रचलित थे। बहुत सम्भव है कि उन्हें राजपूत राजाओं ने चलाया था। बिहार व उत्तर प्रदेश में भी ये प्रचलित थे। इन सिक्कों के

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

अग्रभाग पर मनुष्य का उपहास चित्र व पृष्ठ भाग पर यज्ञ कुण्ड बना हुआ है।

मारवाड़ के प्रतिहार शासकों के सिक्के भी प्राप्त होते हैं। प्रतिहारों की राजधानी पहले भीनमाल थी। हर्ष की मृत्यु के उपरान्त प्रतिहारों ने उत्तर भारत में फैली अराजकता का लाभ उठाकर कन्नौज पर अधिकार कर लिया। उस जमाने में कन्नौज का अधिकारी सारे उत्तर भारत का स्वामी माना जाता था, लेकिन सिक्के ढालने के मामले में वे भी गम्भीर नहीं रहे। भोजदेव प्रथम (सन् 836-84 ई.) के सिक्के राजस्थान से प्राप्त हुये हैं। उन्हें आदि वराह द्रम्भ्म कहते हैं।

सिक्के के अग्रभाग पर वराह अवतार (विष्णु का अवतार) की आकृति है। वराह को पृथ्वी की रक्षा करते हुये अंकित किया गया है। दाहिना पैर उठा हुआ है व बायें पैर के नीचे चक्र है। पृष्ठ भाग पर नागरी में "श्री मदादि वराह" लिखा हुआ है। ये सिक्के चांदी के हैं।

सल्तनत युग में विभिन्न सुलतानों के सिक्के प्रचलित रहे। इनमें फिरोजशाही सबसे ज्यादा प्रचलित रहे। इस दौरान सिन्ध व पंजाब पर कई बाहरी हमलावर भी आये। उन्होंने भी सिक्के जारी किये।

मुगलकाल में मुगलों के सिक्के चलते थे। अकबर, जहांगीर, शाहजहां, औरंगजेब व परवर्ती मुगलों के सिक्के अधिकांशत: शाहआलम द्वितीय के सिक्के मिलते हैं। लगभग बारहवीं शताब्दी से लेकर औरंगजेब की मृत्यु (1707 ई.) तक मारवाड़ में कोई सिक्के नहीं ढाले गये। मुगलों ने अपने अधीनस्थों को सिक्के ढालने की अनुमति प्रदान नहीं की थी। परन्तु मुगल साम्राज्य के कमजोर होने पर अन्य शासकों की भांति जोधपुर में भी सिक्के ढाले जाने लगे। वैसे तो सबसे पहले अजीतसिंह ने अपने नाम का सिक्का चलाया था लेकिन नियमित टकसाल शाहआलम द्वितीय (1759-1806) के समय शुरू हुई। विजयसिंह ने शाहआलम के नाम से सर्वप्रथम सिक्के ढाले थे जो विजयशाही सिक्के कहलाते थे। चांदी का सिक्का विजयशाही रुपया व तांबे का विजयशाही पैसा कहलाता था। सन् 1800 के लगभग भीमसिंह के काल में विजयशाही पैसे का वजन बढा दिया गया तब से भीमशाही पैसा कहलाने लगा लेकिन इसके वजन व आकार के कारण ढब्बू पैसे कहलाने लगे। उम्मेदसिंहजी व हनुवन्तसिंहजी के काल तक तांबे के पैसे काफी हल्के हो चुके थे।

जोधपुर की मुद्राओं को जिन चिन्हों से पहचाना जाता है वह है झाड़ की पत्ती व तलवार। इसके अतिरिक्त इस राज्य में टकसाल के दरोगा देवनागरी लिपि में कुछ शब्द अंकित कर देते थे। जैसे गो, ब, म आदि।

मुद्रा का प्रचलन सिक्के में धातु विशेष की मात्रा के अनुसार हुआ करता था। जनता वही मुद्रा पसन्द करती थी जिसमें मिश्रण कम किया गया हो अत: यह जरूरी नहीं था कि किसी राज्य में उसी राज्य की मुद्रा चले। व्यापारिक विनिमय में आसपास के राज्यों की मुद्रायें भी प्रचलित थी। जोधपुर राज्य की सीमा में जैसलमेर राज्य की अखेशाही मुद्रा जो कि चांदी की है खूब चलती थीं। ये सिक्के मोहम्मदशाह व रानी विक्टोरिया के नाम से ढाले गये थे। इस पर शकुन चिड़ी व छत्र का निशान बना

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

हुआ है।

सन् 1818 ई. में मारवाड़ राज्य (जोधपुर) की ब्रिटिश सरकार से सन्धि हो गई। 1858 ई. के बाद के सिक्के रानी विक्टोरिया व सम्राटों के नाम से हैं लेकिन 1858 ई. के पहले तक के सिक्के शाहआलम के नाम से ढलते रहे। महाराजा जसवन्तसिंहजी द्वितीय के काल में भयंकर अकाल पड़ा। सरकार पर राजस्व भार बढ़ गया अतः चांदी के सिक्के ढालने बंद हो गये । उसके बाद चांदी का रुपया जोधपुर में कभी नहीं ढला। यद्यपि सोने व तांबे के सिक्के ढलते रहे। चांदी के सिक्कों की जगह ब्रिटिश कलदार रुपयों ने लेली जो सन् 1947 तक चलते रहे।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

सतत् कला साधना का सुफल : रणकपुर

प्रदीप सोनी

निरक्षर, निर्धन किसान दीपकारित के स्वप्न को महाराणा कुम्भा के चतुर व कलाप्रेमी मंत्री धरणाशाह ने रणकपुर के रूप में मूर्त किया ।

रणकपुर, एक संगमरमर की अद्वितीय कला-कृति है जो रणकपुर के जैन तीर्थ के नाम से विश्व प्रसिद्ध है । यह जोधपुर से लगभग 170 किलोमीटर दक्षिण की ओर अरावली पर्वत माला की पहाड़ियों से घिरा एक रमणीय स्थल है ।

रणकपुर का जैन मन्दिर भारतीय कलाशिल्प का विलक्षण कीर्ति स्तम्भ है । संगमर-मर पर की गई चित्र विचित्र नक्काशी विश्व की किसी भी कलाकृति से टक्कर लेने के लिये अपना गर्वोन्नत मस्तक उठाये हुए दूर से ही पर्यटकों को पुकारती प्रतीत होती है ।

जैनियों के आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव को समर्पित इस जैन मन्दिर में मोमबत्तियों से ही उजाला किया जाता है । बल्ब जलाना पूर्णत: निषिद्ध किया हुआ है, शायद इसलिये कि बेजुबान कीड़े मकोड़ो की हत्या कम हो । जैन मन्दिर के युवा पुजारी अत्यधिक श्रद्धा से पूजा करते हुए स्वयं ही आत्मविभोर नहीं होते अपितु सैलानियों को भी आत्मविभोर कर लेते हैं । इनकी चौदह पीढ़ियों ने अपना सम्पूर्ण जीवन मन्दिर की पूजा में लगा दिया है ।

आरती के समय दो विशालकाय घन्टे, जिनमें से एक पुलिंग व दूसरा स्त्रीलिंग के नाम से जाना जाता है, बजाये जाते हैं । इनसे निकली ध्वनियां और हजारों प्रतिध्वनियां पास की पहाड़ियों से टकराकर फिर अगणित प्रतिध्वनियां उत्पन्न करती हैं, जिनका निनाद लगभग पांच किलोमीटर तक सुनाई देता है । प्रत्येक घन्टे का वजन 160 किलोग्राम है । रात्रि में मोमबत्तियों के हिलते हुए प्रकाश में मन्दिर की छटा अत्यन्त मनमोहक लगती है । मोमबत्तियों की धीमी लौ में प्रतिमाओं पर लुटाई हुई कला स्पष्ट तो नहीं दृष्टिगोचर होती पर फिर भी उनकी श्रेष्ठता का अहसास हुए बिना नहीं रहता ।

मन्दिर के गुम्बदों पर पीतल की जंजीरों की सहायता से लटकी सैकड़ों घंटियां व नूपुर जब हवा के झोंकों से बजते हैं तो ऐसा लगता है मानो कोई ग्रामीण बाला घुंघरू बांध कर अथक नृत्य कर रही हो ।

यह मन्दिर चौमुखा है तथा इसका निर्माण श्रद्धालु पोरवाल जैन धरणाशाह द्वारा सं. 1433 में प्रारम्भ किया गया था । भगवान आदिनाथ (ऋषभदेव) का मुख्य मूर्ति स्थल चारों दिशाओं के सम्मुख है । सारा भवन एक ऊंचे चबूतरे पर बना हुआ है । दीवार के भीतर की ओर 76 कोठरियां हैं जो कि उत्कृष्ट शिल्प कला के नमूने

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

हैं। हर कोठरी के ऊपर एक हल्की और सुन्दर घुमटी है। घुमटियों की बड़ी कतार के पीछे, बीच और चारों ओर के मन्दिर पर पांच बड़े-बड़े शिखर हैं।

रणकपुर के इस जैन मन्दिर का क्षेत्रफल लगभग 48400 वर्ग फीट है। इसमें 84 बड़े कमरे हैं। इनमें 1444 स्तम्भ हैं तथा इन स्तम्भों में कोई भी दो स्तम्भ एक प्रकार के नहीं हैं। मन्दिर का मुख्य द्वार पश्चिम में है तथा चारों दिशाओं में चार दरवाजे हैं। यह मंदिर संगमरमर का बना है, जिसके नीचे तहखाने हैं। इसकी नींव 35 फीट गहरी है जो सप्तधातु से भरी गई है जिससे इस पर कोई कुप्रभाव न डाल सके। मन्दिर का भवन 36 सीढ़ियों की ऊंचाई पर तीन मंजिल में स्थित है। अपनी बनावट में यह मन्दिर 198 फीट लम्बा व 205 फीट चौड़ा है।

संवत 1433 में प्रारम्भ हुआ निर्माण कार्य 65 वर्षों तक चलता रहा। सिद्ध-हस्त कारीगरों द्वारा बेहतरीन नक्काशी व मूर्तियां तराशने का काम किया गया है। संवत 1498 में इस मन्दिर में प्राण फूंके गये प्रथम तीर्थंकर की मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा करके। कहा जाता है कि इसके निर्माण कार्य के लिये 1500 कारीगरों व 2700 श्रमिकों ने प्रतिदिन कार्य किया। इसके निर्माण में कुल 99 लाख स्वर्ण मुद्राएं काम। आईं यह तब की बात है जब दैनिक मजदूरी दो पैसे से अधिक नहीं होगी।

यह मन्दिर जैन व हिन्दू शिल्पकला का अनूठा संगम है। इस मन्दिर के प्रवेश द्वार पर भगवान राम के अद्भुत कृत्यों व बाल कृष्ण की लुभावनी लीलाओं को अंकित किया गया है। इसके अतिरिक्त अनेक प्रतिमाओं की कामोत्तेजक भंगिमाएं खजुराहो की प्रस्तर कला व मैनाल के शिव मन्दिर का स्मरण कराती हैं। हर प्रतिमा के अपने अलग हाव-भाव हैं। कभी महसूस होता है कि मूर्ति के होंठ हिल रहे हैं तथा वह अपनी कहानी आपको सुनाना चाहती है, तो कोई लज्जावश पलकें झुकाकर आपको आकर्षित करती है, तो कोई नृत्य की विशिष्ट मुद्रा में आपको रॉक एण्ड रोल के लिये आमंत्रित करती हुई सी प्रतीत होती है। छत पर तराशा हुआ संगमरमर कल्पवृक्ष के पत्ते के रूप में छत पर अधर लटका हुआ है। इस पत्ते पर "ओ३म" तराशा हुआ है। छत की छटा देखते ही बनती है।

पास ही के खम्भे पर एक अत्यन्त साधारण मूर्ति बनी हुई है जिसके नीचे लिखा है 'दीपा कारित'। यह वही भक्त है जिसके मस्तिष्क ने इस मन्दिर का प्रारूप तैयार किया था। किंवदंती है कि शिल्पी दिपाकारित ने अपने आराध्यदेव शिव से स्वप्न में मिली प्रेरणा से इस पावन स्थल का चयन कला की दृष्टि से एक अद्वितीय मन्दिर बनाने के लिए किया। दिपाकारित के इस स्वप्न को साकार करने के लिए महा-राणा कुम्भा के जैन मंत्री धरणाशाह ने उसे अपार धन उपलब्ध कराकर तथा अपूर्व सहयोग देकर, एक सुन्दर मन्दिर बना कर पूरा किया। यही कारण है कि मुख्य रूप से जैन मन्दिर होते हुए इसमें हिन्दू देवताओं के साथ-साथ जैन तीर्थंकरों का रहवास है।

इस मन्दिर की प्रमुख मूर्ति भगवान आदिनाथ की है। खम्भों की बहुलता के

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

उपरान्त भगवान के दर्शन किसी भी स्थान पर खड़े होकर बिना बाधा के किये जा सकते हैं।

राजस्थान के प्रसिद्ध रीति कालीन श्रृंगार रस के महाकवि बिहारी के काव्य में भी वर्णित नायिकाओं की आकर्षक भाव-भंगिमाएं चित्रित हैं। श्रृंगार करते हुए, आभूषण सजाते हुए, पायल उतारते हुए, पांव से कांटा निकालते हुए, पक्षियों से बात करते हुए, शिशु के संग क्रीड़ा में लीन, प्रिय संग उल्लसित आदि सभी मूर्तियों में कलाकारों का कोमल भाव व कठोर श्रम स्पष्टतः झलकता है। जालियों और झरोखों की नक्काशी तो अपनी उत्कृष्ट सीमा से भी परे है। कलाकारों ने मन्दिर निर्माण में, कला-कौशल में कतई ढील नहीं बरती, चाहे वह स्तम्भों पर नक्काशी का काम रहा हो या पथरीली देह में प्राण फूंकने का अथवा द्वार पर जाली बनाने का।

वास्तुकला की विविधता, स्तम्भों की सुन्दर शैली, प्रकाश छाया के आगमन की रीति तथा छत एवं स्तम्भों की घनी शिल्प कला देखकर हर व्यक्ति स्तब्ध हो जाता है तथा वह पवित्रता और कला के इस विराट स्वरूप में सदा-सदा के लिए खो जाना चाहता है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मारवाड़ी सात्विक आहार व प्रसिद्ध व्यंजन

कृष्णा कंवर

मानव मात्र की तीन प्राथमिक आवश्यकताएं होती हैं—भोजन, वस्त्र एव आवास। इनमें से अन्तिम दो आवश्यकताओं की पूर्ति के क्रम में मारवाड़ वासियों ने चित्ताकर्षक रंग-रंगीले वस्त्रों और भव्य इमारतों के निर्माण की एक लम्बी परम्परा विकसित कर जो सांस्कृतिक स्तर अर्जित किया है, विश्व में बेमिशाल है। यही बात मारवाड़ के सात्विक आहार तथा यहां के प्रसिद्ध व्यंजनों के लिए मानी जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

मारवाड़ में प्रधानतः पशु पालक अर्थ व्यवस्था रही है। बीसवीं शदी के मध्य तक पशु धन की विपुलता से लोगों के पास दूध-दही और घी की भरपूर मात्रा रहती थी। जिससे यहां के लोग बाजरी की रोटी के साथ दूध, दही, मट्ठा और घी का प्रचुर मात्रा में प्रयोग करते रहे हैं। निःसंदेह इस प्रकार के सात्विक भोजन से लोगों का सात्विक स्वभाव होना स्वाभाविक है। गीता में कहा गया है—

आयुःसत्त्वबलारोग्य
सुख प्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या
आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥ 17/18॥

[आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ाने वाले, रसयुक्त, चिकने और स्थिर रहने वाले तथा स्वभाव से ही मन को प्रिय ऐसे आहार अर्थात् भोजन करने के पदार्थ सात्त्विक पुरुष को प्रिय होते हैं।]

ऐसा भी कहा जाता है कि जैसा खाये अन्न वैसा रहे मन। मारवाड़ में तामसिक गुणों वाली कृषि उपज को भोजन में निषिद्ध माना गया है यथा लहसुन, प्याज आदि। मारवाड़ में अधिकांश लोगों के भोजन में बाजरी, मोठ व अन्य दालों की प्रधानता रहती है जो सुपाच्य और पौष्टिकता के प्रतीक हैं। यहां के भोजन में सवेरे बाजरी की रोटी के साथ घी, दही, दूध या मट्ठा और सायंकालीन भोजन में खीच (बाजरी व मोठ दाल की मिश्रित थूली) के साथ घी, तेल, दूध या राबड़ी का प्रचलन स्वास्थ्य नियमों के अनुकूल प्रतीत होता है। स्वास्थ्य नियमानुसार सायंकालीन भोजन हल्का तथा उसमें दाल, दूध व हरी सब्जियों की प्रधानता होनी चाहिये। बाजरी वैसे भी अधिक केलोरी वाला सुपाच्य अन्न है। चना, मूंग, मोठ, कुळथ, चंवला, मसूर, तूर, उड़द आदि दालों व दूध की यहां सदैव विपुलता रही है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

कैर, सांगरी, फोग, ककड़ी, फलियां, टिंडा, खींपोली, कंकेड़ा आदि हरी सब्जियां सर्वत्र उपलब्ध हो जाती हैं । इनके अतिरिक्त कन्दवाली सब्जियों में भी मूली, गाजर, शकरकन्दी आदि पर्याप्त होती रही हैं । मारवाड़ी लोगों के हृष्ट-पुष्ट, लम्बे-चौड़े सुन्दर शरीर व दीर्घायु होने का आधार यह शुद्ध सात्विक आहार है । विदेशी लोगों के उचिष्ट मांसाहारी और बासी (डिब्बों में बन्द) भोजन का कुप्रभाव उन लोगों के आचार-विचार पर कैसा असर डालता है यह सर्व विदित है ।

यहां यह लिखना भी प्रासंगिक होगा कि उत्तरी भारत में चावल-मछली प्रधान भोजन तो दक्षिण में चावल व नारियल का तेल प्रधान जबकि गुजरात में गुड़ मिश्रित व्यंजनों की प्रधानता रहती है । पर यहां खट्टे-मीठे और फीके सभी प्रकार के व्यंजन उपलब्ध हैं ।

विगत 100-150 वर्षों से मारवाड़ में अमन-चैन और नगरीकरण के विस्तार के साथ-साथ राजा-महाराजाओं, अमीर-उमरावों, सामन्तों व जागीरदारों, सेठ-साहूकारों व कस्बों में पाक शास्त्रियों की विशेष पूछ होने लगी । जिससे पाकशास्त्र को विशेष प्रोत्साहन मिला है । परिणाम यह हुआ कि वर्तमान में यहां बनाये जाने वाले शाकाहारी व अमिषाहारी व्यंजनों की इतनी लम्बी सूची है कि खाने वाला दंग रह जाता है और वे विश्वविख्यात हो चुके हैं । विश्व में असंख्य प्रकार की मिठाइयां बनाई जाती हैं पर मारवाड़ की विविध मिठाइयों के समकक्ष वे फीकी लगती हैं । उदाहरणार्थ जोधपुर की मावे की कचोरी, बीकानेर के रसगुल्ले, नागौर के मालपुवे, जैसलमेर के गोटमां, किशनगढ़ के पेठे, मेड़ता के दूध पेड़े, लूणी की केशरबाटी, पाली के गूंजा, नावां के गूंद के पापड़, सांभर की फीणी, खारची की रबड़ी व खुनसुना की जलेबी लाजवाब हैं ।

इसी प्रकार यहां निर्मित नमकीन विश्वविख्यात हो चुके हैं । बीकानेरी भुजिया, जोधपुर के मिर्चीबड़ा, दाल-मोठ, कोपता, शाही समोसा आदि ।

मारवाड़ में शाकाहारी भोजन अथवा व्यंजनों की चर्चा करते समय अगर अमिषाहारी (मांसाहारी) व्यंजनों का उल्लेख नहीं किया जाये तो यह चर्चा अधूरी रह जायेगी । यहाँ के मांसाहारी व्यंजनों की भी उतनी ही बड़ी शृंखला है । कबाब, रोगनजोश, कीमा, अचार, पुलाब, काचर, सीरी, सोयता, बूथां, खड्ड खरगोश आदि उल्लेखनीय मांसाहारी व्यंजन हैं ।

एक बात और उल्लेखनीय है कि मारवाड़ में शिकार के लिए जो विभिन्न वर्गों के विविध वन्य प्राणी विपुलता में उपलब्ध हैं, उतने विश्व के किसी कोने में नहीं हैं । जैसे चौपायों में बकरा, मेंढ़ा, सुअर, चीकला, कालामृग, सांभर, खरगोश, शैवली आदि । पक्षियों में तीतर, लावा, तिलोर, बटेर, बट्टा, हरियल; परिन्दों में आड, जलमुर्गी, भुट्टिया, काळ-धोल आदि और जलचर में मछलियां आदि बहुतायत से मिलते हैं । हालांकि उक्त वन्य प्राणियों का शिकार कानूनन अपराध है । जब कि मारवाड़ के एक प्रसिद्ध सन्त जांभोजी ने करीब 500 वर्ष पहले ही वन्य प्राणियों की शिकार पर धार्मिक प्रतिबन्ध लगा दिया था ।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

लोक-साहित्य में निरूपित मारवाड़ की संस्कृति

डॉ. सोहनदान चारण

साहित्य और संस्कृति, संस्कृति और साहित्य दोनों परस्पर प्रेरक व पूरक । एक संस्कृति के अनुयायी अपने साहित्य में वर्णित उच्चादर्शों से प्रेरणा प्राप्त कर महान् कर्म-पथ पर अग्रसर होते हैं और पुनश्च: वैसे ही आदर्श भावी पीढ़ी के लिए छोड़ जाते हैं । संस्कृति के इन्हीं उन्नायक कर्म वीरों का साहित्य में निरूपण होता है और इस प्रकार प्रेरणास्पद एवं अनुकरणीय संस्कृति की अजस्र धारा निरंतर प्रवहमान रहती है । मारवाड़ी संस्कृति को संस्कृति के अध्येताओं ने 'अग्नि संस्कृति' की संज्ञा प्रदान की है और राजस्थानी साहित्य के संबंध में विचार व्यक्त करते हुए विश्व-कवि कवीन्द्र रविन्द्र ने कहा है कि राजस्थानी साहित्य रक्त-रंजित जिन्दगी और तूफानी मौत का संदेश है ।

[Rajasthani literature is nothing but a message of blood flooded life and stormy death.]

क्या ही सूक्ष्म निरीक्षण है—कविवर का । मारवाड़ में जल-प्लावन का दृश्य तो शायद ही कभी दिखाई दिया हो पर रक्त-प्लावन के नित नये दृश्य पग-पग पर दिखाई पड़े हैं । जहां के निवासी 'मरणा नूं मंगळ' गिनते हों वहाँ तो मौत भी तूफानी गति से ही आएगी । भला वहाँ खाट में पड़े सड़ते व रोते-कहारते और मौत की प्रतीक्षा करते बूढ़े कैसे दिखाई देंगे ? क्योंकि यहां के रण-बांकुरे तो पच्चीस वर्ष के पश्चात् के जीवन को हेय दृष्टि से देखते आये हैं—

"बरस पचीसां क्षत्रिय जीवै, आगे जीवन को धिक्कार ।"

आन-बान, मान-मर्यादा, वचन-निर्वाह, मातृभूमि, गाय एवं शरणागत हेतु प्राणोत्सर्ग, स्वाभिमान, सत्यनिष्ठा, जौहर-ज्वाला द्वारा सतीत्व रक्षा आदि मानवीय गुण यहां के हर युवक-युवती के कंठहार रहे हैं । यहाँ की वीर माता बालक को बचपन में ही 'इला न देणी आपणी' का पाठ पढ़ाती है । इसी प्रकार ऐसी वीर माता की नव प्रसूता वीर पुत्री (सींहण जाई सींहणी) जन्मते ही 'तेग' उठाकर लड़ने को उतावली पड़ती दिखाई देती है और प्रसव कक्ष में जल रहे दीपक की लौ को निहार-निहार इसलिए हर्षित होती दीख पड़ती है कि उसे एक दिन आवश्यकता पड़ने पर सतीत्व रक्षा हेतु हँसते-हँसते अपनी कमनीय काया जौहर की धू-धू धधकती ज्वाला को सौंपने में पीछे नहीं हटना है । ऐसे वीर बालक-बालिकाओं के सत्कृत्यों ने ही इस 'अग्नि संस्कृति' के अक्षुण्ण महत्व को विश्व-मंच पर प्रतिष्ठापित किया है । इनके ऐसे अनेकानेक प्रेरक प्रसंग राजस्थानी साहित्य एवं यहां के लोक-साहित्य में वर्णित विवेचित हैं । लेख के शीर्षक को मद्देनजर रखते हुए हम यहां केवल ऐसे उज्ज्वल-

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America, HHFA(USA)

चित्रांस ही प्रस्तुत कर सकेंगे, जिनका निरूपण यहां के लोक-साहित्य में मिलता है।

पांच पीरों में प्रतिष्ठित, क्षात्र-धर्म के पालनकर्त्ता पाबूजी लोक-देवता के रूप में आज भी केवल मारवाड़ में ही नहीं वरन् संपूर्ण राजस्थान में पूजित हैं और भविष्य में भी पूजे जाते रहेंगे। वचन-निर्वाह का ऐसा अद्वितीय एवं अनूठा उदाहरण अन्यत्र नहीं मिलेगा। 'केसर काळमी' के नाम से प्रख्यात घोड़ी पाबू भालाळे के मन भा गई, पर यह घोड़ी ही तो देवल देवी के गोधन की रक्षिका थी, अतः देवल देवी पल भर के लिए भी इस घोड़ी को किसी को दे नहीं सकती थी। पाबूजी राठौड़ ने देवल देवी के समक्ष अपनी यह इच्छा प्रकट की कि इस घोड़ी पर सवार होकर मैं सोढ़ों के यहां विवाह के अवसर पर तोरण वंदना करना चाहता हूं। देवल देवी ने अपनी समस्या पाबूजी के समक्ष रख दी कि जायल के जिंदराव खीची की आँख मेरे गोधन पर है और रणचण्डिका रूपी इस घोड़ी की वजह से ही मेरा गोधन सुरक्षित है। अधिक अनुनय-विनय पर देवल देवी ने पाबूजी राठौड़ को 'केसर काळमी' इस शर्त पर सुपुर्द कर दी कि यदि मेरे गोधन पर कोई संकट आता है तो आपको जरूरी से जरूरी कार्य छोड़कर भी गोधन छुड़ाने हेतु आना पड़ेगा। इधर पाबूजी की बारात का प्रस्थान हुआ और उधर अवसर का लाभ उठाकर जिंदराव खीची ने देवल देवी की गायों को जा घेरा। वचन-निर्वाह का परीक्षा-काल आ उपस्थित हुआ। उधर मंडप में पाबूजी राठौड़ सोढ़ी राणी के साथ चौथा फेरा पूरा कर रहे थे कि चील रूप धारण कर देवल देवी पहुँची। देवल देवी को सारी बात बताते तो देर लगी सो लगी, तुरन्त पाबूजी सात फेरों को बीच में छोड़कर 'केसर काळमी' की पीठ पर सवार हो जिंदराव खीची का पीछा करने चल पड़े। सांसारिक विषय भोगों को तुच्छ मान ऐसे उच्च विचार वाले वचन-निर्वाह कर्त्ता मारवाड़ की धरती के अतिरिक्त कहां मिलेंगे? इस युद्ध में पाबूजी वीर गति को प्राप्त हुए पर एक अनूठा अध्याय विश्व इतिहास में जोड़ गये। इसी मारवाड़ की धरती का एक और लाडला सपूत वीर तेजा वचन निर्वाहार्थ अपने क्षत-विक्षत शरीर से सांप की बाँबी पर पहुँचा और अपने सत्कृत्य से हमें गौरवान्वित किया है। 'पाबूजी की पड़' और 'वीर तेजा' संज्ञक लोक-गाथाएँ आज भी हमारे जन-मानस को इन नर पुंगवों की याद दिलाती है तथा भावी पीढ़ी को प्रेरणा प्रदान करती है।

नर-रत्नो के महत्कृत्यों की भाँति ही वीरांगनाओं के शौर्य-प्रधान सत्कृत्यों से भी हमारे इतिहास के पन्ने भरे पड़े हैं। यदि किसी पात्र के वर्णन-विवेचन में इतिहास ने कहीं कोई त्रुटि रख दी तो लोक-साहित्य ने अपने कलेवर में उस पात्र को आदरणीय स्थान प्रदान कर अमर कर दिया है। इस प्रदेश में एक जमाना ऐसा भी आया है जब देश-रक्षा हेतु हर घर से एक युवक को आगे आना पड़ता था। यदि किसी घर में युवक नहीं है तो बूढ़े बाप या दादा को इस उत्सर्ग-यज्ञ में सम्मिलित होना पड़ता था। मारवाड़ में अनेक ऐसी लोक-गाथाएँ प्रचलित हैं, जो नायिका प्रधान हैं। राष्ट्र-हितार्थ सर्वस्व न्यौछावर करने हेतु युवकों के अभाव में माँ-बाप की चिंता को दूर करती हुई वीर बालाएँ मर्दाना-वेश धारण कर अपने खानदान का प्रतिनि-

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

धित्व करने रणक्षेत्र में पहुँची हैं और अपने रणकौशल से दुश्मन के दाँत खट्टे किये हैं। शत्रु को नाकों चने चबवाकर इन वीर युवतियों ने यह सिद्ध कर दिया है कि राष्ट्र के प्रति हमारा भी बराबर का दायित्व है। 'पृथ्वीराज सुरजां' और जनकाव्य 'रूपादे' की नायिकाएँ इस दृष्टि से सदैव स्मरणीय रहेंगी।

क्या लोक-गीत और क्या लोक-कथा, क्या लोक-गाथा और क्या लोक-नाट्य— सभी में प्राप्य वर्णन निवेचन से यह सुस्पष्ट है कि ये वीर-वीरांगनाएँ उस काया को मिटाने में कभी नहीं झिझकते। वे तो यश-काया को अमर रखने में विश्वास रखते हैं। वे भली भांति जानते हैं कि विश्व में 'हीमत कीमत होय'। अर्थात् हिम्मतवान की अक्षय कीर्ति पताका युग-युगान्तर तक फहराती रहती है। 'निहालदे सुलतान' शीर्षक राजस्थानी लोक-गाथा में स्पष्ट कहा गया है कि कीर्ति-भुवन को कोई नष्ट नहीं कर सकता—

"इक ऊपर रहसी अमर, कीरत रा कमठांण"

इस नाम-अमरता के लिए जिन सात्विक चारित्रिक गुणों की आवश्यकता होती है, उन्हें लोक-साहित्य में निम्न शब्दों में वर्णित किया गया है :—

"सदा रहै काछ द्रढ़ौ, जुद्ध सूं पीछ नीं मोड़ै।
रण में रहै निसंक, सीस सत्रवां रा तोड़ै॥
बोलै नहँ बड बोल, काठ नहीं मन का।
विपत देख न संचरै, गरब होय न धन का॥
सिरणागत री रच्छा करै, दया धरम अर चातरी।
दस लच्छण रजपूत रा, नाम धरावै छातरी॥"

उक्त चारित्रिक विशिष्टताएँ उस प्रत्येक वीर के लिए अपेक्षित हैं, जो सर्वतोभावेन राष्ट्र-हित एवं जन-कल्याण हेतु समर्पित होकर नाम अमर करना चाहता है।

संस्कृति के सच्चे पुजारी इन वीरों की दृष्टि में कर्त्तव्यपरायणता सर्वोत्कृष्ट है। इन्हें अपने कर्त्तव्य एवं धर्माधर्म का सदैव ज्ञान रहता है। इन रणबांकुरे वीरों की स्पष्ट मान्यता है कि कर्त्तव्य-पथ पर जो चिह्न चिह्नित हो गये वे कदापि मिट नहीं सकते। इन्हें सीख-स्वरूप लोक-गाथा में कहा गया है :—

"रे चेला आछा करतब ई दुनिया में करौ
तो जणै करतब रा कर्‌यां ई रुपै निसांण
हिलायोड़ा ई धरम रा निसांण ना हिलै
तो जणै कवीसर ई करै जकां री ओपमा॥"

ये वीर सत्य और धर्म के रक्षक होते हैं। सत्य की अपरिमित शक्ति में इन्हें दृढ़ विश्वास होता है। चूंकि ये सत्य और धर्म प्रधान जीवन-यापन करते हैं, अतः काल भी इनका बाल बाँका नहीं कर सकता। इन वीरों की मान्यतानुसार पृथ्वी भी सत्य के आधार पर टिकी है। धर्म की महत्ता यहाँ के लोक-साहित्य में यत्र-तत्र-सर्वत्र निरूपित है। यथा—

"उण ई सगसां री चालै जुग में वारता।
तो जणै धरम रा करिया जिणां ई कांम॥"

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

इस तथ्य को 'बगड़ावत' में निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया गया है: —

"बगड़ावत सत रा पूत हा । धरम रा नाती हा । धरम-पुन्न आगै काळ रौ डाव वर्णां रै नीं लागतौ ।"

ऐसे सपूत वीर किसी गरीब की हाय नहीं लेना चाहते । वे तो उनके दुखड़े में अपनी भागीदारी रखना चाहते हैं । मालिन की गायें डाकू भगाकर ले गये । उसकी पुकार भले ही राजा ने अनसुनी कर दी हो, परन्तु वीर पृथ्वीराज और उसकी वीर बहिन सुरजां मालिन के करुण क्रन्दन को कैसे सहते । वीर बहिन की यह वीरोक्ति समस्त वीरांगनाओं के मानसिक-वैभव की सूचक कही जा सकती है :—

"वीरा ! हित्या देय री रे मालण धामली
देय री रे गायां रौ सराप ।
पिरथी ओ राजा, कोनी झिलै गायां रौ सराप

मारवाड़ की संस्कृति के उज्ज्वल स्वरूप को प्रस्तुत करने वाले वीर-वीरांगनाओं के चरित्रांकन में सम्पूर्ण मारवाड़ का लोक-साहित्य भरा पड़ा है । विस्तार-भय से हम यहाँ कतिपय उदाहरण ही प्रस्तुत कर पाये हैं ।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मारवाड़ का ज्योतिष विद्या में योगदान

रामदत्त थानवी

लोकसंस्कृति का मूल आधार लोक जीवन और लोक साहित्य है। जिस विद्या का क्षेत्र लोक जीवन बन गया वही विद्या मानवोपयोगी बनकर शाश्वत बन गई। मारवाड़ की लोक संस्कृति में भित्ति चित्रों ने, रंगोली ने, चित्रकला ने, मांड राग ने, पोशाल शिक्षा पद्धति ने जितना योगदान दिया है और इन कलाओं ने भारतीय संस्कृति को जीवित रखने में अपनी जो पहचान बनाये रखी, उससे यह प्रमाणित हो गया कि मारवाड़ ने भारतीय संस्कृति को बहुत बड़ा योगदान दिया जिससे मारवाड़ी अपनी विशिष्ट पहचान बना सके।

ज्योतिष विद्या में मारवाड़ का अवर्णनीय योगदान रहा है। पाश्चात्य विद्वान् थीवोने और जर्मन विद्वान् मेक्समूलर ने यह स्वीकार किया था कि विश्व को ज्योतिष विद्या का ज्ञान भारत से मिला। भारत में भी वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, आर्यभट्ट आदि पण्डितों के पूर्व ज्योतिष ग्रन्थ लिखे गये हों ऐसी जानकारी नहीं मिलती। यहीं से हमको ज्योतिष सिद्धान्त के लिखित लक्ष्य ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं।

पं. ब्रह्मगुप्त का प्रादुर्भाव मारवाड़ के भीनमाल नगर में हुआ था जहां संस्कृत भाषा के प्रसिद्ध पण्डित माघ का जन्म हुआ था। जिस प्रकार माघ ने अपनी विद्वता की छाप जमा दी उसी प्रकार ज्योतिष पण्डित ब्रह्म गुप्त ने अपनी विद्वता की छाप जमा डाली थी। उस काल से लेकर 14वीं शताब्दी तक मारवाड़ में ज्योतिष का बहुत ज्यादा विस्तार हो गया और पंचांग की गणित से नक्षत्रों की गतिविधियों का पता लगाया जाने लगा और लोगों की जन्मपत्रियां तक बनने लगीं और उनकी फलित गणित से उपादेयता भी लोक-प्रचलित हो चुकी थी। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि मारवाड़ में ज्योतिष विद्या लोक-आधार प्राप्त कर चुकी थी।

मुंशी देवीप्रसाद ने मारवाड़ में जन्मपत्रियाँ की खोज की और अनेकानेक राजाओं की जन्मपत्रियाँ को इकट्ठा किया। उसका 'पुरानी जन्मपत्रियाँ' शीर्षक लेख सन् 1815 ई. में 'सरस्वती' मासिक में छपा और सन् 1920 ई. में नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग 1 पृष्ठ 114 पर छपा जिसमें ज्योतिषाचार्य पं. चण्डूजी के जन्म से पूर्व की जन्मपत्रियां का संग्रह अंकलिन है जैसे राव जोधाजी जन्म सं. 1472, राव दूदाजी मेड़ता सं. 1447, राव बीकाजी बीकानेर जन्म सं. 1497, राव वीरमदे मेड़ता जन्म सं. 1534, राव गांगाजी-जोधपुर जन्म सं. 1540 और ज्तोतिष पण्डित चण्डूजी जैसलमेर जन्म सं. 1550 आदि। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि राव जोधाजी के समय भी ज्योतिष विद्या लोक-सम्मान प्राप्त कर चुकी थी। जोधपुर के दुर्ग की स्थापना के समय भी पुष्टिकर ब्राह्मण पं. गणपति जी ने चिन्तामणि मुहूर्त

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

निकाल कर सं. 1515 में मेहरानगढ़ (मयूरध्वज, चिन्तामणि) दुर्ग की नींव रखवाने का कार्य किया था।

राव मालदेव के जैसलमेर की उमा भटियाणी के साथ विवाह के अवसर पर पं. राघवजी पुरोहित जो ज्योतिष पण्डित थे, उनके विद्वान पुत्र चण्डूजी को राव मालदेव के साथ जोधपुर भिजवा दिया—क्योंकि उन्होंने राव मालदेव के प्राण बचाये थे। चण्डूजी ने गुजरात में औदिच्य ब्राह्मण पं. विजयदत्त शर्मा के यहां पंचांग बनाना सीखा, यहां तक कि मंगल उदय और अस्त का समय निकालने में 'मन्दोच्य' मिला दिया, जिसके लिये पण्डित जी समस्याग्रस्त थे। पं. विजयदत्त चण्डूजी की तीव्र बुद्धि से प्रसन्न हुए और अपने 'सौरपक्षी पंचांग' बनाने की विद्या चण्डूजी को सिखला दी।

चण्डूजी किसी प्राचीन परिपाटी पर अटके रह कर ही पंचांग बनाना नहीं चाहते थे अतः उन्होंने सवत 1577 में अपना पंचांग तैयार किया जो अपने आप में एक महान् उपलब्धि थी। उन्होंने सूर्य की स्थिति में परिवर्तन देखकर अनुभूत गणित का उपयोग करना चालू किया, यही कारण है कि 'कर्ण कुतूहल' के गणित में अन्तर आता है।

सं. 1105 में भास्कराचार्य वराहमिहिर ने ज्योतिष का सिद्धान्तग्रन्थ 'कर्ण कुतूहल' तैयार किया था जिसका संस्कार 470 वर्ष बाद अर्थात् सं. 1575 में ज्योतिषाचार्य चण्डूजी ने ही किया। यह मारवाड़ की ज्योतिष विद्या को अभूतपूर्व देन मानी जाएगी। यह संशोधन सिद्धान्त 'चण्डीदास कृत बीज' सिद्धान्त के नाम से पहचाना जाता है।

जब देव संयोग से गुजरात का पंचांग बनना बन्द हो गया तब वि. सं. 1588 में चण्डूजी ने अपना पंचाग तैयार किया जिस पर चण्डूजी को खूब पुरस्कार मिला। परन्तु मारवाड़ की गुरु प्रतिष्ठा की संस्कृति यहां भी दृष्टिगोचर हुई, चण्डूजी ने यह कहा कि यह तो पण्डित विजयदत्तजी का ही प्रसाद है, यह पुरस्कार उनको दिया जाना चाहिये, विजयदत्तजी को सम्मानित करवाया—जिस पर पण्डित विजयदत्तजी ने चण्डूजी की प्रशंसा करते कहा—

"सन्त सन्ति कियन्त एव जगति, प्रायः परेशागुणाम।
क्षुद्रा नत्यधिकान्त जन्त्रमिहवै कुर्वन्ति हो प्रेमल॥

चण्डूजी ने संवत् 1593 का पंचांग राव मालदेव को समर्पित किया। आपने 'कामधेनु' का संशोधन किया और वक्र मार्ग की नवनिधि का निर्माण भी किया।

राव चन्द्रसेन के समय संवत् 1622 में आपका देहान्त हो गया। आपके सन्तान नहीं थी अतः आपके भ्राता दामोदर की सन्तान को अपनी गणित को चालू रखने की शिक्षा सिखलाई जिसको स्वर्गीय स्वनामधन्य श्री धनराजजी ज्योतिषि ने खूब आगे बढ़ाया। आपके प्रयासों से सन् 1926 से चण्ड पंचांग विभाग मारवाड़ में चालू हो गया और 'सुमेर सभा' के सानिध्य में राज्य से मान्यता प्राप्त 'चण्डू पंचांग' हर वर्ष बनता व प्रकाशित होता रहता है। अब श्री सूरजराजजी राजज्योतिषि चण्डू पंचांग का निर्माण करते हैं और स्वयं ज्योतिष के प्रकांड विद्वान हैं। अखिल भार-

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

तीय ज्योतिष सम्मेलन (जोधपुर 1986) द्वारा इन्हें कांस्य पत्र व प्रशस्ति पत्र द्वारा सम्मानित किया जा चुका है। श्री धनराज के समय श्री शंकरलाल जी जोशी 'रमल शास्त्र' के ज्योतिषि रहे जिनका पुत्र श्री मदन मोहन जोशी वर्त्तमान में भी पिता की गणित का प्रचार व प्रसार कर रहा है। पण्डित धूड़जी बड़लीवाला पुरोहित अच्छे ज्योतिषाचार्य थे जिनकी फलित ज्योतिष बहुत ही मान्य रही। सम्प्रति उनके पुत्र सर्व श्री बद्रीदास एवं केदारदास ज्योतिष का कार्य करते जन्मपत्रिका बनाते व उनका फलादेश बतलाते हैं।

श्री मानचन्दजी लोढ़ा फलित ज्योतिष के प्रकाण्ड पण्डित थे, उनके पुत्र अमरचन्दजी चण्डूजी की गणित पद्धति के समर्थक थे और वर्त्तमान में अमरचन्दजी का पुत्र महेशचन्द फलित ज्योतिष एवं भविष्य वाणियाँ के अच्छे विद्वान माने जाते हैं।

स्व. श्री शंकर महाराज सूरसागर जोधपुर के निवासी मुहूर्त और भाग्य निरूपण के विद्वान् थे। जन्म पत्रिका का फल उनका सही निकला था। पं. पृथ्वीराजजी शर्मा बालोतरा भी पंचांग गणित के विद्वान हैं और वर्षों से अपना निजी पंचांग छपवाते हैं। पं. भोजराज शर्मा ने 'अज्ञात दर्शन' नामक ज्योतिष पत्रिका का सम्पादन-प्रकाशन करके ज्योतिष जगत में क्रान्तिकारी कदम ला दिया है। फलोदी के ज्योतिष-मार्त्तण्ड पं. श्रीकृष्ण छगांणी का ज्योतिष ज्ञान आज भारत के पंचांग विभाग को सहयोग प्रदान कर रहा है। पं. मांगीलाल दवे श्रीमाली पण्डित ने 'केतकी गणित' सिद्धान्त पर पंचांग बनाया और प्रकाशित किया था।

पं. नारायणदास एवं पं. राधेश्याम श्रीमाली का नाम तो ज्योतिष विद्या के साथ भारत भर में विख्यात है। आपने अनेकानेक पुस्तकें लिखी हैं और 'श्री-यंत्र' की साधना से ज्योतिष का लाभ अगणित लोगों को पहुंचाया है। पं. भोजराजजी शास्त्री, पं. जयनारायणजी श्रीमाली पं. मदनमोहनजी दवेरा शाकद्वीपी ब्राह्मण, पं. मूलराजजी व्यास, श्री चम्पालाल जोशी, पं. रामस्वरूपजी पुरोहित, श्री मगनराजजी जोशी आदि-आदि आज भी ज्योतिष विद्या में अपना वर्चस्व रखते हैं और इन लोगों की विद्वता के कारण मारवाड़ की ओर भारत भर के लोग आने की उत्कण्ठा रखते हैं।

आज भी श्रीमाली समाज के कर्मकाण्डी पण्डित, छन्याति समाज के कर्मकाण्डी पण्डित एवं दशांतरी समाज के जोशी घरेलू ज्योतिष, मुहूर्त ज्ञान, दिन का चौघड़िया और नक्षत्र-गृह गति का ध्यान रखते दिनमान बताते रहते हैं। और तो और कई घरेलू सद्गृहणियां तक शुकुनावली जैसी पुस्तक अपने पास रख कर सुघड़ी अथवा कुघड़ी का ज्ञान प्राप्त कर लेती हैं।

इतने लम्बे काल के इतिहास विवेचन के पश्चात यही निष्कर्ष निकलता है कि ज्योतिष विद्या के प्रचार व प्रसार में मारवाड़ का अतुल योगदान रहा है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

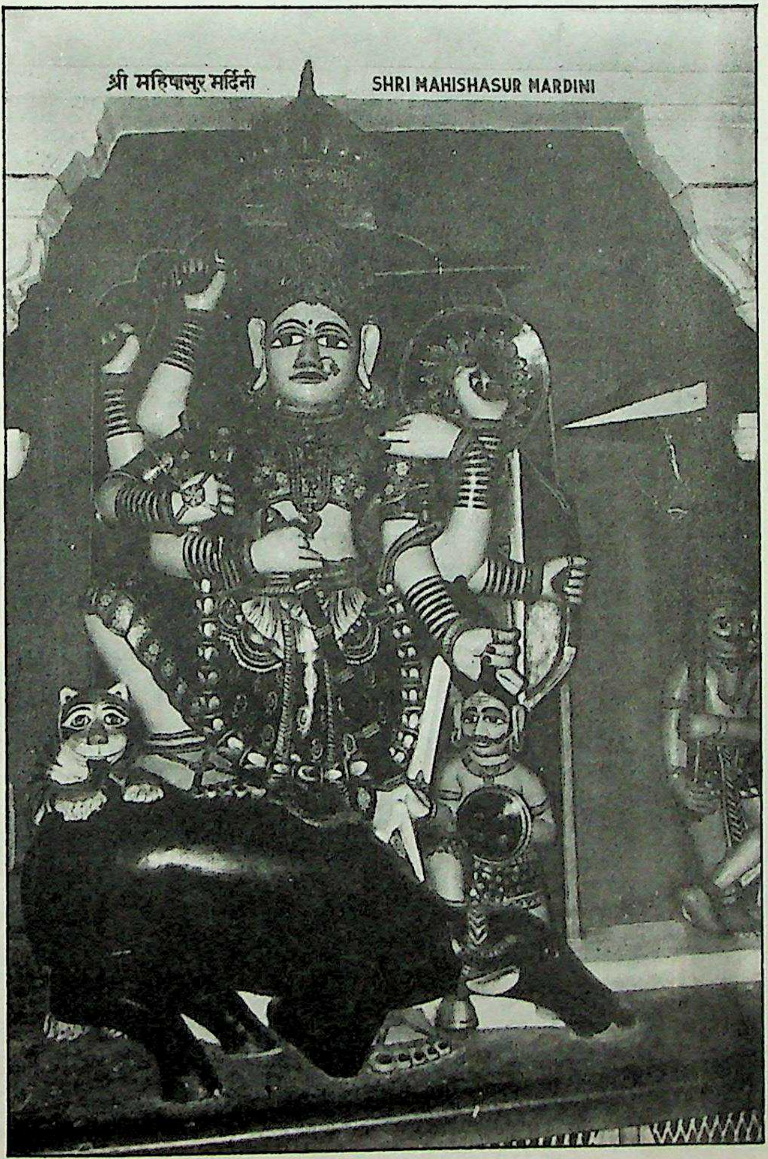

श्री महिषासुर मर्दिनी : देवताओं की साल : मण्डोर

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

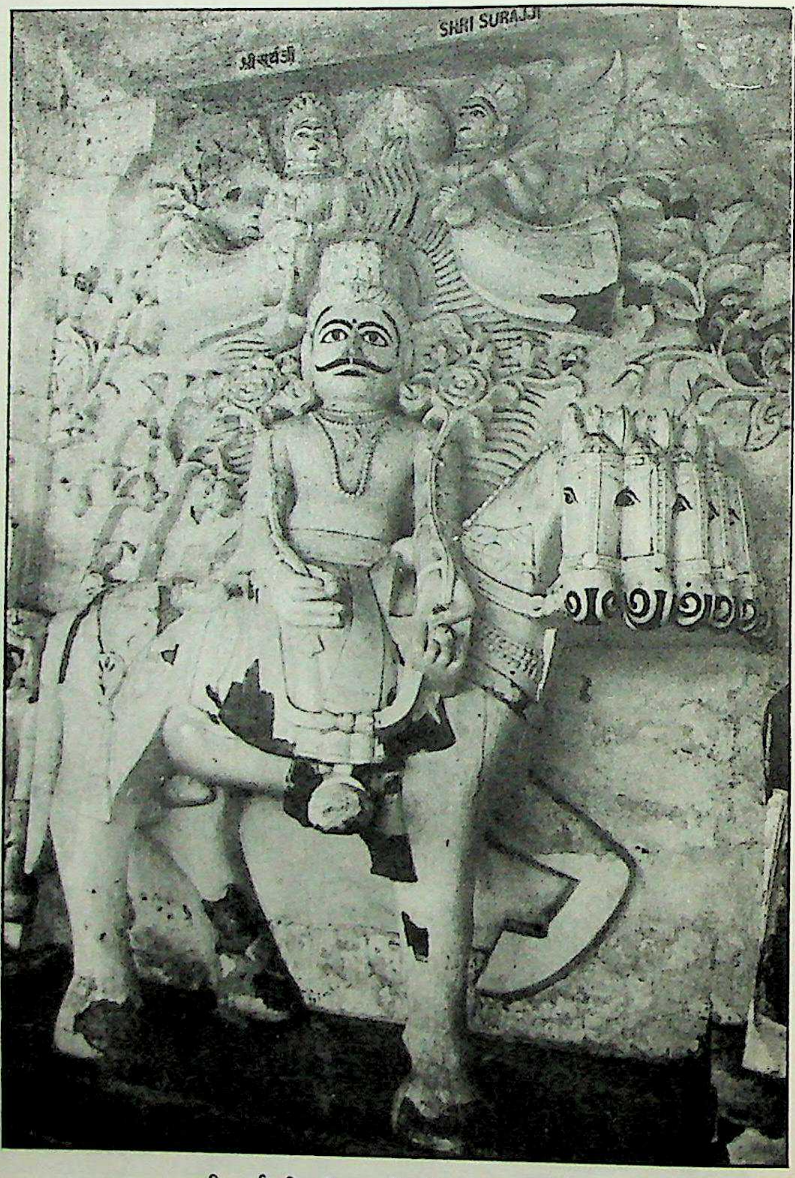

श्री सूर्य जी : देवताओं की साल : मण्डोर

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

श्री पाबू जी : देवताओं की साल : मण्डोर

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

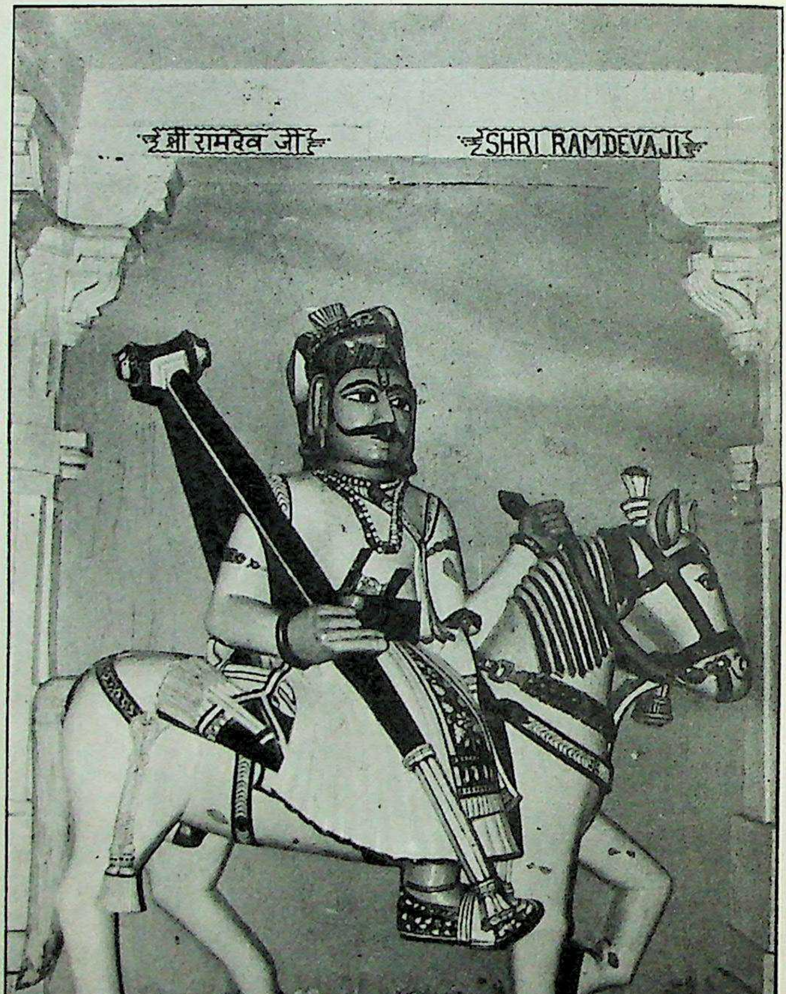

श्री रामदेव जी : देवताओं की साल : मण्डोर

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

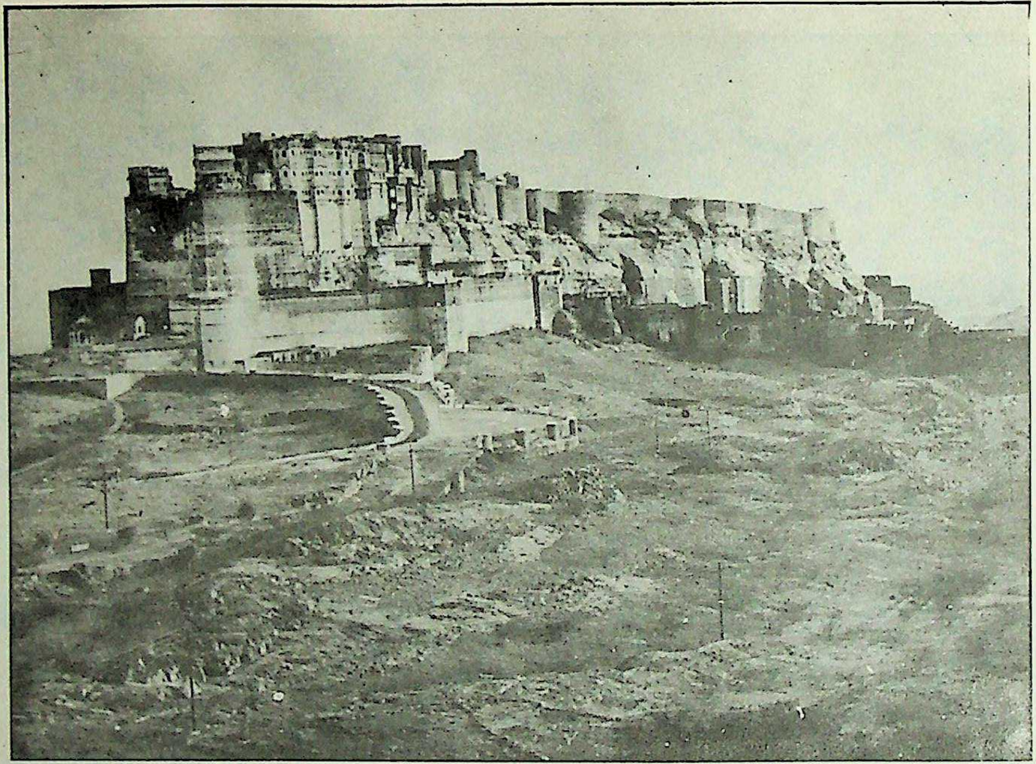

जोधपुर दुर्ग का पृष्ठ भाग

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

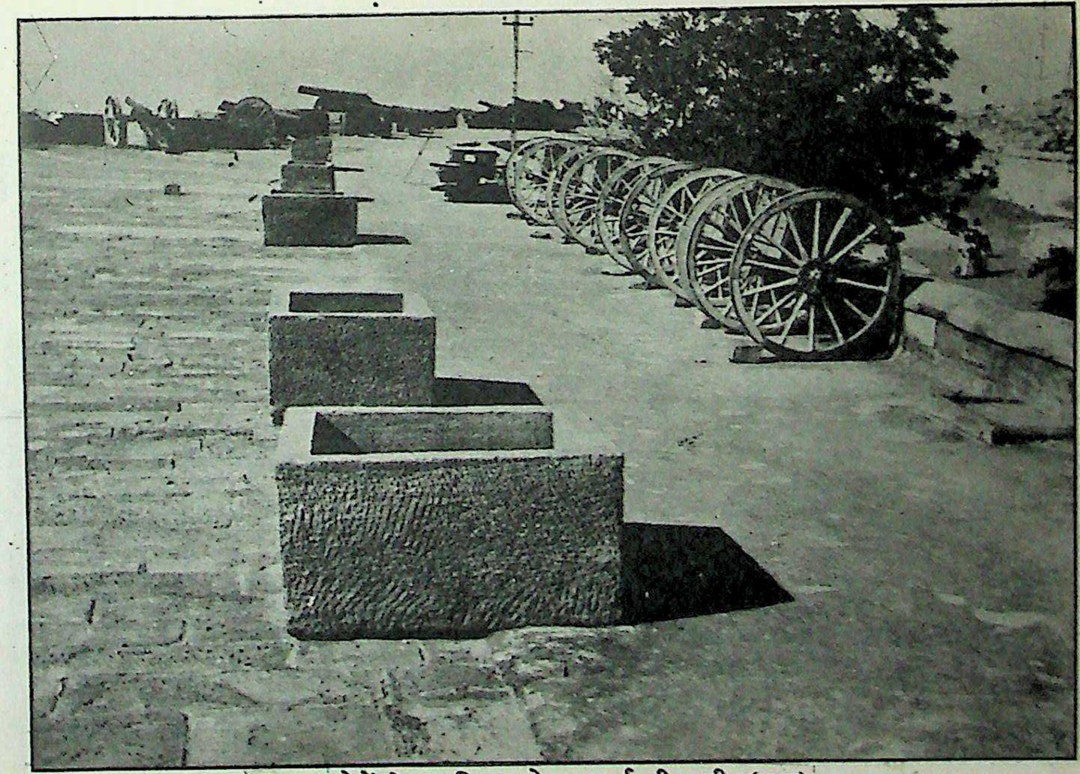

तोपों से सुसज्जित जोधपुर दुर्ग की प्राचीर (पट्टा)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

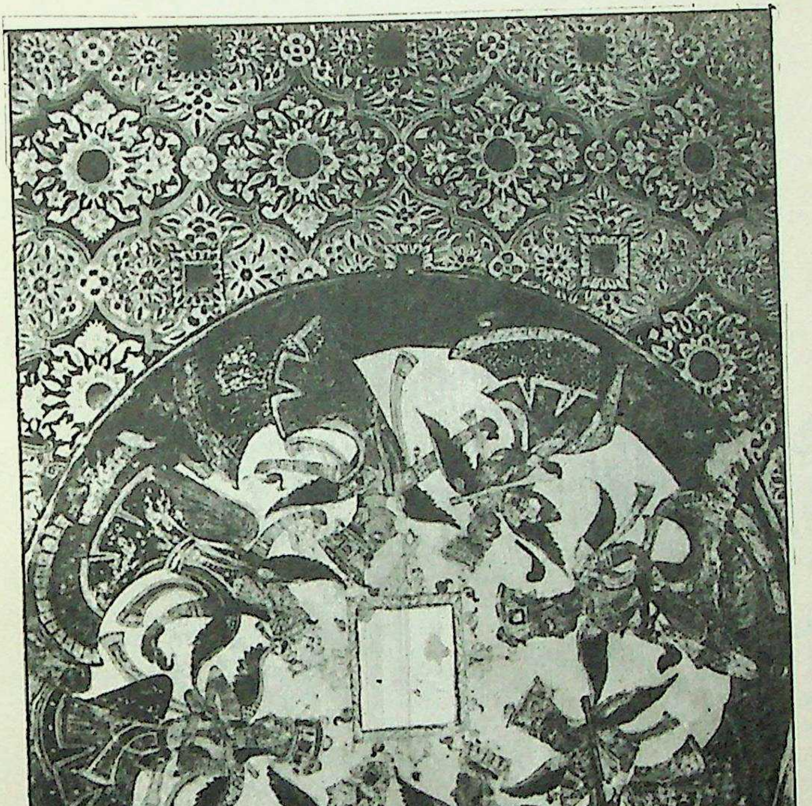

नागौर चित्रशैली : दुर्ग महलों के भित्ति चित्र का नमूना

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

नागौर चित्रशैली : दुर्ग महलों के भित्ति चित्र का नमूना

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

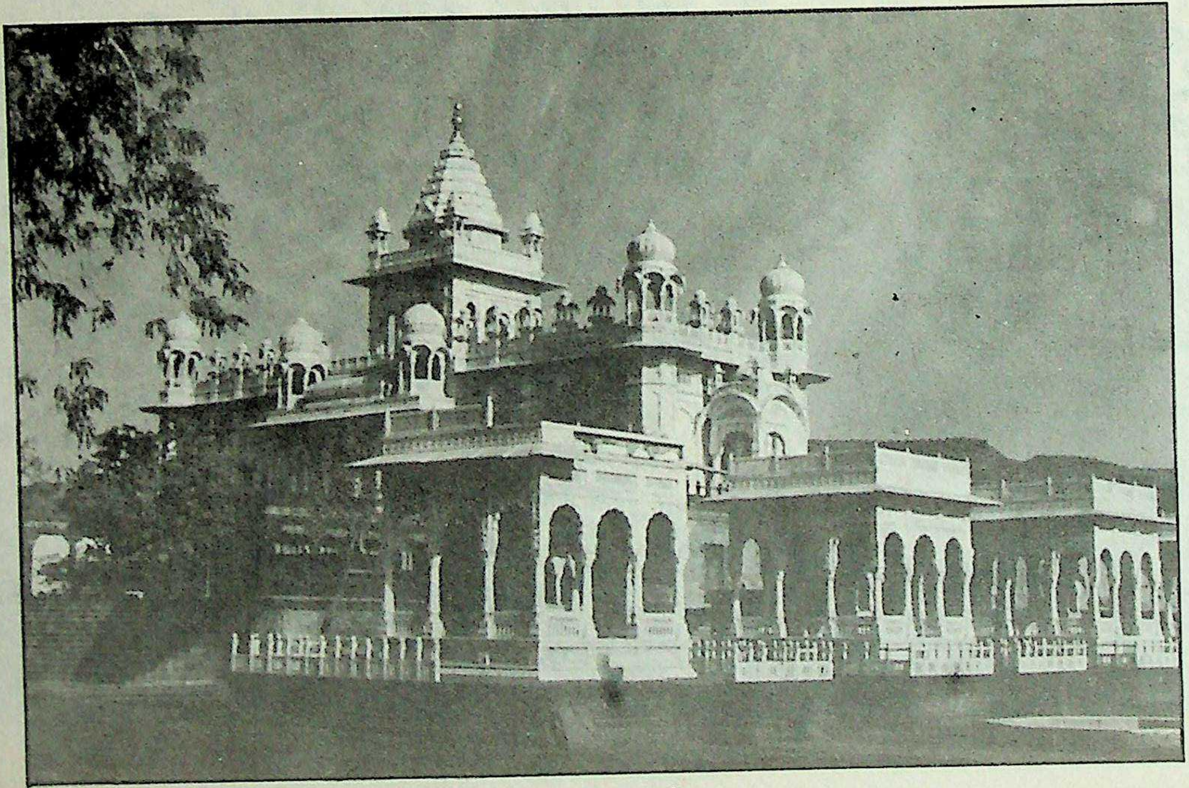

जसवन्त थड़ा : जोधपुर

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

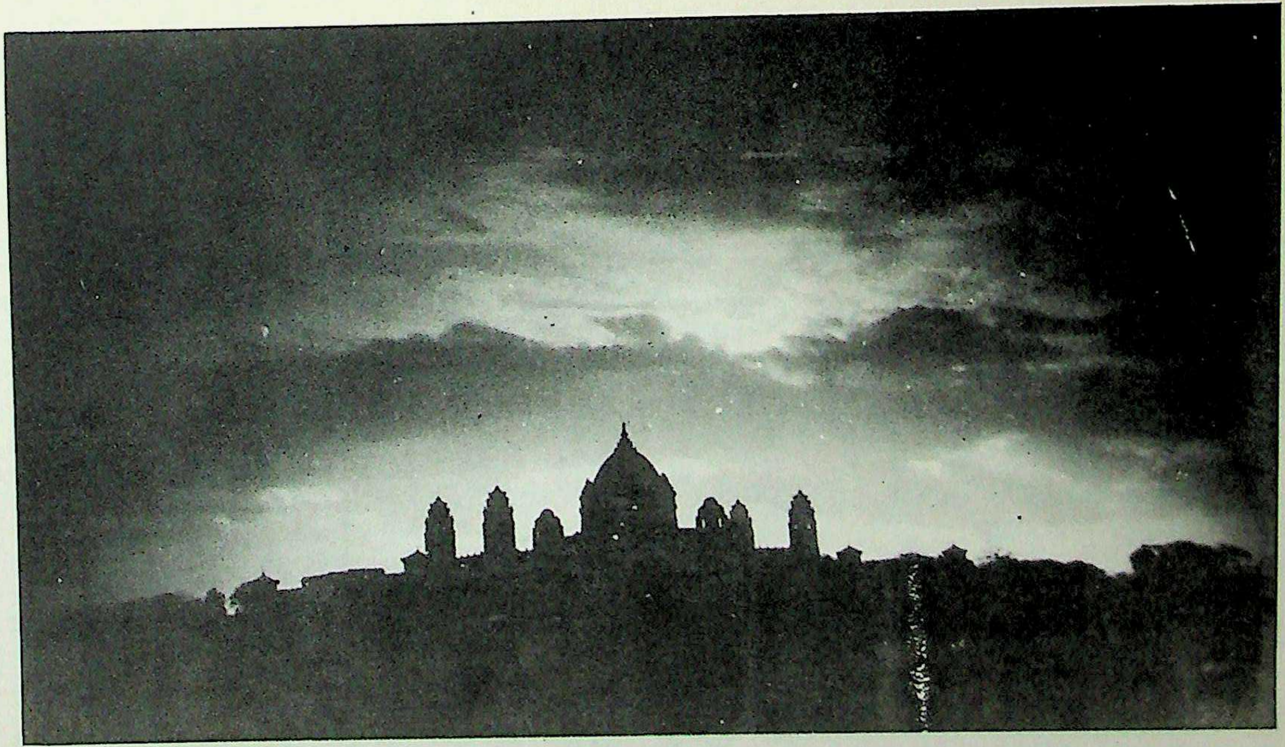

उम्मेद भवन पैलेस : जोधपुर

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

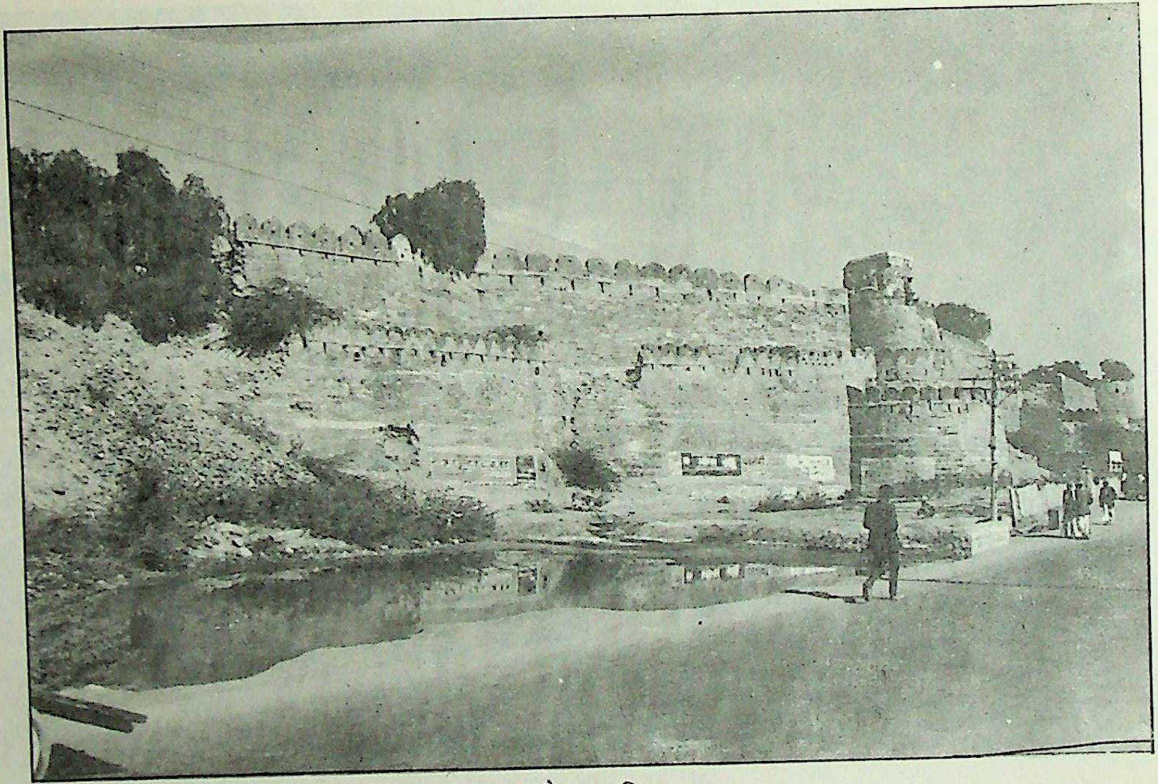

नागौर का किला

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

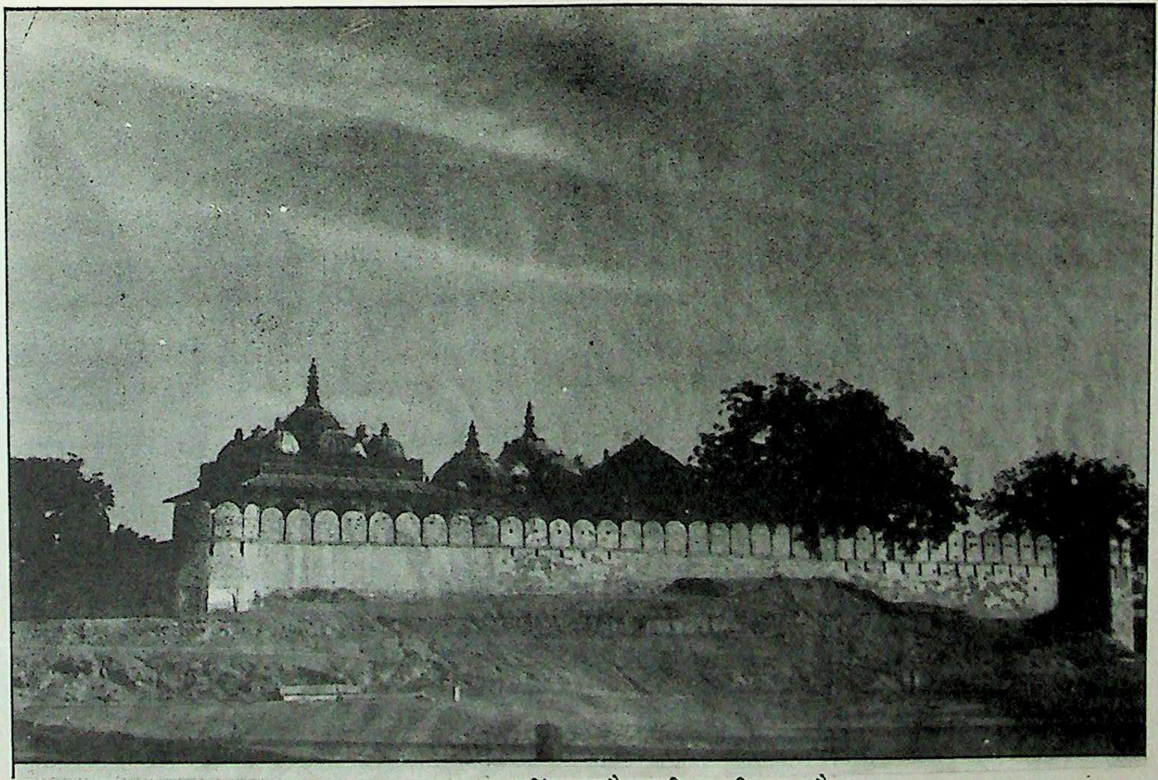

राव अमरसिंह राठौड़ की छतरी : नागौर

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

ढोला मारू : जोधपुर शैली 19वीं शती

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

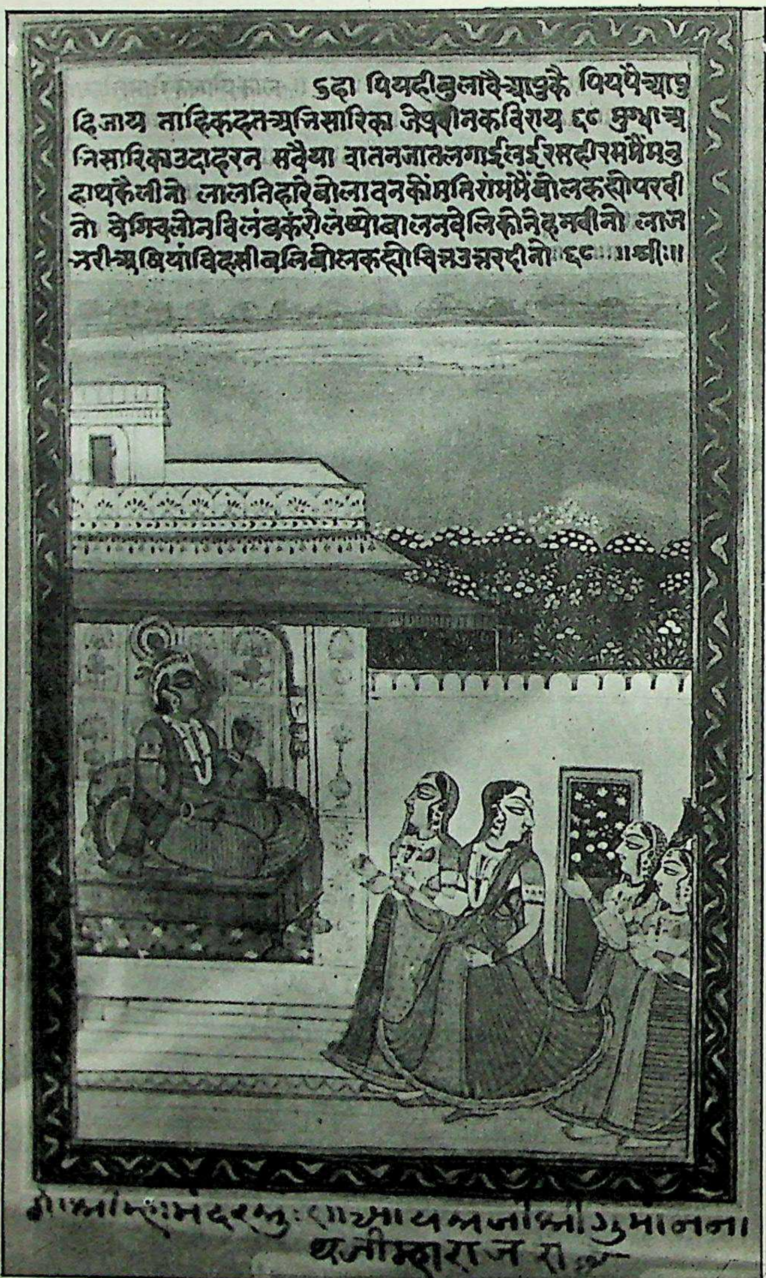

रसराज : नायिका भेद

जोधपुर शैली, 19वीं शती प्रारम्भ

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मारवाड़ के राजा-महाराजाओं की परम्परागत पाग-पगड़ियां

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

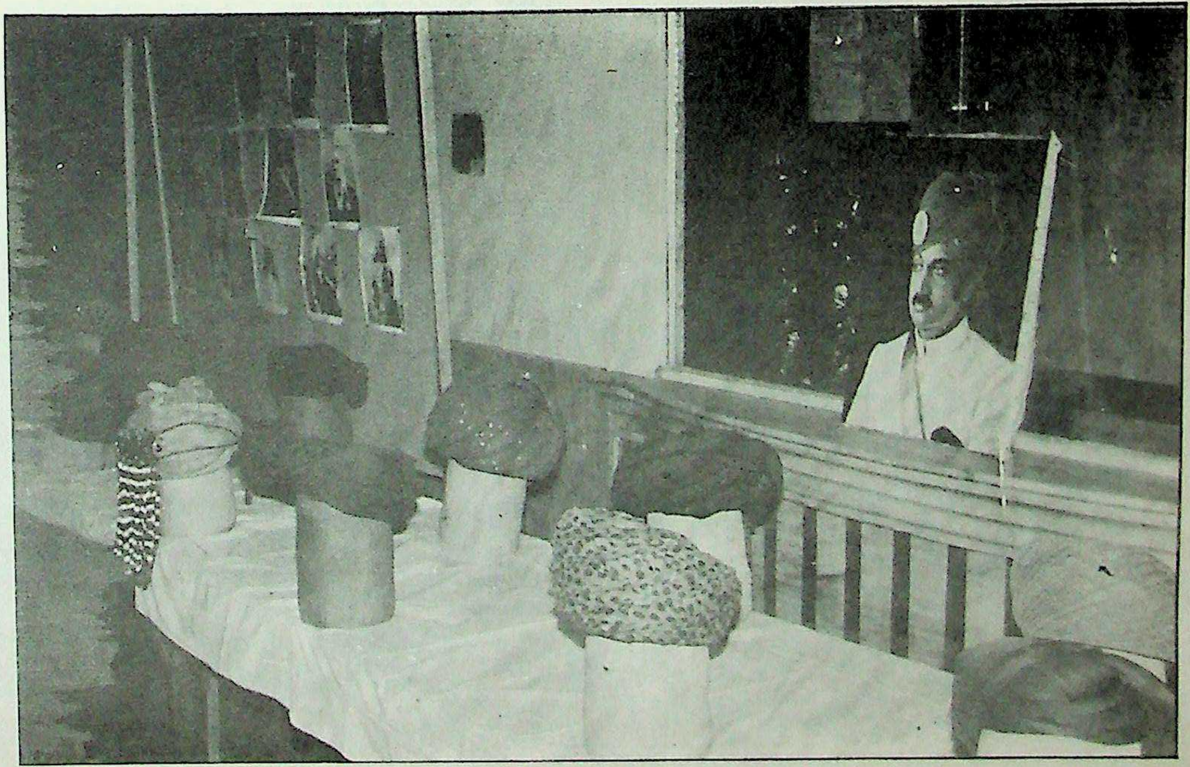

मारवाड़ में वर्तमान में प्रचलित पाग-पगड़ियां

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

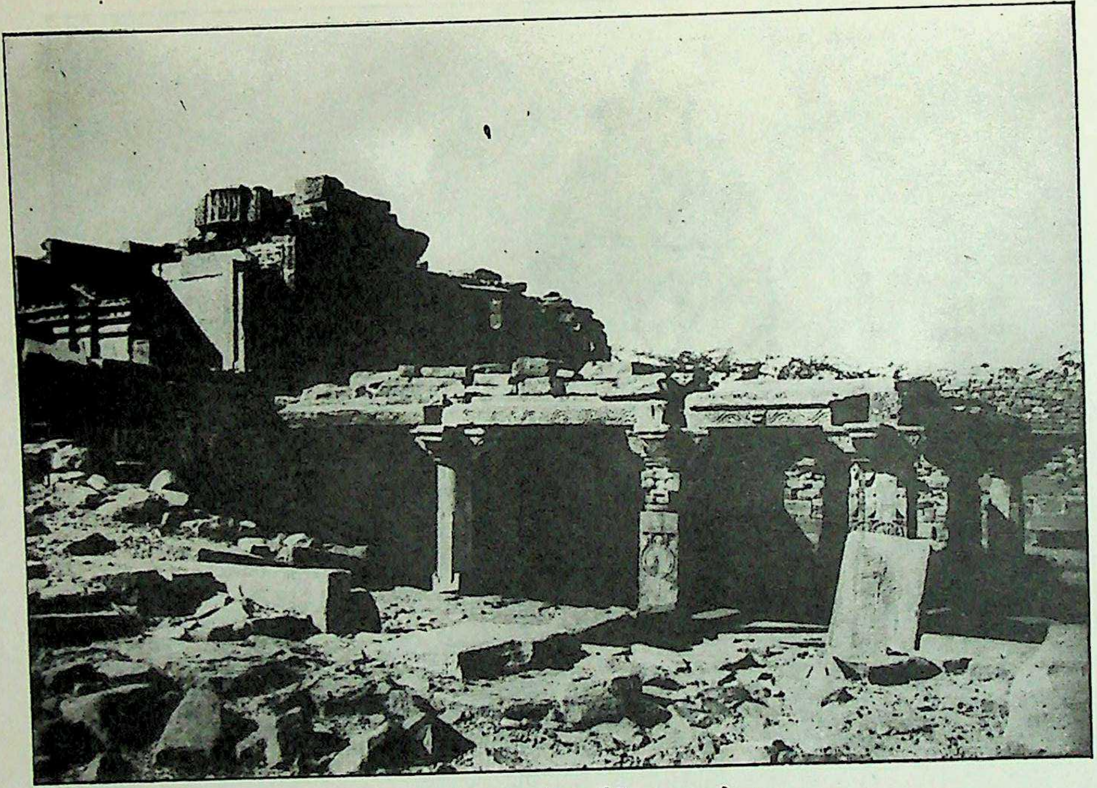

मण्डोर : प्राचीन दुर्ग के भग्नावशेष

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

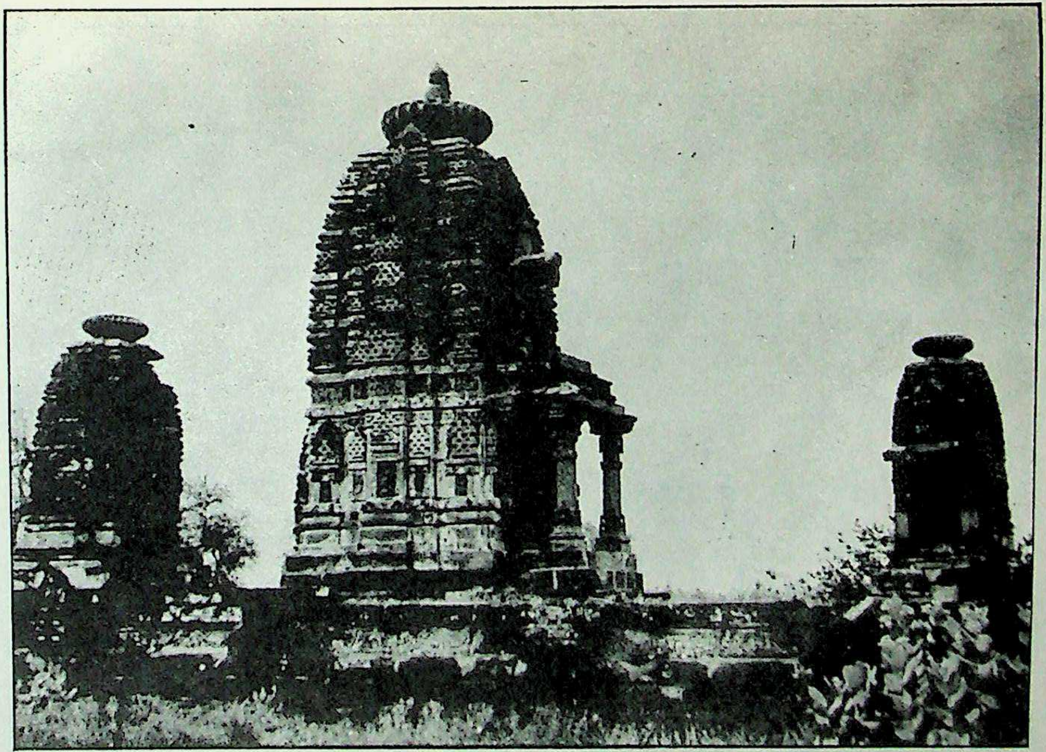

ओसियां का सूर्य मन्दिर

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

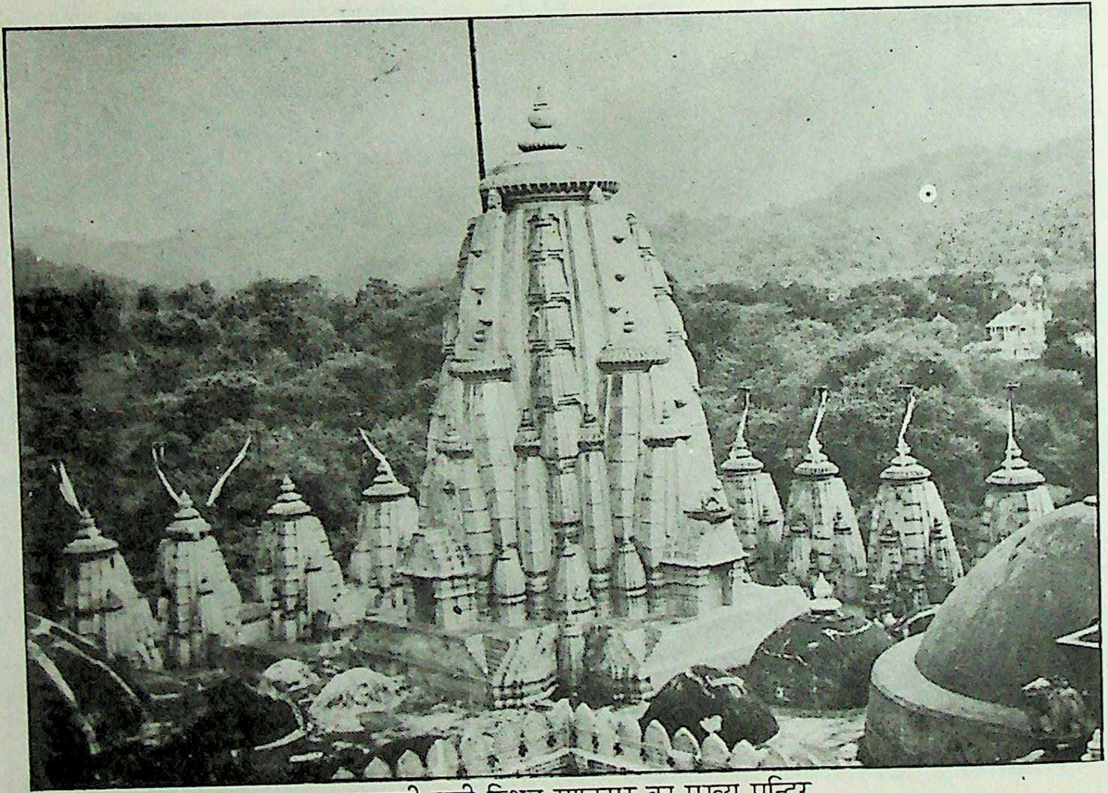

अरावली घाटी स्थित रणकपुर का मुख्य मन्दिर

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

रणकपुर मन्दिर में बारीक नक्काशी

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

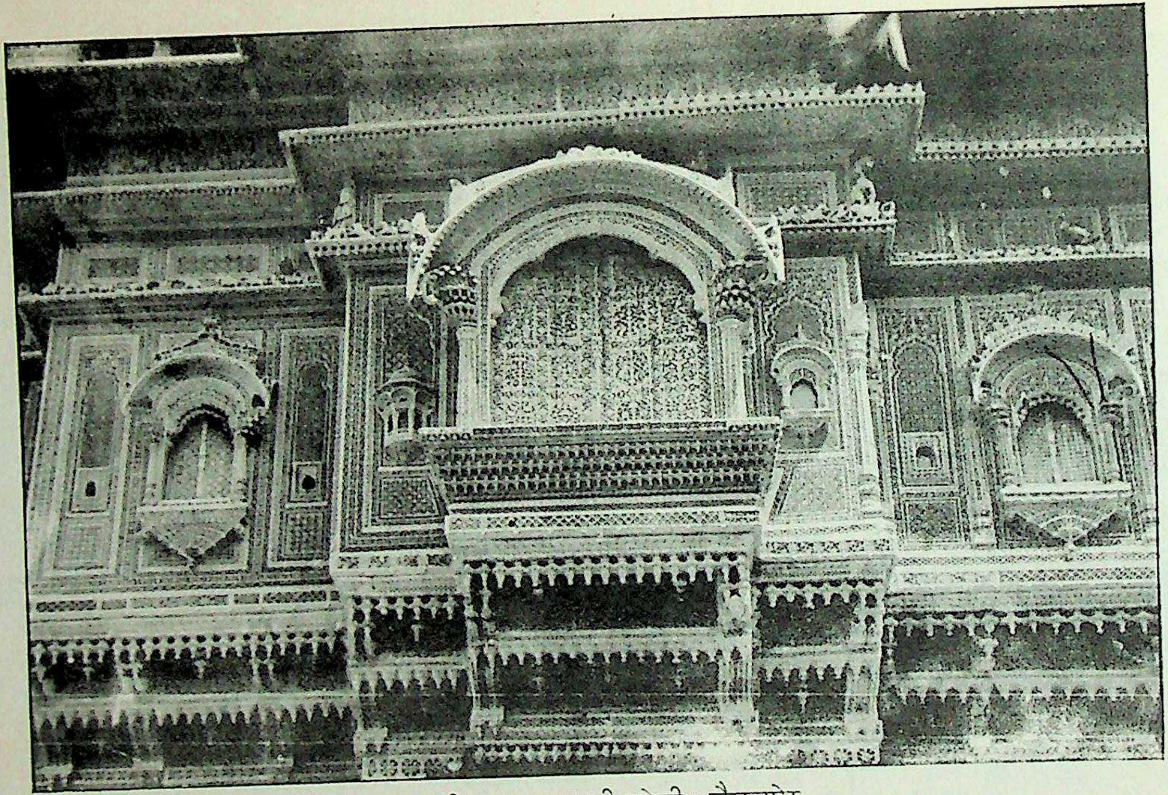

दीवान नथमल की हवेली : जैसलमेर

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

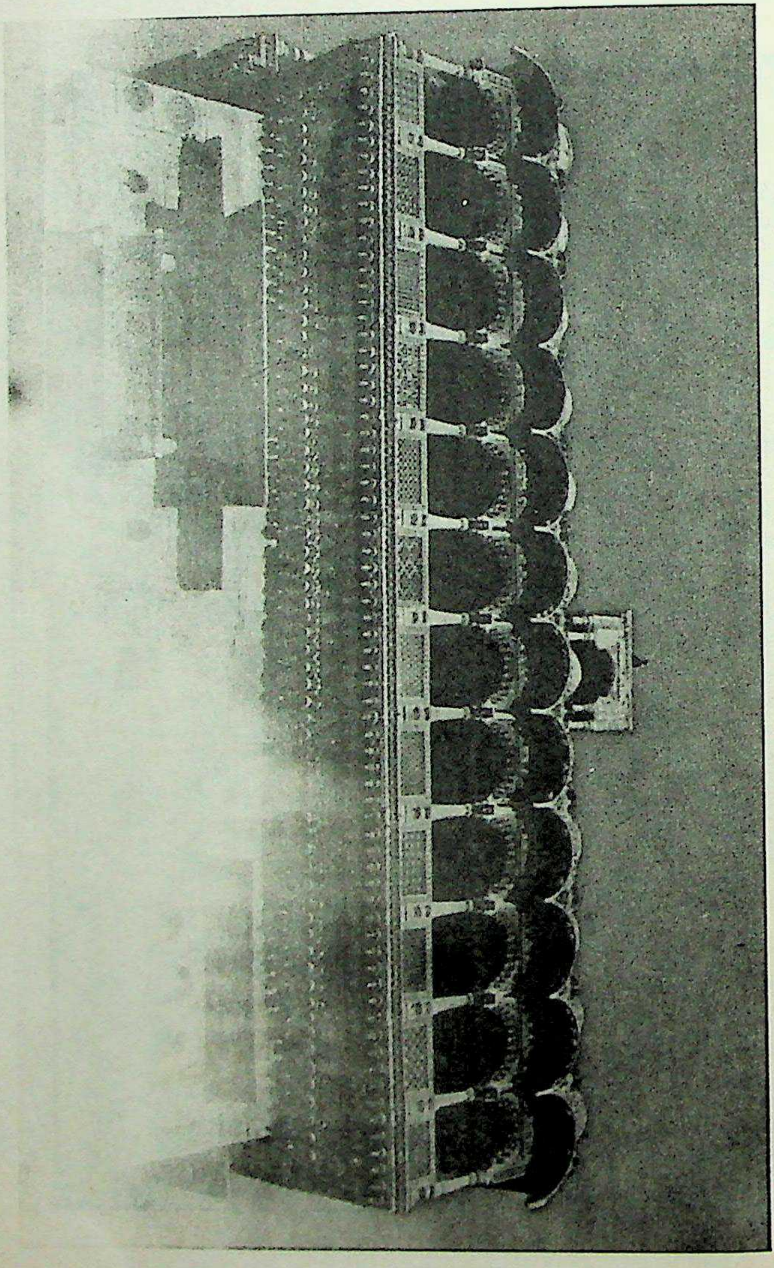

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

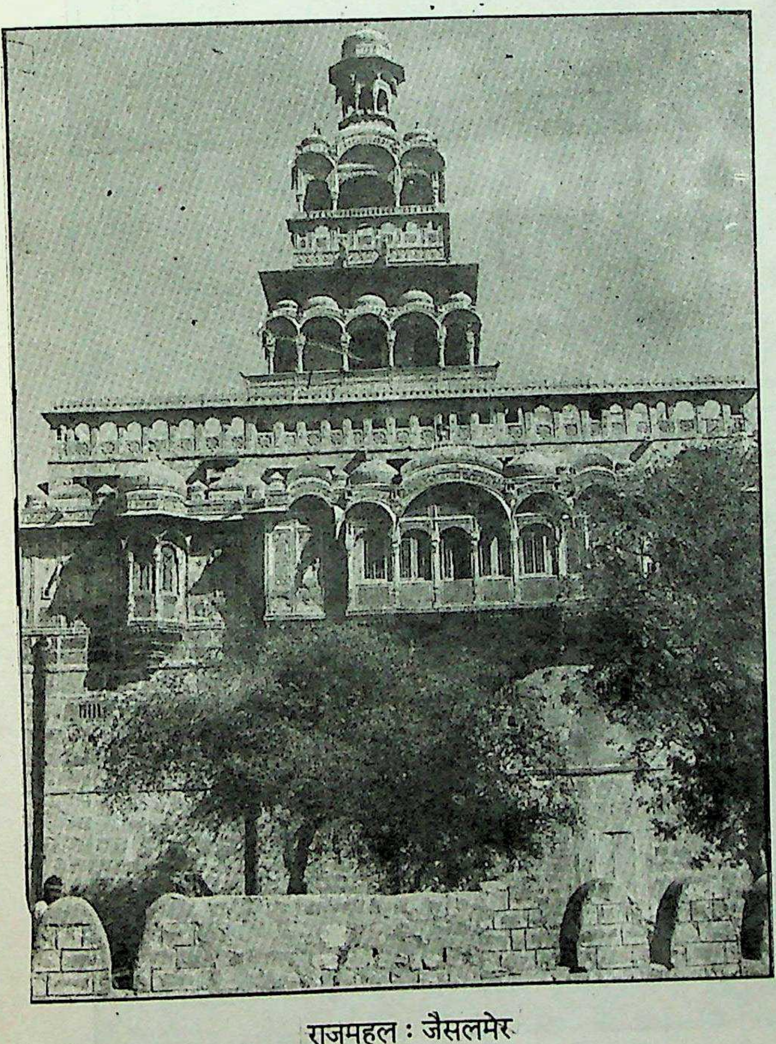

राजमहल : जैसलमेर

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

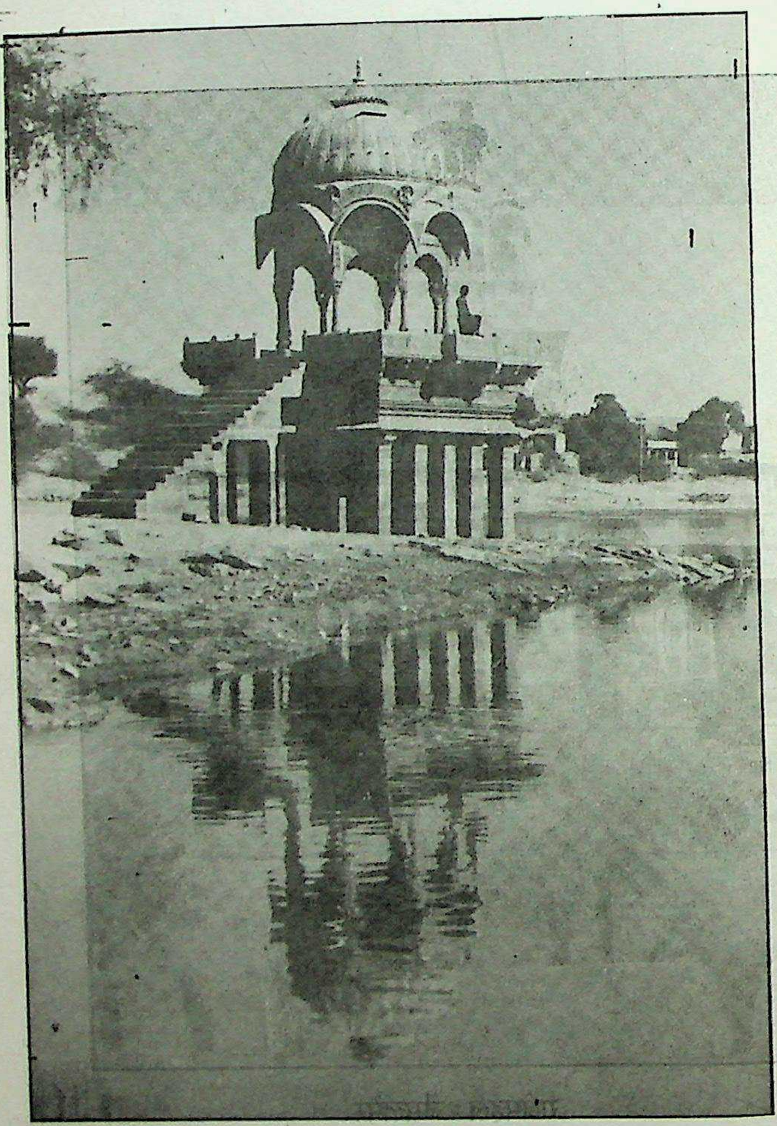

गडीसर : जैसलमेर

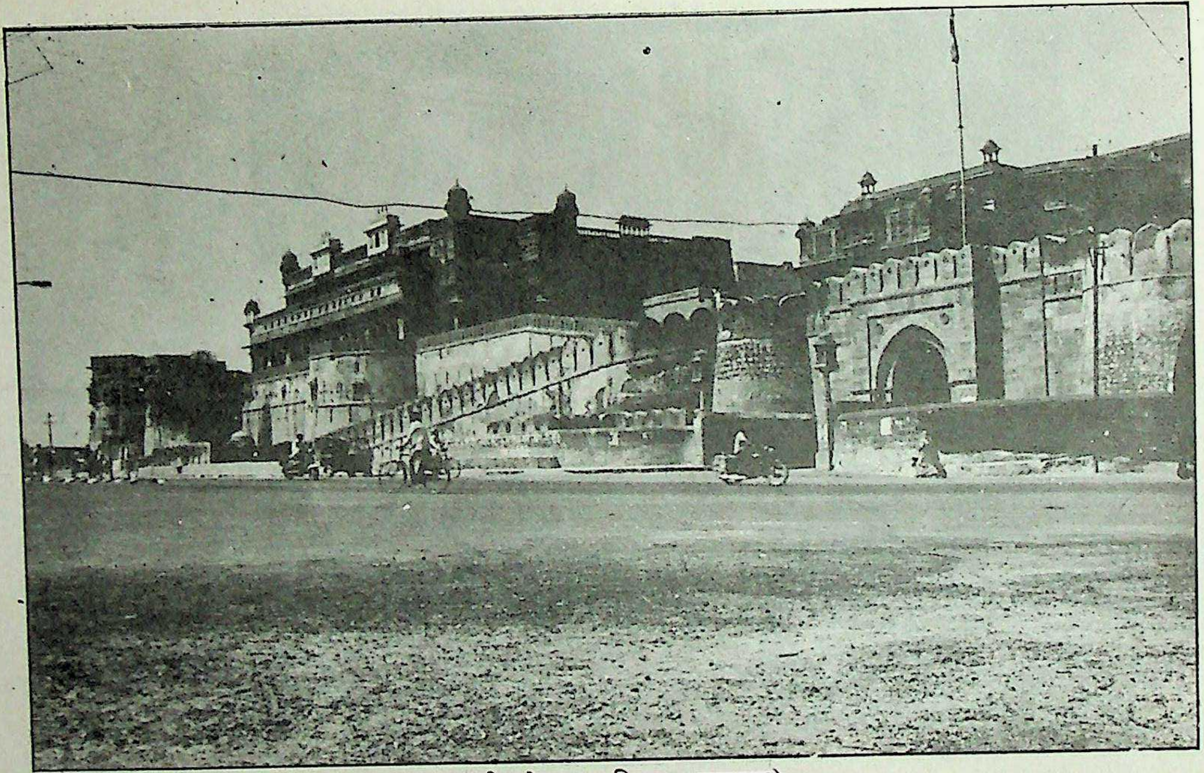

बीकानेर का किला (जूनागढ़)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

बीकानेर चित्र शैली

नूरे ईसा स्कूल प्रकार

1690-1710

स्थापित बीकानेर शैली

उस्ता रुकनुद्दीन स्कूल

1675-80 ई.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

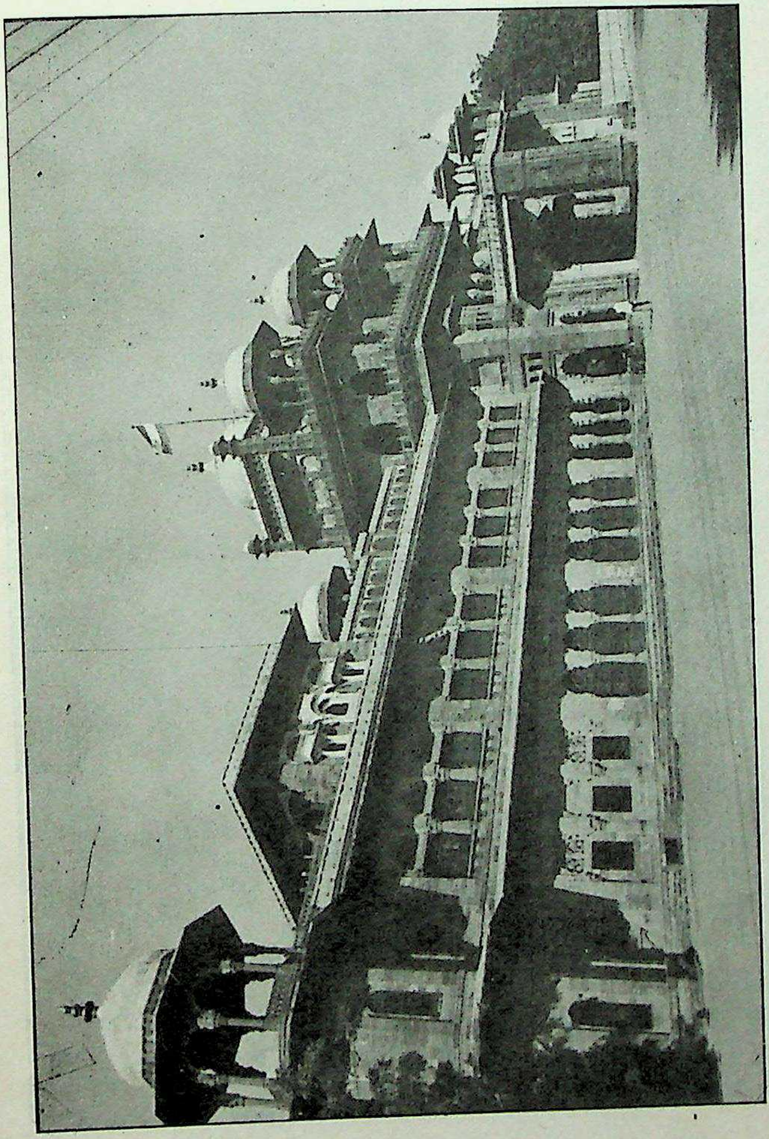

जुबली कोर्ट : जोधपुर

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

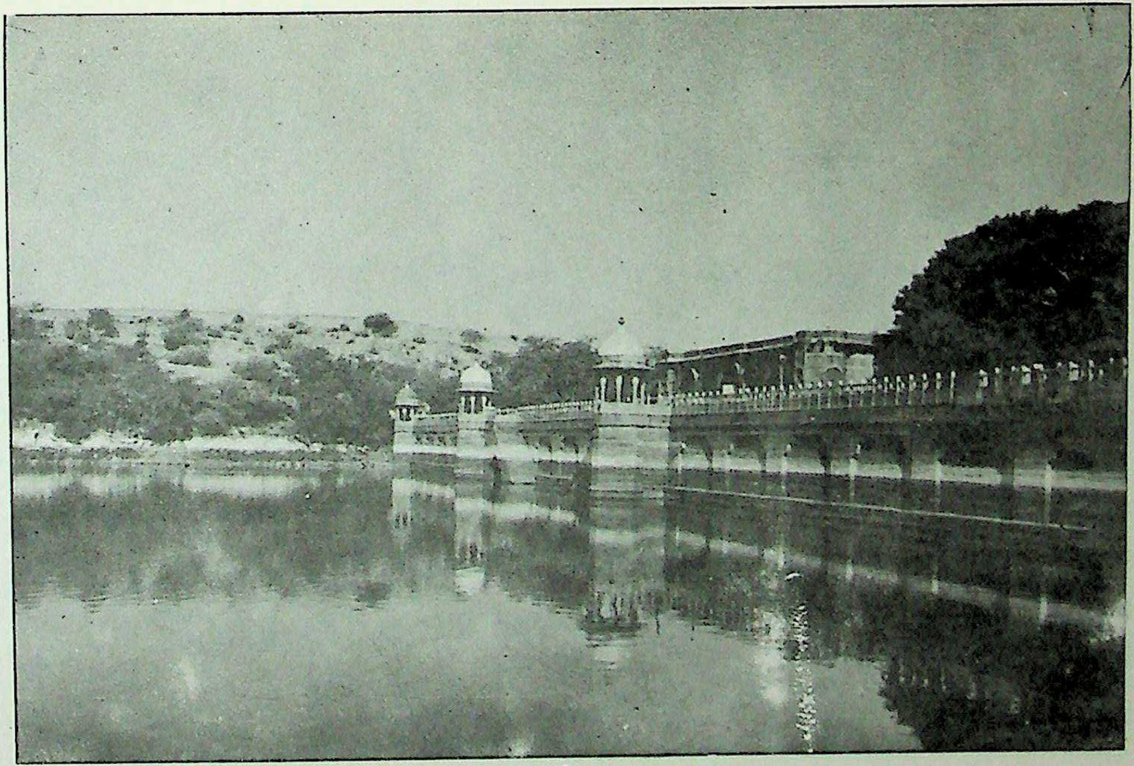

बालसमंद : झील एवं महल

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

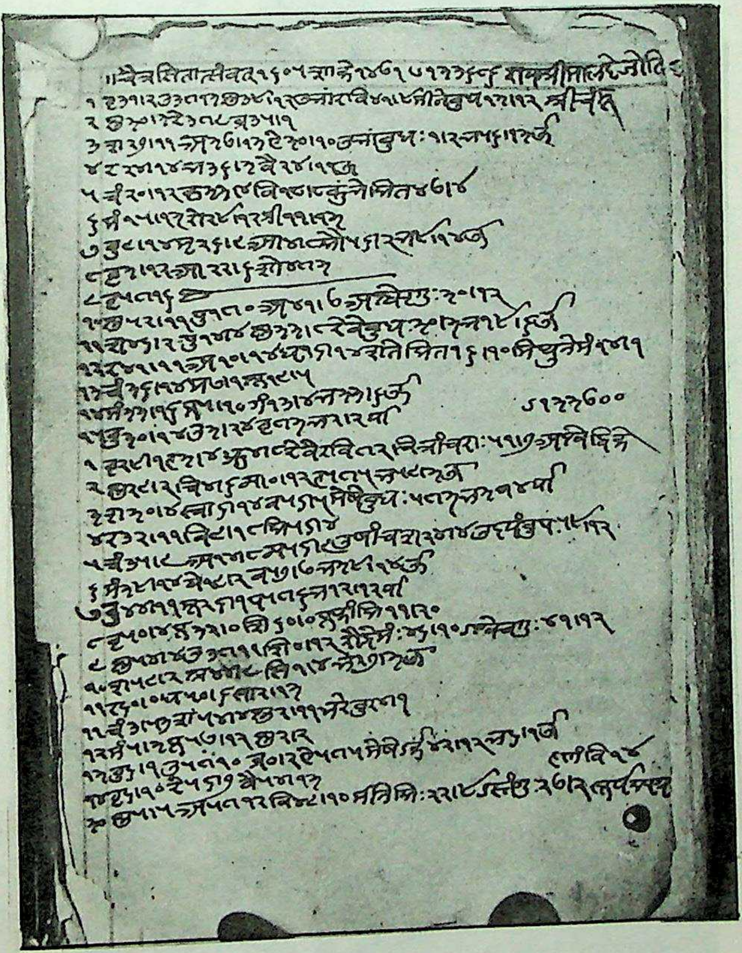

राज ज्योतिषाचार्य पं. चण्डीदास जी (चण्डूजी) द्वारा-निर्मित
संवत् **1605** के पञ्चांग की मूलप्रति का छायाचित्र

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

पुष्कर स्नान : ब्रह्मकुण्ड

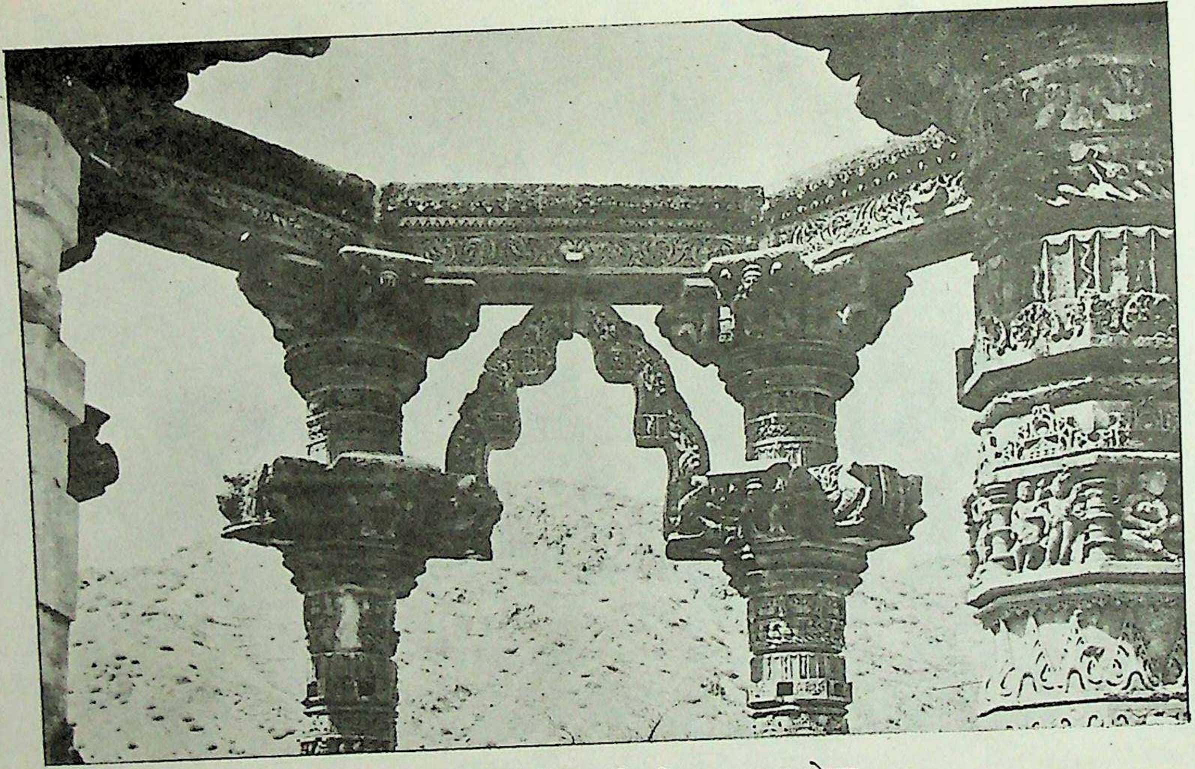

किराड़ू : तोरणिया मंदिर के कलात्मक तोरण

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

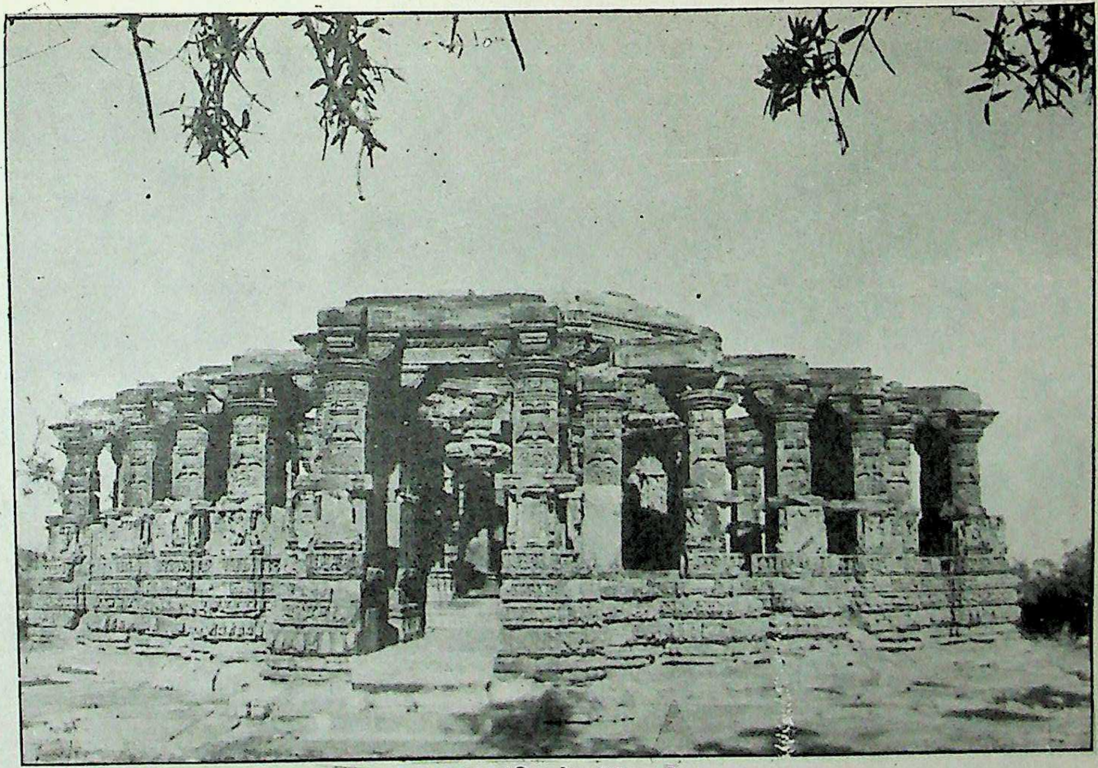

किराडू मंदिर के भग्नावशेष

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मारवाड़ के लोक वाद्य

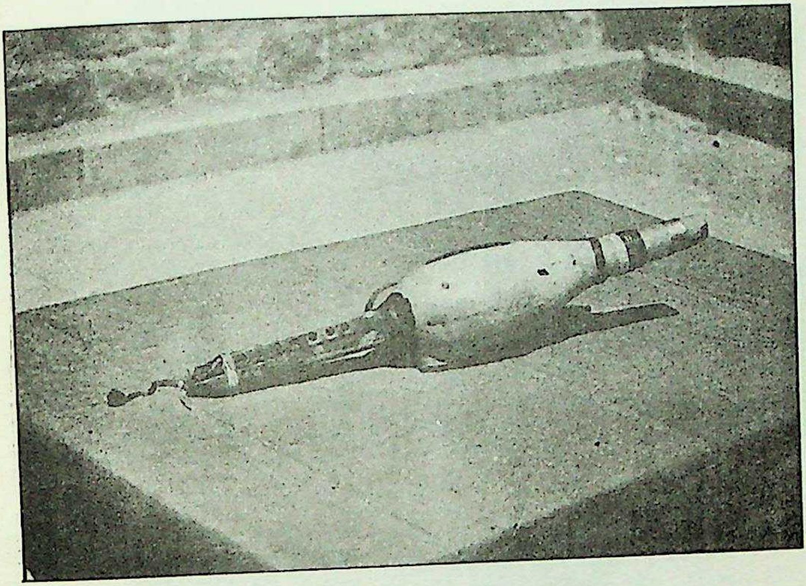

मुरली

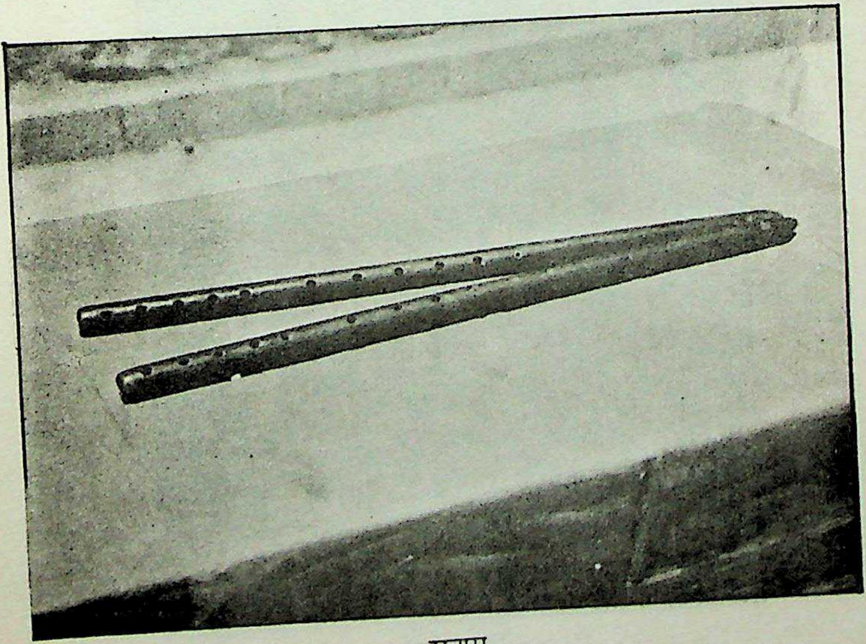

सतारा

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मारवाड़ के लोक वाद्य

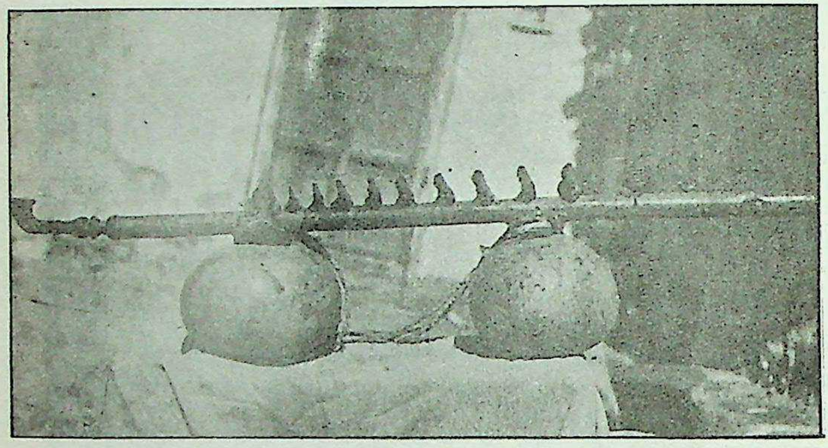

जंतर

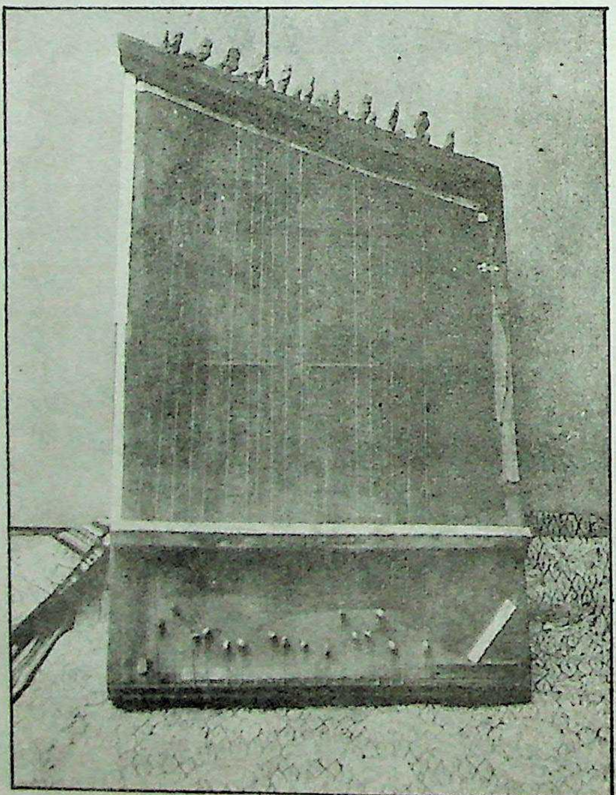

सुरमण्डल

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मारवाड़ के लोक वाद्य

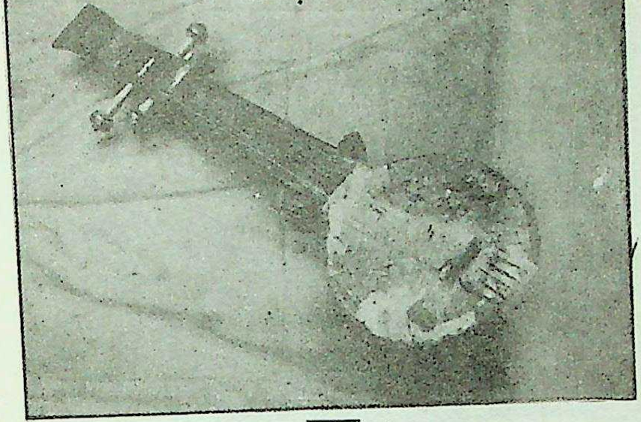

रवाज

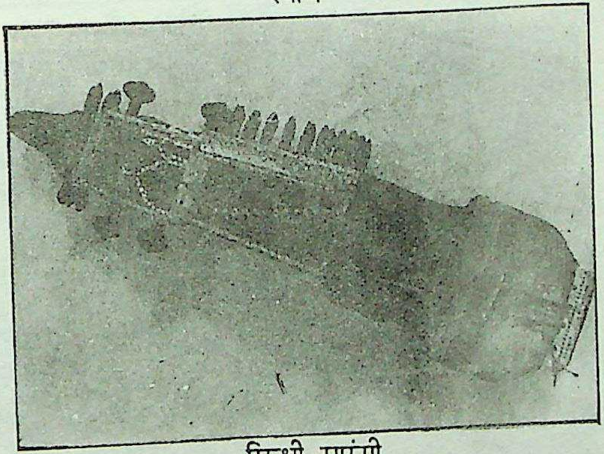

सिन्धी सारंगी

धानी सारंगी

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

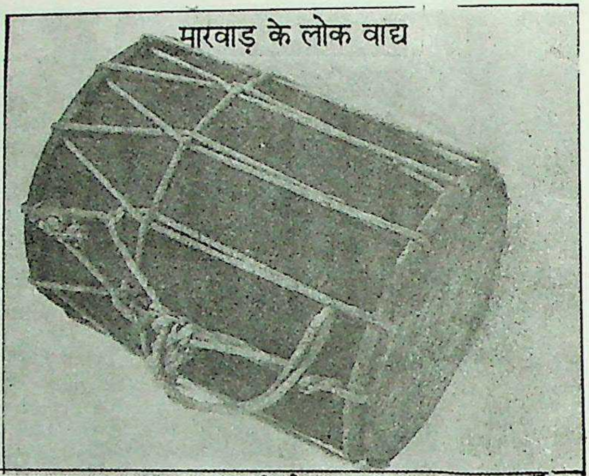

नटों की ढोलक

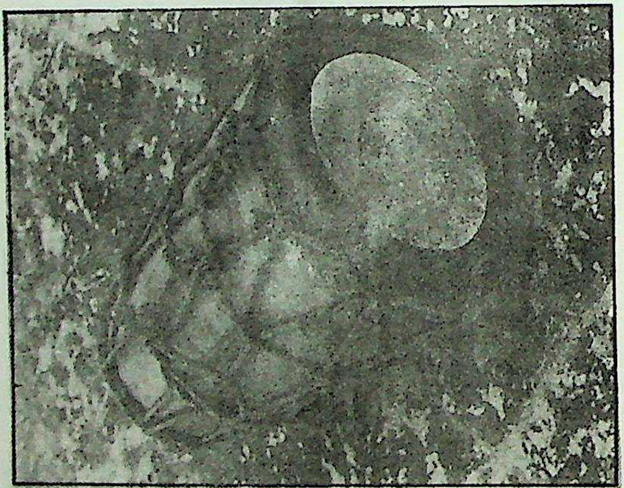

भीलों की मादल

पाबूजी के माटे

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मारवाड़ के मांडणे

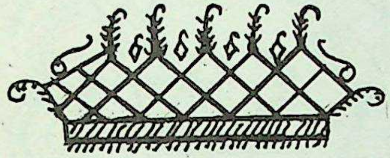

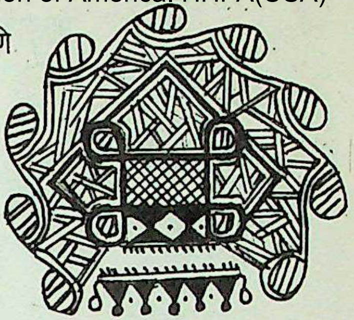

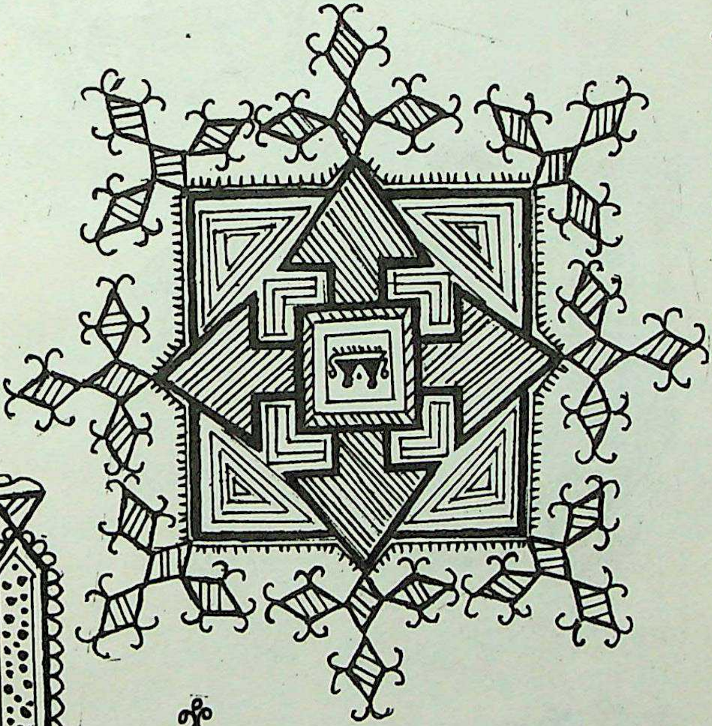

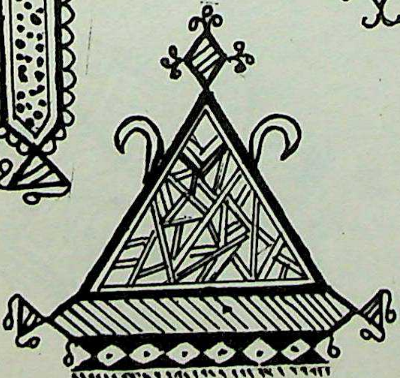

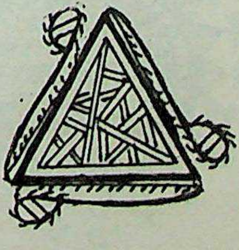

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मारवाड़ के मांडणे

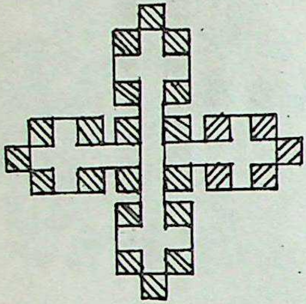

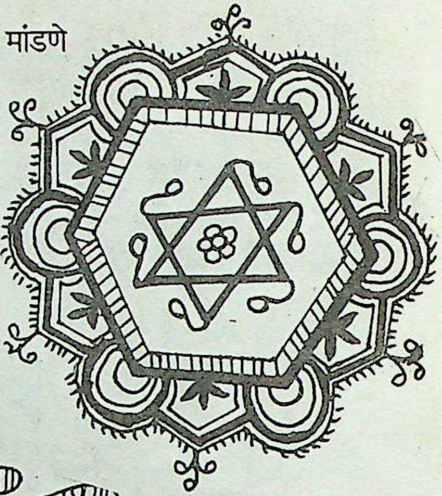

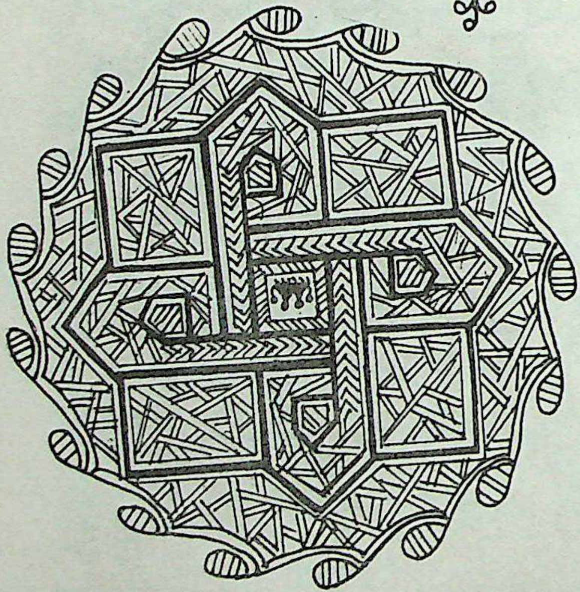

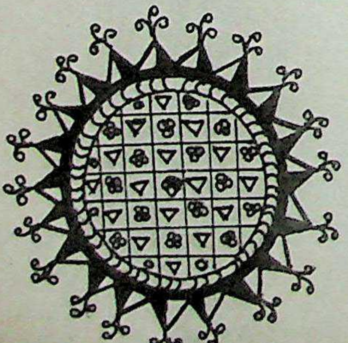

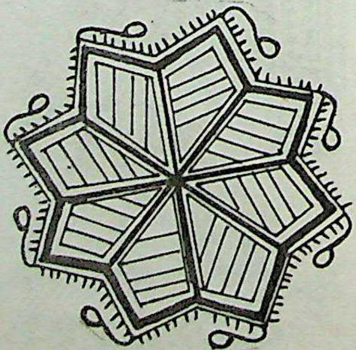

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मारवाड़ की मुद्राएं-अग्र भाग

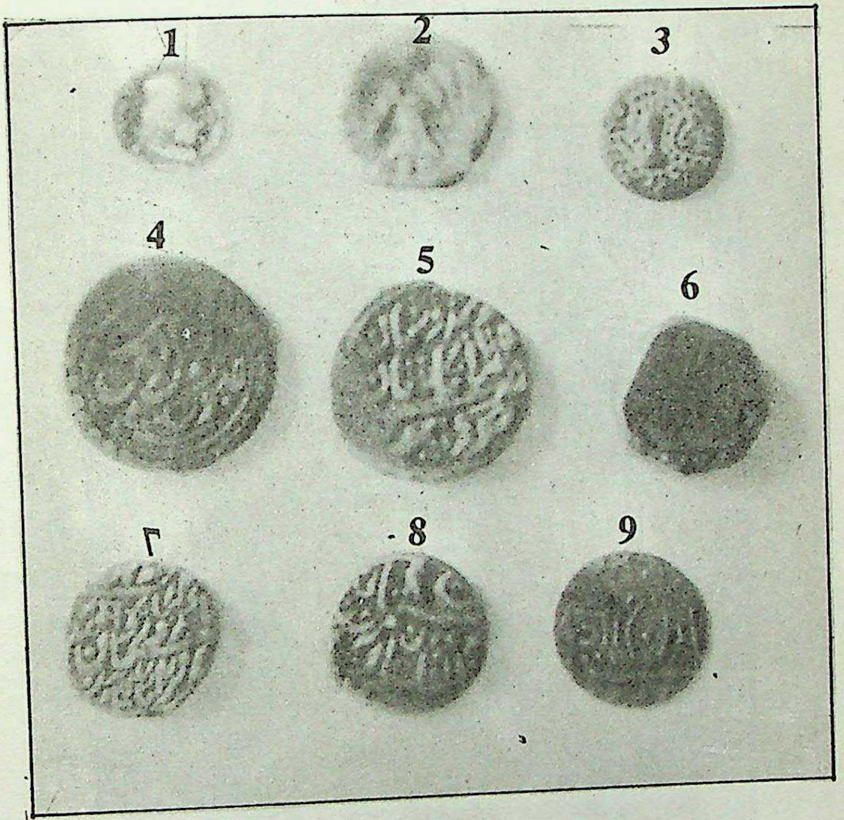

1. शक क्षत्रपरूद्रदामन का सिक्का **2.** कुषाण कालीन ताम्र सिक्का अग्रभाग-राजा की खड़ी आकृति लम्बा कोट पहने हुये पृष्ठ भाग-शिव नन्दी सहित **3.**गदैया सिक्के जोधपुर राज्य के कुछ ताम्र सिक्के **4.**शाह आलम के काल में ढ़ाला गया सिक्का-यह विजयशाही पैसा है। **5** महाराज। तखत सिंह व विक्टोरिया के नाम से ढ़ाला गया। **6.** ढब्बू पैसा-अग्रभाग पर दारोगा द्वारा अंकित 'कि' **7.**रानी विक्टोरिया व महाराजा सरदार सिंह के नाम से ढाला गया दारोगा द्वारा अंकित 'म' **8** व **9** जार्ज **6**वें व उम्मेद सिंह जी के नाम पर ढाले गये सिक्के क्रमशः 'र' व 'गो' अंकित है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मारवाड़ की मुद्राएं-पृष्ठ भाग

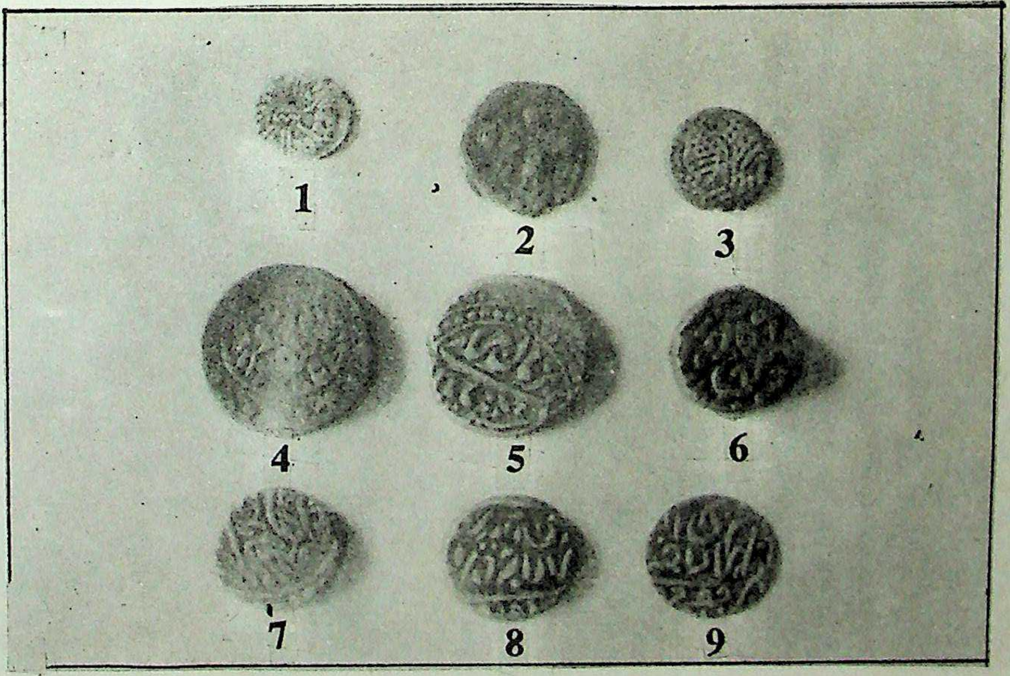

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

प्रो० बी० एन०
संग्रह
लखनऊ

State Museum Library
7134
Lucknow

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

सम्मतियां :

''मारवाड़ की सांस्कृतिक धरोहर' में मारवाड़ संभाग की संस्कृति का सही विश्लेषणात्मक दिक-दर्शन परिलक्षित होता है। पुस्तक में कला-संस्कृति के विविध पक्षों पर बहुत ही सुन्दर विद्वतापूर्ण आलेख समाविष्ट किये गये हैं। पुस्तक सम्पादन के लिए डॉ. राठौड़ बधाई के पात्र हैं। विश्व की एक ऐसी त्याग मूलक, शौर्य एवं लालित्य प्रधान बेजोड़ संस्कृति का संरक्षण अपेक्षित है।

– प्रो. नामवर सिंह

मारवाड़ की विलक्षण संस्कृति के विभिन्न स्वरूपों को सांगोपांग ढंग से चित्रित करने वाली एक पुस्तक की महती आवश्यकता थी जिसकी अब पूर्ति हो गई है। मेरे विचार से यह पुस्तक सभी संस्कृति अध्येताओं तथा विशेषकर मारवाड़ की संस्कृति में अभिरूचि रखने वालों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

– प्रो. एल.एस. राठौड़

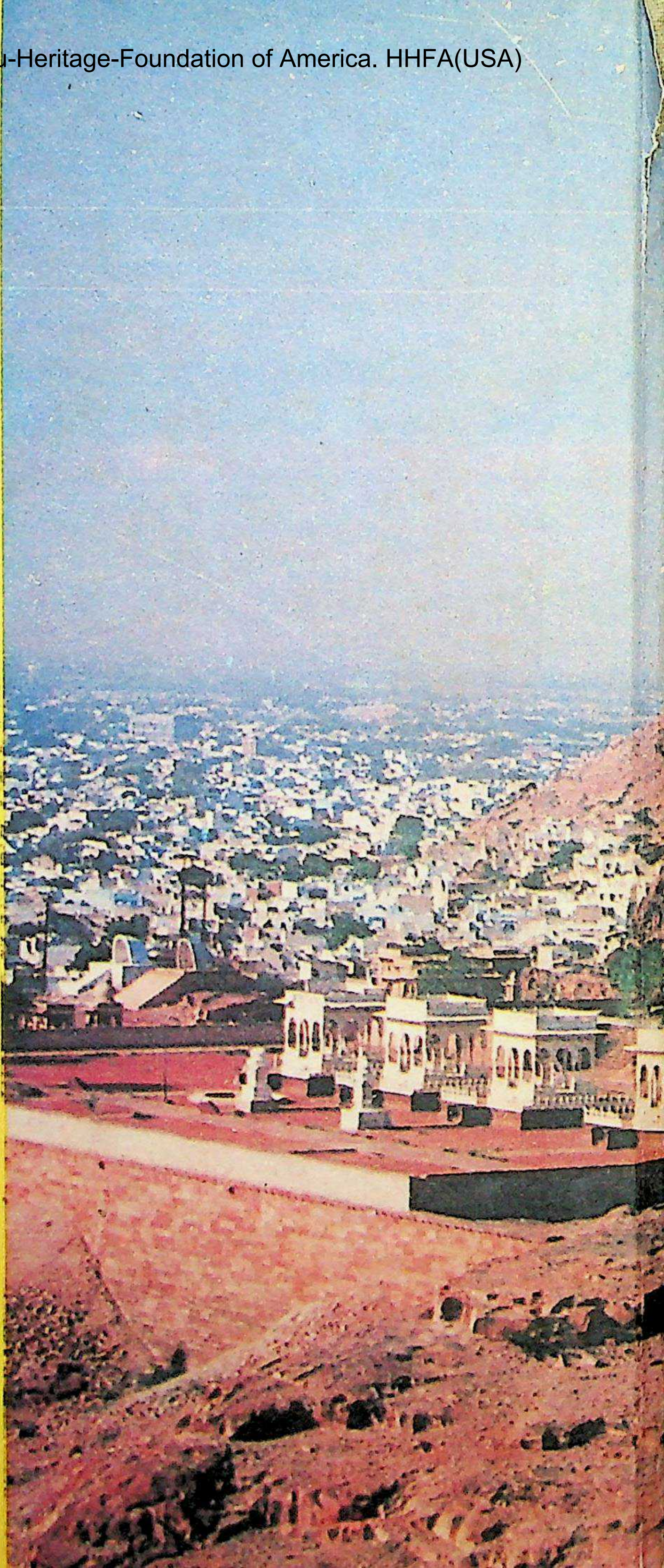

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

सम्मतियां :

''मारवाड़ की सांस्कृतिक धरोहर' में मारवाड़ संभाग की संस्कृति का सही विश्लेषणात्मक दिक-दर्शन परिलक्षित होता है। पुस्तक में कला-संस्कृति के विविध पक्षों पर बहुत ही सुन्दर विद्वतापूर्ण आलेख समाविष्ट किये गये हैं। पुस्तक सम्पादन के लिए डॉ. राठौड़ बधाई के पात्र हैं। विश्व की एक ऐसी त्याग मूलक, शौर्य एवं लालित्य प्रधान बेजोड़ संस्कृति का संरक्षण अपेक्षित है।

— प्रो. नामवर सिंह

मारवाड़ की विलक्षण संस्कृति के विभिन्न स्वरूपों को सांगोपांग ढंग से चित्रित करने वाली एक पुस्तक की महती आवश्यकता थी जिसकी अब पूर्ति हो गई है। मेरे विचार से यह पुस्तक सभी संस्कृति अध्येताओं तथा विशेषकर मारवाड़ की संस्कृति में अभिरुचि रखने वालों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।
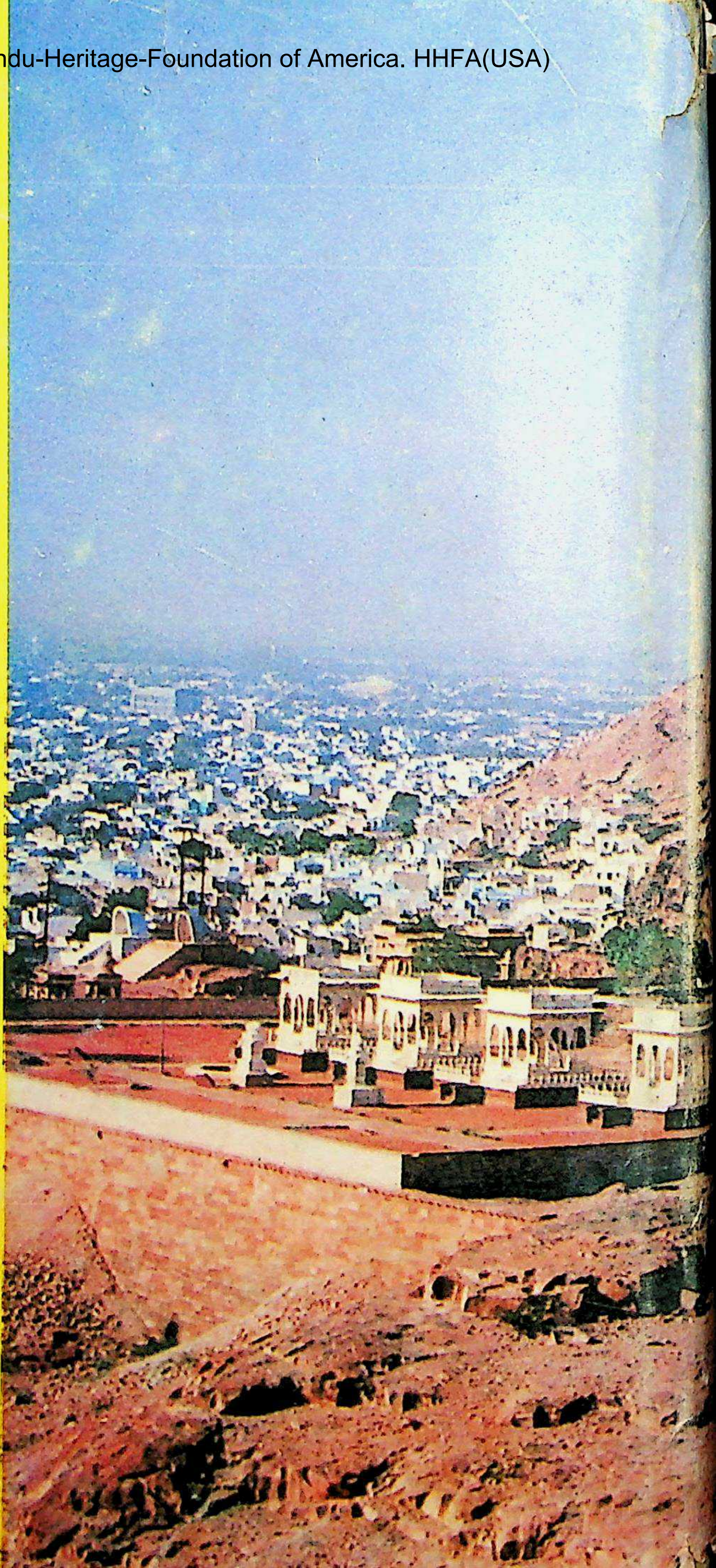
— प्रो. एल.एस. राठौड़